मुंशी प्रेमचंद साहित्य

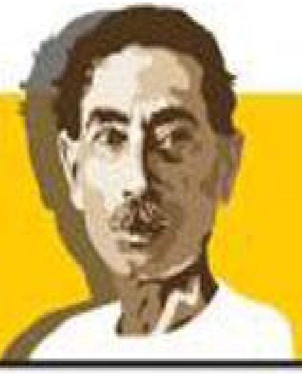

गोदान

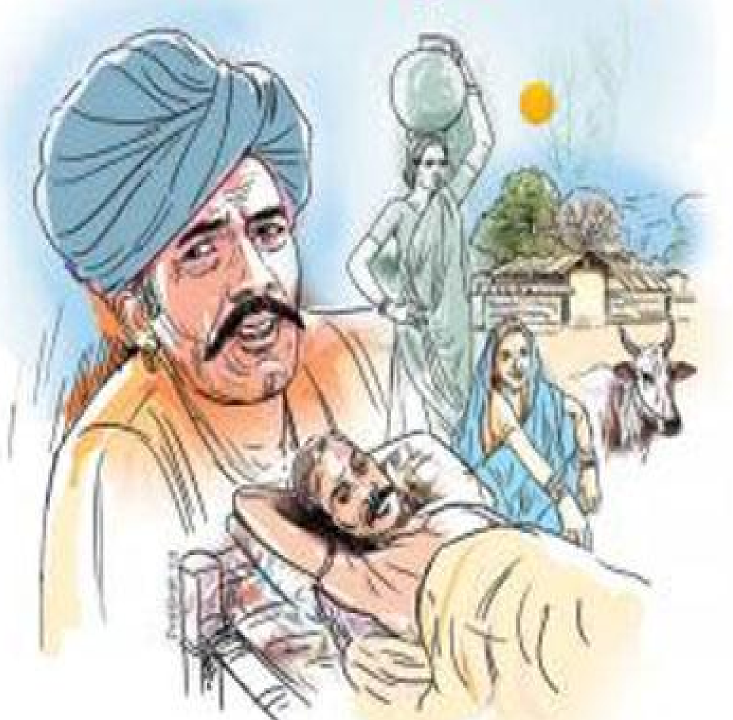

मुन्शी प्रेमचंद यांची सर्वोत्कृष्ठ कादंबरी

गोदान

प्रेमचन्द

मनोज पब्लिकेशन्स

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रकाशक :
मनोज पब्लिकेशन्स
761, मेन रोड बुराड़ी
दिल्ली-110084
फोन : 7258546, 7258349

भारतीय कॉपीराइट ऐक्ट के अन्तर्गत इस पुस्तक की सामग्री तथा रेखाचित्रों के अधिकार 'मनोज पब्लिकेशन्स, 761, मेन रोड बुराड़ी, दिल्ली-84' के पास सुरक्षित हैं, इसलिए कोई भी सज्जन इस पुस्तक का नाम, टाइटल-डिजाइन, अन्दर का मैटर व चित्र आदि आंशिक या पूर्ण रूप से तोड़-मरोड़कर एवं किसी भी भाषा में छापने व प्रकाशित करने का साहस न करें, अन्यथा कानूनी तौर पर हर्जे-खर्चे व हानि के जिम्मेदार स्वयं होंगे।

संस्करण
1998

मूल्य:
पेपर बैक संस्करण : 50/-
सजिल्द लाइब्रेरी संस्करण : 100/-

मुद्रक :
आदर्श प्रिण्टर्स
नवीन शाहदरा,
दिल्ली-110032

गोदान

हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि

मुंशी प्रेमचंद की लेखनी का यह चमत्कार था कि समाज में इर्द-गिर्द घटता आप बीता-सा लगे। इसी तादात्म्य साधना ने उन्हें उपन्यास जगत में वह स्थान दिया, जो किसी और को प्राप्त नहीं है।

उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं में जहां समाज में व्याप्त कुरीतियों को आड़े हाथों लिया, उन पर करारा प्रहार किया, वहीं भारतीय जन-जीवन की अस्मिता को भी खोजा।

मुंशी जी की रचनाएं भारतीय जन-जीवन का आईना हैं। हिंदी-साहित्य की अमूल्य निधि ये रचनाएं ऐसे आदर्शों की बात करती हैं, जो जमीन से जुड़े हैं, यथार्थ हैं।

'गोदान' को पढ़ते समय आपको ऐसा लगेगा मानो यह आपकी ही, आपके आसपास की ही कहानी हो। शायद यही कारण रहा कि विश्व की लगभग प्रत्येक भाषा में ही इसका अनुवाद हुआ।

हमें विश्वास है कि *'गोदान'* का अत्यंत प्रामाणिक संस्करण आपको अवश्य पसंद आएगा।

—प्रकाशक

Collect more e-books

A lot collection of Hindi e-books

Please click the link below-

www.ebookspdf.in

: 1 :

होरीराम ने दोनों वैलों को सानी-पानी देकर अपनी स्त्री धनिया से कहा—गोवर को ऊख गोड़ने भेज देना। मैं न जाने कव लौटूं। जरा मेरी लाठी दे दे।

धनिया के दोनों हाथ गोवर से भरे थे। उपले पाथकर आयी थी। वोली—अरे, कुछ रस-पानी तो कर लो। ऐसी जल्दी क्या है?

होरी ने अपने झुर्रियों से भरे हुए माथे को सिकोड़कर कहा—तुझे रस-पानी की पड़ी है, मुझे यह चिन्ता है कि अवेर हो गयी, तो मालिक से भेंट न होगी। स्नान-पूजा करने लगेंगे, तो घण्टों वैठे वीत जायेगा।

'इसी से तो कहती हूं, कुछ जलपान कर लो। और आज न जाओगे, तो कौन हरज होगा। अभी तो परसों गये थे।'

'तू जो वात नहीं समझती, उसमें टांग क्यों अड़ाती है भाई? मेरी लाठी दे दे और अपना काम देख। यह इसी मिलते-जुलते रहने का परसाद है कि अव तक जान वची हुई है, नहीं कहीं पता न लगता कि किधर गये। गांव में इतने आदमी तो हैं, किस पर वेदखली नहीं आयी, किस पर कुड़की नहीं आयी। जव दूसरे के पांवों-तले अपनी गर्दन दवी हुई है, तो उन पांवों को सहलाने में ही कुशल है।'

धनिया इतनी व्यवहारकुशल न थी। उसका विचार था कि हमने ज़मींदार के खेत जोते हैं, तो वह अपना लगान ही तो लेगा। उसकी खुशामद क्यों करें, उसके तलवे क्यों सहलायें? यद्यपि अपने विवाहित जीवन के इन वीस वरसों में उसे अच्छी तरह अनुभव हो गया था कि चाहे कितनी ही कतर-व्योंत करो, कितना ही पेट-तन काटो, चाहे एक-एक कौड़ी को दांत से पकड़ो, मगर लगान वेवाक़ होना मुश्किल है। फिर भी वह हार न मानती थी और इस विषय पर स्त्री-पुरुष में आये दिन संग्राम छिड़ा रहता था। उसकी छः सन्तानों में अब केवल तीन ज़िन्दा हैं, एक लड़का गोवर कोई सोलह साल का और दो लड़कियां सोना और रूपा, बारह और आठ साल की। तीन लड़के वचपन ही में मर गये। उसका मन आज भी कहता था, अगर उनकी दवा-दारू होती, तो वे वच जाते, पर वह एक धेले की दवा भी न मंगवा सकी थी। उसकी ही उम्र अभी क्या थी। छत्तीसवां ही साल तो था, पर सारे वाल पक गये थे, चेहरे पर झुर्रियां पड़ गयी थीं, वह सुन्दर गेहुंआ रंग संवला गया था और आंखों से भी कम सूझने लगा था। पेट की चिन्ता ही के कारण तो। कभी तो जीवन का सुख न [illegible] इस चिरस्थायी जीर्णावस्था ने उसके आत्मसम्मान को उदासीनता का रूप दे दिया था। [illegible] में पेट को रोटियां भी न मिलें, उसके लिए इतनी खुशामद क्यों? इस परिस्थिति से उसका [illegible] विद्रोह किया करता था और दो-चार घुड़कियां खा लेने पर ही उसे यथार्थ का ज्ञान [illegible]

उसने परास्त होकर होरी की लाठी, मिरजई, जूते, पगड़ी और तमा[illegible] [illegible] पटक दिये।

होरी ने उसकी ओर आंखें तरेर कर कहा—क्या ससुराल जाना है, जो पांचों पोशाक लायी है? ससुराल में भी तो कोई जवान साली-सलहज नहीं बैठी है, जिसे जाकर दिखाऊं।

होरी के गहरे सांवले, पिचके हुए चेहरे पर मुसकराहट की मृदुता झलक पड़ी। धनिया ने लजाते हुए कहा—ऐसे ही तो बड़े सजीले जवान हो कि साली-सलहजें तुम्हें देखकर रीझ जायेंगी!

होरी ने फटी हुई मिरजई को बड़ी सावधानी से तह करके खाट पर रखते हुए कहा—तो क्या तू समझती है, मैं बूढ़ा हो गया? अभी तो चालीस भी नहीं हुए। मर्द साठे पर पाठे होते हैं।

'जाकर सीसे में मुंह देखो। तुम जैसे मर्द साठे पर पाठे नहीं होते। दूध-घी- अञ्जन लगाने तक को तो मिलता नहीं, पाठे होंगे! तुम्हारी दशा देख-देखकर तो मैं और भी सूखी जाती हूं कि भगवान् यह बुढ़ापा कैसे कटेगा? किसके द्वार पर भीख मांगेंगे?'

होरी की यह क्षणिक मृदुता यथार्थ की इस आंच में जैसे झुलस गयी। लकड़ी संभालता हुआ बोला—साठ तक पहुंचने की नौबत न आने पायेगी धनिया! इसके पहले ही चल देंगे।

धनिया ने तिरस्कार किया—अच्छा रहने दो, मत असुभ मुंह से निकालो। तुमसे कोई अच्छी बात भी कहे, तो लगते हो कोसने।

होरी कन्धे पर लाठी रखकर घर से निकला, तो धनिया द्वार पर खड़ी उसे देर तक देखती रही। उसके इन निराशा-भरे शब्दों ने धनिया के चोट खाये हुए हृदय में आतंकमय कम्पन डाल दिया था। वह जैसे अपने नारीत्व के सम्पूर्ण तप और व्रत से अपने पति को अभय-दान दे रही थी। उसके अन्तःकरण से जैसे आशीर्वादों का व्यूह-सा निकलकर होरी को अपने अन्दर छिपाये लेता था। विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण था, जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी। इन असंगत शब्दों ने यथार्थ के निकट होने पर भी, मानो झटका देकर उसके हाथ से वह तिनके का सहारा छीन लेना चाहा, बल्कि यथार्थ के निकट होने के कारण ही उनमें इतनी वेदना-शक्ति आ गयी थी। काना कहने से काने को जो दुःख होता है, वह क्या दो आंखों वाले आदमी को हो सकता है?

होरी क़दम बढ़ाये चला जाता था। पगडण्डी के दोनों ओर ऊख के पौधों की लहराती हुई हरियाली देखकर उसने मन में कहा—भगवान् कहीं गौं से बरखा कर दें और डांड़ी भी सुभीते से रहे, तो एक गाय ज़रूर लेगा। देशी गायें तो न दूध दें, न उनके बछवे ही किसी काम के हों, बहुत हुआ तो तेली के कोल्हू में चलें। नहीं, वह पछांई गाय लेगा। उसकी खूब सेवा करेगा। कुछ नहीं, तो चार-पांच सेर दूध होगा। गोबर दूध के लिए तरस-तरस कर रह जाता है। इस उमिर में न खाया-पिया, तो फिर कब खायेगा? साल-भर भी दूध पी ले, तो देखने लायक हो जाये। बछवे भी अच्छे बैल निकलेंगे। दो सौ से कम की गोईं न होगी। फिर, गऊ से ही तो द्वार की सोभा है। सबेरे-सबेरे गऊ के दरसन हो जायें, तो क्या कहना! न जाने कब यह साध पूरी होगी, कब वह शुभ दिन आयेगा!

हर एक गृहस्थ की भांति होरी के मन में भी गऊ की लालसा चिरकाल से सञ्चित चली आती थी। यही उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न, सबसे बड़ी साध थी। बैंक सूद से चैन करने या ज़मीन ख़रीदने या महल बनवाने की विशाल आकांक्षाएं उसके नन्हे-से हृदय में कैसे समातीं?

जेठ का सूर्य आमों के झुरमुट से निकलकर आकाश पर छायी हुई लालिमा को अपने रजत-प्रताप से तेज़ करता हुआ ऊपर चढ़ रहा था और हवा में गरमी आने लगी थी। दोनों ओर खेतों में काम करने वाले किसान उसे देखकर राम-राम करते और सम्मान-भाव से चिलम पीने का निमन्त्रण देते थे, पर होरी को इतना अवकाश कहां था! उसके अन्दर बैठी हुई सम्मान-लालसा ऐसा आदर पाकर उसके सूखे मुख पर गर्व की झलक पैदा कर रही थी। मालिकों से मिलते-जुलते रहने ही का तो यह प्रसाद है कि सब उसका आदर करते हैं, नहीं उसे कौन पूछता? पांच बीघे के किसान की बिसात ही क्या? यह कम आदर नहीं है कि तीन-तीन, चार-चार हलवाले महतो भी उसके सामने सिर झुकाते हैं।

अव वह खेतों के वीच की पगडण्डी छोड़कर एक खलेटी में आ गया था, जहां वरसात में पानी भर जाने के कारण तरी रहती थी और जेठ में कुछ हरियाली नज़र आती थी। आस-पास के गांवों की गायें यहां चरने आया करती थीं। उस समय में भी यहां की हवा में कुछ ताज़गी और टण्डक थी। होरी ने दो-तीन सांसें ज़ोर से लीं। उसके जी में आया, कुछ देर यहीं वैठ जाये। दिन-भर तो लू-लपट में मरना है ही। कई किसान इस गड्ढे का पट्टा लिखाने को तैयार थे। अच्छी रक़म देते थे, पर ईश्वर भला करे रायसाहव का कि उन्होंने साफ़ कह दिया, यह ज़मीन जानवरों की चराई के लिए छोड़ दी गयी है और किसी दाम पर भी न उठायी जायेगी। कोई स्वार्थी ज़मींदार होता, तो कहता, गायें जायें भाड़ में, हमें मिलते हैं, क्यों छोड़ें? पर रायसाहव अभी तक पुरानी मर्यादा निभाते आते हैं। जो मालिक प्रजा को न पाले, वह भी कोई आदमी है!

सहसा उसने देखा, भोला अपनी गायें लिये इसी तरफ़ चला आ रहा है। भोला इसी गांव से मिले हुए पुरवे का ग्वाला था और दूध-मक्खन का व्यवसाय करता था। अच्छा दाम मिल जाने पर कभी-कभी किसानों के हाथ गायें वेच भी देता था। होरी का मन उन गायों को देखकर ललचा गया। अगर भोला वह आगेवाली गाय उसे दे दे, तो क्या कहना, रुपये आगे-पीछे देता रहेगा। वह जानता था, घर में रुपये नहीं हैं। अभी तक लगान नहीं चुकाया जा सका, विसेसर साह का देना भी वाक़ी है, जिस पर आने रुपये का सूद चढ़ रहा है, लेकिन दरिद्रता में जो एक प्रकार की अदूरदर्शिता होती है, वह निर्लज्जता के तक़ाज़े, गाली और मार से भी भयभीत नहीं होती, उसने उसे प्रोत्साहित कर दिया। भोला के समीप जाकर बोला—राम-राम भोला भाई, कहो, क्या रंग-ढंग हैं? सुना, अवकी मेले से नयी गायें लाये हो?

भोला ने रुखाई से जवाव दिया। होरी के मन की वात उसने ताड़ ली थी—हां, दो वछियें और दो गायें लाया। पहलेवाली गायें सव सूख गयी थीं। वन्धी पर दूध न पहुंचे, तो गुजर कैसे हो?

होरी ने आगेवाली गाय के पुट्ठे पर हाथ रखकर कहा—दुधार तो मालूम होती है। कितने में ली?

भोला ने शान जमायी—अवकी वाज़ार वड़ा तेज रहा महतो, इसके अस्सी रुपये देने पड़े। आंखें निकल गयीं। तीस-तीस रुपये तो दोनों कलोरों के दिये। तिस पर ग्राहक रुपये का आठ सेर दूध मांगता है।

'वड़ा भारी कलेजा है तुम लोगों का भाई, लेकिन फिर लाये भी, तो वह माल कि यहां दस-पांच गांवों में तो किसी के पास निकलेगी नहीं।'

भोला पर नशा चढ़ने लगा। वोला—रायसाहव इसके सौ रुपये देते थे। दोनों कलोरों के पचास-पचास रुपये, लेकिन हमने न दिये। भगवान् ने चाहा, तो सौ रुपये इसी व्यात में पीट लूंगा।

'इसमें क्या सन्देह है भाई? मालिक क्या खा के लेंगे? नजराने में मिल जाये, तो भले ले लें। यह तुम्हीं लोगों का गुर्दा है कि अंजुली-भर रुपये तकदीर के भरोसे गिन देते हो। यही जी चाहता है कि इसके दरसन करता रहूं। धन्य है तुम्हारा जीवन कि गउओं की इतनी सेवा करते हो! हमें तो गाय का गोवर भी मयस्सर नहीं। गिरस्त के घर में एक गाय भी न हो, तो कितनी लज्जा की वात है। साल-के-साल वीत जाते हैं, गोरस के दरसन नहीं होते। घरवाली वार-वार कहती है, 'भोला भैया से क्यों नहीं कहते?' मैं कह देता हूं, कभी मिलेंगे, तो कहूंगा। तुम्हारे सुभाव से वड़ी परसन रहती है। कहती है ऐसा मर्द ही नहीं देखा कि जब वातें करेंगे, नीची आंखें करके, कभी सिर नहीं उठाते।'

भोला पर जो नशा चढ़ रहा था, उसे इस भरपूर प्याले ने और गहरा कर दिया। वोला—आदमी वही है, जो दूसरों की वहू-वेटी को अपनी वहू-वेटी समझे। जो दुष्ट किसी मेहरिया की ओर ताके, उसे गोली मार देना चाहिए।

'यह तुमने लाख रुपये की वात कह दी भाई! वस, सज्जन वही, जो दूसरों व अपनी आवरू समझे।'

'जिस तरह मर्द के मर जाने से औरत अनाथ हो जाती है, उसी तरह औरत के मर जाने से मर्द के हाथ-पांव टूट जाते हैं। मेरा तो घर उजड़ गया महतो, कोई एक लोटा पानी देने वाला भी नहीं।'

गत वर्ष भोला की स्त्री लू लग जाने से मर गयी थी। यह होरी जानता था, लेकिन पचास बरस का खंखड़ भोला भीतर से इतना स्निग्ध है, वह न जानता था। स्त्री की लालसा उसकी आंखों में सजल हो गयी थी। होरी को आसन मिल गया। उसकी व्यावहारिक कृषक-बुद्धि सजग हो गयी।

'पुरानी मसल झूटी थोड़ी है—बिन घरनी घर भूत का डेरा। कहीं सगाई क्यों नहीं ठीक कर लेते?'

'ताक में हूं महतो, पर कोई जल्दी फंसता नहीं। सौ-पचास खरच करने को भी तैयार हूं। जैसी भगवान् की इच्छा।'

'अब मैं भी फिकर में रहूंगा। भगवान् चाहेंगे, तो जल्दी घर बस जायेगा।'

'बस, यही समझ लो कि उबर जाऊंगा भैया। घर में खाने को भगवान् का दिया बहुत है। चार पसेरी रोज दूध हो जाता है, लेकिन किस काम का!'

'मेरे ससुराल में एक मेहरिया है। तीन-चार साल हुए, उसका आदमी उसे छोड़कर कलकत्ते चला गया। बेचारी पिसाई करके गुजर कर रही है। बाल-बच्चा भी कोई नहीं। देखने-सुनने में अच्छी है। बस, लच्छमी समझ लो।'

भोला का सिकुड़ा हुआ चेहरा चिकना गया। आशा में कितनी सुधा है! बोला—अब तो तुम्हारा ही आसरा है महतो! छुट्टी हो, तो चलो एक दिन देख आयें।

'मैं ठीक-ठाक करके तब तुमसे कहूंगा। बहुत उतावली करने से भी काम बिगड़ जाता है।'

'जब तुम्हारी इच्छा हो तब चलो। उतावली काहे की? इस कबरी पर मन ललचाया हो, तो ले लो।'

'यह गाय मेरे मान की नहीं है दादा। मैं तुम्हें नुकसान नहीं पहुंचाना चाहता। अपना धरम यह नहीं है कि मित्रों का गला दबायें! जैसे इतने दिन बीते हैं, वैसे और भी बीत जायेंगे।'

'तुम तो ऐसी बातें करते हो होरी, जैसे हम-तुम दो हैं। तुम गाय ले जाओ, दाम जो चाहे देना। जैसे मेरे घर रही, वैसे तुम्हारे घर रही। अस्सी रुपये में ली थी, तुम अस्सी रुपये ही देना। जाओ।'

'लेकिन मेरे पास नगद नहीं है दादा, समझ लो।'

'तो तुमसे नगद मांगता कौन है भाई?'

होरी की छाती गज़-भर की हो गयी। अस्सी रुपये में गाय महंगी न थी। ऐसा अच्छा डील-डौल, दोनों जून में छः-सात सेर दूध, सीधी ऐसी कि बच्चा भी दुह ले। इसका तो एक-एक बाछा सौ-सौ का होगा। द्वार पर बंधेगी, तो द्वार की शोभा बढ़ जायेगी। उसे अभी कोई चार सौ रुपये देने थे, लेकिन उधार को वह एक तरह से मुफ्त समझता था। कहीं भोला की सगाई ठीक हो गयी, तो साल-दो साल, तो वह बोलेगा भी नहीं। सगाई न भी हुई, तो होरी का क्या बिगड़ता है! यही तो होगा, भोला बार-बार तगादा करने आयेगा, बिगड़ेगा, गालियां देगा। लेकिन होरी को इसकी ज़्यादा शर्म न थी। इस व्यवहार का वह आदी था। कृषक के जीवन का तो यह प्रसाद है। भोला के साथ वह छल कर रहा था और यह व्यापार उसकी मर्यादा के अनुकूल था। अब भी लेन-देन में उसके लिए लिखा-पढ़ी होने और न होने में कोई अन्तर न था। सूखे-बूड़े की विपदाएं उसके मन को भीरु बनाये रहती थीं। ईश्वर का रौद्र रूप सदैव उसके सामने रहता था। पर यह छल उसकी नीति में छल न था। यह केवल स्वार्थ-सिद्धि थी और यह कोई बुरी बात न थी। इस तरह का छल तो वह दिन-रात करता रहता था। घर में दो-चार रुपये पड़े रहने पर भी महाजन के सामने क़समें खा जाता था कि एक पाई भी नहीं है। सन को कुछ गीला कर देना और रुई में कुछ बिनौले भर देना उसकी नीति में जायज़ था। और यहां तो केवल स्वार्थ न था, थोड़ा-सा मनोरंजन भी था। बुड्ढों का बुढ़भस हास्यास्पद वस्तु है और ऐसे

वृद्धों से अगर कुछ ऐंठ भी लिया जाये, तो कोई दोष-पाप नहीं।

भोला ने गाय की पगहिया होरी के हाथ में देते हुए कहा—ले जाओ महतो, तुम भी याद करोगे। ब्याते ही छः सेर दूध ले लेना। चलो, मैं तुम्हारे घर तक पहुंचा दूं। साइत तुम्हें अनजान समझकर रास्ते में कुछ दिक करे। अव तुमसे सच कहता हूं, मालिक नव्वे रुपये देते थे, पर उनके यहां गऊओं की क्या कदर। मुझसे लेकर किसी हाकिम-हुक्काम को दे देते। हाकिमों को गऊ की सेवा से मतलब? वह तो खून चूसना-भर जानते हैं। जव तक दूध देती, रखते, फिर किसी के हाथ वेच देते। किसके पाले पड़ती, कौन जाने! रुपया ही सव कुछ नहीं है भैया, कुछ अपना धरम भी तो है, तुम्हारे घर आराम से रहेगी तो। यह न होगा कि तुम आप खाकर सो रहो और गऊ भूखी खड़ी रहे। उसकी सेवा करोगे, चुमकारोगे, गऊ हमें आसिरवाद देगी। तुमसे क्या कहूं भैया, घर में चंगुल-भर भूसा नहीं रहा। रुपये सव वाजार में निकल गये। सोचा था, महाजन से कुछ लेकर भूसा ले लेंगे, लेकिन महाजन का पहला ही न चुका। उसने इनकार कर दिया। इतने जानवरों को क्या खिलायें, यही चिन्ता मारे डालती है। चुटकी-चुटकी भर खिलाऊं, तो मन-भर रोज का खरच है। भगवान् ही पार लगायें, तो लगे।

होरी ने सहानुभूति के स्वर में कहा—तुमने हमसे पहले क्यों नहीं कहा? हमने एक गाड़ी भूसा वेच दिया।

भोला ने माथा ठोककर कहा—इसलिए नहीं कहा भैया कि सबसे अपना दुःख क्यों रोऊं। वांटता कोई नहीं, हंसते सव हैं। जो गायें सूख गयी हैं, उनका गम नहीं, पत्ती-सत्ती खिलाकर जिला लूंगा, लेकिन अव यह तो रातिव विना नहीं रह सकती। हो सके, तो दस-बीस रुपये भूसे के लिए दे दो।

किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें सन्देह नहीं। उसकी गांठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं, भाव-ताव में भी वह चौकस होता है, ब्याज की एक-एक पाई छुड़ाने के लिए वह महाजन की घण्टों चिरौरी करता है, जब तक पक्का विश्वास न हो जाये, वह किसी के फुसलाने में नहीं आता, लेकिन उसका सम्पूर्ण जीवन प्रकृति से स्थायी सहयोग है। वृक्षों में फल लगते हैं, उन्हें जनता खाती है, खेती में अनाज होता है, वह संसार के काम आता है, गाय के थन में दूध होता है, वह खुद पीने नहीं जाती, दूसरे ही पीते हैं, मेघों से वर्षा होती है, उससे पृथ्वी तृप्त होती है। ऐसी संगति में कुत्सित स्वार्थ के लिए कहां स्थान? होरी किसान था और किसी के जलते हुए घर में हाथ सेंकना उसने सीखा ही न था।

भोला की संकट-कथा सुनते ही उसकी मनोवृत्ति वदल गयी। पगहिया को भोला के हाथ में लौटाता हुआ बोला—रुपये तो दादा मेरे पास नहीं हैं। हां, थोड़ा-सा भूसा वचा है, वह तुम्हें दूंगा। चलकर उठवा लो। भूसे के लिए तुम गाय वेचोगे, और मैं लूंगा! मेरे हाथ न कट जायेंगे।

भोला ने आर्द्र कण्ठ से कहा—तुम्हारे वैल भूखों न मरेंगे! तुम्हारे पास भी तो भूसा वहुत-सा रखा है।

'नहीं दादा, अवकी भूसा अच्छा हो गया था।'

'मैंने तुमसे नाहक भूसे की चर्चा की।'

'तुम न कहते और पीछे से मुझे मालूम होता, तो मुझे बड़ा रंज होता कि तुमने मुझे इतना गैर समझ लिया। अवसर पड़ने पर भाई की मदद भाई भी न करे, तो काम कैसे चले?'

'मुदा यह गाय तो लेते जाओ।'

'अभी नहीं दादा, फिर ले लूंगा।'

'तो भूसे के दाम दूध में कटवा लेना।'

होरी ने दुःखित स्वर से कहा—दाम-कौड़ी की इसमें कौन बात [illegible] घर खा लूं, तो तुम मुझसे दाम मांगोगे?

[illegible]

'लेकिन तुम्हारे बैल भूखे मरेंगे कि नहीं?'

'भगवान् कोई-न-कोई सबील निकालेंगे ही। असाढ़ सिर पर है। कड़बी बो लूंगा।'

'मगर यह गाय तुम्हारी हो गयी। जिस दिन इच्छा हो, आकर ले जाना।'

'किसी भाई का नीलाम पर चढ़ा हुआ बैल लेने में जो पाप है, वह इस समय तुम्हारी गाय लेने में है।'

होरी में बाल की खाल निकालने की शक्ति होती, तो वह खुशी से गाय लेकर घर की राह लेता। भोला जब नक़द रुपये मांगता, तो स्पष्ट था कि वह भूसे के लिए गाय नहीं बेच रहा है, बल्कि इसका कुछ और आशय है, लेकिन जैसे पत्तों के खड़कने पर घोड़ा अकारण ही ठिठक जाता है और मारने पर भी आगे क़दम नहीं उठाता, वही दशा होरी की थी। संकट की चीज़ लेना पाप है, यह बात जन्म-जन्मान्तरों से उसकी आत्मा का अंश बन गयी थी।

भोला ने गद्गद कण्ठ से कहा—तो किसी को भेज दूं भूसे के लिए?

होरी ने जवाब दिया—अभी मैं रायसाहब की ड्योढ़ी पर जा रहा हूं। वहां से घड़ी-भर में लौटूंगा, तभी किसी को भेजना।

भोला की आंखों में आंसू भर आये। बोला—तुमने आज मुझे उबार लिया होरी भाई! मुझे अब मालूम हुआ कि मैं संसार में अकेला नहीं हूं, मेरा भी कोई हितू है। एक क्षण के बाद उसने फिर कहा—उस बात को भूल न जाना।

होरी आगे बढ़ा, तो उसका चित्त प्रसन्न था। मन में एक विचित्र स्फूर्ति हो रही थी। क्या हुआ, दस-पांच मन भूसा चला जायेगा, बेचारे को संकट में पड़कर अपनी गाय तो न बेचनी पड़ेगी। जब मेरे पास चारा हो जायेगा, तब गाय खोल लाऊंगा। भगवान करें, मुझे कोई मेहरिया मिल जाये। फिर तो बात ही नहीं।

उसने पीछे फिरकर देखा। कबरी गाय पूंछ से मक्खियां उड़ाती, सिर हिलाती, मस्तानी मन्द गति से झूमती चली जाती थी, जैसे बांदियों के बीच में कोई रानी हो। कैसा शुभ होगा वह दिन, जब यह कामधेनु उसके द्वार पर बंधेगी?

:2:

सेमरी और बेलारी दोनों अवध प्रान्त के गांव हैं। ज़िले का नाम बताने की कोई ज़रूरत नहीं। होरी बेलारी में रहता है, रायसाहब अमरपाल सिंह सेमरी में। दोनों गांवों में केवल पांच मील का अन्तर है। पिछले सत्याग्रह-संग्राम में रायसाहब ने बड़ा यश कमाया था। कौंसिल की मेम्बरी छोड़कर जेल चले गये थे। तब से उनके इलाक़े के असामियों को उनसे बड़ी श्रद्धा हो गयी थी। यह नहीं कि उनके इलाक़े में असामियों के साथ कोई खास रियायत की जाती हो या डांड़ और बेगार की कड़ाई कुछ कम हो, मगर यह सारी बदनामी मुख़्तारों के सिर जाती। रायसाहब की कीर्ति पर कोई कलंक न लग सकता था। वह बेचारे भी तो उसी व्यवस्था के ग़ुलाम थे। ज़ाब्ते का काम तो जैसे होता चला आया है, वैसा ही होगा, रायसाहब की सज्जनता उस पर कोई असर न डाल सकती थी, इसलिए आमदनी और अधिकार में जौ-भर की भी कमी न होने पर भी उनका यश मानो बढ़ गया था। असामियों से वह हंसकर बोल लेते थे, यही क्या कम है? सिंह का काम तो शिकार करना है। अगर वह गरजने और गुर्राने के बदले मीठी बोली बोल सकता, तो उसे घर बैठे मनमाना शिकार मिल जाता। शिकार की खोज में जंगल में न भटकना पड़ता।

रायसाहब राष्ट्रवादी होने पर भी हुक्काम से मेल-जोल बनाये रखते थे, उनकी नज़रें और डालियां और कर्मचारियों की दस्तूरियां जैसी की तैसी चली आती थीं। साहित्य-संगीत के प्रेमी थे, ड्रामा के शौक़ीन, अच्छे वक्ता थे, अच्छे लेखक, अच्छे निशानेबाज़। उनकी पत्नी को मरे आज दस

ाल हो चुके थे, मगर दूसरी शादी न की थी। हंस-बोलकर अपने विधुर जीवन को बहलाते रहते थे।

होरी ड्योढ़ी पर पहुंचा तो देखा, जेठ के दशहरे के अवसर पर होने वाले धनुष-यज्ञ की बड़ी ोरों से तैयारियां हो रही थीं। कहीं रंगमंच बन रहा था, कहीं मण्डप, कहीं मेहमानों का ातिथ्य-गृह, कहीं दुकानदारों के लिए दुकानें। धूप तेज़ हो गयी थी, पर रायसाहब खुद काम में लगे ुए थे। अपने पिता से सम्पत्ति के साथ-साथ उन्होंने राम की भक्ति भी पायी थी और धनुष-यज्ञ को ाटक का रूप देकर उसे शिष्ट मनोरंजन का साधन बना दिया। इस अवसर पर उनके यार-दोस्त, ाकिम-हुक्काम निमन्त्रित होते थे और दो-तीन दिन इलाक़े में बड़ी चहल-पहल रहती थी। ायसाहब का परिवार बहुत विशाल था। कोई डेढ़ सौ सरदार एक साथ भोजन करते थे। कई चचा । दर्जनों चचेरे भाई, कई सगे भाई, बीसियों नाते के भाई। एक चचा साहब राधा के अनन्य ुपासक थे और बराबर वृन्दावन में रहते थे। भक्ति-रस के कितने ही कवित्त रच डाले थे और समय-समय पर उन्हें छपवाकर दोस्तों की भेंट कर देते थे। एक दूसरे चचा थे, जो राम के परम भक्त ो और फ़ारसी-भाषा में रामायण का अनुवाद कर रहे थे। रियासत से सबके वसीके ंधे हुए थे। किसी को कोई काम करने की ज़रूरत न थी।

होरी मण्डप में खड़ा सोच रहा था कि अपने आने की सूचना कैसे दे कि सहसा रायसाहब उधर ी आ निकले और उसे देखते ही बोले—अरे! तू आ गया होरी, मैं तो तुझे बुलवाने वाला था। देख, ्अबकी तुझे राजा जनक का माली बनना पड़ेगा। समझ गया न, जिस वक्त श्रीजानकी जी मन्दिर में ूजा करने जाती हैं, उसी वक्त तू एक गुलदस्ता लिये खड़ा रहेगा और जानकीजी को भेंट करेगा। लती न करना, और देख, असामियों से ताक़ीद करके कह देना कि सब-के-सब शगुन करने ायें। मेरे साथ कोठी में आ, तुझसे कुछ बातें करनी हैं।

वह आगे-आगे कोठी की ओर चले, होरी पीछे-पीछे चला। वहीं एक घने वृक्ष की छाया में एक ुरसी पर बैठ गये और होरी को ज़मीन पर बैठने का इशारा करके बोले—समझ गया, मैंने क्या हा—कारकुन को तो जो कुछ करना है, वह करेगा ही, लेकिन असामी जितने मन से असामी की ात सुनता है, कारकुन की नहीं सुनता। हमें इन्हीं पांच-सात दिनों में बीस हज़ार का प्रबन्ध करना है। ैसे होगा, समझ में नहीं आता। तुम सोचते होगे, मुझ टके के आदमी से मालिक क्यों अपना दुखड़ा े बैठे! किससे अपने मन की कहूं? न जाने क्यों तुम्हारे ऊपर विश्वास होता है। इतना जानता हूं कि ुम मन में मुझ पर हंसोगे नहीं। और हंसो भी, तो तुम्हारी हंसी मैं बरदाश्त कर सकूंगा। नहीं सह सकता उनकी हंसी, जो अपने बराबर के हैं, क्योंकि उनकी हंसी में ईर्ष्या, व्यंग्य और जलन है। और े क्यों न हंसेंगे? मैं भी तो उनकी दुर्दशा और विपत्ति और पतन पर हंसता हूं, दिल खोलकर, तालि[illegible] बजाकर। सम्पत्ति और सहृदयता में बैर है। हम भी दान देते हैं, धर्म करते हैं। लेकिन जानते हो, [illegible] केवल अपने बराबर वालों को नीचा दिखाने के लिए। हमारा दान और धर्म कोरा अहंकार है, [illegible] अहंकार। हममें से किसी पर डिग्री हो जाये, कुर्की आ जाये, बक़ाया मालगुज़ारी की [illegible] हवालात हो जाये, किसी का जवान बेटा मर जाये, किसी की विधवा बहू निकल जाये, [illegible] आग लग जाये, कोई किसी वेश्या के हाथों उल्लू बन जाये या अपने असामियों के [illegible] उसके और सभी भाई उस पर हंसेंगे, बग़लें बजायेंगे, मानो सारे संसार की सम्पदा [illegible] मिलेंगे तो इतने प्रेम से, जैसे हमारे पसीने की जगह ख़ून बहाने को तैयार हैं। [illegible] हमारे चचेरे, फुफेरे, ममेरे, मौसेरे भाई, जो इसी रियासत की बदौलत मौज [illegible] रहे हैं और जुए खेल रहे हैं, शराबें पी रहे हैं और ऐयाशी कर रहे हैं, [illegible] जाऊं, तो घी के चिराग़ जलायें। मेरे दुःख को दुःख समझने वाला कोई [illegible] दुखी होने का कोई अधिकार ही नहीं है। मैं अगर रोता हूं, तो दुःख [illegible] बीमार होता हूं, तो मुझे सुख होता है। मैं अगर अपना [illegible]

चार्थपरता है, अगर व्याह कर लूं, तो यह विलासान्धता होगा। अगर
नी है। अगर पीने लगूं, तो वह प्रजा का रक्त होगा। अगर ऐयाशी नहीं करता, तो अरसिक
ी करने लगूं, तो फिर कहना ही क्या! इन लोगों ने मुझे भोग-विलास में फंसाने के लिए कम
ीं चलीं और अव तक चलते जाते हैं। उनकी यही इच्छा है कि मैं अन्धा हो जाऊं, और ये
झे लूट लें, और मेरा धर्म यह है कि सव कुछ देखकर भी कुछ न देखूं। सव कुछ जानकर भी
ना रहूं।

रायसाहव ने गाड़ी को आगे वढ़ाने के लिए दो वीड़े पान खाये और होरी के मुंह की ओर ताकने
जैसे उसके मनोभावों को पढ़ना चाहते हों।

होरी ने साहस वटोरकर कहा—हम समझते थे कि ऐसी वातें हमीं लोगों में होती हैं, पर जा
ता है, वड़े आदमियों में भी उनकी कमी नहीं है।

रायसाहव ने मुंह पान से भरकर कहा—तुम हमें वड़ा आदमी समझते हो? हमारे नाम वड़े हैं, पर
र्शन थोड़े। ग़रीवों में अगर ईर्ष्या या वैर है, तो स्वार्थ के लिए या पेट के लिए। ऐसी ईर्ष्या और वैर
को मैं क्षम्य समझता हूं। हमारे मुंह की रोटी कोई छीन ले, तो उसके गले में उंगली डालकर निकालना
हमारा धर्म हो जाता है। अगर हम छोड़ दें, तो देवता हैं। वड़े आदमियों की ईर्ष्या और वैर केवल
आनन्द के लिए है। हम इतने वड़े आदमी हो गये हैं कि हमें नीचता और कुटिलता में ही निःस्वार्थता
और परम आनन्द मिलता है। हम देवतापन के उस दर्जे पर पहुंच गये हैं, जव हमें दूसरों के रोने पर
हंसी आती है। इसे तुम छोटी साधना मत समझो। जव इतना वड़ा कुटुम्व है, तो कोई-न-कोई तो
हमेशा वीमार रहेगा ही। और वड़े आदमियों के रोग भी वड़े होते हैं। वह वड़ा आदमी ही क्या, जिसे
कोई छोटा रोग हो। मामूली ज्वर भी आ जाये, तो हमें सरसाम की दवा दी जाती है, मामूली फुंसी भी
निकल आये, तो वह ज़हरवाद वन जाती है। अव छोटे सर्जन और मझोले सर्जन और वड़े सर्जन तार
से वुलाये जा रहे हैं, मसीहुलमुल्क को लाने के लिए दिल्ली आदमी भेजा जा रहा है, भिषगाचार्य को
लाने के लिए कलकत्ता। उधर देवालय में दुर्गापाठ हो रहा है और ज्योतिषाचार्य कुण्डली का विचार
कर रहे हैं और तन्त्र के आचार्य अपने अनुष्ठान में लगे हुए हैं। राजासाहव को यमराज के मुंह से
निकालने के लिए दौड़ लगी हुई है। वैद्य और डॉक्टर इस ताक में रहते हैं कि कव इनके सिर में दर्द हो
और कव उनके घर में सोने की वर्षा हो। और ये रुपया तुमसे और तुम्हारे भाइयों से वसूल किये जाते
हैं, भाले की नोक पर। मुझे तो यही आश्चर्य होता है कि क्यों तुम्हारी आहों का दावानल हमें भस्म नहीं
कर डालता, मगर नहीं, आश्चर्य करने की कोई वात नहीं, भस्म होने में तो वहुत देर नहीं लगती
वेदना भी थोड़ी ही देर की होती है। हम जौ-जौ और अंगुल-अंगुल और पोर-पोर भस्म हो रहे
उस हाहाकार से वचने के लिए हम पुलिस की, हुक्काम की, अदालत की, वकीलों की शरण ले
और रूपवती स्त्री की भांति सभी के हाथों का खिलौना वनते हैं। दुनिया समझती है, हम वड़े सुख
हमारे पास इलाक़े, महल, सवारियां, नौकर-चाकर, क़र्ज़, वेश्याएं, क्या नहीं है, लेकिन जि
आत्मा में वल नहीं, अभिमान नहीं, वह और चाहे कुछ हो, आदमी नहीं है। जिसे दुश्मन के
मारे रात को नींद न आती हो, जिसके दुःख पर सव हंसें और रोनेवाला कोई न हो, जिसकी
दूसरों के पैरों के नीचे दवी हो, जो भोग-विलास के नशे में अपने को विलकुल भूल गया
हुक्काम के तलवे चाटता हो और अपने अधीनों का ख़ून चूसता हो, उसे मैं सुखी नहीं कहता
संसार का सवसे अभागा प्राणी है। साहव शिकार खेलने आयें या दौरे पर, मेरा कर्तव्य है
दुम के पीछे लगा रहूं। उनकी भौंहों पर शिकन पड़ी और हमारे प्राण सूखे। उन्हें प्रसन्न कर
हम क्या नहीं करते? मगर वह पचड़ा सुनाने लगूं, तो शायद तुम्हें विश्वास न आये। डा
रिश्वतों तक तो ख़ैर ग़नीमत है, हम सिजदे करने को भी तैयार रहते हैं। मुफ़्तख़ोरी ने हमें
दिया है, हमें अपने पुरुषार्थ पर लेशमात्र भी विश्वास नहीं, केवल अफ़सरों के

हिला-हिलाकर किसी तरह उनके कृपापात्र बने रहना और उनकी सहायता से अपनी प्रजा पर आतंक जमाना ही हमारा उद्यम है। पिछलग्गुओं की ख़ुशामद ने हमें इतना अभिमानी और तुनकमिजाज़ बना दिया है कि हममें शील, विनय और सेवा का लोप हो गया है। मैं तो कभी-कभी सोचता हूं कि अगर सरकार हमारे इलाक़े छीनकर हमें अपनी रोज़ी के लिए मेहनत करना सिखा दे, तो हमारे साथ महान् उपकार करे, और यह तो निश्चय है कि अब सरकार भी हमारी रक्षा न करेगी। हमसे अब उसका कोई स्वार्थ नहीं निकलता। लक्षण कह रहे हैं कि बहुत जल्द हमारे वर्ग की हस्ती मिट जाने वाली है। मैं उस दिन का स्वागत करने को तैयार बैठा हूं। ईश्वर वह दिन जल्द लाये। वह हमारे उद्धार का दिन होगा। हम परिस्थितियों के शिकार बने हुए हैं। यह परिस्थिति ही हमारा सर्वनाश कर रही है। और जब तक सम्पत्ति की यह बेड़ी हमारे पैरों से न निकलेगी, जब तक यह अभिशाप हमारे सिर पर मंडराता रहेगा, हम मानवता का वह पद न पा सकेंगे, जिस पर पहुंचना ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य है।

रायसाहब ने फिर गिलौरीदान निकाला और कई गिलौरियां निकालकर मुंह में भर लीं। कुछ और कहने वाले थे कि एक चपरासी ने आकर कहा—सरकार, बेगारों ने काम करने से इनकार कर दिया है। कहते हैं, जब तक हमें खाने को न मिलेगा, हम काम न करेंगे। हमने धमकाया, तो सब काम छोड़कर अलग हो गये।

रायसाहब के माथे पर बल पड़ गये। आंखें निकालकर बोले—चलो, मैं इन दुष्टों को ठीक करता हूं। जब कभी खाने को नहीं दिया, तो आज यह नयी बात क्यों? एक आने रोज़ के हिसाब से मजूरी मिलेगी, जो हमेशा मिलती रही है, और इस मजूरी पर उन्हें काम करना होगा, सीधे करें या टेढ़े।

फिर होरी की ओर देखकर बोले—तुम अब जाओ होरी, अपनी तैयारी करो। जो बात मैंने कही है, उसका ख़याल रखना। तुम्हारे गांव से मुझे कम-से-कम पांच सौ की आशा है।

रायसाहब झल्लाते हुए चले गये। होरी ने मन में सोचा, अभी यह कैसी-कैसी नीति और धरम की बातें कर रहे थे और एकाएक इतने गरम हो गये।

सूर्य सिर पर आ गया था। उसके तेज से अभिभूत होकर वृक्षों ने अपना पसार समेट लिया। आकाश पर मटियाली गर्द छायी हुई थी और सामने की पृथ्वी कांपती हुई जान पड़ती थी।

होरी ने अपना डण्डा उठाया और घर चला। शगुन के रुपये कहां से आयेंगे, यही चिन्ता उसके सिर पर सवार थी।

:3:

होरी अपने गांव के समीप पहुंचा तो देखा, अभी तक गोबर खेत में ऊख गोड़ रहा है और दोनों लड़कियां भी उसके साथ काम कर रही हैं। लू चल रही थी, बगूले उठ रहे थे, भूतल धधक रहा था। जैसे प्रकृति ने वायु में आग घोल दी हो। यह सब अभी तक खेत में क्यों हैं? क्या काम के पीछे सब जान देने पर तुले हुए हैं? वह खेत की ओर चला और दूर ही से चिल्लाकर बोला—आता क्यों नहीं गोबर, क्या काम ही करता रहेगा? दोपहर ढल गयी, कुछ सूझता है कि नहीं?

उसे देखते ही तीनों ने कुदालें उठा लीं और उसके साथ हो लिये। गोबर सांवला, लम्बा, एकहरा युवक था, जिसे इस काम में रुचि न मालूम होती थी। प्रसन्नता की जगह मुख पर असन्तोष और विद्रोह था। वह इसलिए काम में लगा हुआ था कि वह दिखाना चाहता था, उसे खाने-पीने की कोई फ़िक्र नहीं है। बड़ी लड़की सोना लज्जाशील कुमारी थी, सांवली, सुडौल, प्रसन्न और चपल। गाढ़े की लाल साड़ी, जिसे वह घुटनों से मोड़कर कमर में बांधे हुए थी, उसके हलके शरीर पर कुछ लदी हुई-सी थी और उसे प्रौढ़ता की गरिमा दे रही थी। छोटी रूपा पांच-छः साल की छोक[illegible] मैली,

सिर पर बालों का एक घोंसला-सा बना हुआ, एक लंगोटी कमर में बांधे, बहुत ही ढीठ और रोनी।

रूपा ने होरी की टांगों में लिपटकर कहा—काका! देखो, मैंने एक ढेला भी नहीं छोड़ा। बहिन कहती है, जा पेड़ तले बैठ। ढेले न तोड़े जायेंगे काका, तो मिट्टी कैसे बराबर होगी?

होरी ने उसे गोद में उठाकर प्यार करते हुए कहा—तूने बहुत अच्छा किया बेटी, चल, घर चलें। कुछ देर अपने विद्रोह को दबाये रहने के बाद गोबर बोला—यह तुम रोज-रोज मालिकों की खुशामद करने क्यों जाते हो? बाकी न चुके, तो प्यादा आकर गालियां सुनाता है, बेगार देनी ही पड़ती है, नजर-नजराना सब तो हमसे भराया जाता है। फिर किसी की क्यों सलामी करो?

इस समय यही भाव होरी के मन में आ रहे थे, लेकिन लड़के के इस विद्रोह-भाव को दबाना ज़रूरी था। बोला—सलामी करने न जायें, तो रहें कहां? भगवान् ने जब गुलाम बना दिया है, तो अपना क्या बस है? यह इसी सलामी की बरकत है कि द्वार पर मड़ैया डाल ली और किसी ने कुछ नहीं कहा। घूरे ने द्वार पर खूंटा गाड़ा था, जिस पर कारिन्दों ने दो रुपये डांड़ ले लिये थे। तलैया से कितनी मिट्टी हमने खोदी, कारिन्दा ने कुछ नहीं कहा, दूसरा खोदे, तो नजर देनी पड़े। अपने मतलब के लिए सलामी करने जाता हूं, पांव में सनीचर नहीं है और न सलामी करने में कोई बड़ा सुख मिलता है। घण्टों खड़े रहो, तब जाके मालिक को खबर होती है। कभी बाहर निकलते हैं, कभी कहला देते हैं कि फुरसत नहीं है।

गोबर ने कटाक्ष किया—बड़े आदमियो की हां-में-हां मिलाने में कुछ-न-कुछ आनन्द तो मिलता ही है। नहीं लोग मेम्बरी के लिए क्यों खड़े हों?

'जब सिर पर पड़ेगी, तब मालूम होगा बेटा, अभी जो चाहे कह लो। पहले मैं भी यही सब बातें सोचा करता था, पर अब मालूम हुआ कि हमारी गरदन दूसरों के पैरों के नीचे दबी हुई है, अकड़कर निबाह नहीं हो सकता।'

पिता पर अपना क्रोध उतारकर गोबर कुछ शान्त हो गया और चुपचाप चलने लगा। सोना ने देखा, रूपा बाप की गोद में चढ़ी बैठी है, तो ईर्ष्या हुई। उसे डांटकर बोली—अब गोद से उतरकर पांव-पांव क्यों नहीं चलती, क्या पांव टूट गये हैं?

रूपा ने बाप की गरदन में हाथ डालकर ढिठाई से कहा—न उतरेंगे, जाओ। काका, बहिन हमको रोज चिढ़ाती है कि तू रूपा है, मैं सोना हूं। मेरा नाम कुछ और रख दो।

होरी ने सोना को बनावटी रोष से देखकर कहा—तू इसे क्यों चिढ़ाती है सोनिया? सोना तो देखने को है। निबाह तो रूपा से होता है। रूपा न हो, तो रुपये कहां से बनें, बता?

सोना ने अपने पक्ष का समर्थन किया—सोना न हो, तो मोहनमाला कैसे बने, नथुनियां कहां से आयें, कण्ठा कैसे बने?

गोबर भी इस विनोदमय विवाद में शरीक हो गया। रूपा से बोला—तू कह दे कि सोना तो सूखी पत्ती की तरह पीला होता है, रूपा तो उजला होता है, जैसे सूरज।

सोना बोली—शादी-ब्याह में पीली साड़ी पहनी जाती है, उजली साड़ी कोई नहीं पहनता।

रूपा इस दलील से परास्त हो गयी। गोबर और होरी की कोई दलील इसके सामने न ठहर सकी। उसने क्षुब्ध आंखों से होरी को देखा।

होरी को एक नयी युक्ति सूझ गयी। बोला—सोना बड़े आदमियों के लिए है। हम गरीबों के लिए तो रूपा ही है। जैसे जौ को राजा कहते हैं, गेहूं को चमार, इसलिए न कि गेहूं बड़े आदमी खाते हैं, जौ हम लोग खाते हैं।

सोना के पास इस सबल युक्ति का कोई जवाब न था। परास्त होकर बोली—तुम सब जने एक ओर हो गये, नहीं रुपिया को रुलाकर छोड़ती।

रूपा ने उंगली मटकाकर कहा—ए राम, सोना चमार—ए राम, सोना चमार।

इस विजय का उसे इतना आनन्द हुआ कि वाप की गोद में रह न सकी। ज़मीन पर कूद पड़ी और उछल-उछलकर यही रट लगाने लगी—रूपा राजा, सोना चमार—रूपा राजा, सोना चमार!

ये लोग घर पहुंचे, तो धनिया द्वार पर खड़ी इनकी वाट जोह रही थी। रुष्ट होकर वोली—आज इतनी देर क्यों की गोवर? काम के पीछे कोई परान थोड़े ही दे देता है।

फिर पति से गरम होकर कहा—तुम भी वहां से कमाई करके लौटे, तो खेत में पहुंच गये। खेत कहीं भागा जाता था?

द्वार पर कुआं था। होरी और गोवर ने एक-एक कलसा पानी सिर पर उड़ेला, रूपा को नहलाया और भोजन करने गये। जौ की रोटियां थीं, पर गेहूं जैसी सफ़ेद और चिकनी। अरहर की दाल थी, जिसमें कच्चे आम पड़े हुए थे। रूपा वाप की थाली में खाने वैठी। सोना ने उसे ईर्ष्या-भरी आंखों से देखा, मानो कह रही थी, वाह रे दुलार।

धनिया ने पूछा—मालिक से क्या वातचीत हुई?

होरी ने लोटा-भर पानी चढ़ाते हुए कहा—यही तहसील-वसूल की वात थी, और क्या! हम लोग समझते हैं, वड़े आदमी वहुत सुखी होंगे, लेकिन सच पूछो, तो वह हमसे भी ज्यादा दुखी हैं। हमें अपने पेट की चिन्ता है, उन्हें हजारों चिन्ताएं घेरे रहती हैं।

रायसाहव ने और क्या-क्या कहा था, कुछ होरी को याद न था। उस सारे कथन का खुलासा-मात्र उसके स्मरण में चिपका हुआ रह गया था।

गोवर ने व्यंग्य किया—तो फिर अपना इलाका हमें क्यों नहीं दे देते? हम अपने खेत, वैल, हल, कुदाल सव उन्हें देने को तैयार हैं। करेंगे वदला? यह सव धूर्तता है, निरी मोटमरदी। जिसे दुःख होता है, वह दरजनों मोटरें नहीं रखता, महलों में नहीं रहता, हलवा-पूरी नहीं खाता और न नाच-रंग में लिप्त रहता है। मजे से राज का सुख भोग रहे हैं, उस पर दुखी हैं!

होरी ने झुंझलाकर कहा—अव तुमसे वहस कौन करे भाई? जैजात किसी से छोड़ी जाती है कि वही छोड़ देंगे। हमीं को खेती से क्या मिलता है? एक आने नफरी की मजूरी भी तो नहीं पड़ती। जो दस रुपये महीने का भी नौकर है, वह भी हमसे अच्छा खाता-पहनता है, लेकिन खेतों को छोड़ा तो नहीं जाता। खेती छोड़ दें, तो करें क्या? नौकरी कहीं मिलती है? फिर मरजाद भी तो पालना ही पड़ता है। खेती में जो मरजाद है, वह नौकरी में तो नहीं है। इसी तरह जमींदारों का हाल भी समझ लो। उनकी जान को भी तो सैकड़ों रोग लगे हुए हैं, हाकिमों को रसद पहुंचाओ, उनकी सलामी करो, अमलों को खुश करो। तारीख पर मालगुजारी न चुका दें, तो हवालात हो जाय, कुड़की आ जाय। हमें तो कोई हवालात नहीं ले जाता। दो-चार गालियां-घुड़कियां ही तो मिलकर रह जाती हैं।

गोबर ने प्रतिवाद किया—यह सव कहने की वातें हैं। हम लोग दाने-दाने को मुहताज हैं, देह पर सावित कपड़े नहीं हैं, चोटी का पसीना एड़ी तक आता है, तब भी गुजर नहीं होता। उन्हें क्या, मजे से गद्दी-मसनद लगाये वैठे हैं, सैकड़ों नौकर-चाकर हैं, हजारों आदमियों पर हुकूमत है। रुपये न जमा होते हों, पर सुख तो सभी तरह का भोगते हैं। धन लेकर आदमी और क्या करता है?

'तुम्हारी समझ में हम और वह बराबर हैं?'

'भगवान् ने तो सवको वराबर ही बनाया है।'

'यह वात नहीं है वेटा, छोटे-बड़े भगवान् के घर से बनकर आते हैं। सम्पत्ति बड़ी तपस्या से मिलती है। उन्होंने पूर्वजन्म में जैसे कर्म किये हैं, उनका आनन्द भोग रहे हैं। हमने कुछ नहीं संचा तो भोगें क्या?'

'यह सव मन को समझाने की वातें हैं। भगवान् सवको वरावर वनाते हैं। यहां जिसके हाथ में लाठी है, वह गरीवों को कुचलकर वड़ा आदमी वन जाता है।'

'यह तुम्हारा भरम है। मालिक आज भी चार घण्टे रोज भगवान् का भजन करते हैं

सिर पर वालों का एक घोंसला-सा वना हुआ, एक लंगोटी कमर में वांधे, वहुत ही ढीठ और रोनी।

रूपा ने होरी की टांगों में लिपटकर कहा—काका! देखो, मैंने एक ढेला भी नहीं छोड़ा। वहिन कहती है, जा पेड़ तले वैठ। ढेले न तोड़े जायेंगे काका, तो मिट्टी कैसे वरावर होगी?

होरी ने उसे गोद में उठाकर प्यार करते हुए कहा—तूने वहुत अच्छा किया वेटी, चल, घर चलें। कुछ देर अपने विद्रोह को दवाये रहने के वाद गोवर वोला—यह तुम रोज-रोज मालिकों की खुशामद करने क्यों जाते हो? वाकी न चुके, तो प्यादा आकर गालियां सुनाता है, वेगार देनी ही पड़ती है, नजर-नजराना सव तो हमसे भराया जाता है। फिर किसी की क्यों सलामी करो?

इस समय यही भाव होरी के मन में आ रहे थे, लेकिन लड़के के इस विद्रोह-भाव को दवाना ज़रूरी था। वोला—सलामी करने न जायें, तो रहें कहां? भगवान् ने जव गुलाम वना दिया है, तो अपना क्या वस है? यह इसी सलामी की वरकत है कि द्वार पर मड़ैया डाल ली और किसी ने कुछ नहीं कहा। घूरे ने द्वार पर खूंटा गाड़ा था, जिस पर कारिन्दों ने दो रुपये डांड़ ले लिये थे। तलैया से कितनी मिट्टी हमने खोदी, कारिन्दा ने कुछ नहीं कहा, दूसरा खोदे, तो नजर देनी पड़े। अपने मतलव के लिए सलामी करने जाता हूं, पांव में सनीचर नहीं है और न सलामी करने में कोई वड़ा सुख मिलता है। घण्टों खड़े रहो, तव जाके मालिक को खवर होती है। कभी वाहर निकलते हैं, कभी कहला देते हैं कि फुरसत नहीं है।

गोवर ने कटाक्ष किया—वड़े आदमियों की हां-में-हां मिलाने में कुछ-न-कुछ आनन्द तो मिलता ही है। नहीं लोग मेम्वरी के लिए क्यों खड़े हों?

'जव सिर पर पड़ेगी, तव मालूम होगा वेटा, अभी जो चाहे कह लो। पहले मैं भी यही सव वातें सोचा करता था, पर अव मालूम हुआ कि हमारी गरदन दूसरों के पैरों के नीचे दवी हुई है, अकड़कर निवाह नहीं हो सकता।'

पिता पर अपना क्रोध उतारकर गोवर कुछ शान्त हो गया और चुपचाप चलने लगा। सोना ने देखा, रूपा वाप की गोद में चढ़ी वैठी है, तो ईर्ष्या हुई। उसे डांटकर वोली—अव गोद से उतरकर पांव-पांव क्यों नहीं चलती, क्या पांव टूट गये हैं?

रूपा ने वाप की गरदन में हाथ डालकर ढिठाई से कहा—न उतरेंगे, जाओ। काका, वहिन हमको रोज चिढ़ाती है कि तू रूपा है, मैं सोना हूं। मेरा नाम कुछ और रख दो।

होरी ने सोना को वनावटी रोष से देखकर कहा—तू इसे क्यों चिढ़ाती है सोनिया? सोना तो देखने को है। निवाह तो रूपा से होता है। रूपा न हो, तो रुपये कहां से वनें, वता?

सोना ने अपने पक्ष का समर्थन किया—सोना न हो, तो मोहनमाला कैसे वने, नथुनियां कहां से आयें, कण्ठा कैसे वने?

गोवर भी इस विनोदमय विवाद में शरीक हो गया। रूपा से वोला—तू कह दे कि सोना तो सूखी पत्ती की तरह पीला होता है, रूपा तो उजला होता है, जैसे सूरज।

सोना वोली—शादी-व्याह में पीली साड़ी पहनी जाती है, उजली साड़ी कोई नहीं पहनता।

रूपा इस दलील से परास्त हो गयी। गोवर और होरी की कोई दलील इसके सामने न ठहर सकी। उसने क्षुब्ध आंखों से होरी को देखा।

होरी को एक नयी युक्ति सूझ गयी। वोला—सोना वड़े आदमियों के लिए है। हम गरीवों के लिए तो रूपा ही है। जैसे जौ को राजा कहते हैं, गेहूं को चमार, इसलिए न कि गेहूं वड़े आदमी खाते हैं, जौ हम लोग खाते हैं।

सोना के पास इस सवल युक्ति का कोई जवाव न था। परास्त होकर वोली—तुम सव जने एक ओर हो गये, नहीं रुपिया को रुलाकर छोड़ती।

रूपा ने उंगली मटकाकर कहा—ए राम, सोना चमार—ए राम, सोना चमार।

इस विजय का उसे इतना आनन्द हुआ कि वाप की गोद में रह न सकी। ज़मीन पर कूद पड़ी और उछल-उछलकर यही रट लगाने लगी—रूपा राजा, सोना चमार—रूपा राजा, सोना चमार!

ये लोग घर पहुंचे, तो धनिया द्वार पर खड़ी इनकी वाट जोह रही थी। रुष्ट होकर वोली—आज इतनी देर क्यों की गोवर? काम के पीछे कोई परान थोड़े ही दे देता है।

फिर पति से गरम होकर कहा—तुम भी वहां से कमाई करके लौटे, तो खेत में पहुंच गये। खेत कहीं भागा जाता था?

द्वार पर कुआं था। होरी और गोवर ने एक-एक कलसा पानी सिर पर उड़ेला, रूपा को नहलाया और भोजन करने गये। जौ की रोटियां थीं, पर गेहूं जैसी सफ़ेद और चिकनी। अरहर की दाल थी, जिसमें कच्चे आम पड़े हुए थे। रूपा वाप की थाली में खाने वैठी। सोना ने उसे ईर्ष्या-भरी आंखों से देखा, मानो कह रही थी, वाह रे दुलार।

धनिया ने पूछा—मालिक से क्या वातचीत हुई?

होरी ने लोटा-भर पानी चढ़ाते हुए कहा—यही तहसील-वसूल की वात थी, और क्या! हम लोग समझते हैं, वड़े आदमी वहुत सुखी होंगे, लेकिन सच पूछो, तो वह हमसे भी ज्यादा दुखी हैं। हमें अपने पेट की चिन्ता है, उन्हें हजारों चिन्ताएं घेरे रहती हैं।

रायसाहव ने और क्या-क्या कहा था, कुछ होरी को याद न था। उस सारे कथन का खुलासा-मात्र उसके स्मरण में चिपका हुआ रह गया था।

गोवर ने व्यंग्य किया—तो फिर अपना इलाका हमें क्यों नहीं दे देते? हम अपने खेत, वैल, हल, कुदाल सव उन्हें देने को तैयार हैं। करेंगे वदला? यह सव धूर्तता है, निरी मोटमरदी। जिसे दुःख होता है, वह दरजनों मोटरें नहीं रखता, महलों में नहीं रहता, हलवा-पूरी नहीं खाता और न नाच-रंग में लिप्त रहता है। मजे से राज का सुख भोग रहे हैं, उस पर दुखी हैं!

होरी ने झुंझलाकर कहा—अव तुमसे वहस कौन करे भाई? जैजात किसी से छोड़ी जाती है कि वही छोड़ देंगे। हमीं को खेती से क्या मिलता है? एक आने नफरी की मजूरी भी तो नहीं पड़ती। जो दस रुपये महीने का भी नौकर है, वह भी हमसे अच्छा खाता-पहनता है, लेकिन खेतों को छोड़ा तो नहीं जाता। खेती छोड़ दें, तो करें क्या? नौकरी कहीं मिलती है? फिर मरजाद भी तो पालना ही पड़ता है। खेती में जो मरजाद है, वह नौकरी में तो नहीं है। इसी तरह जमींदारों का हाल भी समझ लो। उनकी जान को भी तो सैकड़ों रोग लगे हुए हैं, हाकिमों को रसद पहुंचाओ, उनकी सलामी करो, अमलों को खुश करो। तारीख पर मालगुजारी न चुका दें, तो हवालात हो जाय, कुड़की आ जाय। हमें तो कोई हवालात नहीं ले जाता। दो-चार गालियां-घुड़कियां ही तो मिलकर रह जाती हैं।

गोवर ने प्रतिवाद किया—यह सव कहने की वातें हैं। हम लोग दाने-दाने को मुहताज हैं, देह पर सावित कपड़े नहीं हैं, चोटी का पसीना एड़ी तक आता है, तव भी गुजर नहीं होता। उन्हें क्या, मजे से गद्दी-मसनद लगाये वैठे हैं, सैकड़ों नौकर-चाकर हैं, हजारों आदमियों पर हुकूमत है। रुपये न जमा होते हों, पर सुख तो सभी तरह का भोगते हैं। धन लेकर आदमी और क्या करता है?

'तुम्हारी समझ में हम और वह वरावर हैं?'

'भगवान् ने तो सवको वरावर ही वनाया है।'

'यह वात नहीं है वेटा, छोटे-वड़े भगवान् के घर से वनकर आते हैं। सम्पत्ति वड़ी तपस्या से मिलती है। उन्होंने पूर्वजन्म में जैसे कर्म किये हैं, उनका आनन्द भोग रहे हैं। हमने कुछ नहीं संचा, तो भोगें क्या?'

'यह सव मन को समझाने की वातें हैं। भगवान् सवको वरावर वनाते हैं। यहां जिसके हाथ में लाठी है, वह गरीवों को कुचलकर वड़ा आदमी वन जाता है।'

'यह तुम्हारा भरम है। मालिक आज भी चार घण्टे रोज भगवान् का भजन करते हैं।'

'किसके बल पर यह भजन-भाव और दान-धरम होता है?'

'अपने बल पर।'

'नहीं, किसानों के बल पर और मजदूरों के बल पर। यह पाप का धन पचे कैसे? इसीलिए दान-धरम करना पड़ता है, भगवान् का भजन भी इसीलिए होता है। भूखे-नंगे रहकर भगवान् का भजन करें, तो हम भी देखें। हमें कोई दोनों जून खाने को दे, तो हम आठों पहर भगवान् का जाप ही करते रहें। एक दिन खेत में ऊख गोड़ना पड़े, तो सारी भक्ति भूल जायें।'

होरी ने हार कर कहा—अब तुम्हारे मुंह कौन लगे भाई, तुम तो भगवान् की लीला में भी टांग अड़ाते हो।

तीसरे पहर गोबर कुदाल लेकर चला, तो होरी ने कहा—जरा ठहर जाओ बेटा, हम भी चलते हैं। तब तक थोड़ा-सा भूसा निकालकर रख दो। मैंने भोला को देने को कहा है। बेचारा आजकल बहुत तंग है।

गोबर ने अवज्ञा-भरी आंखों से देखकर कहा— हमारे पास बेचने को भूसा नहीं है।

'बेचता नहीं हूं भाई, यों ही दे रहा हूं वह संकट में है, उसकी मदद तो करनी ही पड़ेगी।'

'हमें तो उन्होंने कभी एक गाय नहीं दे दी।'

'दे तो रहा था, पर हमने ली ही नहीं।'

धनिया मटककर बोली—गाय नहीं। वह दे रहा था। इन्हें गाय दे देगा! आंख में अञ्जन लगाने को कभी चिल्लू-भर दूध तो भेजा नहीं, गाय देगा!

होरी ने कसम खायी—नहीं, जवानी कसम, अपनी पछांई गाय दे रहे थे। हाथ तंग है, भूसा-चारा नहीं रख सके। अब एक गाय बेचकर भूसा लेना चाहते हैं। मैंने सोचा, संकट में पड़े आदमी की गाय क्या लूंगा। थोड़ा-सा भूसा दिये देता हूं, कुछ रुपये हाथ आ जायेंगे, तो गाय ले लूंगा। थोड़ा-थोड़ा करके चुका दूंगा। अस्सी रुपये की है, मगर ऐसी कि आदमी देखता रहे।

गोबर ने आड़े हाथों लिया—तुम्हारा यही धर्मात्मापन तो तुम्हारी दुर्गत कर रहा है। साफ़-साफ तो बात है। अस्सी रुपये की गाय है, हमसे बीस रुपये का भूसा ले लें और गाय हमें दे दें। साठ रुपये रह जायेंगे। वह हम धीरे-धीरे दे देंगे।

होरी रहस्यमय ढंग से मुस्कराया—मैंने ऐसी चाल सोची है कि गाय सेंत-मेंत में हाथ आ जाय। कहीं भोला की सगाई ठीक करनी है, बस। दो-चार मन भूसा तो खाली अपना रंग जमाने को देता हूं।

गोबर ने तिरस्कार किया—तो तुम अब सब की सगाई ठीक करते फिरोगे?

धनिया ने तीखी आंखों से देखा—अब यही एक उद्दम तो रह गया है। नहीं देना है हमें भूसा किसी को। यहां भोला-भाली किसी का करज नहीं खाया है।

होरी ने अपनी सफ़ाई दी—अगर मेरे जतन से किसी का घर बस जाय, तो इसमें कौन-सी बुराई है?

गोबर ने चिलम उठायी और आग लेने चला गया। उसे यह झमेला बिलकुल नहीं भाता था।

धनिया ने सिर हिलाकर कहा—जो उनका घर बसायेगा, वह अस्सी रुपये की गाय लेकर चुप न होगा। एक थैली गिनवायेगा।

होरी ने पुचारा दिया—यह मैं जानता हूं, लेकिन उनकी भलमनसी को भी तो देखो। मुझसे जब मिलता है, तेरा बखान ही करता है—ऐसी लक्ष्मी है, ऐसी सलीकेदार है।

धनिया के मुख पर स्निग्धता झलक पड़ी। 'मन मन भाये मुड़िया हिलाये' वाले भाव से बोली—मैं उनके बखान की भूखी नहीं हूं, अपना बखान धरे रहें।

होरी ने स्नेह-भरी मुस्कान के साथ कहा—मैंने तो कह दिया, भैया वह नाक पर मक्खी भी नहीं बैठने देती, गालियों से बात करती है, लेकिन वह यही कहे जाय कि वह औरत नहीं, लक्ष्मी है। बात

यह है कि उसकी घरवाली जवान की बड़ी तेज थी। बेचारा उसके डर के मारे भागा-भागा फिरता था। कहता था जिस दिन तुम्हारी घरवाली का मुंह सवेरे देख लेता हूं, उस दिन कुछ-न-कुछ जरूर हाथ लगता है। मैंने कहा—तुम्हारे हाथ लगता होगा, यहां तो रोज देखते हैं, कभी पैसे से भेंट नहीं होती।

'तुम्हारे भाग ही खोटे हैं, तो मैं क्या करूं।'

'लगा अपनी घरवाली की बुराई करने—भिखारी को भीख तक नहीं देती थी, झाड़ू लेकर मारने दौड़ती थी, लालचिन ऐसी थी कि नमक तक दूसरों के घर से मांग लाती थी।'

'मरने पर किसी की क्या बुराई करूं, मुझे देखकर जल उठती थी।'

'भोला बड़ा गमखोर था कि उसके साथ निबाह कर दिया। दूसरा होता तो जहर खाके मर जाता। मुझसे दस साल बड़े होंगे भोला, पर राम-राम पहले ही करते हैं।'

'तो क्या कहते थे कि जिस दिन तुम्हारी घरवाली का मुंह देख लेता हूं, तो क्या होता है?'

'उस दिन भगवान् कहीं-न-कहीं से कुछ भेज देते हैं।'

'बहुएं भी तो वैसी ही चटोरिन आयी हैं। अबकी सबों ने दो रुपये के खरबूजे उधार खा डाले। उधार मिल जाये, फिर उन्हें चिन्ता नहीं होती कि देना पड़ेगा या नहीं।'

'अरे! भोला रोते काहे को हैं?'

गोबर आकर बोला—भोला दादा आ पहुंचे। मन-दो मन भूसा है, वह उन्हें दे दो, फिर उनकी सगाई ढूंढ़ने निकलो।

धनिया ने समझाया—आदमी द्वार पर बैठा है, उसके लिए खाट-वाट तो डाल नहीं दी, ऊपर से लगे भुनभुनाने। कुछ तो भलमनसी सीखो। कलसा ले जाओ, पानी भरकर रख दो, हाथ-मुंह धोयें, कुछ रस-पानी पिला दो। मुसीबत में ही आदमी दूसरों के सामने हाथ फैलाता है।

होरी बोला—रस-वस का काम नहीं है, कौन कोई पाहुने हैं।

धनिया बिगड़ी—पाहुने और कैसे होते हैं। रोज-रोज तो तुम्हारे द्वार पर नहीं आते हैं? इतनी दूर से धूप-घाम में आये हैं, प्यास लगी ही होगी। रुपिया, देख डब्बे में तमाखू है कि नहीं, गोबर के मारे काहे को बची होगी। दौड़कर एक पैसे का तमाखू सहुआइन की दुकान से ले लो।

भोला की आज जितनी खातिर हुई, और कभी नहीं हुई होगी। गोबर ने खाट डाल दी, सोना रस घोल लायी, रूपा तमाखू भर लायी। धनिया द्वार पर किवाड़ की आड़ में खड़ी अपने कानों से अपना बखान सुनने के लिए अधीर हो रही थी।

भोला ने चिलम हाथ में लेकर कहा—अच्छी घरनी घर में आ जाय, तो समझ लो लक्ष्मी आ गयी। वही जानती है, छोटे-बड़े का आदर-सत्कार कैसे करना चाहिए।

धनिया के हृदय में उल्लास का कम्पन हो रहा था। चिन्ता और निराशा और अभाव से आहत आत्मा इन शब्दों में एक कोमल शीतल स्पर्श का अनुभव कर रही थी।

होरी जब भोला का खांचा उठाकर भूसा लाने अन्दर चला, तो धनिया भी पीछे-पीछे चली। होरी ने कहा—जाने कहां से इतना बड़ा खांचा मिल गया। किसी भड़भूजे से मांग लिया होगा। मनभर से कम में न भरेगा। दो खांचे भी दिये, तो दो मन निकल जायेंगे।

धनिया फूली हुई थी। मलामत की आंखों से देखती हुई बोली—या तो किसी को नेवता न दो और दो, तो भरपेट खिलाओ। तुम्हारे पास फूल-पत्र लेने थोड़े ही आये हैं कि चंगेरी लेकर चलते। देते ही हो, तो तीन खांचे दे दो। भला आदमी लड़कों को क्यों नहीं लाया? अकेले कहां तक ढोयेगा? जान निकल जायेगी।

'तीन खांचे तो मेरे दिये न दिये जायेंगे।'

'तब क्या एक खांचा देकर टालोगे? गोबर से कह दो, अपना खंचा भरकर उनके साथ चला

'किसके बल पर यह भजन-भाव और दान-धरम होता है?'

'अपने बल पर।'

'नहीं, किसानों के बल पर और मजदूरों के बल पर। यह पाप का धन पचे कैसे? इसीलिए दान-धरम करना पड़ता है, भगवान् का भजन भी इसीलिए होता है। भूखे-नंगे रहकर भगवान् का भजन करें, तो हम भी देखें। हमें कोई दोनों जून खाने को दे, तो हम आठों पहर भगवान् का जाप ही करते रहें। एक दिन खेत में ऊख गोड़ना पड़े, तो सारी भक्ति भूल जायें।'

होरी ने हार कर कहा—अब तुम्हारे मुंह कौन लगे भाई, तुम तो भगवान् की लीला में भी टांग अड़ाते हो।

तीसरे पहर गोबर कुदाल लेकर चला, तो होरी ने कहा—जरा ठहर जाओ बेटा, हम भी चलते हैं। तब तक थोड़ा-सा भूसा निकालकर रख दो। मैंने भोला को देने को कहा है। बेचारा आजकल बहुत तंग है।

गोबर ने अवज्ञा-भरी आंखों से देखकर कहा— हमारे पास बेचने को भूसा नहीं है।

'बेचता नहीं हूं भाई, यों ही दे रहा हूं वह संकट में है, उसकी मदद तो करनी ही पड़ेगी।'

'हमें तो उन्होंने कभी एक गाय नहीं दे दी।'

'दे तो रहा था, पर हमने ली ही नहीं।'

धनिया मटककर बोली—गाय नहीं। वह दे रहा था। इन्हें गाय दे देगा! आंख में अञ्जन लगाने को कभी चिल्लू-भर दूध तो भेजा नहीं, गाय देगा!

होरी ने कसम खायी—नहीं, जवानी कसम, अपनी पछांई गाय दे रहे थे। हाथ तंग है, भूसा-चारा नहीं रख सके। अब एक गाय बेचकर भूसा लेना चाहते हैं। मैंने सोचा, संकट में पड़े आदमी की गाय क्या लूंगा। थोड़ा-सा भूसा दिये देता हूं, कुछ रुपये हाथ आ जायेंगे, तो गाय ले लूंगा। थोड़ा-थोड़ा करके चुका दूंगा। अस्सी रुपये की है, मगर ऐसी कि आदमी देखता रहे।

गोबर ने आड़े हाथों लिया—तुम्हारा यही धर्मात्मापन तो तुम्हारी दुर्गत कर रहा है। साफ़-साफ तो बात है। अस्सी रुपये की गाय है, हमसे बीस रुपये का भूसा ले लें और गाय हमें दे दें। साठ रुपये रह जायेंगे। वह हम धीरे-धीरे दे देंगे।

होरी रहस्यमय ढंग से मुस्कराया—मैंने ऐसी चाल सोची है कि गाय सेंत-मेंत में हाथ आ जाय। कहीं भोला की सगाई ठीक करनी है, बस। दो-चार मन भूसा तो खाली अपना रंग जमाने को देता हूं।

गोबर ने तिरस्कार किया—तो तुम अब सब की सगाई ठीक करते फिरोगे?

धनिया ने तीखी आंखों से देखा—अब यही एक उद्दम तो रह गया है। नहीं देना है हमें भूसा किसी को। यहां भोला-भाली किसी का करज नहीं खाया है।

होरी ने अपनी सफ़ाई दी—अगर मेरे जतन से किसी का घर बस जाय, तो इसमें कौन-सी बुराई है?

गोबर ने चिलम उठायी और आग लेने चला गया। उसे यह झमेला बिलकुल नहीं भाता था।

धनिया ने सिर हिलाकर कहा—जो उनका घर बसायेगा, वह अस्सी रुपये की गाय लेकर चुप न होगा। एक थैली गिनवायेगा।

होरी ने पुचारा दिया—यह मैं जानता हूं, लेकिन उनकी भलमनसी को भी तो देखो। मुझसे जब मिलता है, तेरा बखान ही करता है—ऐसी लक्ष्मी है, ऐसी सलीकेदार है।

धनिया के मुख पर स्निग्धता झलक पड़ी। 'मन मन भाये मुड़िया हिलाये' वाले भाव से बोली—मैं उनके बखान की भूखी नहीं हूं, अपना बखान धरे रहें।

होरी ने स्नेह-भरी मुस्कान के साथ कहा—मैंने तो कह दिया, भैया वह नाक पर मक्खी भी नहीं बैठने देती, गालियों से बात करती है, लेकिन वह यही कहे जाय कि वह औरत नहीं, लक्ष्मी है। बात

यह है कि उसकी घरवाली जवान की बड़ी तेज थी। बेचारा उसके डर के मारे भागा-भागा फिरता था। कहता था जिस दिन तुम्हारी घरवाली का मुंह सवेरे देख लेता हूं, उस दिन कुछ-न-कुछ जरूर हाथ लगता है। मैंने कहा—तुम्हारे हाथ लगता होगा, यहां तो रोज देखते हैं, कभी पैसे से भेंट नहीं होती।

'तुम्हारे भाग ही खोटे हैं, तो मैं क्या करूं।'

'लगा अपनी घरवाली की बुराई करने—भिखारी को भीख तक नहीं देती थी, झाडू लेकर मारने दौड़ती थी, लालचिन ऐसी थी कि नमक तक दूसरों के घर से मांग लाती थी।'

'मरने पर किसी की क्या बुराई करूं, मुझे देखकर जल उठती थी।'

'भोला बड़ा गमखोर था कि उसके साथ निवाह कर दिया। दूसरा होता तो जहर खाके मर जाता। मुझसे दस साल बड़े होंगे भोला, पर राम-राम पहले ही करते हैं।'

'तो क्या कहते थे कि जिस दिन तुम्हारी घरवाली का मुंह देख लेता हूं, तो क्या होता है?'

'उस दिन भगवान् कहीं-न-कहीं से कुछ भेज देते हैं।'

'बहुएं भी तो वैसी ही चटोरिन आयी हैं। अबकी सबों ने दो रुपये के खरबूजे उधार खा डाले। उधार मिल जाये, फिर उन्हें चिन्ता नहीं होती कि देना पड़ेगा या नहीं।'

'अरे! भोला रोते काहे को हैं?'

गोबर आकर बोला—भोला दादा आ पहुंचे। मन-दो मन भूसा है, वह उन्हें दे दो, फिर उनकी सगाई ढूंढ़ने निकलो।

धनिया ने समझाया—आदमी द्वार पर बैठा है, उसके लिए खाट-वाट तो डाल नहीं दी, ऊपर से लगे भुनभुनाने। कुछ तो भलमनसी सीखो। कलसा ले जाओ, पानी भरकर रख दो, हाथ-मुंह धोयें, कुछ रस-पानी पिला दो। मुसीबत में ही आदमी दूसरों के सामने हाथ फैलाता है।

होरी बोला—रस-बस का काम नहीं है, कौन कोई पाहुने हैं।

धनिया बिगड़ी—पाहुने और कैसे होते हैं। रोज-रोज तो तुम्हारे द्वार पर नहीं आते हैं? इतनी दूर से धूप-घाम में आये हैं, प्यास लगी ही होगी। रुपिया, देख डब्बे में तमाखू है कि नहीं, गोबर के मारे काहे को बची होगी। दौड़कर एक पैसे का तमाखू सहुआइन की दुकान से ले लो।

भोला की आज जितनी खातिर हुई, और कभी नहीं हुई होगी। गोबर ने खाट डाल दी, सोना रस घोल लायी, रूपा तमाखू भर लायी। धनिया द्वार पर किवाड़ की आड़ में खड़ी अपने कानों से अपना बखान सुनने के लिए अधीर हो रही थी।

भोला ने चिलम हाथ में लेकर कहा—अच्छी घरनी घर में आ जाय, तो समझ लो लक्ष्मी आ गयी। वही जानती है, छोटे-बड़े का आदर-सत्कार कैसे करना चाहिए।

धनिया के हृदय में उल्लास का कम्पन हो रहा था। चिन्ता और निराशा और अभाव से आहत आत्मा इन शब्दों में एक कोमल शीतल स्पर्श का अनुभव कर रही थी।

होरी जब भोला का खांचा उठाकर भूसा लाने अन्दर चला, तो धनिया भी पीछे-पीछे चली। होरी ने कहा—जाने कहां से इतना बड़ा खांचा मिल गया। किसी भड़भूजे से मांग लिया होगा। मनभर से कम में न भरेगा। दो खांचे भी दिये, तो दो मन निकल जायेंगे।

धनिया फूली हुई थी। मलामत की आंखों से देखती हुई बोली—या तो किसी को नेवता न दो और दो, तो भरपेट खिलाओ। तुम्हारे पास फूल-पत्र लेने थोड़े ही आये हैं कि चंगेरी लेकर चलते। देते ही हो, तो तीन खांचे दे दो। भला आदमी लड़कों को क्यों नहीं लाया? अकेले कहां तक ढोयेगा? जान निकल जायेगी।

'तीन खांचे तो मेरे दिये न दिये जायेंगे।'

'तब क्या एक खांचा देकर टालोगे? गोबर से कह दो, अपना खंचा भरकर उनके

जाय।'

'गोबर ऊख गोड़ने जा रहा है।'

'एक दिन न गोड़ने से ऊख न सूख जायेगी।'

'यह तो उनका काम था कि किसी को अपने साथ ले लेते। भगवान् के दिये दो-दो बेटे हैं।'

'न होंगे घर पर। दूध लेकर बाजार गये होंगे।'

'यह तो अच्छी दिल्लगी है कि अपना माल भी दो और उसे घर तक पहुंचा भी दो। लाद दे, लदा दे, लादने वाला साथ कर दे।'

'अच्छा भाई, कोई मत जाय। मैं पहुंचा दूंगी। बड़ों की सेवा करने में लाज नहीं है।'

'और तीन खांचे उन्हें दे दूं, तो अपने बैल क्या खायेंगे?'

'यह सब तो नेवता देने के पहले ही सोच लेना था। न हो, तुम और गोबर दोनों जने चले जाओ।'

'मुरौवत मुरौवत की तरह की जाती है, अपना घर उठाकर नहीं दे दिया जाता!'

'अभी जमींदार का प्यादा आ जाय, तो अपने सिर पर भूसा लादकर पहुंचाओगे, तुम, तुम्हारा लड़का, लड़की सब। और वहां साइत मन-दो मन लकड़ी भी फाड़नी पड़े।'

'जमींदार की बात और है।'

'हां, वह डण्डे के जोर से काम लेता है न।'

'उसके खेत नहीं जोतते?'

'खेत जोतते हैं, तो लगान नहीं देते?'

'अच्छा भाई, जान न खा, हम दोनों चले जायेंगे। कहां-से-कहां मैंने इन्हें भूसा देने को कह दिया। या तो चलेगी नहीं या चलेगी, तो दौड़ने लगेगी।'

तीनों खांचे भूसे से भर दिये गये। गोबर कुढ़ रहा था। उसे अपने बाप के व्यवहार में ज़रा भी विश्वास न था। वह समझता था, वह जहां जाते हैं, वहीं कुछ-न-कुछ घर से खो आते हैं। धनिया प्रसन्न थी। रहा होरी, वह धर्म और स्वार्थ के बीच में डूब-उतरा रहा था।

होरी और गोबर मिलकर एक खांचा बाहर लाये। भोला ने तुरन्त अपने अंगोछे का बीड़ा बनाकर सिर पर रखते हुए कहा—मैं इसे रखकर अभी भागा आता हूं। एक खांचा और लूंगा।

होरी बोला—एक नहीं, अभी दो और भरे धरे हैं। और तुम्हें न आना पड़ेगा। मैं और गोबर एक-एक खांचा लेकर तुम्हारे साथ ही चलते हैं।

भोला स्तम्भित हो गया। होरी उसे अपना भाई, बल्कि उससे भी निकट जान पड़ा। उसे अपने भीतर एक ऐसी तृप्ति का अनुभव हुआ, जिसने मानो उसके सम्पूर्ण जीवन को हरा कर दिया।

तीनों भूसा लेकर चले, तो राह में बातें होने लगीं।

भोला ने पूछा—दशहरा आ रहा है, मालिकों के द्वार पर तो बड़ी धूमधाम होगी?

'हां, तम्बू-सामियाना गड़ गया है। अबकी लीला में मैं भी काम करूंगा। रायसाहब ने कहा है, तुम्हें राजा जनक का माली बनना पड़ेगा।'

'मालिक तुमसे बहुत खुश हैं।'

'उनकी दया है।'

एक क्षण के बाद भोला ने फिर पूछा—सगुन के लिए रुपये का कुछ जुगाड़ कर लिया है? माली बन जाने से तो गला न छूटेगा।

होरी ने मुंह का पसीना पोंछकर कहा—उसी की चिन्ता तो मारे डालती है दादा। अनाज तो सब-का-सब खलिहान में ही तुल गया। जमींदार ने अपना लिया, महाजन ने अपना लिया। मेरे लिए पांच सेर अनाज बच रहा। यह भूसा तो मैंने रातोंरात ढोकर छिपा दिया था, नहीं तिनका भी न

बचता। जमींदार तो एक ही है, मगर महाजन तीन-तीन हैं, सहुआइन अलग, मंगरू अलग और दातादीन पण्डित अलग। किसी का ब्याज भी पूरा न चुका। जमींदार के भी आधे रुपये बाकी पड़ गये। सहुआइन से फिर रुपये उधार लिये, तो काम चला। सब तरह किफायत करके देख लिया भैया, कुछ नहीं होता। हमारा जनम इसीलिए हुआ है कि अपना रक्त बहायें और बड़ों का घर भरें। मूल का दुगुना सूद भर चुका, पर मूल ज्यों-का-त्यों सिर पर सवार है। लोग कहते हैं, खुशी-गमी में, तीरथ-बरत में हाथ बांधकर खरच करो। मुदा रास्ता कोई नहीं दिखाता। रायसाहब ने बेटे के ब्याह में तीस हजार लुटा दिये। उनसे कोई कुछ नहीं कहता। मंगरू ने अपने बाप के क्रिया-करम में पांच हजार लगाये। उनसे कोई कुछ नहीं पूछता। वैसी ही मरजाद तो सबकी है।

भोला ने करुण भाव से कहा—बड़े आदमियों की बराबरी तुम कैसे कर सकते हो भाई?

'आदमी तो हम भी हैं।'

'कौन कहता है कि हम-तुम आदमी हैं। हममें आदमियत कहां? आदमी वह है, जिसके पास धन है, अख्तियार है, इलम है। हम लोग तो बैल हैं और जुतने के लिए पैदा हुए हैं। उस पर एक-दूसरे को देख नहीं सकता। एका का नाम नहीं। एक किसान दूसरे के खेत पर न चढ़े, तो कोई जाफा कैसे करे, प्रेम तो संसार से उठ गया।'

बूढ़ों के लिए अतीत के सुखों और वर्तमान के दुःखों और भविष्य के सर्वनाश से ज्यादा मनोरंजक और कोई प्रसंग नहीं होता। दोनों मित्र अपने-अपने दुखड़े रोते रहे। भोला ने अपने बेटों के करतूत सुनाये, होरी ने अपने भाइयों का रोना रोया और तब एक कुएं पर बोझ रखकर पानी पीने के लिए बैठ गये। गोबर ने बनिये से लोटा मांगा और पानी खींचने लगा।

भोला ने सहृदयता से पूछा—अलगौझे के समय तो तुम्हें बड़ा रंज हुआ होगा। भाइयों को तो तुमने बेटों की तरह पाला था।

होरी आर्द्र कण्ठ से बोला—कुछ न पूछो दादा, यही जी चाहता था कि कहीं जाके डूब मरूं। मेरे जीते जी सब कुछ हो गया। जिनके पीछे अपनी जवानी धूल में मिला दी, वही मेरे मुद्दई हो गये, और झगड़े की जड़ क्या थी? यही कि मेरी घरवाली हार में काम करने क्यों नहीं जाती। पूछो, घर देखने वाला भी कोई चाहिए कि नहीं। लेना-देना, धरना-उठाना, संभालना-सहेजना, यह कौन करे। फिर वह घर बैठी तो नहीं रहती थी, झाडू-बहारू, रसोई, चौका-बरतन, लड़कों की देख-भाल यह कोई थोड़ा काम है? सोभा की औरत घर संभाल लेती कि हीरा की औरत में यह सलीका था? जब से अलगौझा हुआ है, दोनों घरों में एक जून रोटी पकती है। नहीं सबको दिन में चार बार भूख लगती थी। अब खायें चार दफे, तो देखूं। इस मालिकपन में गोबर की मां की जो दुर्गति हुई है, वह मैं ही जानता हूं, बेचारी अपनी देवरानियों के फटे-पुराने कपड़े पहनकर दिन काटती थी, खुद भूखी सो रही होगी, लेकिन बहुओं के लिए जलपान तक का ध्यान रखती थी। अपनी देह पर गहने के नाम कच्चा धागा भी न था, देवरानियों के लिए दो-चार गहने बनवा दिये। सोने के न सही, चांदी के तो हैं। जलन यही थी कि यह मालिक क्यों है। बहुत अच्छा हुआ कि अलग हो गये। मेरे सिर से बला टली।

भोला ने एक लोटा पानी चढ़ाकर कहा—यही हाल घर-घर है भैया! भाइयों की बात ही क्या, यहां तो लड़कों से भी नहीं पटती और पटती इसीलिए नहीं कि मैं किसी की कुचाल देखकर मुंह नहीं बन्द कर सकता। तुम जुआ खेलोगे, चरस पीओगे, गांजे के दम लगाओगे, मगर आये किसके घर से? खरचा करना चाहते हो तो कमाओ, मगर कमाई तो किसी से न होगी। खरच दिल [illegible] करेंगे। जेठा कामता सौदा लेकर बाजार जायेगा, तो आधे पैसे गायब। पूछो, तो कोई जवाब [illegible] छोटा जंगी है, वह संगत के पीछे मतवाला रहता है। सांझ हुई और ढोल-मजीरा लेकर बै[illegible] को मैं बुरा नहीं कहता। गाना-बजाना ऐब नहीं, लेकिन यह सब काम फुरसत के हैं। [illegible] का तो कोई काम न करो, आठों पहर उसी धुन में पड़े रहो। जाती है मेरे सिर, [illegible]

गाय-भैंस में दुहूं, दूध लेकर बाजार में जाऊं। यह गृहस्थी जी का जञ्जाल है, सोने की हंसिया, जिसे न उगलते बनता है, न निगलते। लड़की है झुनिया, वह भी नसीब की खोटी। तुम तो उसकी सगाई में आये थे। कितना अच्छा घर-वर था। उसका आदमी बम्बई में दूध की दुकान करता था। उन दिनों वहां हिन्दू-मुसलमानों में दंगा हुआ, तो किसी ने उसके पेट में छुरा भोंक दिया। घर ही चौपट हो गया। वहां अब उसका निवाह नहीं। जाकर लिवा लाया कि दूसरी सगाई कर दूंगा, मगर वह राजी ही नहीं होती। और दोनों भावजें हैं कि रात-दिन उसे जलाती रहती हैं। घर में महाभारत मचा रहता है। विपद की मारी यहां आयी, यहां भी चैन नहीं।

इन्हीं दुखड़ों में रास्ता कट गया। भोला का पुरवा था तो छोटा, मगर बहुत गुलज़ार। अधिकतर अहीर ही बसते थे। और किसानों के देखते इनकी दशा बहुत बुरी न थी। भोला गांव का मुखिया था। द्वार पर बड़ी-सी चरनी थी, जिस पर दस-बारह गायें-भैंसें खड़ी सानी खा रही थीं। ओसारे में एक बड़ा-सा तख्त पड़ा था, जो शायद दस आदमियों से भी न उठता। किसी खूंटी पर ढोलक लटक रही थी, किसी पर मजीरा। एक ताख पर कोई पुस्तक बस्ते में बंधी रखी हुई थी, जो शायद रामायण हो। दोनों बहुएं सामने बैठी गोबर पाथ रही थीं और झुनिया चौखट पर खड़ी थी। उसकी आंखें लाल थीं और नाक के सिरे पर भी सुर्खी थी। मालूम होता था, अभी रोकर उठी है। उसके मांसल, स्वस्थ, सुगठित अंगों में, मानो यौवन लहरें मार रहा था। मुंह बड़ा और गोल था, कपोल फूले हुए, आंखें छोटी और भीतर धंसी हुई, माथा पतला, पर वक्ष का उभार और गात का वही गुदगुदापन आंखों को खींचता था। उस पर छपी हुई गुलाबी साड़ी उसे और भी शोभा प्रदान कर रही थी।

भोला को देखते ही उसने लपककर उनके सिर से खांचा उतरवाया। भोला ने गोबर और होरी के खांचे उतरवाये और झुनिया से बोले—पहले एक चिलम भर ला, फिर थोड़ा-सा रस बना ले। पानी न हो, तो गगरा ला, मैं खींच दूं। होरी महतो को पहचानती है न?

फिर होरी से बोला—घरनी के बिना घर नहीं रहता भैया! पुरानी कहावत है—नाटन खेती बहुरियन घर। नाटे बैल क्या खेती करेंगे और बहुएं क्या घर संभालेंगी? जब से इसकी मां मरी है, जैसे घर की बरकत ही उठ गयी। बहुएं आटा पाथ लेती हैं, पर गृहस्थी चलाना क्या जानें। हां, मुंह चलाना खूब जानती हैं। लौंडे कहीं फड़ पर जमे होंगे। सब-के-सब आलसी हैं, कामचोर। जब तक जीता हूं, इनके पीछे मरता हूं। मर जाऊंगा, तो आप सिर पर हाथ धरकर रोयेंगे। लड़की भी वैसी ही है। छोटा-सा अढ़ौना भी करेगी, तो भुनभुनाकर। मैं तो सह लेता हूं, खसम थोड़े ही सहेगा।

झुनिया एक हाथ में भरी हुई चिलम, दूसरे में रस का लोटा लिये बड़ी फुर्ती से आ पहुंची। फिर रस्सी और कलस लेकर पानी भरने चली। गोबर ने उसके हाथ से कलसा लेने के लिए हाथ बढ़ाकर झेंपते हुए कहा—तुम रहने दो, मैं भरे लाता हूं।

झुनिया ने कलसा न दिया। कुएं के जगत पर जाकर मुस्कराती हुई बोली—तुम हमारे मेहमान हो। कहोगे, एक लोटा पानी भी किसी ने न दिया।

'मेहमान काहे से हो गया। तुम्हारा पड़ोसी ही तो हूं।'

'पड़ोसी साल-भर में एक बार भी सूरत न दिखाये, तो मेहमान ही है।'

'रोज-रोज आने में मरजाद भी तो नहीं रहती।'

झुनिया हंसकर तिरछी नज़रों से देखती हुई बोली—वही मरजाद तो दे रही हूं। महीने में एक बेर आओगे, ठण्डा पानी दूंगी। पन्द्रहवें दिन आओगे, चिलम पाओगे। सातवें दिन आओगे, खाली बैठने को माची दूंगी। रोज-रोज आओगे, कुछ न पाओगे।

'दरसन तो दोगी?'

'दरसन के लिए पूजा करनी पड़ेगी।'

यह कहते-कहते जैसे उसे कोई भूली हुई बात याद आ गयी। उसका मुंह उदास हो गया। वह

।वयथा ह । उसके नारीत्व के द्वार पर पहले उसका पति रक्षक वना वैठा रहता था। वह निश्चिन्त थी। अब उसे द्वार पर कोई रक्षक न था, इसीलिए वह उस द्वार को सदैव वन्द रखती है। कभी-कभी घर के सूनेपन से उकताकर वह द्वार खोलती है, पर किसी को आते देखकर भयभीत होकर दोनों पट भेड़ लेती है।

गोवर ने कलसा भरकर निकाला। सवों ने रस पिया और एक चिलम तमाखू और पीकर लौटे। भोला ने कहा—कल तुम आकर गाय ले जाना गोवर, इस वखत तो सानी खा रही है।

गोवर की आंखें उसी गाय पर लगी हुई थीं और मन-ही-मन वह मुग्ध हुआ जाता था। गाय इतनी सुन्दर और सुडौल है, इसकी उसने कल्पना भी न की थी।

होरी ने लोभ को रोककर कहा—मंगवा लूंगा, जल्दी क्या है?

'तुम्हें जल्दी न हो, हमें तो जल्दी है। उसे द्वार पर देखकर तुम्हें वह वात याद रहेगी।'

'उसकी मुझे वड़ी फिकर है दादा।'

'तो कल गोवर को भेज देना।'

दोनों ने अपने-अपने खांचे सिर पर रखे और आगे वढ़े। दोनों इतने प्रसन्न थे, मानो व्याह करके लौटे हों। होरी को तो अपनी चिरसञ्चित अभिलाषा के पूरे होने का हर्ष था और विना पैसे के। गोवर को इससे भी वहुमूल्य वस्तु मिल गयी थी। उसके मन में अभिलाषा जाग उठी थी।

अवसर पाकर उसने पीछे की तरफ़ देखा। झुनिया द्वार पर खड़ी थी, मत्त आशा की भांति अधीर, चञ्चल।

:4:

होरी को रात-भर नींद नहीं आयी। नीम के पेड़-तले अपनी वांस की खाट पर पड़ा वार-वार तारों की ओर देखता था। गाय के लिए एक नांद गाड़नी है। वैलों से अलग उसकी नांद रहे, तो अच्छा। अभी तो रात को वाहर ही रहेगी; लेकिन चौमासे में उसके लिए कोई दूसरी जगह ठीक करनी होगी। वाहर लोग नजर लगा देते हैं। कभी-कभी तो ऐसा टोना-टोटका कर देते हैं कि गाय का दूध ही सूख जाता है। थन में हाथ ही नहीं लगाने देती। लात मारती है। नहीं, वाहर वांधना ठीक नहीं। और वाहर नांद भी कौन गाड़ने देगा। कारिन्दा साहव नजर के लिए मुंह फुलायेंगे। छोटी-छोटी वात के लिए रायसाहव के पास फरियाद ले जाना भी उचित नहीं। और कारिन्दे के सामने मेरी सुनता कौन है। भीतर ही वांधूंगा। आंगन है तो छोटा-सा, लेकिन एक मड़ैया डाल देने से काम चल जायेगा। अभी पहला ही व्यात है। पांच सेर से कम क्या दूध देगी? सेर-भर तो गोवर ही को चाहिए। रुपिया दूध देखकर कैसी ललचाती रहती है। अव पिये जितना चाहे। कभी-कभी दो-चार सेर मालिकों को दे आया करूंगा। कारिन्दा साहव की पूजा भी करनी ही होगी। और भोला के रुपये भी दे देना चाहिए। सगाई के ढकोसले में उसे क्यों डालूं। जो आदमी अपने ऊपर इतना विश्वास करे, उससे दगा करना नीचता है। अस्सी रुपये की गाय मेरे विश्वास पर दे दी, नहीं यहां तो कोई एक पैसे को नहीं पतियाता। सन में क्या कुछ मिलेगा? अगर पच्चीस रुपये भी दे दूं, तो भोला को ढाढ़स हो जाय। धनिया से नाहक वता दिया। चुपके से गाय लाकर वांध देता, तो चकरा जाती। लगती पूछने, किसकी गाय है? कहां से लाये हो? खूव दिक करके तव वताता, लेकिन जव पेट में वात पचे भी। कभी दो-चार पैसे ऊपर से आ जाते हैं, उनको भी तो नहीं छिपा सकता। और यह अच्छा भी है। उसे घर की चिन्ता रहती है। अगर उसे मालूम हो जाय कि इनके पास भी पैसे रहते हैं, तो फिर नखरे वघारने लगे। गोवर [illegible] आलसी है। नहीं, मैं गऊ की ऐसी सेवा करता कि जैसी चाहिए। आलसी-वालसी कुछ नहीं है। [illegible] उमिर में कौन आलसी नहीं होता। मैं भी दादा के सामने मटरगस्ती ही किया करता था। [illegible] रात से कुट्टी काटने लगते। कभी जगा देते, तो मैं विगड़ जाता और घर छोड़कर भाग [illegible]

देता था। लड़के जब अपने मां-बाप के सामने भी जिन्दगी का थोड़ा-सा सुख न भोगेंगे, तो फिर जब अपने सिर पड़ गयी, तो क्या भोगेंगे? दादा के मरते ही क्या मैंने घर नहीं संभाल लिया? सारा गांव यही कहता था कि होरी घर बरबाद कर देगा, लेकिन सिर पर बोझ पड़ते ही मैंने ऐसा चोला बदला कि लोग देखते रह गये। सोभा और हीरा अलग हो गये, नहीं आज इस घर की और ही बात होती। तीन हल एक साथ चलते। अब तीनों अलग-अलग चलते हैं। बस, समय का फेर है। धनिया का क्या दोष था! बेचारी जब से घर में आयी, कभी तो आराम से न बैठी। डोली से उतरते ही सारा काम सिर पर उठा लिया। अम्मा को पान की तरह फेरती रहती थी। जिसने घर के पीछे अपने को मिटा दिया, देवरानियों से काम करने को कहती थी, तो क्या बुरा करती थी। आखिर उसे भी तो कुछ आराम मिलना चाहिए, लेकिन भाग्य में आराम लिखा होता, तब तो मिलता। तब देवरों के लिए मरती थी, अब अपने बच्चों के लिए मरती है। वह इतनी सीधी, गमखोर, निश्छल न होती, तो आज सोभा और हीरा जो मूंछों पर ताव देते फिरते हैं, कहीं भीख मांगते होते। आदमी कितना स्वार्थी हो जाता है। जिसके लिए लड़ो, वही जान का दुश्मन हो जाता है।

होरी ने फिर पूर्व की ओर देखा। साइत भिनसार हो रहा है। गोबर काहे को जागने लगा। नहीं, कहके तो यही सोया था कि मैं अंधेरे ही चला जाऊंगा। जाकर नांद तो गाड़ दूं, लेकिन नहीं, जब तक गाय द्वार पर न आ जाय, नांद गाड़ना ठीक नहीं। कहीं भोला बदल गये या और किसी कारन से गाय न दी, तो सारा गांव तालियां पीटने लगेगा, चले थे गाय लेने । पट्ठे ने इतनी फुर्ती से नांद गाड़ दी, मानो इसी की कसर थी। भोला है तो अपने घर का मालिक, लेकिन जब लड़के सयाने हो गये, तो बाप की कौन चलती है! कामता और जंगी अकड़ जायें, तो क्या भोला अपने मन से गाय मुझे दे देंगे, कभी नहीं।

सहसा गोबर चौंककर उठ बैठा और आंखें मलता हुआ बोला—अरे! यह तो भोर हो गया। तुमने नांद गाड़ दी दादा?

होरी गोबर के सुगठित शरीर और चौड़ी छाती की ओर गर्व से देखकर और मन में यह सोचते हुए कि कहीं इसे गोरस मिलता, तो कैसा पट्ठा हो जाता, बोला—नहीं, अभी नहीं गाड़ी। सोचा, कहीं न मिले, तो नाहक भद्द हो।

गोबर ने त्योरी चढ़ाकर कहा—मिलेगी क्यों नहीं?

'उनके मन में कोई चोर पैठ जाय?'

'चोर पैठे या डाकू, गाय तो उन्हें देनी ही पड़ेगी।'

गोबर ने और कुछ न कहा। लाठी कन्धे पर रखी और चल दिया। होरी उसे जाते देखता हुआ अपना कलेजा ठण्डा करता रहा। अब लड़के की सगाई में देर न करनी चाहिए। सत्रहवां लग गया, मगर करें कैसे? कहीं पैसे के भी दरसन हों, जब से तीनों भाइयों में अलगौझा हो गया, घर की साख जाती रही। महतो लड़का देखने आते हैं, पर घर की दशा देखकर मुंह फीका करके चले जाते हैं। दो-एक राजी हुए, तो रुपये मांगते हैं। दो-तीन सौ लड़की का दाम चुकायें और इतना ही ऊपर से खर्च करें, तब जाकर ब्याह हो। कहां से आयें इतने रुपये? रास खलिहान में तुल जाती है। खाने-भर को भी नहीं बचता। ब्याह कहां से हो? और अब तो सोना ब्याहने योग्य हो गयी। लड़के का ब्याह न हुआ, न सही। लड़की का ब्याह न हुआ, तो सारी बिरादरी में हंसी होगी। पहले तो उसी की सगाई करनी है, पीछे देखी जायेगी।

एक आदमी ने आकर राम-राम किया और पूछा—तुम्हारी कोठी में कुछ बांस होंगे महतो?

होरी ने देखा, दमड़ी बंसोर खड़ा है, नाटा, काला, खूब मोटा, चौड़ा मुंह, बड़ी-बड़ी मूंछें, लाल आंखें, कमर में बांस काटने की कटार खोंसे हुए। साल में एक-दो बार आकर चिकें, कुरसियां, मोढ़े, टोकरियां आदि बनाने के लिए कुछ बांस काट ले जाता था।

होरी प्रसन्न हो गया। मुट्ठी गरम होने की कुछ आशा वंधी। चौधरी को ले जाकर अपनी तीनों कोठियां दिखायीं, मोल-भाव किया और पच्चीस रुपये सैकड़े में पचास वांस का वयाना ले लिया। फिर दोनों लौटे। होरी ने उसे चिलम पिलायी, जलपान कराया और तव रहस्यमय भाव से वोला—मेरे वांस कभी तीस रुपये से कम में नहीं जाते, लेकिन तुम घर के आदमी हो, तुमसे क्या मोल-भाव करता? तुम्हारा वह लड़का, जिसकी सगाई हुई थी, अभी परदेस से लौटा कि नहीं?

चौधरी ने चिलम का दम लगाकर खांसते हुए कहा—उस लौंडे के पीछे तो मर मिटा महतो! जवान वहू घर में वैठी थी और वह विरादरी की एक दूसरी औरत के साथ परदेस में मौज करने चल दिया। वहू भी दूसरे के साथ निकल गयी। वड़ी नाकिस जात है महतो, किसी की नहीं होती। कितना समझाया कि तू जो चाहे खा, जो चाहे पहन, मेरी नाक न कटवा, मुदा कौन सुनता है, औरत को भगवान् सव कुछ दे, रूप न दे, नहीं वह कावू में नहीं रहती। कोठियां तो वंट गयी होंगी?

होरी ने आकाश की ओर देखा और मानो उसकी महानता में उड़ता हुआ वोला—सव कुछ वंट गया चौधरी! जिनको लड़कों की तरह पाला-पोसा, वह अव वरावर के हिस्सेदार हैं, लेकिन भाई का हिस्सा खाने की अपनी नीयत नहीं है। इधर तुमसे रुपये मिलेंगे, उधर दोनों भाइयों को वांट दूंगा। चार दिन की जिन्दगी में क्यों किसी से छल-कपट करूं? नहीं कह दूं कि वीस रुपये सैकड़े में वेचे हैं, तो उन्हें क्या पता लगेगा। तुम उनसे कहने थोड़े ही जाओगे। तुम्हें तो मैंने वरावर अपना भाई समझा है।

व्यवहार में हम 'भाई' के अर्थ का कितना ही दुरुपयोग करें, लेकिन उसकी भावना में जो पवित्रता है, वह हमारी कालिमा से कभी मलिन नहीं होती।

होरी ने अप्रत्यक्ष रूप से यह प्रस्ताव करके चौधरी के मुंह की ओर देखा कि वह स्वीकार करता है या नहीं, उसके मुख पर कुछ ऐसा मिथ्या विनीत भाव प्रकट हुआ जो भिक्षा मांगते समय मोटे भिक्षुकों पर आ जाता है।

चौधरी ने होरी का आसन पाकर चावुक जमाया—हमारा-तुम्हारा पुराना भाईचारा है महतो, ऐसी वात है भला, लेकिन वात यह है कि आदमी ईमान वेचता है, तो किसी लालच से। वीस रुपये नहीं, मैं पन्द्रह रुपये कहूंगा, लेकिन जो वीस रुपये के दाम लो।

होरी ने खिसियाकर कहा—तुम तो चौधरी अन्धेर करते हो, वीस रुपये में कहीं ऐसे वांस जाते हैं?

'ऐसे क्या, इससे अच्छे वांस जाते हैं दस रुपये पर। हां, दस कोस और पश्चिम चले जाओ। मोल वांस का नहीं, शहर के नगीच होने का है। आदमी सोचता है, जितनी देर वहां जाने में लगेगी, उतनी देर में तो दो-चार रुपये का काम हो जायेगा।'

सौदा पट गया। चौधरी ने मिरजई उतारकर छान पर रख दी और वांस काटने लगा।

ऊख की सिंचाई हो रही थी। हीरा-वहू कलेवा लेकर कुएं पर जा रही थी। चौधरी को वांस काटते देखकर घूंघट के अन्दर से वोली—कौन वांस काटता है? यहां वांस न कटेंगे।

चौधरी ने हाथ रोककर कहा—वांस मोल लिये हैं, पन्द्रह रुपये सैकड़े का वयाना हुआ है। सेंत में नहीं काट रहे हैं।

हीरा-वहू अपने घर की मालकिन थी। उसी के विद्रोह से भाइयो में अलगौझा हुआ था। धनिया को परास्त करके शेर हो गयी थी। हीरा कभी-कभी उसे पीटता था। अभी हाल में इतना मारा था कि वह कई दिन तक खाट से न उठ सकी, लेकिन अपना पदाधिकार वह किसी तरह न छोड़ती थी। हीरा क्रोध में उसे मारता था, लेकिन चलता था उसी के इशारों पर, उस घोड़े की भांति जो कभी-कभी स्वामी को लात मारकर भी उसी के आसन के नीचे चलता है।

कलेवे की टोकरी सिर से उतार कर वोली—पन्द्रह रुपये में हमारे वांस न जायेंगे

चौधरी औरतजात से इस विषय में बातचीत करना नीति-विरुद्ध समझते थे। बोले—जाकर अपने आदमी को भेज दो। जो कुछ कहना हो, आकर कहें।

हीरा-बहू का नाम था पुन्नी। बच्चे दो ही हुए थे। लेकिन ढल गयी थी। बनाव-सिंगार से समय के आघात का शमन करना चाहती थी, लेकिन गृहस्थी में भोजन ही का ठिकाना न था, सिंगार के लिए पैसे कहां से आते? इस अभाव और विवशता ने उसकी प्रकृति का जल सुखाकर कठोर और शुष्क बना दिया, जिस पर एक बार फावड़ा भी उचट जाता था।

समीप आकर चौधरी का हाथ पकड़ने की चेष्टा करती हुई बोली—आदमी को क्यों भेज दूं? जो कुछ कहना हो, मुझसे कहो। मैंने कह दिया, मेरे बांस न कटेंगे।

चौधरी हाथ छुड़ाता था, और पुन्नी बार-बार पकड़ लेती थी। एक मिनट तक यही हाथा-पाई होती रही। अन्त में चौधरी ने उसे ज़ोर से पीछे ढकेल दिया। पुन्नी धक्का खाकर गिर पड़ी, मगर फिर संभली और पांव से तल्ली निकालकर चौधरी के सिर, मुंह, पीठ पर अन्धाधुन्ध जमाने लगी। बंसोर होकर उसे ढकेल दे? उसका यह अपमान! मारती जाती थी और रोती भी जाती थी। चौधरी उसे धक्का देकर—नारी जाति पर बल प्रयोग करके—गच्चा खा चुका था। खड़े-खड़े मार खाने के सिवा इस संकट से बचने की उसके पास और कोई दवा न थी।

पुन्नी का रोना सुनकर होरी भी दौड़ा हुआ आया। पुन्नी ने उसे देखकर और ज़ोर से चिल्लाना शुरू किया। होरी ने समझा, चौधरी ने पुनिया को मारा है। खून ने जोश मारा और अलगौझे की ऊंची बांध को तोड़ता हुआ, सब कुछ अपने अन्दर समेटने के लिए बाहर निकल पड़ा। चौधरी को ज़ोर से एक लात जमाकर बोला—अब अपना भला चाहते हो चौधरी, तो यहां से चले जाओ, नहीं तुम्हारी लहास उठेगी। तुमने अपने को समझा क्या है? तुम्हारी इतनी मजाल कि मेरी बहू पर हाथ उठाओ।

चौधरी कसमें खा-खाकर अपनी सफ़ाई देने लगा। तल्लियों की चोट में उसकी अपराधी आत्मा मौन थी। यह लात उसे निरपराध मिली और उसके फूले हुए गाल आंसुओं से भीग गये। उसने तो बहू को छुआ भी नहीं। क्या वह इतना गंवार है कि महतो के घर की औरतों पर हाथ उठायेगा?

होरी ने अविश्वास करके कहा—आंखों में धूल मत झोंको चौधरी, तुमने कुछ कहा नहीं, तो बहू झूठ-मूठ रोती है? रुपये की गरमी है, तो वह निकाल दी जायेगी। अलग हैं, तो क्या हुआ, है तो एक खून। कोई तिरछी आंख से देखे, तो आंख निकाल लें।

पुन्नी चण्डी बनी हुई थी। गला फाड़कर बोली—तूने मुझे धक्का देकर गिरा नहीं दिया? खा जा अपने बेटे की कसम!

हीरा को भी खबर मिली कि चौधरी और पुनिया में लड़ाई हो रही है। चौधरी ने पुनिया को धक्का दिया। पुनिया ने उसे तल्लियों से पीटा। उसने पुर वहीं छोड़ा और औंगी लिये घटनास्थल की ओर चला। गांव में अपने क्रोध के लिए प्रसिद्ध था। छोटा डील, गठा हुआ शरीर, आंखें कौड़ी की तरह निकल आयी थीं और गर्दन की नसें तन गयी थीं, मगर उसे चौधरी पर क्रोध न था, क्रोध था पुनिया पर। वह क्यों चौधरी से लड़ी? क्यों उसकी इज्जत मिट्टी में मिला दी? बंसोर से लड़ने, झगड़ने का उसे क्या प्रयोजन था? उसे जाकर हीरा से सारा समाचार कह देना चाहिए था। हीरा जैसा उचित समझता, करता। वह उससे लड़ने क्यों गयी? उसका बस होता, तो वह पुनिया को परदे में रखता। पुनिया किसी बड़े से मुंह खोल बातें करे, यह उसे असह्य था। वह खुद जितना उद्दण्ड था, पुनिया को उतना ही शान्त रखना चाहता था। जब भैया ने पन्द्रह रुपये में सौदा कर लिया, तो वह बीच में कूदने वाली कौन?

आते ही उसने पुन्नी का हाथ पकड़ लिया और घसीटता हुआ अलग ले जाकर लगा लातें जमाने—हरामजादी, तू हमारी नाक कटाने पर लगी हुई है! तू छोटे-छोटे आदमियों से लड़ती फिरती है, किसकी पगड़ी नीची होती है, बता? (एक लात और जमाकर) हम तो वहां कलेऊ की बाट देख

रहे हैं, तू यहां लड़ाई ठाने बैठी है। इतनी बेसर्मी? आंख का पानी ऐसा गिर गया? खोदकर गाड़ दूंगा।

पुन्नी हाय-हाय करती जाती थी और कोसती जाती थी—तेरी मिट्टी उठे, तुझे हैजा हो जाय, तुझे मरी आये, देवी मैया तुझे लील जायें, तुझे इन्फ्लुएंजा हो जाय। भगवान् करे, तू कोढ़ी हो जाय। हाथ-पांव कट-कट गिरें।

और गालियां तो हीरा खड़ा-खड़ा सुनता रहा, लेकिन यह पिछली गाली उसे लग गयी। हैजा, मरी आदि में विशेष कष्ट न था। इधर बीमार पड़े, उधर विदा हो गये, लेकिन कोढ़! यह घिनौनी मौत, और उससे भी घिनौना जीवन। वह तिलमिला उठा, दांत पीसता हुआ पुनिया पर झपटा और झोंटे पकड़कर फिर उसका सिर ज़मीन पर रगड़ता हुआ बोला—हाथ-पांव कटकर गिर जायेंगे, तो मैं तुझे लेकर चाटूंगा? तू ही मेरे बाल-बच्चों को पालेगी? तू ही इतनी बड़ी गिरस्ती चलायेगी? तू तो दूसरा भतार करके किनारे खड़ी हो जायेगी।

चौधरी को पुनिया की इस दुर्गति पर दया आ गयी। हीरा को उदारतापूर्वक समझाने लगा—हीरा महतो, अब जाने दो, बहुत हुआ। क्या हुआ, बहू ने मुझे मारा। मैं तो छोटा नहीं हो गया। धन्य भाग कि भगवान् ने यह दिन तो दिखाया।

हीरा ने चौधरी को डांटा—तुम चुप रहो चौधरी, नहीं मेरे क्रोध में पड़ जाओगे, तो बुरा होगा। औरतजात इसी तरह बकती है। आज को तुमसे लड़ गयी, कल को दूसरों से लड़ जायेगी। तुम भलेमानस हो, हंसकर टाल गये, दूसरा तो बरदास न करेगा। कहीं उसने भी हाथ छोड़ दिया, तो कितनी आबरू रह जायेगी, बताओ।

इस ख़याल ने उसके क्रोध को फिर भड़काया। लपका था कि होरी ने दौड़कर पकड़ लिया और उसे पीछे हटाते हुए बोला—अरे, हो तो गया। देख तो लिया दुनिया ने कि बहादुर हो। अब क्या उसे पीसकर पी जाओगे?

हीरा अब भी बड़े भाई का अदब करता था। सीधे-सीधे न लड़ता था। चाहता, तो एक झटके में अपना हाथ छुड़ा लेता, लेकिन इतनी बेअदबी न कर सका। चौधरी की ओर देखकर बोला—अब खड़े क्या ताकते हो? जाकर अपने बांस काटो, मैंने सही कर दिया। पन्द्रह रुपये सैकड़े में तय है।

कहां तो पुन्नी रो रही थी। कहां झमककर उठी और अपना सिर पीटकर बोली—लगा दे घर में आग, मुझे क्या करना है। भाग फूट गया कि तुम जैसे कसाई के पाले पड़ी। लगा दे घर में आग।

उसने कलेऊ की टोकरी वहीं छोड़ दी और घर की ओर चली। हीरा गरजा—वहां कहां जाती है, चल कुएं पर, नहीं खून पी जाऊंगा।

पुनिया के पांव रुक गये। इस नाटक का दूसरा अंक न खेलना चाहती थी। चुपके से टोकरी उठाकर रोती हुई कुएं की ओर चली। हीरा भी पीछे-पीछे चला।

होरी ने कहा—अब फिर मार-धाड़ न करना। इससे औरत बेसरम हो जाती है।

धनिया ने द्वार पर आकर हांक लगायी—तुम वहां खड़े-खड़े क्या तमासा देख रहे हो? कोई तुम्हारी सुनता भी है कि यों ही शिक्षा दे रहे हो। उस दिन इसी बहू ने तुम्हें घूंघट की आड़ में दाढ़ीजार कहा था, भूल गये। बहुरिया होकर पराये मरदों से लड़ेगी, तो डांटी न जायेगी।

होरी द्वार पर आकर नटखटपन के साथ बोला—और जो मैं इसी तरह तुझे मारूं?

'क्या कभी मारा नहीं है, जो मारने की साध बनी हुई है?'

'इतनी बेदरदी से मारता, तो तू घर छोड़कर भाग जाती! पुनिया बड़ी गमखोर है।'

'ओहो! ऐसे ही तो बड़े दरदवाले हो। अभी तक मार का दाग बना हुआ है। हीरा मारता है, तो दुलारता भी है। तुमने खाली मारना सीखा, दुलार करना सीखा ही नहीं। मैं ही ऐसी हूं कि तुम्हारे साथ निबाह हुआ।'

'अच्छा रहने दे, बहुत अपना बखान न कर। तू ही रूठ-रूठकर नैहर भागती थी। जब महीनों

खुशामद करता था, तब जाकर आती थी!'

'जब अपनी गरज सताती थी, तब मनाने जाते थे लाला। मेरे दुलार से नहीं जाते थे।'

'इसी से तो मैं सबसे तेरा बखान करता हूं।'

वैवाहिक जीवन के प्रभात में लालसा अपनी गुलाबी मादकता के साथ उदय होती है और हृदय के सारे आकाश को अपने माधुर्य की सुनहरी किरणों से रञ्जित कर देती है। फिर मध्यान्ह का प्रखर ताप आता है, क्षण-क्षण पर बगूले उठते हैं और पृथ्वी कांपने लगती है। लालसा का सुनहरा आवरण हट जाता है और वास्तविकता अपने नग्न रूप में सामने आ खड़ी होती है। उसके बाद विश्राममय सन्ध्या आती है, शीतल और शान्त, जब हम थके हुए पथिकों की भांति दिन-भर की यात्रा का वृत्तान्त कहते और सुनते हैं, तटस्थ भाव से, मानो हम किसी ऊंचे शिखर पर जा बैठे हैं, जहां नीचे का जन-रव हम तक नहीं पहुंचता।

धनिया ने आंखों में रस भरकर कहा—चलो-चलो, आये बड़े बखान करने वाले। जरा-सा कोई काम बिगड़ जाय, तो गरदन पर सवार हो जाते हो।

होरी ने मीठे उलाहने के साथ कहा—ले, अब यही तेरी बेइन्साफी मुझे अच्छी नहीं लगती धनिया। भोला से पूछ, मैंने उनसे तेरे बारे में क्या कहा था?

धनिया ने बात बदलकर कहा—देखो, गोबर गाय लेकर आता है कि खाली हाथ।

चौधरी ने पसीने में लथ-पथ आकर कहा—महतो, चलकर बांस गिन लो। कल ठेला लाकर उठा ले जाऊंगा।

होरी ने बांस गिनने की ज़रूरत न समझी। चौधरी ऐसा आदमी नहीं है। फिर एकाध बांस वेसी ही काट लेगा, तो क्या। रोज़ ही तो मंगनी बांस कटते रहते हैं। सहालगों में तो मण्डप बनाने के लिए लोग दरजनों बांस काट ले जाते हैं।

चौधरी ने साढ़े सात रुपये निकालकर उसके हाथ में रख दिये। होरी ने गिनकर कहा—और निकालो। हिसाब से ढाई और होते हैं।

चौधरी ने बेमुरौवती से कहा—पन्द्रह रुपये में तय हुए हैं कि नहीं? हीरा महतो ने तुम्हारे सामने पन्द्रह रुपये कहे थे। कहो, तो बुला लाऊं।

'तय तो बीस रुपये में ही हुए थे चौधरी! अब तुम्हारी जीत है, जो चाहो कहो। ढाई रुपये निकलते हैं, तुम दो ही दे दो।'

मगर चौधरी कच्ची गोलियां न खेला था। अब उसे किसका डर? होरी के मुंह में तो ताला पड़ा हुआ था। क्या कहे, माथा ठोककर रह गया। बस, इतना बोला—यह अच्छी बात नहीं है चौधरी, दो रुपये दबाकर राजा न हो जाओगे।

चौधरी तीक्ष्ण स्वर में बोला—और तुम क्या भाइयों के थोड़े से पैसे दबाकर राजा हो जाओगे? ढाई रुपये पर अपना ईमान बिगाड़ रहे थे, उस पर मुझे उपदेस देते हो! अभी परदा खोल दूं, तो सिर नीचा हो जाय।

होरी पर जैसे सैकड़ों जूते पड़ गये। चौधरी तो रुपये सामने ज़मीन पर रखकर चला गया, पर वह नीम के नीचे बैठा बड़ी देर तक पछताता रहा। वह कितना लोभी और स्वार्थी है, इसका उसे आज पता चला। चौधरी ने ढाई रुपये दे दिये होते, तो वह खुशी से कितना फूल उठता। अपनी चालाकी को सराहता कि बैठे-बैठाये ढाई रुपये मिल गये। ठोकर खाकर ही तो हम सावधानी के साथ पग उठाते हैं।

धनिया अन्दर चली गयी थी। बाहर आयी, तो रुपये ज़मीन पर पड़े देखे, गिनकर बोली—और रुपये क्या हुए, दस न चाहिए?

होरी ने लम्बा मुंह बनाकर कहा—हीरा ने पन्द्रह रुपये में दिये, तो मैं क्या करता?

'हीरा पांच रुपये में दे दे। हम नहीं देते इन दामों।'

'वहां मार-पीट हो रही थी। मैं बीच में क्या बोलता?'

होरी ने अपनी पराजय अपने मन में ही डाल ली, जैसे कोई चोरी से आम तोड़ने के लिए पेड़ पर चढ़े और गिर पड़ने पर धूल झाड़ता हुआ उठ खड़ा हो कि कोई देख न ले। जीतकर आप अपनी धोखेबाज़ियों की डींग मार सकते हैं, जीत में सब-कुछ माफ है। हार की लज्जा तो पी जाने की ही वस्तु है।

धनिया पति को फटकारने लगी। ऐसे अवसर उसे बहुत कम मिलते थे। होरी उससे चतुर था, पर आज बाज़ी धनिया के हाथ थी। हाथ मटकाकर बोली—क्यों न हो, भाई ने पन्द्रह रुपये कह दिये, तो तुम कैसे टोकते? अरे राम-राम! लाड़ले भाई का दिल छोटा हो जाता कि नहीं। फिर जब इतना बड़ा अनर्थ हो रहा था कि लाड़ली बहू के गले पर छुरी चल रही थी, तो भला तुम कैसे न बोलते? उस वखत कोई तुम्हारा सरवस लूट लेता, तो भी तुम्हें सुध न होती।

होरी चुपचाप सुनता रहा। मिनका तक नहीं। झुंझलाहट हुई, क्रोध आया, खून खौला, आंख जली, दांत पिसे, लेकिन बोला नहीं। चुपके से कुदाल उठायी और ऊख गोड़ने चला।

धनिया ने कुदाल छीनकर कहा—क्या अभी सबेरा है, जो ऊख गोड़ने चले? सूरज देवता माथे पर आ गये। नहाने-धोने जाओ। रोटी तैयार है।

होरी ने घुन्नाकर कहा—मुझे भूख नहीं है।

धनिया ने जले पर नोन छिड़का—हां, काहे को भूख लगेगी। भाई ने बड़े-बड़े लड्डू खिला दिये हैं न! भगवान् ऐसे सपूत सबको दें।

होरी बिगड़ा। क्रोध अब रस्सियां तुड़ा रहा था—तू आज मार खाने पर लगी हुई है।

धनिया ने नकली विनय का नाटक करके कहा—क्या करूं, तुम दुलार ही इतना करते हो कि मेरा सिर फिर गया है।

'तू घर में रहने देगी कि नहीं?"

'घर तुम्हारा, मालिक तुम, मैं भला कौन होती हूं तुम्हें घर से निकालने वाली?'

होरी आज धनिया से किसी तरह पेश नहीं पा सकता। उसकी अक्ल जैसे कुन्द हो गयी है। इन व्यंग्य-बाणों को रोकने के लिए उसके पास कोई ढाल नहीं है। धीरे से कुदाल रख दी और गमछा लेकर नहाने चला गया। लौटा कोई आध घण्टे में, मगर गोबर अभी तक न आया था। अकेले कैसे भोजन करे? लौंडा वहां जाकर सो रहा। भोला की वह मदमाती छोकरी न है झुनिया। उसके साथ हंसी-दिल्लगी कर रहा होगा। कल भी तो उसके पीछे लगा हुआ था। नहीं गाय दी, तो लौट क्यों नहीं आया। क्या वहां ढई देगा?

धनिया ने कहा—अब खड़े क्या हो? गोबर सांझ को आयेगा।

होरी ने और कुछ न कहा। कहीं धनिया फिर से न कुछ कह बैठे।

भोजन करके नीम की छांह में लेट रहा।

रूपा रोती हुई आयी, नंगे बदन एक लंगोटी लगाये, झबरे बाल इधर-उधर बिखरे हुए। होरी की छाती पर लोट गयी। उसकी बड़ी बहन सोना कहती है—गाय आयेगी, तो उसका गोबर मैं पाथूंगी। रूपा यह नहीं बरदाश्त कर सकती। सोना ऐसी कहां की बड़ी नारी है कि सारा गोबर आप पाथ डाले। रूपा उससे किस बात में कम है? सोना रोटी पकाती है, तो क्या रूपा बरतन नहीं मांजती? सोना पानी लाती है, तो क्या रूपा कुएं पर रस्सी नहीं ले जाती? सोना तो [illegible] पाकर इठलाती जाती चली आती है। रस्सी समेटकर रूपा ही लाती है। गोबर दोनों साथ पाथती है, तो रूपा बकरी चराने नहीं जाती? फिर सोना क्यों अकेली गोबर सहे?

होरी ने उसके भोलेपन पर मुग्ध होकर कहा—नहीं, गाय का गोबर तू पाथना। सोना गाय के पास जाये, तो भगा देना।

रूपा ने पिता के गले में हाथ डालकर कहा—दूध भी मैं ही दुहूंगी।

'हां-हां, तू न दुहेगी, तो और कौन दुहेगा?'

'वह मेरी गाय होगी।'

'हां, सोलहों आने तेरी।'

रूपा प्रसन्न होकर अपनी विजय का शुभ समाचर पराजिता सोना को सुनाने चली गयी। गाय मेरी होगी, उसका दूध मैं दुहूंगी, उसका गोबर मैं पाथूंगी, तुझे कुछ न मिलेगा।

सोना उम्र से किशोरी, देह के गठन में युवती और बुद्धि से बालिका थी, जैसे उसका यौवन उसे आगे खींचता था, बालपन पीछे। कुछ बातों में इतनी चतुर कि ग्रेजुएट युवतियों को पढ़ाये, कुछ बातों में इतनी अल्हड़ कि शिशुओं से भी पीछे। लम्बा, रूखा, किन्तु प्रसन्न मुख, ठोढ़ी नीचे को खिंची हुई, आंखों में एक प्रकार की तृप्ति, न केशों में तेल, न आंखों में काजल, न देह पर कोई आभूषण, जैसे गृहस्थी के भार ने यौवन को दबाकर बौना कर दिया हो।

सिर को एक झटका देकर बोली—जा, तू गोबर पाथ। जब, तू दूध दुहकर रखेगी, तो मैं पी जाऊंगी।

'मैं दूध की हांड़ी ताले में बन्द करके रखूंगी।'

'मैं ताला तोड़कर दूध निकाल लाऊंगी।'

यह कहती हुई वह बाग़ की तरफ़ चल दी। आम गदरा गये थे। हवा के झोंकों से एकाध ज़मीन पर गिर पड़ते थे, लू के मारे चुचके, पीले, लेकिन बाल-वृन्द उन्हें टपके समझकर बाग़ को घेरे रहते थे। रूपा भी बहन के पीछे हो ली। जो काम सोना करे, वह रूपा ज़रूर करेगी। सोना के विवाह की बातचीत हो रही थी, रूपा के विवाह की कोई चर्चा नहीं करता, इसलिए वह स्वयं अपने विवाह के लिए आग्रह करती है। उसका दूल्हा कैसा होगा, क्या-क्या लायेगा, उसे कैसे रखेगा, उसे क्या खिलायेगा, क्या पहनायेगा, इसका वह बड़ा विशद वर्णन करती, जिसे सुनकर कदाचित् कोई बालक उससे विवाह करने पर राज़ी न होता।

सांझ हो रही थी। होरी ऐसा अलसाया कि ऊख गोड़ने न जा सका। बैलों को नांद में लगाया, सानी-खली दी और एक चिलम भरकर पीने लगा। इस फ़सल में सब कुछ खलिहाल में तौल देने पर भी अभी उस पर कोई तीन सौ क़र्ज़ था, जिस पर कोई सौ रुपये सूद के बढ़ते जाते थे। मंगरू साह से आज पांच साल हुए, बैल के लिए साठ रुपये लिये थे, उसमें साठ दे चुका था, पर वह साठ रुपये ज्यों-के-त्यों बने हुए थे। दातादीन पण्डित से तीस रुपये लेकर आलू बोये थे। आलू तो चोर खोद ले गये, और उस तीस के इन तीन बरसों में सौ हो गये थे। दुलारी विधवा सहुआइन थी, जो गांव में नोन, तेल, तमाखू की दुकान रखे हुए थी। बंटवारे के समय उससे चालीस रुपये लेकर भाइयों को देना पड़ा था। उसके भी लगभग सौ रुपये हो गये थे, क्योंकि आने रुपये का ब्याज था। लगान के भी अभी पच्चीस रुपये बाक़ी पड़े हुए थे और दशहरे के दिन शगुन के रुपयों का भी कोई प्रबन्ध करना था। बांसों के रुपये बड़े अच्छे समय पर मिल गये। शगुन की समस्या हल हो जायेगी, लेकिन कौन जाने। यहां तो एक धेला हाथ में आ जाय, तो गांव में शोर मच जाता है, और लेनदार चारों तरफ़ से नोचने लगते हैं। ये पांच रुपये तो वह शगुन में देगा, चाहे कुछ हो जाय, मगर अभी जिन्दगी के दो बड़े-बड़े काम सिर पर सवार थे। गोबर और सोना का विवाह। बहुत हाथ बांधने पर भी तीन सौ से कम खर्च न होंगे। ये तीन सौ किसके घर से आयेंगे? कितना चाहता है कि किसी से एक पैसा कर्ज न ले, जिसका आता है, उसका पाई-पाई चुका दे, लेकिन हर तरह का कष्ट उठाने पर भी गला नहीं छूटता। इसी तरह सूद बढ़ता जायेगा और एक दिन उसका घर-द्वार सब नीलाम हो जायेगा, उसके

वाल-वच्चे निराश्रय होकर भीख मांगते फिरेंगे। होरी जव काम-धन्धे से छुट्टी पाकर चिलम पीने लगता था, तो यह चिन्ता एक काली दीवार की भांति चारों ओर से घेर लेती थी, जिसमें से निकलने की उसे कोई गली न सूझती थी। अगर सन्तोष था, तो यही कि यह विपत्ति अकेले उसी के सिर न थी। प्रायः सभी किसानों का यही हाल था। अधिकांश की दशा तो इससे भी वदतर थी। शोभा और हीरा को उससे अलग हुए अभी कुल तीन साल हुए थे, मगर दोनों पर चार-चार सौ का वोझ लद गया। झींगुर दो हल की खेती करता है। उस पर एक हज़ार से कुछ वेसी ही देना है। जियावन महतो के घर भिखारी भीख भी नहीं पाता, लेकिन करजे का कोई ठिकाना नहीं। यहां कौन वचा है?

सहसा सोना और रूपा दोनों दौड़ी हुई आयीं और एक साथ वोलीं—भैया गाय ला रहे हैं। आगे-आगे गाय, पीछे-पीछे भैया हैं।

रूपा ने पहले गोवर को आते देखा था। यह ख़वर सुनाने की सुर्ख़ रूई उसे मिलनी चाहिए थी। सोना वरावर की हिस्सेदार हुई जाती है, यह उससे कैसे सहा जाता।

उसने आगे वढ़कर कहा—पहले मैंने देखा था। तभी दौड़ी। वहिन ने तो पीछे से देखा।

सोना इस दावे को स्वीकार न कर सकी। वोली—तूने भैया को कहां पहचाना? तू तो कहती थी, कोई गाय भागी आ रही है। मैंने ही कहा, भैया हैं।

दोनों फिर वाग़ की तरफ़ दौड़ीं, गाय का स्वागत करने के लिए।

धनिया और होरी दोनों गाय वांधने का प्रवन्ध करने लगे। होरी वोला—चलो, जल्दी से नांद गाड़ दें।

धनिया के मुख पर जवानी चमक उठी थी—नहीं, पहले थाली में थोड़ा-सा आटा और गुड़ घोलकर रख दें। वेचारी धूप में चली होगी। प्यासी होगी। तुम जाकर नांद गाड़ो, मैं घोलती हूं।

'कहीं एक घण्टी पड़ी थी। उसे ढूंढ़ लें। उसके गले में वांधेंगे।'

'सोना कहां गयी? सहुआइन की दुकान से थोड़ा-सा काला डोरा मंगवा लो, गाय को नजर वहुत लगती है।'

'आज मेरे मन की वड़ी भारी लालसा पूरी हो गयी।'

धनिया अपने हार्दिक उल्लास को दवाये रखना चाहती थी। इतनी वड़ी सम्पदा अपने साथ कोई नयी वाधा न लाये, यह शंका उसके निराश हृदय में कम्पन डाल रही थी। आकाश की ओर देखकर वोली—गाय के आने का आनन्द तो जव है कि उसका पौरा भी अच्छा हो। भगवान् के मन की वात है।

मानो वह भगवान् को भी धोखा देना चाहती थी। भगवान् को भी दिखाना चाहती थी कि इस गाय के आने से उसे इतना आनन्द नहीं हुआ कि ईर्ष्यालु भगवान् सुख का पलड़ा ऊंचा करने के लिए कोई नयी विपत्ति भेज दें।

वह अभी आटा घोल ही रही थी कि गोवर गाय को लिये वालकों के एक जुलूस के साथ द्वार पर आ पहुंचा। होरी दौड़कर गाय के गले से लिपट गया। धनिया ने आटा छोड़ दिया और जल्दी से एक पुरानी साड़ी का काला किनारा फाड़कर गाय के गले में वांध दिया।

होरी श्रद्धा-विह्वल नेत्रों से गाय को देख रहा था, मानो साक्षात् देवीजी ने घर में पदार्पण किया हो। आज भगवान् ने यह दिन दिखाया कि उसका घर गऊ के चरणों से पवित्र हो गया। यह सौभाग्य! न जाने किसके पुण्य-प्रताप से।

धनिया ने भयातुर होकर कहा—खड़े क्या हो, आंगन में नांद गाड़ दो

'आंगन में जगह कहां है?'

'वहुत जगह है।'

'मैं तो वाहर ही गाड़ता हूं।'

'पागल न बनो। गांव का हाल जानकर भी अनजाने बनते हो।'

'अरे! बित्ते-भर के आंगन में गाय कहां बंधेगी भाई?'

'जो बात नहीं जानते, उसमें टांग मत अड़ाया करो। संसार-भर की विद्या तुम्हीं नहीं पढ़े हो।'

होरी सचमुच आपे में न था। गऊ उसके लिए केवल भक्ति और श्रद्धा की वस्तु नहीं, सजीव सम्पत्ति भी थी। वह उससे अपने द्वार की शोभा और अपने घर का गौरव बढ़ाना चाहता था। वह चाहता था, लोग गाय को द्वार पर बंधे देखकर पूछें—यह किसका घर है? लोग कहें—होरी महतो का। तभी लड़की वाले भी उसकी विभूति से प्रभावित होंगे। आंगन में बंधी, तो कौन देखेगा? धनिया इसके विपरीत सशंक थी। वह गाय को सात परदों के अन्दर छिपाकर रखना चाहती थी। अगर गाय आठों पहर कोठरी में रह सकती, तो शायद वह उसे बाहर न निकलने देती। यों हर बात में होरी की जीत होती थी। वह अपने पक्ष पर अड़ जाता था और धनिया को दबना पड़ता था, लेकिन आज धनिया के सामने होरी की एक न चली। धनिया लड़ने पर तैयार हो गयी। गोबर, सोना और रूपा सारा घर होरी के पक्ष में था, पर धनिया ने अकेले सबको परास्त कर दिया। आज उसमें एक विचित्र आत्मविश्वास और होरी में एक विचित्र विनय का उदय हो गया था।

मगर तमाशा कैसे रुक सकता था? गाय डोली में बैठकर तो आयी न थी। कैसे सम्भव था कि गांव में इतनी बड़ी बात हो जाये और तमाशा न लगे? जिसने सुना, सब काम छोड़कर देखने दौड़ा। यह मामूली देशी गऊ नहीं है। भोला के घर से अस्सी रुपये में आयी है। होरी अस्सी रुपये क्या देंगे, पचास-साठ रुपये में लाये होंगे। गांव के इतिहास में पचास-साठ रुपये की गाय का आना भी अभूतपूर्व बात थी। बैल तो पचास रुपये के भी आये, सौ के भी आये, लेकिन गाय के लिए इतनी बड़ी रक़म किसान क्या खा के ख़र्च करेगा? वह तो ग्वालों ही का कलेजा है कि अंजुलियों रुपये गिन आते हैं। गाय क्या है, साक्षात् देवी का रूप है। दर्शकों, आलोचकों का तांता लगा हुआ था, और होरी दौड़-दौड़कर सबका सत्कार कर रहा था। इतना विनम्र, इतना प्रसन्नचित्त वह कभी न था।

सत्तर साल के बूढ़े पण्डित दातादीन लठिया टेकते हुए आये और पोपले मुंह से बोले—कहां हो होरी, तनिक हम भी तुम्हारी गाय देख लें। सुना, बड़ी सुन्दर है।

होरी ने दौड़कर पालागन किया और मन में अभिमानमय उल्लास का आनन्द उठाता हुआ बड़े सम्मान से पण्डितजी को आंगन में ले गया। महाराज ने गऊ को अपनी पुरानी अनुभवी आंखों से देखा, सींग देखे, थन देखा, पुट्ठा देखा और घनी सफ़ेद भौंहों के नीचे छिपी हुई आंखों में जवानी की उमंग भरकर बोले—कोई दोष नहीं है बेटा, बाल, भौंरी सब ठीक। भगवान् चाहेंगे, तो तुम्हारे भाग खुल जायेंगे, ऐसे अच्छे लच्छन हैं कि वाह! बस, रातिब न कम होने पाये। एक-एक बाछा सौ-सौ का होगा।

होरी ने आनन्द के सागर में डुबकियां खाते हुए कहा—सब आपका असीरबाद है, दादा?

दातादीन ने सुरती की पीक थूकते हुए कहा—मेरा असीरबाद नहीं है बेटा, भगवान् की दया है। यह सब प्रभु की दया है। रुपये नगद दिये?

होरी ने बे-पर की उड़ायी। अपने महाजन के सामने भी अपनी समृद्धि-प्रदर्शन का ऐसा अवसर पाकर वह कैसे छोड़े। टके की नयी टोपी सिर पर रखकर जब हम अकड़ने लगते हैं, ज़रा देर के लिए भी सवारी पर बैठकर जब हम आकाश में उड़ने लगते हैं, तो इतनी बड़ी विभूति पाकर क्यों न उसका दिमाग़ आसमान पर चढ़े। बोला—भोला ऐसा भलामानस नहीं है महाराज! नगद गिनाये, पूरे चौकस।

अपने महाजन के सामने यह डींग मारकर होरी ने नादानी तो की थी, पर दातादीन के मुख पर असन्तोष का कोई चिन्ह न दिखाई दिया। इस कथन में कितना सत्य है, यह उनकी उन बूढ़ी आंखों से छिपा न रह सका, जिनमें ज्योति की जगह अनुभव छिपा बैठा था।

प्रसन्न होकर बोले—कोई हरज नहीं बेटा, कोई हरज नहीं। भगवान् सब कल्यान करेंगे। पांच

सेर दूध है इसमें वच्चे के लिए छोड़कर।

धनिया ने तुरन्त टोका—अरे नहीं महाराज, इतना दूध कहां? वुढ़िया तो हो गयी है। फिर यहां रातिव कहां धरा है?

दातादीन ने मर्म-भरी आंखों से देखकर उसकी सतर्कता को स्वीकार किया, मानो कह रहे हों, 'गृहिणी का यही धर्म है, सीटना मरदों का काम है, उन्हें सींटने दो।' फिर रहस्य-भरे स्वर में बोले—वाहर न वांधना, इतना कहे देते हैं।

धनिया ने पति की ओर विजयी आंखों से देखा, मानो कह रही हो—लो, अव तो मानोगे।

दातादीन से वोली—नहीं महाराज, वाहर क्या वांधेंगे, भगवान् दें, तो इसी आंगन में तीन गायें और वंध सकती हैं।

सारा गांव गाय देखने आया। नहीं आये, तो सोभा और हीरा, जो अपने सगे भाई थे। होरी के हृदय में भाइयों के लिए अव भी कोमल स्थान था। वह दोनों आकर देख लेते और प्रसन्न हो जाते, तो उसकी मनोकामना पूरी हो जाती। सांझ हो गयी। दोनों पुर लेकर लौट आये। इसी द्वार से निकले, पर पूछा कुछ नहीं।

होरी ने डरते-डरते धनिया से कहा—न सोभा आया, न हीरा। सुना न होगा?

धनिया वोली—तो यहां कौन उन्हें वुलाने जाता है?

'तू वात तो समझती नहीं, लड़ने के लिए तैयार रहती है। भगवान् ने जव यह दिन दिखाया है, तो हमें सिर झुकाकर चलना चाहिए। आदमी को अपने सगों के मुंह से अपनी भलाई-वुराई सुनने की जितनी लालसा होती है, वाहरवालों के मुंह से नहीं। फिर अपने भाई लाख वुरे हों, हैं तो अपने भाई ही। अपने हिस्से-वखरे के लिए सभी लड़ते हैं, पर इससे खून थोड़े ही वंट जाता है। दोनों को वुलाकर दिखा देना चाहिए। नहीं कहेंगे, गाय लाये, हमसे कहा तक नहीं।'

धनिया ने नाक सिकोड़कर कहा—मैंने तुमसे सौ वार, हजार वार कह दिया, मेरे मुंह पर भाइयों का वखान न किया करो, उनका नाम सुनकर मेरी देह में आग लग जाती है। सारे गांव ने सुना, क्या उन्होंने न सुना होगा? कुछ इतनी दूर भी तो नहीं रहते। सारा गांव देखने आया, उन्हीं के पांवों में मेहंदी लगी हुई थी, मगर आयें कैसे? जलन हो रही होगी कि इसके घर गाय आ गयी। छाती फटी जाती होगी।

दीया-वत्ती का समय आ गया था। धनिया ने जाकर देखा, तो वोतल में मिट्टी का तेल न था। वोतल उठाकर तेल लाने चली गयी। पैसे होते, तो रूपा को भेजती। उधार लाना था, कुछ मुंह देखी कहेगी, कुछ लल्लो-चप्पो करेगी, तभी तो तेल उधार मिलेगा।

होरी ने रूपा को वुलाकर प्यार से गोद में बैठाया और कहा—जरा जाकर देख, हीरा काका आ गये हैं कि नहीं। सोभा काका को भी देखती आना। कहना, दादा ने तुम्हें वुलाया है। न आये, हाथ पकड़कर खींच लाना।

रूपा ठुनककर वोली—छोटी काकी मुझे डांटती है।

'काकी के पास क्या करने जायेगी? फिर सोभा-वहू तो तुझे प्यार करती है।'

'सोभा काका मुझे चिढ़ाते हैं...मैं न कहूंगी।'

'क्या कहते हैं, वता?'

'चिढ़ाते हैं।'

'क्या कहकर चिढ़ाते हैं?'

'कहते हैं, तेरे लिए मूस पकड़ रखा है। ले जा, भूनकर खा ले।'

होरी के अन्तस्तल में गुदगुदी हुई।

'तू कहती नहीं, पहले तुम खा लो, तो मैं खाऊंगी।'

'अम्मां मने करती हैं। कहती हैं, उन लोगों के घर न जाया करो।'

'तू अम्मां की बेटी है कि दादा की?'

रूपा ने उसके गले में हाथ डालकर कहा—अम्मां की, और हंसने लगी।

'तो फिर गोद से उतर जा। आज मैं तुझे अपनी थाली में न खिलाऊंगा।'

घर में एक ही फूल की थाली थी, होरी उसी थाली में खाता था। थाली में खाने का गौरव पाने के लिए रूपा होरी के साथ खाती थी। इस गौरव का परित्याग कैसे करे? हुमककर बोली—अच्छा, तुम्हारी।

'तो फिर मेरा कहना मानेगी कि अम्मां का?'

'तुम्हारा।'

'तो जाकर हीरा और सोभा को खींच ला।'

'और जो अम्मां बिगड़े?'

'अम्मां से कहने कौन जायेगा।'

रूपा कूदती हुई हीरा के घर चली। द्वेष का मायाजाल बड़ी-बड़ी मछलियों को ही फंसाता है। छोटी मछलियां या तो उसमें फंसतीं ही नहीं या तुरन्त निकल जाती हैं। उनके लिए यह घातक जाल क्रीड़ा की वस्तु है, भय की नहीं। भाइयों से होरी की बोलचाल बन्द थी, पर रूपा दोनों घरों में आती-जाती थी। बच्चों से क्या बैर!

लेकिन रूपा घर से निकली ही थी कि धनिया तेल लिये मिल गयी। उसने पूछा—सांझ की बेला कहां जाती है, चल घर। रूपा मां को प्रसन्न करने के प्रलोभन को न रोक सकी।

धनिया ने डांटा—चल घर, किसी को बुलाने नहीं जाना है।

रूपा का हाथ पकड़े हुए वह घर आयी और होरी से बोली—मैंने तुमसे हजार बार कह दिया, मेरी लड़की को किसी के घर न भेजा करो। किसी ने कुछ कर-करा दिया, तो मैं तुम्हें लेकर चाटूंगी? ऐसा ही बड़ा परेम है, तो आप क्यों नहीं जाते? अभी पेट नहीं भरा जान पड़ता है।

होरी नांद जमा रहा था। हाथों में मिट्टी लपेटे हुए अज्ञान का अभिनय करके बोला—किस बात पर बिगड़ती है भाई? यह तो अच्छा नहीं लगता कि अन्धे कूकर की तरह हवा को भूंका करो।

धनिया को कुप्पी में तेल डालना था, इस समय झगड़ा न बढ़ाना चाहती थी। रूपा भी लड़कों में जा मिली।

पहर रात से ज़्यादा जा चुकी थी। नांद गड़ चुकी थी। सानी और खली डाल दी गयी थी। गाय मनमारे उदास बैठी थी, जैसे कोई वधू ससुराल आयी हो। नांद में मुंह तक न डालती थी। होरी और गोबर खाकर आधी-आधी रोटियां उसके लिए लाये, पर उसने सूंघा तक नहीं। मगर यह कोई नयी बात न थी। जानवरों को भी बहुधा घर छूट जाने का दुःख होता है।

होरी बाहर खाट पर बैठकर चिलम पीने लगा, तो फिर भाइयों की याद आयी। नहीं, आज इस शुभ अवसर पर वह भाइयों की उपेक्षा नहीं कर सकता। उसका हृदय यह विभूति पाकर विशाल हो गया था। भाइयों से अलग हो गया है, तो क्या हुआ। उनका दुश्मन तो नहीं है। यही गाय तीन साल पहले आयी होती, तो सभी का उस पर बराबर अधिकार होता। और कल को यही गाय दूध देने लगेगी, तो क्या वह भाइयों के घर दूध न भेजेगा या दही न भेजेगा? ऐसा तो उसका धरम नहीं है। भाई उसका बुरा चेतें, वह क्यों उनका बुरा चेते? अपनी-अपनी करनी, तो अपने-अपने साथ है।

उसने नारियल खाट के पाये से लगाकर रख दिया और हीरा के घर की ओर चला। सोभा का घर भी उधर ही था। दोनों अपने-अपने द्वार पर लेटे हुए थे। काफ़ी अंधेरा था। होरी पर उनमें से किसी की निगाह नहीं पड़ी। दोनों में कुछ बातें हो रही थीं। होरी ठिठक गया और उनकी बातें सुनने लगा। ऐसा आदमी कहां है, जो अपनी चर्चा सुनकर टाल जाये?

चिड़िया पकड़ ली। बोली—तुम्हें भाइयों का डर हो, तो जाकर उनके पैरों पर गिरो। मैं किसी से नहीं डरती। अगर हमारी बढ़ती देखकर किसी की छाती फटती है, तो फट जाय, मुझे परवाह नहीं है।

होरी ने विनीत स्वर में कहा—धीरे-धीरे बोल महरानी! कोई सुने, तो कहे, ये सब इतनी रात गये लड़ रहे हैं! मैं अपने कानों से क्या सुन आया हूं, तू क्या जाने? यहां चरचा हो रही है कि मैंने अलग होते समय रुपये दबा लिये थे और भाइयों को धोखा दिया था, वही रुपये अब निकल रहे हैं।

'हीरा कहता होगा?'

'सारा गांव कह रहा है। हीरा को क्यों बदनाम करूं?'

'सारा गांव नहीं कह रहा है, अकेला हीरा कह रहा है। मैं अभी जाकर पूछती हूं न कि तुम्हारे बाप कितने रुपये छोड़कर मरे थे। दाढ़ीजारों के पीछे हम बरबाद हो गये, सारी जिन्दगी मिट्टी में मिला दी, पाल-पोसकर सण्डा किया, और अब हम बेईमान हैं! मैं कहे देती हूं, अगर गाय घर के बाहर निकली, तो अनर्थ हो जायेगा। रख लिये हमने रुपये, दबा लिये, बीच खेत दबा लिये। डंके की चोट कहती हूं, मैंने हण्डे-भर असर्फियां छिपा लीं। हीरा और सोभा और संसार को जो करना हो, कर ले। क्यों न रुपये रख लें? दो-दो सण्डों का व्याह नहीं किया, गौना नहीं किया?'

होरी सिटपिटा गया। धनिया ने उसके हाथ से पगहिया छीन ली, और गाय को खूंटे से बांधकर द्वार की ओर चली। होरी ने उसे पकड़ना चाहा, पर वह बाहर जा चुकी थी। वहीं सिर थामकर बैठ गया। बाहर उसे पकड़ने की चेष्टा करके वह कोई नाटक नहीं दिखाना चाहता था। धनिया के क्रोध को वह खूब जानता था। बिगड़ती है, तो चण्डी हो जाती है। मारो, काटो, सुनेगी नहीं, लेकिन हीरा भी तो एक ही गुस्सेवर है। कहीं हाथ चला दे, तो परलै हो जा जाय। नहीं, हीरा इतना मूरख नहीं है। मैंने कहां-से-कहां यह आग लगा दी। उसे अपने आप पर क्रोध आने लगा। बात मन में रख लेता, तो क्यों यह टण्टा खड़ा होता। सहसा धनिया का कर्कश स्वर कान में आया। हीरा की गरज भी सुन पड़ी। फिर पुन्नी की पैनी पीक भी कानों में चुभी। सहसा उसे गोबर की याद आयी। बाहर लपककर उसकी खाट देखी। गोबर वहां न था। गजब हो गया। गोबर भी वहां पहुंच गया! अब कुशल नहीं। उसका नया खून है, न जाने क्या कर बैठे, लेकिन होरी वहां कैसे जाय? हीरा कहेगा, आप तो बोलते नहीं, जाकर इस डाइन को लड़ने के लिए भेज दिया। कोलाहल प्रतिक्षण प्रचण्ड होता जाता था। सारे गांव में जाग पड़ गयी। मालूम होता था, कहीं आग लग गयी है, और लोग खाट से उठ-उठ बुझाने दौड़े जा रहे हैं।

इतनी देर तक तो वह ज़ब्त किये बैठा रहा। फिर न रहा गया। धनिया पर क्रोध आया। वह क्यों चढ़कर लड़ने गयी? अपने घर में आदमी न जाने किसको क्या कहता है। जब तक कोई मुंह पर बात न कहे, यही समझना चाहिए कि उसने कुछ नहीं कहा। होरी की कृषक प्रकृति झगड़े से भागती थी। चार बातें सुनकर ग़म खा जाना, इससे कहीं अच्छा है कि आपस में तनाज़ा हो। कहीं मार-पीट हो जाये, तो थाना-पुलिस हो, बंधे-बंधे फिरो, सबकी चिरौरी करो, अदालत की धूल फांको, खेती-बारी जहन्नुम में मिल जाये। उसका हीरा पर तो कोई बस न था, मगर धनिया को तो वह ज़बरदस्ती खींच ला सकता है। बहुत होगा गालियां दे लेगी, एक-दो दिन रूठी रहेगी, थाना-पुलिस की नौबत तो न आयेगी। जाकर हीरा के द्वार पर सबसे दूर द्वार की आड़ में खड़ा हो गया। एक सेनापति की भांति मैदान में आने के पहले परिस्थिति को अच्छी तरह समझ लेना चाहता था। अगर अपनी जीत हो रही है, तो बोलने की कोई जरूरत नहीं, हार हो रही है, तो तुरन्त कूद पड़ेगा। देखा, तो वहां पचासों आदमी जमा हो गये हैं। पण्डित दातादीन, लाला पटेश्वरी, दोनों ठाकुर, जो गांव के करता-धरता थे, सभी पहुंचे हुए हैं। धनिया का पल्ला हलका हो रहा था। उसकी उग्रता जनमत को उसके विरुद्ध किये देती थी। वह रणनीति में कुशल न थी। क्रोध में ऐसी जली-कटी सुना रही थी कि लोगों की सहानुभूति उससे दूर होती जाती थी।

वह गरज रही थी--तू हमें देखकर क्यों जलता है? हमें देखकर क्यों तेरी छाती फटती है? पाल-पोसकर जवान कर दिया, यह उसका इनाम है? हमने न पाला होता, तो आज कहीं भीख मांगते होते। रूख की छांह भी न मिलती।

होरी को ये शब्द ज़रूरत से ज़्यादा कठोर जान पड़े। भाइयों का पालना-पोसना तो उसका धर्म था। उनके हिस्से की जायदाद, तो उसके हाथ में थी। कैसे न पालता-पोसता? दुनिया में कहीं मुंह दिखाने लायक रहता?

हीरा ने जवाब दिया—हम किसी का कुछ नहीं जानते? तेरे घर में कुत्तों की तरह एक टुकड़ा खाते थे और दिन-भर काम करते थे। जाना ही नहीं कि लड़कपन और जवानी कैसी होती है। दिन-दिन भर सूखा गोबर बीना करते थे। उस पर भी तू बिना दस गाली दिये रोटी न देती थी। तेरी जैसी राच्छसिन के हाथ में पड़कर जिन्दगी तलख हो गयी।

धनिया और भी तेज़ हुई—जबान संभाल, नहीं जीभ खींच लूंगी। राच्छसिन होगी तेरी औरत। तू है किस फेर में मूंडी-काटे, टुकड़-खोर, नमक-हराम।

दातादीन ने टोका—इतना कटुवचन क्यों कहती है धनिया? नारी का धरम है कि गम खाये। वह तो उजड्ड है, क्यों उसके मुंह लगती है।

लाला पटेश्वरी पटवारी ने उसका समर्थन किया—बात का जवाब बात है, गाली नहीं। तूने लड़कपन में उसे पाला-पोसा, लेकिन यह क्यों भूल जाती है कि उसकी जायदाद तेरे हाथ में थी?

धनिया ने समझा, सब-के-सब मिलकर मुझे नीचा दिखाना चाहते हैं। चौमुख लड़ाई के लिए तैयार हो गयी—अच्छा, रहने दो लाला! मैं सबको पहचानती हूं। इस गांव में रहते बीस साल हो गये। एक-एक की नस-नस पहचानती हूं। मैं गाली दे रही हूं, वह फूल बरसा रहा है, क्यों?

दुलारी सहुआइन ने आग पर घी डाला—वाकई बड़ी गाल-दराज औरत है भाई! मरद के मुंह लगती है। होरी ही जैसा मरद है कि इसका निबाह होता है। दूसरा मरद होता, तो एक दिन न पटती।

अगर हीरा इस समय ज़रा नरम हो जाता, तो उसकी जीत हो जाती, लेकिन ये गालियां सुनकर आपे से बाहर हो गया। औरों को अपने पक्ष में देखकर वह कुछ शेर हो रहा था। गला फाड़कर बोला—चली जा मेरे द्वार से, नहीं जूतों से बात करूंगा। झोंटा पकड़कर उखाड़ लूंगा। गाली देती है डाइन! बेटे का घमण्ड हो गया है। खून....

पांसा पलट गया। होरी का खून खौल उठा। बारूद में जैसे चिनगारी पड़ गयी हो। आगे आकर बोला—अच्छा बस, अब चुप हो जाओ हीरा, अब नहीं सुना जाता। मैं इस औरत को क्या कहूं? जब मेरी पीठ में धूल लगती है, तो इसी के कारन। न जाने क्यों इससे चुप नहीं रहा जाता।

चारों ओर से हीरा पर बौछार पड़ने लगी। दातादीन ने निर्लज्ज कहा, पटेश्वरी ने गुण्डा बनाया, झिंगुरीसिंह ने शैतान की उपाधि दी। दुलारी सहुआइन ने कपूत कहा। एक उद्दण्ड शब्द ने धनिया का पल्ला हलका कर दिया था। दूसरे उग्र शब्द ने हीरा को गच्चे में डाल दिया। उस पर होरी के संयत वाक्य ने रही-सही कसर भी पूरी कर दी।

हीरा संभल गया। सारा गांव उसके विरुद्ध हो गया। अब चुप रहने में ही उसकी कुशल है। क्रोध के नशे में भी इतना होश उसे बाक़ी था।

धनिया का कलेजा दूना हो गया। होरी से बोली—सुन लो कान खोल के। भाइयों के लिए मरते रहते हो। ये भाई हैं, ऐसे भाई का मुंह न देखे। यह मुझे जूतों से मारेगा। खिला-पिला.

होरी ने डांटा—फिर क्यों बक-बक करने लगी तू? घर क्यों नहीं जाती?

धनिया ज़मीन पर बैठ गयी और आर्त स्वर में बोली—अब तो इसके जूते खा
इसकी मरदूमी देख लूं, कहां है गोबर? अब किस दिन काम आयेगा? तू देख रहा है
जूते मारे जा रहे हैं।

यों विलाप करके उसने अपने क्रोध को भी क्रियाशील बना डाला। आग को फूंक-फूंककर उसमें ज्वाला पैदा कर दी। हीरा पराजित-सा पीछे हट गया। पुन्नी उसका हाथ पकड़कर घर की ओर खींच रही थी। सहसा धनिया ने सिंहनी की भांति झपटकर हीरा को इतने ज़ोर से धक्का दिया कि वह धम से गिर पड़ा और बोली—कहां जाता है, जूते मार, मार जूते, देखूं तेरी मरदूमी।

होरी ने दौड़कर उसका हाथ पकड़ लिया और घसीटता हुआ घर ले चला।

: 5 :

उधर गोबर खाना खाकर अहिराने में पहुंचा। आज झुनिया से उसकी बहुत-सी बातें हुई थीं। जब वह गाय लेकर चला था, तो झुनिया आधे रास्ते तक, उसके साथ आयी थी। गोबर अकेला गाय को कैसे ले जाता? अपरिचित व्यक्ति के साथ जाने से उसे आपत्ति होना स्वाभाविक था। कुछ दूर चलने के बाद झुनिया ने गोबर को मर्मभरी आंखों से देखकर कहा—अब तुम काहे को यहां कभी आओगे?

एक दिन पहले तक गोबर कुमार था। गांव में जितनी युवतियां थीं, वह या तो उसकी बहिनें थीं या भाभियां। बहिनों से तो कोई छेड़छाड़ हो ही क्या सकती थी, भाभियां अलबत्ता कभी-कभी उससे ठिठोली किया करती थीं, लेकिन वह केवल सरल विनोद होता था। उनकी दृष्टि में अभी उसके यौवन में केवल फूल लगे थे। जब तक फल न लग जायें, उस पर ढेले फेंकना व्यर्थ की बात थी। और किसी ओर से प्रोत्साहन न पाकर उसका कौमार्य उसके गले से चिपटा हुआ था। झुनिया का वञ्चित मन, जिसे भाभियों के व्यंग्य और हास-विलास ने और भी लोलुप बना दिया था, उसके कौमार्य ही पर ललचा उठा, और उस कुमार में भी पत्ता खड़कते ही किसी सोये हुए शिकारी जानवर की तरह यौवन जाग उठा।

गोबर ने आवरणहीन रसिकता के साथ कहा—अगर भिक्षुक को भीख मिलने की आसा हो, तो वह दिन-भर और रात-भर दाता के द्वार पर खड़ा रहे।

झुनिया ने कटाक्ष करते कहा—तो यह कहो, तुम भी मतलब के यार हो।

गोबर की धमनियों का रक्त प्रबल हो उठा। बोला—भूखा आदमी अगर हाथ फैलाये, तो उसे क्षमा कर देना चाहिए।

झुनिया और गहरे पानी में उतरी—भिक्षुक जब तक दस द्वारे न जाय, उसका पेट कैसे भरेगा? मैं ऐसे भिक्षुकों को मुंह नहीं लगाती। ऐसे तो गली-गली मिलते हैं। फिर भिक्षुक देता क्या है, असीस। असीसों से तो किसी का पेट नहीं भरता।

मन्दबुद्धि गोबर झुनिया का आशय न समझ सका। झुनिया छोटी-सी थी, तभी से ग्राहकों के घर दूध लेकर जाया करती थी। ससुराल में भी उसे ग्राहकों के घर दूध पहुंचाना पड़ता था। आजकल भी दही बेचने का भार उसी पर था। उसे तरह-तरह के मनुष्यों से साबका पड़ चुका था। दो-चार रुपये उसके हाथ लग जाते थे, घड़ी-भर के लिए मनोरंजन भी हो जाता था, मगर यह आनन्द जैसे मंगनी की चीज़ हो। उसमें टिकाव न था, समर्पण न था, अधिकार न था। वह ऐसा प्रेम चाहती थी, जिसके लिए वह जिये और मरे, जिस पर वह अपने को समर्पित कर दे। वह केवल जुगनू की चमक नहीं, दीपक का स्थायी प्रकाश चाहती थी। वह एक गृहस्थ की बालिका थी, जिसके गृहिणीत्व को रसिकों की लगावटबाज़ियों ने कुचल नहीं पाया था।

गोबर ने कामना से उद्दीप्त मुख से कहा—भिक्षुक को एक ही द्वार पर भरपेट मिल जाये, तो क्यों द्वार-द्वार घूमे?

झुनिया ने सदय भाव से उसकी ओर ताका। कितना भोला है, कुछ समझता ही नहीं।

'भिक्षुक को एक द्वार पर भरपेट कहां मिलता है? उसे तो चुटकी ही मिलेगी। सर्वस तो तभी पाओगे, जव अपना सर्वस दोगे।'

'मेरे पास क्या है झुनिया?'

'तुम्हारे पास कुछ नहीं है? मैं तो समझती हूं, मेरे लिए तुम्हारे पास जो कुछ है, वह वड़े-वड़े लखपतियों के पास नहीं है। तुम मुझसे भीख न मांगकर मुझे मोल ले सकते हो।'

गोवर उसे चकित नेत्रों से देखने लगा।

झुनिया ने फिर कहा—और जानते हो, दाम क्या देना होगा? मेरा होकर रहना पड़ेगा। फिर किसी के सामने हाथ फैलाते देखूंगी, तो घर से निकाल दूंगी।

गोवर को जैसे अंधेरे में टटोलते हुए इच्छित वस्तु मिल गयी। एक विचित्र भयमिश्रित आनन्द से उसका रोम-रोंम पुलकित हो उठा। लेकिन यह कैसे होगा? झुनिया को रख ले, तो रखेली को लेकर घर में रहेगा कैसे? विरादरी का झञ्झट जो है। सारा गांव कांव-कांव करने लगेगा। सभी दुश्मन हो जायेंगे। अम्मां तो इसे घर में घुसने भी न देगी। लेकिन जव स्त्री होकर यह नहीं डरती, तो पुरुप होकर वह क्यों डरे? वहुत होगा, लोग उसे अलग कर देंगे। वह अलग ही रहेगा। झुनिया जैसी औरत गांव में दूसरी कौन है? कितनी समझदारी की वातें करती है? क्या जानती नहीं कि मैं उसके योग नहीं हूं? फिर भी मुझसे प्रेम करती है। मेरी होने को राजी है। गांववाले निकाल देंगे, तो क्या संसार में दूसरा गांव ही नहीं है? और गांव क्यों छोड़े? मातादीन ने चमारिन वैठा ली, तो किसी ने क्या कर लिया। दातादीन दांत कटकटाकर रह गये। मातादीन ने इतना जरूर किया कि अपना धरम वचा लिया। अव भी विना असनान-पूजा किये मुंह में पानी नहीं डालते। दोनों जून अपना भोजन आप पकाते हैं और अव तो अलग भोजन नहीं पकाते। दातादीन और वह साथ वैठकर खाते हैं। झिंगुरीसिंह ने वाम्हनी रख ली, उनका किसी ने क्या कर लिया? उनका जितना आदर-मान तव था, उतना आज भी है, वल्कि और वढ़ गया है। पहले नौकरी खोजते फिरते थे। अव उसके रुपये से महाजन वन वैठे। ठकुराई का रोव तो था ही, महाजनी का रोव भी जम गया। मगर फिर खयाल आया, कहीं झुनिया दिल्लगी न कर रही हो। पहले इसकी ओर से निश्चिन्त हो जाना आवश्यक था।

उसने पूछा—मन से कहती हो झूना कि खाली लालच दे रही हो? मैं तो तुम्हारा हो चुका, लेकिन तुम भी हो जाओगी?

'तुम मेरे हो चुके, कैसे जानूं?'

'तुम जान भी चाहो, तो दे दूं।'

'जान देने का अरथ भी समझते हो?'

'तुम समझा दो न।'

'जान देने का अरथ है, साथ रहकर निवाह करना। एक वार हाथ पकड़कर उमिर-भर निवाह करते रहना। चाहे दुनिया कुछ कहे, चाहे मां-वाप, भाई-वन्द, घर-द्वार सव कुछ छोड़ना पड़े। मुंह से जान देने वाले वहुत देख चुकी। भौंरों की भांति फूल का रस लेकर उड़ जाते हैं। तुम भी वैसे ही न उड़ जाओगे?'

गोवर के एक हाथ में गाय की पगहिया थी। दूसरे हाथ से झुनिया का हाथ पकड़ लिया। जैसे विजली के तार पर हाथ लग गया हो। सारी देह यौवन के पहले स्पर्श से कांप उठी। कितनी मुलायम, गुदगुदी, कोमल कलाई!

झुनिया ने उसका हाथ हटाया नहीं, मानो इस स्पर्श का उसके लिए कोई महत्त्व ही न हो। फिर एक क्षण के वाद गम्भीर भाव से वोली—आज तुमने मेरा हाथ पकड़ा है, याद र

'खूव याद रखूंगा झूना, और मरते दम तक निवाहूंगा।'

झुनिया अविश्वास-भरी मुस्कान से वोली—इसी तरह तो सव कहते हैं।

मीठे, चिकने शब्दों में। अगर मन में कपट हो, तो मुझे बता दो। सचेत हो जाऊं। ऐसों को मन नहीं देती। उनसे तो खाली हंस-बोल लेने का नाता रखती हूं। बरसों से दूध लेकर बाजार जाती हूं। एक-से-एक बाबू, महाजन, ठाकुर, वकील, अमले, अफसर अपना रसियापन दिखाकर मुझे फंसा लेना चाहते हैं। कोई छाती पर हाथ रखकर कहता है झुनिया, तरसा मत, कोई मुझे रसीली, नसीली चितवन से घूरता है, मानो मारे प्रेम के बेहोश हो गया है, कोई रुपये दिखाता है, कोई गहने। सब मेरी गुलामी करने को तैयार रहते हैं, उमिर-भर, बल्कि उस जनम में भी, लेकिन मैं उन सबों की नस पहचानती हूं। सब-के-सब भौंरे, रस लेकर उड़ जानेवाले। मैं भी उन्हें ललचाती हूं। तिरछी नजरों से देखती हूं, मुसकराती हूं, वह मुझे गधी बनाते हैं, मैं उन्हें उल्लू बनाती हूं। मैं मर जाऊं, तो उनकी आंखों में आंसू न आयेगा। वह मर जायें, तो मैं कहूंगी, अच्छा हुआ, निगोड़ा मर गया। मैं तो जिसकी हो जाऊंगी, उसकी जनम-भर के लिए हो जाऊंगी, सुख में, दुःख में, सम्पत में, विपत में उसके साथ रहूंगी। हरजाई नहीं हूं कि सबसे हंसती-बोलती फिरूं। न रुपये की भूखी हूं, न गहने-कपड़े की। बस, भले आदमी का संग चाहती हूं, जो मुझे अपना समझे और जिसे मैं अपना समझूं। एक पण्डितजी बहुत तिलक-मुद्रा लगाते हैं। आध सेर दूध लेते हैं। एक दिन उनकी घरवाली कहीं नेवते में गयी थी। मुझे क्या मालूम? और दिनों की तरह दूध लिये भीतर चली गयी। वहां पुकारती हूं, बहूजी, बहूजी। कोई बोलता ही नहीं। इतने में देखती हूं तो पण्डितजी बाहर के किवाड़ बन्द किये चले आ रहे हैं। मैं समझ गयी, इसकी नीयत खराब है। मैंने डांटकर पूछा—तुमने किवाड़ क्यों बन्द कर लिये? क्या बहूजी कहीं गयी हैं? घर में सन्नाटा क्यों है?

उसने कहा—वह एक नेवते में गयी है, और मेरी ओर दो पग और बढ़ आया।

मैंने कहा—तुम्हें दूध लेना हो, तो लो, नहीं तो मैं जाती हूं। बोला—आज तो तुम यहां से न जाने पाओगी झूनी रानी! रोज-रोज कलेजे पर छुरी चलाकर भाग जाती हो, आज मेरे हाथ से न बचोगी। तुमसे सच कहती हूं गोबर, मेरे रोयें खड़े हो गये।

गोबर आवेश में बोला—मैं बच्चा को देख पाऊं, तो खोदकर जमीन में गाड़ दूं। खून चूस लूं। तुम मुझे दिखा तो देना।

'सुनो तो, ऐसों का मुंह तोड़ने के लिए मैं ही काफी हूं। मेरी छाती धक-धक करने लगी। यह कुछ बदमासी कर बैठे, तो क्या करूंगी। कोई चिल्लाना भी तो न सुनेगा, लेकिन मन में यह निश्चय कर लिया था कि मेरी देह छुई, तो दूध की भरी हांड़ी उसके मुंह पर पटक दूंगी। बला से चार-पांच सेर दूध जायेगा, बच्चा को याद तो हो जायेगी। कलेजा मजबूत करके बोली—इस फेर में न रहना पण्डितजी! मैं अहीर की लड़की हूं। मूंछ का एक-एक बाल नुचवा लूंगी। यही लिखा है तुम्हारे पोथी-पत्रे में कि दूसरों की बहू-बेटी को अपने घर में बन्द करके बेइज्जत करो। इसीलिए तिलक-मुद्रा का जाल बिछाये बैठे हो? लगा हाथ जोड़ने, पैरों पड़ने—एक प्रेमी का मन रख दोगी, तो तुम्हारा क्या बिगड़ जायेगा झूना रानी? कभी-कभी गरीबों पर दया किया करो, नहीं भगवान् पूछेंगे, मैंने तुम्हें इतना रूपधन दिया था, तुमने उससे एक ब्राह्मण का उपकार भी नहीं किया, तो क्या जवाब दोगी? बोले, मैं विप्र हूं, रुपये-पैसे का दान तो रोज ही पाता हूं। आज रूप का दान दे दो।

मैंने यों ही उसका मन परखने को कह दिया। मैं पचास रुपये लूंगी। सच कहती हूं गोबर, तुरन्त कोठरी में गया और दस-दस के पांच नोट निकालकर मेरे हाथों में देने लगा और जब मैंने नोट जमीन पर गिरा दिये और द्वार की ओर चली, तो उसने मेरा हाथ पकड़ लिया। मैं तो पहले ही से तैयार थी। हांड़ी उसके मुंह पर दे मारी। सिर से पांव तक सराबोर हो गया। चोट भी खूब लगी। सिर पकड़कर बैठ गया और लगा हाय-हाय करने। मैंने देखा, अब यह कुछ नहीं कर सकता, तो पीठ में दो लातें जमा दीं और किवाड़ खोलकर भागी।

गोबर ठट्ठा मारकर बोला—बहुत अच्छा किया तुमने। दूध से नहा गया होगा। तिलक-मुद्रा भी

धुल गयी होगी। मूंछें भी क्यों न उखाड़ लीं?

'दूसरे दिन मैं फिर उसके घर गयी। उसकी घरवाली आ गयी थी। अपनी वैठक में सर में पट्टी वांधे पड़ा था। मैंने कहा—कहो, तो कल की तुम्हारी करतूत खोल दूं पण्डित? लगा हाथ जोड़ने। मैंने कहा—अच्छा थूककर चाटो, तो छोड़ दूं। सिर जमीन पर रगड़कर कहने लगा। अव मेरी इज्जत तुम्हारे हाथ है झूना, यही समझ लो कि पण्डिताइन मुझे जीता न छोड़ेगी। मुझे भी उस पर दया आ गयी।'

गोवर को उसकी दया वुरी लगी—यह तुमने क्या किया? उसकी औरत से जाकर कह क्यों नहीं दिया? जूतों से पीटती। ऐसे पाखण्डियों पर दया न करनी चाहिए। तुम मुझे कल उसकी सूरत दिखा दो, फिर देखना, कैसी मरम्मत करता हूं।

झुनिया ने उसके अर्द्ध-विकसित यौवन को देखकर कहा—तुम उसे न पाओगे। खासा देव है। मुफ्त का माल उड़ाता है कि नहीं?

गोवर अपने यौवन का तिरस्कार कैसे सहता? डींग मारकर वोला—मोटे होने से क्या होता है! यहां फौलाद की हड्डियां हैं। तीन सौ डण्ड रोज मारता हूं। दूध-घी नहीं मिलता, नहीं अव तक सीना यों निकल आया होता।

यह कहकर उसने छाती फैलाकर दिखायी।

झुनिया ने आश्वस्त आंखों से देखा—अच्छा, कभी दिखा दूंगी। लेकिन वहां तो सभी एक-से हैं, तुम किस-किस की मरम्मत करोगे? न जाने मरदों की क्या आदत है कि जहां कोई जवान, सुन्दर औरत देखी, वस, लगे घूरने, छाती पीटने और यह जो वड़े आदमी कहलाते हैं, ये तो निरे लम्पट होते हैं। फिर मैं तो कोई सुन्दरी नहीं हूं।

गोवर ने आपत्ति की—तुम? तुम्हें देखकर तो यही जी चाहता है कि कलेजे में विठा लें।

झुनिया ने उसकी पीठ में हलका-सा घूंसा जमाया—लगे औरों की तरह तुम भी चापलूसी करने। मैं जो कुछ हूं, वह मैं जानती हूं। मगर इन लोगों को तो जवान मिल जाये घड़ी-भर मन वहलाने को, और क्या चाहिए। गुन तो आदमी उसमें देखता है, जिसके साथ जनम-भर निवाह करना हो। सुनती भी हूं और देखती भी हूं। आजकल वड़े घरों की विचित्र लीला है। जिस मुहल्ले में मेरी ससुराल है, उसी में गपडू नाम के कासमीरी रहते थे। वड़े भारी आदमी थे। उनके यहां पांच सेर दूध लगता था। उसकी तीन लड़कियां थीं। कोई वीस-वीस, पच्चीस-पच्चीस की होंगी। एक-से-एक सुन्दर। तीनों वड़े कालेज में पढ़ने जाती थीं। एक साइत कालिज में पढ़ाती भी थी। तीन सौ का महीना पाती थी। सितार वह सव वजावें, हरमुनियां वह सव वजावें, नाचें वह, गावें वह, लेकिन व्याह कोई न करती थी। राम जाने वह किसी मरद को पसन्द नहीं करती थीं कि मरद उन्हीं को पसन्द नहीं करता था। एक वार मैंने वड़ी वीवी से पूछा, तो हंसकर वोली—हम लोग यह रोग नहीं पालते, मगर भीतर-ही-भीतर खूव गुलछर्रे उड़ाती थीं। जव देखूं, दो-चार लौंडे उनको घेरे हुए हैं। जो सवसे वड़ी थी, वह तो कोट-पतलून पहनकर घोड़े पर सवार होकर मर्दों के साथ सैर करने जाती थी। सारे शहर में उनकी लीला मशहूर थी। गपडू वावू सिर नीचा किये, जैसे मुंह में कालिख-सी लगाये रहते थे। लड़कियों को डांटते थे, समझाते थे, पर सव-की-सव खुल्लमखुल्ला कहती थीं—तुमको हमारे वीच में वोलने का कुछ मजाल नहीं है। हम अपने मन की रानी हैं, जो हमारी इच्छा होगी, वह हम करें। वेचारा वाप जवान-जहान लड़कियों से क्या वोले? मारने-वांधने से रहा, डांटने-डपटने [illegible] लेकिन भाई वड़े आदमियों की वातें कौन चलाये? वह जो कुछ करें, सव ठीक है। उन्हें [illegible] और पंचायत का भी डर नहीं। मेरी समझ में तो यही नहीं आता कि किसी का रोज-[illegible] वदल जाता है? क्या आदमी गाय-वकरी से गया-वीता हो गया है? लेकिन किसी [illegible] भाई। मन को जैसा वनाओ, वैसा वनता है। ऐसों को भी देखती हूं, जिन्हें रोज-[illegible]

बाद कभी-कभी मुंह का सवाद बदलने के लिए हलवा-पूरी भी चाहिए। और ऐसों को भी देखती हूं, जिन्हें घर की रोटी-दाल देखकर ज्वर आता है। कुछ बेचारियां ऐसी भी हैं, जो अपनी रोटी-दाल में ही मगन रहती हैं। हलवा-पूरी से उन्हें कोई मतलब नहीं। मेरी दोनों भावजों ही को देखो। हमारे भाई काने-कुबड़े नहीं हैं, दस जवानों में एक जवान हैं, लेकिन भावजों को नहीं भाते। उन्हें तो वह चाहिए, जो सोने की बालियां बनवाये, महीन साड़ियां लाये, रोज चाट खिलाये। बालियां और मिठाइयां मुझे भी कम अच्छी नहीं लगतीं, लेकिन जो कहो कि इसके लिए अपनी लाज बेचती फिरूं, तो भगवान् इससे बचाये। एक के साथ मोटा-झोटा खा-पहनकर उमिर काट देना। बस, अपना तो यही राग है। बहुत करके तो मरद ही औरतों को बिगाड़ते हैं। जब मरद इधर-उधर ताक-झांक करेगा, तो औरत भी आंख लड़ायेगी। मरद दूसरी औरतों के पीछे दौड़ेगा, तो औरत भी जरूर मरदों के पीछे दौड़ेगी। मरद का हरजाईपन औरत को भी उतना ही बुरा लगता है, जितना औरत का मरद को। यही समझ लो। मैंने तो अपने आदमी से साफ-साफ कह दिया था, अगर तुम इधर-उधर लपके, तो मेरी भी जो इच्छा होगी, वह करूंगी। यह चाहो कि तुम तो अपने मन की करो और औरत को मार के डर से अपने काबू में रखो, तो यह न होगा। तुम खुले-खजाने करते हो, वह छिपकर करेगी। तुम उसे जलाकर सुखी नहीं रह सकते।

गोबर के लिए यह एक नयी दुनिया की बातें थीं। तन्मय होकर सुन रहा था। कभी-कभी तो आप-ही-आप उसके पांव रुक जाते, फिर सचेत होकर चलने लगता। झुनिया ने पहले अपने रूप से मोहित किया था। आज उसने अपने ज्ञान और अनुभव से भरी बातों और अपने सतीत्व के बखान से मुग्ध कर लिया। ऐसी रूप, गुण, ज्ञान की आगरी उसे मिल जाये, तो धन्य भाग। फिर वह क्यों पंचायत और बिरादरी से डरे?

झुनिया ने जब देख लिया कि उसका रंग गहरा जम गया, तो छाती पर हाथ रखकर जीभ दांत से काटती हुई बोली—अरे, यह तो तुम्हारा गांव आ गया। तुम भी बड़े मुरहे हो, मुझसे कहा भी नहीं कि लौट जाओ।

यह कहकर वह लौट पड़ी।

गोबर ने आग्रह करके कहा—एक छन के लिए मेरे घर क्यों नहीं चली चलतीं? अम्मां भी तो देख लें।

झुनिया ने लज्जा से आंखें चुराकर कहा—तुम्हारे घर यों न जाऊंगी। मुझे तो यही अचरज होता है कि मैं इतनी दूर कैसे आ गयी! अच्छा, बताओ, अब कब आओगे? रात-भर मेरे द्वार पर अच्छी संगत होगी। चले आना, मैं अपने पिछवाड़े मिलूंगी।

'और जो न मिली?'

'तो लौट जाना।'

'तो फिर मैं न आऊंगा।'

'आना पड़ेगा, नहीं कहे देती हूं।'

'तुम भी वचन दो कि मिलोगी?'

'मैं वचन नहीं देती।'

'तो मैं भी नहीं आता।'

'मेरी बला से।'

झुनिया अंगूठा दिखाकर चल दी। प्रथम मिलन में ही दोनों एक-दूसरे पर अपना-अपना अधिकार जमा चुके थे। झुनिया जानती थी, वह आयेगा, कैसे न आयेगा? गोबर जानता था, वह मिलेगी, कैसे न मिलेगी?

गोबर जब अकेला गाय को हांकता हुआ चला, तो ऐसा लगता था, मानो वह स्वर्ग से गिर पड़ा है।

जेठ की उदास और गरम सन्ध्या सेमरी की सड़कों और गलियों में पानी के छिड़काव से शीतल और प्रसन्न हो रही थी। मण्डप के चारों तरफ़ फूलों और पौधों के गमले सजा दिये गये थे और बिजली के पंखे चल रहे थे। रायसाहब अपने कारखाने में बिजली बनवा लेते थे। उनके सिपाही वर्दियां डाटे, नीले साफ़े बांधे, जनता पर रोब जमाते फिरते थे। नौकर उजले कुरते पहने और केसरिया पाग बांधे, मेहमानों और मुखियों का आदर-सत्कार कर रहे थे। उसी वक़्त एक मोटर सिंहद्वार के सामने आकर रुकी और उसमें से तीन महानुभाव उतरे। वह जो खद्दर का कुरता और चप्पल पहने हुए हैं, उनका नाम पण्डित ओंकारनाथ है। आप दैनिक-पत्र 'बिजली' के यशस्वी सम्पादक हैं, जिन्हें देश-चिन्ता ने घुला डाला है। दूसरे महाशय जो कोट-पैंट में हैं, वह हैं तो वकील, पर वकालत न चलने के कारण एक बीमा कम्पनी की दलाली करते हैं और ताल्लुक़ेदारों को महाजनों और बैंकों से क़र्ज़ दिलाने में वकालत से कहीं ज़्यादा कमाई करते हैं। इनका नाम है श्यामबिहारी तंखा, और तीसरे सज्जन जो रेशमी अचकन और तंग पैजामा पहने हुए हैं, मिस्टर बी. मेहता, यूनिवर्सिटी में दर्शनशास्त्र के अध्यापक हैं। ये तीनों सज्जन रायसाहब के सहपाठियों में हैं और शगुन के उत्सव पर निमन्त्रित हुए हैं। आज सारे इलाक़े के असामी आयेंगे और शगुन के रुपये भेंट करेंगे। रात को धनुष-यज्ञ होगा और मेहमानों की दावत होगी। होरी ने पांच रुपये शगुन के दिये हैं और गुलाबी मिरजई पहने, गुलाबी पगड़ी बांधे, घुटने तक कछनी काछे, हाथ में एक खुरपी लिये और मुख पर पाउडर लगवाये, राजा जनक का माली बन गया है और गुरूर से इतना फूल उठा है, मानो यह सारा उत्सव उसी के पुरुषार्थ से हो रहा है।

रायसाहब ने मेहमानों का स्वागत किया। दोहरे बदन के ऊंचे आदमी थे, गठा हुआ शरीर, तेजस्वी चेहरा, ऊंचा माथा, गोरा रंग, जिस पर शरबती रेशमी चादर खूब खिल रही थी।

पण्डित ओंकारनाथ ने पूछा—अबकी कौन-सा नाटक खेलने का विचार है? मेरे रस की तो यही वस्तु है।

रायसाहब ने तीनों सज्जनों को अपनी रावटी के सामने कुर्सियों पर बिठाते हुए कहा—पहले तो धनुष-यज्ञ होगा, उसके बाद एक प्रहसन। नाटक कोई अच्छा न मिला। कोई तो इतना लम्बा कि शायद पांच घण्टों में भी ख़त्म न हो और इतना क्लिष्ट कि शायद यहां एक व्यक्ति भी उसका अर्थ न समझे। आख़िर मैंने स्वयं एक प्रहसन लिख डाला, जो दो घण्टों में पूरा हो जायेगा।

ओंकारनाथ को रायसाहब की रचना-शक्ति में बहुत सन्देह था। उनका ख़याल था कि प्रतिभा तो ग़रीबी ही में चमकती है दीपक की भांति, जो अंधेरे में ही अपना प्रकाश दिखाता है। उपेक्षा के साथ, जिसे छिपाने की भी उन्होंने चेष्टा नहीं की, पण्डित ओंकारनाथ ने मुंह फेर लिया।

मिस्टर तंखा इन बेमतलब की बातों में न पड़ना चाहते थे। फिर भी रायसाहब को दिखा देना चाहते थे कि इस विषय में उन्हें कुछ बोलने का अधिकार है। बोले—नाटक कोई भी अच्छा हो सकता है, अगर उसके अभिनेता अच्छे हों। अच्छे-से-अच्छा नाटक बुरे अभिनेताओं के हाथ में पड़कर बुरा हो सकता है। जब तक स्टेज पर शिक्षित अभिनेत्रियां नहीं आतीं, हमारी नाट्य-कला का उद्धार नहीं हो सकता। अबकी तो आपने कौंसिल में प्रश्नों की धूम मचा दी। मैं तो दावे के साथ कह सकता हूं कि किसी मेम्बर का रिकार्ड इतना शानदार नहीं है।

कृषकों के शुभेच्छु हैं, उन्हें तरह-तरह की रिआयत देना चाहते हैं, ज़मींदारों के अधिकार छीन लेना चाहते हैं, बल्कि उन्हें आप समाज का शाप कहते हैं। फिर भी ज़मींदार हैं, वैसे ही ज़मींदार जैसे हज़ारों और ज़मींदार हैं। अगर आपकी धारणा है कि कृषकों के साथ रिआयत होनी चाहिए, तो पहले आप खुद शुरू करें। काश्तकारों को बग़ैर नज़राने लिये पट्टे लिख दें, बेगार बन्द कर दें, इज़ाफ़ा लगान को तिलाञ्जलि दे दें, चरावर ज़मीन छोड़ दें। मुझे उन लोगों से ज़रा भी हमदर्दी नहीं है, जो बातें तो करते हैं कम्यूनिस्टों की-सी, मगर जीवन है रईसों का-सा, उतना ही विलासमय, उतना ही स्वार्थ से भरा हुआ।

रायसाहब को आघात पहुंचा। वकील साहब के माथे पर बल पड़ गये और सम्पादकजी के मुंह में जैसे कालिख लग गयी। वह खुद समष्टिवाद के पुजारी थे, पर सीधे घर में आग न लगाना चाहते थे। तंखा ने रायसाहब की वकालत की—मैं समझता हूं कि रायसाहब का अपने असामियों के साथ जितना अच्छा व्यवहार है, अगर सभी ज़मींदार वैसे ही हो जायें, तो यह प्रश्न ही न रहे।

मेहता ने हथौड़े की दूसरी चोट जमायी—मानता हूं, आपका अपने असामियों के साथ बहुत अच्छा बर्ताव है, मगर प्रश्न यह है कि उसमें स्वार्थ है या नहीं? इसका एक कारण क्या यह नहीं हो सकता कि मद्धिम आंच में भोजन स्वादिष्ट पकता है? गुड़ से मारने वाला ज़हर से मारने वाले की अपेक्षा कहीं सफल हो सकता है। मैं तो केवल इतना जानता हूं, हम या तो साम्यवादी हैं या नहीं हैं। हैं, तो उसका व्यवहार करें, नहीं हैं, तो बकना छोड़ दें। मैं नक़ली ज़िन्दगी का विरोधी हूं। अगर मांस खाना अच्छा समझते हो, तो खुलकर खाओ, बुरा समझते हो, तो मत खाओ, यह मेरी समझ में आता है, लेकिन अच्छा समझना और छिपकर खाना, यह मेरी समझ में नहीं आता। मैं तो इसे कायरता भी कहता हूं और धूर्तता भी, जो वास्तव में एक है।

रायसाहब सभा-चतुर आदमी थे। अपमान और आघात को धैर्य और उदारता से सहने का उन्हें अभ्यास था। कुछ असमञ्जस में पड़े हुए बोले—आपका विचार बिलकुल ठीक है मेहताजी! आप जानते हैं, मैं आपकी साफ़गोई का कितना आदर करता हूं, लेकिन आप यह भूल जाते हैं कि अन्य यात्राओं की भांति विचारों की यात्रा में भी पड़ाव होते हैं, और आप एक पड़ाव को छोड़कर दूसरे पड़ाव तक नहीं जा सकते। मानव-जीवन का इतिहास इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। मैं उस वातावरण में पला हूं, जहां राजा ईश्वर है और ज़मींदार ईश्वर का मन्त्री। मेरे स्वर्गवासी पिता असामियों पर इतनी दया करते थे कि पाले या सूखे में कभी आधा और कभी पूरा लगान मुआफ़ कर देते थे। अपने बखार से अनाज निकालकर असामियों को खिला देते थे। घर के गहने बेचकर कन्याओं के विवाह में मदद देते थे, मगर उसी वक्त तक, जब तक प्रजा उनको सरकार और धर्मावतार कहती रहे, उन्हें अपना देवता समझकर उनकी पूजा करती रहे। प्रजा का पालन उनका सनातन धर्म था, लेकिन अधिकार के नाम पर वह कौड़ी का एक दांत भी फोड़कर देना न चाहते थे। मैं उसी वातावरण में पला हूं, और मुझे गर्व है कि मैं व्यवहार में चाहे जो कुछ करूं, विचारों में उनसे आगे बढ़ गया हूं और यह मानने लग गया हूं कि जब तक किसानों को ये रिआयतें अधिकार के रूप में न मिलेंगी, केवल सद्भावना के आधार पर उनकी दशा सुधर नहीं सकती। स्वेच्छा अगर अपना स्वार्थ छोड़ दे, तो अपवाद है। मैं खुद सद्भावना करते हुए भी स्वार्थ नहीं छोड़ सकता और चाहता हूं कि हमारे गर्व को शासन और नीति के बल से अपना स्वार्थ छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया जाये। इसे आप कायरता कहेंगे, मैं इसे विवशता कहता हूं। मैं इसे स्वीकार करता हूं कि किसी को भी दूसरे के श्रम पर मोटे होने का अधिकार नहीं है। उपजीवी होना घोर लज्जा की बात है। कर्म करना प्राणिमात्र का धर्म है। समाज की ऐसी व्यवस्था, जिसमें कुछ लोग मौज करें और अधिक लोग पिसें और खपें, कभी सुखद नहीं हो सकती। पूंजी और शिक्षा, जिसे मैं पूंजी ही का एक रूप समझता हूं, इनका क़िला जितनी जल्द टूट जाये, उतना ही अच्छा है। जिन्हें पेट की रोटी मयस्सर नहीं, उनके अफ़सर और नियोजक

दस-दस, पांच-पांच हज़ार फटकारें, यह हास्यास्पद है और लज्जास्पद भी। इस व्यवस्था ने हम ज़मींदारों में कितनी विलासिता, कितना दुराचार, कितनी पराधीनता और कितनी निर्लज्जता भर दी है, यह मैं खूब जानता हूं, लेकिन मैं इन कारणों से इस व्यवस्था का विरोध नहीं करता। मेरा तो यह कहना है कि अपने स्वार्थ की दृष्टि से भी इसका अनुमोदन नहीं किया जा सकता। इस शान को निभाने के लिए हमें अपनी आत्मा की इतनी हत्या करनी पड़ती है कि हममें आत्माभिमान का नाम भी नहीं रहा। हम अपने असामियों को लूटने के लिए मजबूर हैं। अगर अफ़सरों को क़ीमती-क़ीमती डालियां न दें, तो वाग़ी समझे जायें, शान से न रहें, तो कंजूस कहलायें। प्रगति की ज़रा-सी आहट पाते ही हम कांप उठते हैं, और अफ़सरों के पास फ़रियाद लेकर दौड़ते हैं कि हमारी रक्षा कीजिए। हमें अपने ऊपर विश्वास नहीं रहा, न पुरुषार्थ ही रह गया। वस, हमारी दशा उन वच्चों की-सी है, जिन्हें चम्मच से दूध पिलाकर पाला जाता है, वाहर से मोटे, अन्दर से दुर्वल, सत्त्वहीन और मोहताज।

मेहता ने ताली वजाकर कहा—हियर, हियर। आपकी ज़वान में जितनी वुद्धि है, काश, उसकी आधी भी मस्तिष्क में होती। खेद यही है कि सव कुछ समझते हुए भी आप अपने विचारों को व्यवहार में नहीं लाते।

ओंकारनाथ बोले—अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता, मिस्टर मेहता! हमें समय के साथ चलना भी है और उसे *अपने साथ चलाना भी*। बुरे कामों में ही सहयोग की ज़रूरत नहीं होती। अच्छे कामों के लिए भी सहयोग उतना ही ज़रूरी है। आप ही क्यों आठ सौ रुपये महीने हड़पते हैं, जव आपके करोड़ों भाई केवल आठ रुपये में अपना निर्वाह कर रहे हैं?

रायसाहव ने ऊपरी खेद, लेकिन भीतरी सन्तोष से सम्पादकजी को देखा और वोले—व्यक्तिगत वातों पर आलोचना न कीजिये सम्पादकजी! हम यहां समाज की व्यवस्था पर विचार कर रहे हैं।

मिस्टर मेहता उसी ठण्डे मन से बोले—नहीं-नहीं, मैं इसे वुरा नहीं समझता। समाज व्यक्ति ही से वनता है, और व्यक्ति को भूलकर हम किसी व्यवस्था पर विचार नहीं कर सकते। मैं इसलिए इतना वेतन लेता हूं कि मेरा इस व्यवस्था पर विश्वास नहीं है।

सम्पादकजी को अचम्भा हुआ—अच्छा, तो आप वर्तमान व्यवस्था के समर्थक हैं?

'मैं इस सिद्धान्त का समर्थक हूं कि संसार में छोटे-वड़े हमेशा रहेंगे, और उन्हें हमेशा रहना चाहिए। इसे मिटाने की चेष्टा करना मानव-जाति के सर्वनाश का कारण होगा।'

कुश्ती का जोड़ बदल गया। रायसाहव किनारे खड़े हो गये। सम्पादकजी मैदान में उतरे—आप वीसवीं शताब्दी में ऊंच-नीच का भेद मानते हैं?

'जी हां, मानता हूं और बड़े ज़ोरों से मानता हूं। जिस मत के आप समर्थक हैं, वह भी तो कोई नयी चीज़ नहीं। जब से मनुष्य में ममत्व का विकास हुआ, तभी से उस मत का जन्म हुआ। वुद्ध और प्लेटो और ईसा सभी समाज में समता के प्रवर्तक थे। यूनानी और रोमन और सीरियाई, सभी सभ्यताओं ने उसकी परीक्षा की, पर अप्राकृतिक होने के कारण कभी वह स्थायी न वन सकी।

'आपकी वातें सुनकर मुझे आश्चर्य हो रहा है।'

'आश्चर्य अज्ञान का दूसरा नाम है।'

'मैं आपका कृतज्ञ हूं। अगर आप इस विषय पर कोई लेखमाला शुरू कर दें।'

'जी, मैं इतना अहमक़ नहीं हूं, अच्छी रक़म दिलवाइए, तो *अलवत्ता*।'

'आपने सिद्धान्त ही ऐसा लिया है कि खुले खज़ाने पब्लिक को लूट सकते हैं।'

'मुझमें और आपमें अन्तर इतना ही है कि मैं जो कुछ मानता हूं, उस पर चलता हूं। आप लोग मानते कुछ हैं, करते कुछ हैं। धन को आ[illegible] किसी उपाय से वरावर [illegible] [illegible]न बुद्धि को, चरित्र को और रूप को, प्रतिभा और वल को वरावर फैलाना [illegible] छोटे-वड़े का भेद केवल धन से ही तो नहीं होता। मैंने वड़े-वड़े [illegible]

घुटने टेकते देखा है, और आपने भी देखा होगा। रूप के चौखट पर बड़े-बड़े महीप नाक रगड़ते हैं। क्या यह सामाजिक विषमता नहीं है? आप रूस की मिसाल देंगे। वहां इसके सिवाय और क्या है कि मिल के मालिक ने राजकर्मचारी का रूप ले लिया है। बुद्धि तब भी राज करती थी, अब भी करती है और हमेशा करेगी।

तश्तरी में पान आ गये थे। रायसाहब ने मेहमानों को पान और इलायची देते हुए कहा—बुद्धि अगर स्वार्थ से मुक्त हो, तो हमें उसकी प्रभुता मानने में कोई आपत्ति नहीं। समाजवाद का यही आदर्श है।

'हम साधु-महात्माओं के सामने इसीलिए सिर झुकाते हैं कि उनमें त्याग का बल है। इसी तरह हम बुद्धि के हाथ में अधिकार भी देना चाहते हैं, सम्मान भी, नेतृत्व भी, लेकिन सम्पत्ति किसी तरह नहीं। बुद्धि का अधिकार और सम्मान व्यक्ति के साथ चला जाता है, लेकिन उसकी सम्पति विष बोने के लिए, उसके बाद और भी प्रबल हो जाती है। बुद्धि के बग़ैर किसी समाज का सञ्चालन नहीं हो सकता। हम केवल इस बिच्छू का डंक तोड़ देना चाहते हैं।'

दूसरी मोटर आ पहुंची और मिस्टर खन्ना उतरे, जो एक बैंक के मैनेजर और शक्कर मिल के मैनेजिंग डाइरेक्टर हैं। दो देवियां भी उनके साथ थीं। रायसाहब ने दोनों देवियों को उतारा। वह जो खद्दर की साड़ी पहने बहुत गम्भीर और विचारशील-सी हैं, मिस्टर खन्ना की पत्नी, कामिनी खन्ना हैं। दूसरी महिला जो ऊंची एड़ी का जूता पहने हुए हैं और जिनकी मुख-छवि पर हंसी फूटी पड़ती है, मिस मालती हैं। आप इंगलैण्ड से डॉक्टरी पढ़ आयी हैं और अब प्रैक्टिस करती हैं। ताल्लुक़ेदारों के महलों में उनका बहुत प्रवेश है। आप नवयुग की साक्षात् प्रतिमा हैं। गात कोमल, पर चपलता कूट-कूटकर भरी हुई। झिझक या संकोच का कहीं नाम नहीं, मेकअप में प्रवीण, बला की हाज़िरजवाब, पुरुष मनोविज्ञान की अच्छी जानकार, आमोद-प्रमोद को जीवन का तत्त्व समझने वाली, लुभाने और रिझाने की कला में निपुण। जहां आत्मा का स्थान है वहां प्रदर्शन, जहां हृदय का स्थान है वहां हाव-भाव, मनोद्‌गारों पर कठोर निग्रह, जिसमें इच्छा या अभिलाषा का लोप-सा हो गया।

आपने मिस्टर मेहता से हाथ मिलाते हुए कहा—सच कहती हूं, आप सूरत से ही फ़िलासफ़र मालूम होते हैं। इस नयी रचना में तो आपने आत्मवादियों को उधेड़कर रख दिया। पढ़ते-पढ़ते कई बार मेरे जी में ऐसा आया कि आपसे लड़ जाऊं। फ़िलासफ़रों में सहृदयता क्यों ग़ायब हो जाती है?

मेहता झेंप गये। बिन-ब्याहे थे और नवयुग की रमणियों से पनाह मांगते थे। पुरुषों की मण्डली में खूब चहकते थे, मगर ज्यों ही कोई महिला आयी और आपकी ज़बान बन्द हुई, जैसे बुद्धि पर ताला लग जाता था। स्त्रियों से शिष्ट व्यवहार तक करने की सुधि न रहती थी।

मिस्टर खन्ना ने पूछा—फ़िलासफ़रों की सूरत में क्या ख़ास बात होती है देवीजी?

मालती ने मेहता की ओर दया-भाव से देखकर कहा—मिस्टर मेहता बुरा न मानें, तो बतला दूं?

खन्ना मिस मालती के उपासकों में थे। जहां मिस मालती जायें, वहां खन्ना का पहुंचना लाज़िम था। उनके आस-पास भौंरे की तरह मंडराते रहते थे। हर समय उनकी यही इच्छा रहती थी कि मालती से अधिक-से-अधिक वही बोलें, उनकी निगाह अधिक-से-अधिक उन्हीं पर रहे।

खन्ना ने आंख मारकर कहा—फ़िलासफ़र किसी की बात का बुरा नहीं मानते। उनकी यही सिफ़त है।

'तो सुनिये, फ़िलासफ़र हमेशा मुरदा-दिल होते हैं। जब देखिये, अपने विचारों में मगन बैठे हैं। आपकी तरफ़ ताकेंगे, मगर आपको देखेंगे नहीं। आप उनसे बातें किये जायें, कुछ सुनेंगे नहीं, जैसे शून्य में उड़ रहे हों।

सब लोगों ने क़हक़हा मारा। मिस्टर मेहता जैसे ज़मीन में गड़ गये।

'ऑक्सफोर्ड में मेरे फ़िलासफ़ी के प्रोफ़ेसर हसबैण्ड थे।'

खन्ना ने टोका—नाम तो निराला है।

'जी हां, और थे क्वांरे....'

'मिस्टर मेहता भी तो क्वांरे हैं.......'

अब मेहता को अवसर मिला। बोले—आप भी इसी मरज़ में गिरफ़्तार हैं?

'मैंने प्रतिज्ञा की है, किसी फ़िलासफ़र से शादी करूंगी और यह वर्ग शादी के नाम से घबराता है। हसबैण्ड साहब तो स्त्री को देखकर घर में छिप जाते थे। उनके शिष्यों में कई लड़कियां थीं। अगर उनमें से कोई कभी कुछ पूछने के लिए उनके ऑफिस में चली जाती थी, तो आप ऐसे घबरा जाते, जैसे कोई शेर आ गया हो! हम लोग उन्हें खूब छेड़ा करते थे, मगर थे बेचारे सरल-हृदय। कई हज़ार की आमदनी थी, पर मैंने उन्हें हमेशा एक ही सूट पहने देखा। उनकी एक विधवा बहिन थी। वही उनके घर का सारा प्रबन्ध करती थी। मिस्टर हसबैण्ड को तो खाने की फ़िक्र ही न रहती थी। मिलनेवालों के डर से अपने कमरे का द्वार बन्द करके लिखा-पढ़ी करते थे। भोजन का समय आ जाता, तो उनकी बहिन आहिस्ता से भीतर के द्वार से उनके पास जाकर किताब बन्द कर देती थी, तब उन्हें मालूम होता कि खाने का समय हो गया। रात को भी भोजन का समय बंधा हुआ था। उनकी बहिन कमरे की बत्ती बुझा दिया करती थी। एक दिन बहिन ने किताब बन्द करनी चाही, तो आपने पुस्तक को दोनों हाथों से दबा लिया और बहिन-भाई में ज़ोर-आज़माई होने लगी। आख़िर बहिन उनकी पहियेदार कुर्सी को खींचकर भोजन के कमरे में लायी।'

रायसाहब बोले—मगर मेहता साहब तो बड़े खुशमिज़ाज और मिलनसार हैं, नहीं इस हंगामे में क्यों आते?

'तो आप फ़िलासफ़र न होंगे। जब अपनी चिन्ताओं से हमारे सिर में दर्द होने लगता है, तो विश्व की चिन्ता सिर पर लादकर कोई कैसे प्रसन्न रह सकता है?'

उधर सम्पादकजी श्रीमती खन्ना से आर्थिक कठिनाइयों की कथा कह रहे थे—बस, यों समझिये श्रीमतीजी कि सम्पादक का जीवन एक दीर्घ विलाप है, जिसे सुनकर लोग दया करने के बदले कानों पर हाथ रख लेते हैं। बेचारा न अपना उपकार कर सके, न औरों का। पब्लिक उससे आशा तो यह रखती है कि हर एक आन्दोलन में वह सबसे आगे रहे, जेल जाये, मार खाये, घर के माल-असबाब की कुर्की कराये, यह उसका धर्म समझा जाता है, लेकिन उसकी कठिनाइयों की ओर किसी का ध्यान नहीं। हो, तो वह सब कुछ। उसे हरएक विद्या, हरएक कला में पारंगत होना चाहिए, लेकिन उसे जीवित रहने का अधिकार नहीं। आप तो आजकल कुछ लिखतीं ही नहीं। [illegible] करने का जो थोड़ा-सा सौभाग्य मुझे मिल सकता है, उससे क्यों मुझे वञ्चित रखती हैं?

मिसेज़ खन्ना को कविता लिखने का शौक़ था। इस नाते से सम्पादकजी [illegible] आया करते थे, लेकिन घर के काम-धन्धों में व्यस्त रहने के कारण [illegible] नहीं सकी थीं। सच बात तो यह है कि सम्पादकजी ने ही उन्हें [illegible] सच्ची प्रतिभा उनमें बहुत कम थी।

'क्या लिखूं, कुछ सूझता ही नहीं। आपने कभी मिस [illegible]

सम्पादकजी उपेक्षा भाव से बोले—उनका समय [illegible] हैं, जिनके अन्दर कुछ दर्द है, अनुराग है, लगन है, [illegible] जीवन का लक्ष्य बना लिया, वह क्या लिखेंगे?

कामिनी ने ईर्ष्या-मिश्रित विनोद से [illegible] प्रचार दुगुना हो जाये। लखनऊ में तो ऐसा [illegible]

'अगर धन मेरे जीवन का आदर्श होता, तो आज मैं इस दशा में न होता। मुझे भी धन कमाने की कला आती है। आज चाहूं, तो लाखों कमा सकता हूं, लेकिन यहां तो धन को कभी कुछ समझा ही नहीं। साहित्य की सेवा अपने जीवन का ध्येय है और रहेगा।'

'कम-से-कम मेरा नाम तो ग्राहकों में लिखवा दीजिये।'

'आपका नाम ग्राहकों में नहीं, संरक्षकों में लिखूंगा।'

'संरक्षकों में रानियों-महारानियों को रखिये, जिनकी थोड़ी-सी खुशामद करके आप अपने पत्र को लाभ की चीज़ बना सकते हैं।'

'मेरी रानी-महारानी आप हैं। मैं तो आपके सामने किसी रानी-महारानी की हक़ीक़त नहीं समझता। जिसमें दया और विवेक है, वही मेरी रानी है। खुशामद से मुझे घृणा है।'

कामिनी ने चुटकी ली—लेकिन मेरी खुशामद तो आप कर रहे हैं सम्पादकजी!

सम्पादकजी ने गम्भीर होकर श्रद्धापूर्ण स्वर में कहा—यह खुशामद नहीं है देवीजी, हृदय के सच्चे उद्गार हैं।

रायसाहब ने पुकारा—सम्पादकजी, ज़रा इधर आइयेगा। मिस मालती आपसे कुछ कहना चाहती हैं।

सम्पादकजी की वह सारी अकड़ ग़ायब हो गयी। नम्रता और विनय की मूर्ति बने हुए आकर खड़े हो गये। मालती ने उन्हें सदय नेत्रों से देखकर कहा—मैं अभी कह रही थी कि दुनिया में मुझे सबसे ज़्यादा डर सम्पादकों से लगता है। आप लोग जिसे चाहें, एक क्षण में बिगाड़ दें। मुझी से चीफ़ सेक्रेटरी साहब ने एक बार कहा—अगर मैं इस ब्लडी ओंकारनाथ को जेल में बन्द कर सकूं, तो अपने को भाग्यवान् समझूं।

ओंकारनाथ की बड़ी-बड़ी मूंछें खड़ी हो ग़यीं। आंखों में गर्व की ज्योति चमक उठी। यों वह बहुत ही शान्त प्रकृति के आदमी थे, लेकिन ललकार सुनकर उनका पुरुषत्व उत्तेजित हो जाता था। दृढ़ता-भरे स्वर में बोले—इस कृपा के लिए आपका कृतज्ञ हूं। उस बज़्म (सभा) में अपना ज़िक्र तो आता है, चाहे किसी तरह आये। आप सेक्रेटरी महोदय से कह दीजियेगा कि ओंकारनाथ उन आदमियों में नहीं है, जो इन धमकियों से डर जाये। उसकी क़लम उसी वक़्त विश्राम लेगी, जब उसकी जीवन-यात्रा समाप्त हो जायेगी। उसने अनीति और स्वेच्छाचार को जड़ से खोदकर फेंक देने का ज़िम्मा लिया है।

मिस मालती ने और उकसाया—मगर मेरी समझ में आपकी यह नीति नहीं आती कि जब आप मामूली शिष्टाचार से अधिकारियों का सहयोग प्राप्त कर सकते हैं, तो क्यों उनसे कन्नी काटते हैं? अगर आप अपनी आलोचनाओं में आग और विष ज़रा कम कर दें, तो मैं वादा करती हूं कि आपको गवर्नमेण्ट से काफ़ी मदद दिला सकती हूं। जनता को तो आपने देख लिया। उससे अपील की, उसकी खुशामद की, अपनी कठिनाइयों की कथा कही, मगर कोई नतीजा न निकला। अब ज़रा अधिकारियों को भी आज़मा देखिये। तीसरे महीने आप मोटर पर न निकलने लगें, और सरकारी दावतों में निमन्त्रित न होने लगें, तो मुझे जितना चाहें कोसियेगा। तब यही रईस और नेशनलिस्ट जो आपकी परवाह नहीं करते, आपके द्वार के चक्कर लगायेंगे।

ओंकारनाथ अभिमान के साथ बोले—यही तो मैं नहीं कर सकता देवीजी। मैंने अपने सिद्धान्तों को सदैव ऊंचा और पवित्र रखा है, और जीते-जी उनकी रक्षा करूंगा। दौलत के पुजारी तो गली-गली मिलेंगे, मैं सिद्धान्त के पुजारियों में हूं।

'मैं इसे दम्भ कहती हूं।'

'आपकी इच्छा।'

'धन की आपको परवाह नहीं है?'

'सिद्धान्तों का ख़ून करके नहीं।'

'तो आपके पत्र में विदेशी वस्तुओं के विज्ञापन क्यों होते हैं? मैंने किसी भी दूसरे पत्र में इतने विदेशी विज्ञापन नहीं देखे। आप वनते तो हैं आदर्शवादी और सिद्धान्तवादी, पर अपने फ़ायदे के लिए देश का धन विदेश भेजते हुए आपको ज़रा भी खेद नहीं होता? आप किसी तर्क से इस नीति का समर्थन नहीं कर सकते।'

ओंकारनाथ के पास सचुमच कोई जवाव न था। उन्हें वग़लें झांकते देखकर रायसाहव ने उनकी हिमायत की—तो आख़िर आप क्या चाहती हैं? इधर से भी मारे जायें, उधर से भी मारे जायें, तो पत्र कैसे चले?

मिस मालती ने दया करना न सीखा था।

'पत्र नहीं चलता, तो वन्द कीजिये। अपना पत्र चलाने के लिए आपको विदेशी वस्तुओं के प्रचार का कोई अधिकार नहीं। अगर आप मजवूर हैं, तो सिद्धान्त का ढोंग छोड़िये। मैं तो सिद्धान्तवादी पत्रों को देखकर जल उठती हूं। जी चाहता है, दियासलाई दिखा दूं। जो व्यक्ति कर्म और वचन में सामञ्जस्य नहीं रख सकता, वह और चाहे जो कुछ हो, सिद्धान्तवादी नहीं है।'

मेहता खिल उठे। थोड़ी देर पहले उन्होंने खुद इसी विचार का प्रतिपादन किया था। उन्हें मालूम हुआ कि इस रमणी में विचार की शक्ति भी है, केवल तितली नहीं। संकोच जाता रहा।

'यही वात अभी मैं कह रहा था। विचार और व्यवहार में सामञ्जस्य का न होना ही धूर्तता है, मक्कारी है।'

मिस मालती प्रसन्न मुख से वोली—तो इस विषय में आप और मैं एक हैं, और मैं भी फ़िलासफ़र होने का दावा कर सकती हूं।'

खन्ना की जीभ में खुजली हो रही थी। वोले—आपका एक-एक अंग फ़िलासफ़ी में डूवा हुआ है।

मालती ने उनकी लगाम खींची—अच्छा, आपको भी फ़िलासफ़ी में दख़ल है। मैं तो समझती थी, आप वहुत पहले अपनी फ़िलासफ़ी को गंगा में डुवो वैठे। नहीं, आप इतने वैंकों और कम्पनियों के डाइरेक्टर न होते।

रायसाहब ने खन्ना को संभाला—तो क्या समझती हैं कि फ़िलासफ़रों को हमेशा फ़ाक़ेमस्त रहना चाहिए?

'जी हां। फ़िलासफ़र अगर मोह पर विजय न पा सके, तो फ़िलासफ़र कैसा?'

'इस लिहाज़ से तो शायद मिस्टर मेहता भी फ़िलासफ़र न ठहरें।'

मेहता ने जैसे आस्तीन चढ़ाकर कहा—मैंने तो कभी यह दावा नहीं किया रायसाहव! मैं तो इतना ही जानता हूं कि जिन औज़ारों से लोहार काम करता है, उन्हीं औज़ारों से सोनार नहीं करता। क्या आप चाहते हैं, आप भी उसी दशा में फलें-फूलें, जिसमें ववूल या ताड़? मेरे लिए धन केवल उन सुविधाओं का नाम है, जिनसे मैं अपना जीवन सार्थक कर सकूं। धन मेरे लिए वढ़ने और फलने-फूलनेवाली चीज़ नहीं, केवल साधन है। मुझे धन की विलकुल इच्छा नहीं। आप वह साधन जुटा दें, जिसमें मैं अपने जीवन का उपयोग कर सकूं।

ओंकारनाथ समष्टिवादी थे। व्यक्ति की इस प्रधानता को कैसे स्वीकार करते?

'इसी तरह हर एक मज़दूर कह सकता है कि उसे काम करने की सुविधाओं के लिए एक हज़ार महीने की ज़रूरत है।'

'अगर आप समझते हैं कि उस मज़दूर के वग़ैर आपका काम नहीं चल [illegible] पको वह [illegible] नहीं सुविधाएं देनी पड़ेंगी। अगर वही काम दूसरा मज़दूर थोड़ी-सी मज़दूरी में कर दे [illegible] कि आप पहले मज़दूर की खुशामद करें।'

'अगर मज़दूरों के हाथ में अधिकार होता, तो मज़दूरों के लिए स्त्री और शराव भी उतनी ही ज़रूरी सुविधा हो जाती, जितनी फ़िलासफ़रों के लिए।'

'तो आप विश्वास मानिये, मैं उनसे ईर्ष्या न करता।'

'जव आपका जीवन सार्थक करने के लिए स्त्री इतनी आवश्यक है, तो आप शादी क्यों नहीं कर लेते?'

मेहता ने निःसंकोच भाव से कहा—इसीलिए कि मैं समझता हूं, मुक्त भोग आत्मा के विकास में बाधक नहीं होता। विवाह तो आत्मा को और जीवन को पिंजरे में वन्द कर देता है।

खन्ना ने इसका समर्थन किया—वन्धन और निग्रह पुरानी थ्योरियां हैं। नयी थ्योरी है मुक्त भोग।

मालती ने चोटी पकड़ी—तो अव मिसेज़ खन्ना को तलाक़ के लिए तैयार रहना चाहिए।

'तलाक़ का विल पास तो हो।'

'शायद उसका पहला उपयोग आप ही करेंगे?'

कामिनी ने मालती की ओर विषभरी आंखों से देखा, और मुंह सिकोड़ लिया, मानो कह रही है—खन्ना तुम्हें मुवारक़ रहे, मुझे परवा नहीं।

मालती ने मेहता की तरफ़ देखकर कहा—इस विषय में आपके क्या विचार हैं मिस्टर मेहता?

मेहता गम्भीर हो गये। वह किसी प्रश्न पर अपना मत प्रकट करते थे, तो जैसे अपनी सारी आत्मा उसमें डाल देते थे।

'विवाह को मैं सामाजिक समझौता समझता हूं और उसे तोड़ने का अधिकार न पुरुष को है, न स्त्री को। समझौता करने के पहले आप स्वाधीन हैं, समझौता हो जाने के वाद आपके हाथ कट जाते हैं।'

'तो आप तलाक़ के विरोधी हैं, क्यों?'

'पक्का।'

'और मुक्त भोगवाला सिद्धान्त?'

'वह उनके लिए है, जो विवाह नहीं करना चाहते।'

'अपनी आत्मा का सम्पूर्ण विकास सभी चाहते हैं, फिर विवाह कौन करे और क्यों करे?'

'इसीलिए कि मुक्ति सभी चाहते हैं, पर ऐसे वहुत कम हैं, जो लोभ से अपना गला छुड़ा सकें।'

'आप श्रेष्ठ किसे समझते हैं, विवाहित जीवन को या अविवाहित जीवन को?'

'समाज की दृष्टि से विवाहित जीवन को, व्यक्ति की दृष्टि से अविवाहित जीवन को।'

धनुष-यज्ञ का अभिनय निकट था। दस से एक तक धनुष-यज्ञ, एक से तीन तक प्रहसन, यह प्रोग्राम था। भोजन की तैयारी शुरू हो गयी। मेहमानों के लिए वंगले में रहने का अलग-अलग प्रवन्ध था। खन्ना-परिवार के लिए दो कमरे रखे गये थे। और भी कितने ही मेहमान आ गये थे। सभी अपने-अपने कमरे में गये और कपड़े वदल-वदलकर भोजनालय में जमा हो गये। यहां छूत-छात का कोई भेद न था। सभी जातियों और वर्णो के लोग साथ भोजन करने बैठे। केवल सम्पादक ओंकारनाथ सवसे अलग अपने कमरे में फलाहार करने गये और कामिनी खन्ना को सिरदर्द हो रहा था, उन्होंने भोजन करने से इनकार किया। भोजनालय में मेहमानों की संख्या पच्चीस से कम न थी। शराव भी थी और मांस भी। इस उत्सव के लिए रायसाहव अच्छी क़िस्म की शराव ख़ास तौर पर खिंचवाते थे? खींची जाती थी दवा के नाम से, पर होती थी ख़ालिस शराव। मांस भी कई तरह के पक्ते थे, कोफ़्ते, कवाव और पुलाव। मुर्ग़, मुर्ग़ियां, वकरा, हिरन, तीतर, मोर, जिसे जो पसन्द हो, वह खाये।

भोजन शुरू हो गया, तो मिस मालती ने पूछा—सम्पादकजी कहां रह गये? किसी को भेजो

रायसाहव, उन्हें पकड़ लाये।

रायसाहव ने कहा—वह वैष्णव हैं, उन्हें यहां वुलाकर क्यों वेचारे का धर्म नष्ट करोगी? वड़ा ही आचारनिष्ठ आदमी है।

'अजी और कुछ न सही, तमाशा तो रहेगा।'

सहसा एक सज्जन को देखकर उसने पुकारा—आप भी तशरीफ़ रखते हैं मिर्ज़ा ख़ुर्शेद, यह काम आपके सुपुर्द। आपकी लियाक़त की परीक्षा हो जायेगी।

मिर्ज़ा ख़ुर्शेद गोरे-चिट्टे आदमी थे, भूरी-भूरी मूंछें, नीली आंखें, दोहरी देह, चांद के वाल सफ़ाचट। छकलिया अचकन और चूड़ीदार पाजामा पहने थे। ऊपर से हैट लगा लेते थे। सूफ़ी मुसलमान थे। दो वार हज कर आये थे, मगर शराव खूव पीते थे। कहते थे, जव हम ख़ुदा का एक हुक्म भी कभी नहीं मानते, तो दीन के लिए क्यों जान दें? वड़े दिल्लगीवाज़, वेफ़िक्रे जीव थे। पहले वसरे में टीके का कारोवार करते थे। लाखों कमाये, मगर शामत आयी कि एक मेम से आशनाई कर वैठे। मुक़दमेवाज़ी हुई। जेल जाते-जाते वचे। चौवीस घण्टे के अन्दर मुल्क से निकल जाने का हुक्म हुआ। जो कुछ जहां था, वहीं छोड़ा, और सिर्फ़ पचास हज़ार लेकर भाग खड़े हुए। वम्वई में उनके एजेण्ट थे। सोचा था, उनसे हिसाव-किताव कर लेंगे और जो कुछ निकलेगा, उसी में ज़िन्दगी काट देंगे, मगर एजेण्टों ने जाल करके उनसे वह पचास हज़ार भी ऐंठ लिये। निराश होकर वहां से लखनऊ चले। गाड़ी में एक महात्मा से साक्षात् हुआ। महात्माजी ने उन्हें सब्ज़वाग़ दिखाकर उनकी घड़ी, अंगूठियां, रुपये सव उड़ा लिये। वेचारे लखनऊ पहुंचे, तो देह के कपड़ों के सिवा कुछ न था। रायसाहव से पुरानी मुलाक़ात थी। कुछ उनकी मदद से और कुछ अन्य मित्रों की मदद से एक जूते की दुकान खोल ली। वह अव लखनऊ की सवसे चलती हुई जूते की दुकान थी, चार-पांच सौ रोज़ की विक्री थी। जनता को उन पर थोड़े ही दिनों में इतना विश्वास हो गया कि एक वड़े भारी मुस्लिम ताल्लुक़ेदार को नीचा दिखाकर कौंसिल में पहुंच गये। अपनी जगह पर वैठे-वैठे वोले—जी नहीं, मैं किसी का दीन नहीं विगाड़ता। यह काम आपको ख़ुद करना चाहिए। मज़ा तो जव है कि आप उन्हें शराव पिलाकर छोड़ें। यह आपके हुस्न के जादू की आज़माइश है।

चारों तरफ़ से आवाज़ें आयीं—हां-हां, मिस मालती, आज अपना कमाल दिखाइये। मालती ने मिर्ज़ा को ललकारा—कुछ इनाम दोगे?

'सौ रुपये की एक थैली।'

'हुश। सौ रुपये। लाख रुपये का धर्म विगाड़ूं सौ के लिए।'

'अच्छा, आप ख़ुद अपनी फ़ीस वोलिये।'

'एक हज़ार, कौड़ी कम नहीं।'

'अच्छा, मंजूर।'

'जी नहीं, लाकर मेहताजी के हाथ में रख दीजिये।'

मिर्ज़ाजी ने तुरन्त सौ रुपये का नोट जेव से निकाला और उसे दिखाते हुए खड़े होकर वोले—भाइयो! यह हम सव मरदों की इज़्ज़त का मामला है। अगर मिस मालती की फ़रमाइश न पूरी हुई, तो हमारे लिए कहीं मुंह दिखाने की जगह न रहेगी। अव मेरे पास रुपये होते, तो मैं मिस मालती की एक-एक अदा पर एक-एक लाख क़ुर्वान कर देता। एक पुराने शाइर ने अपने माशूक़ के एक काले तिल पर समरक़न्द और वोख़ारा के सूवे क़ुर्वान कर दिये थे। आज आप सभी साहवों की जवांमरदी और हुस्नपरस्ती का इम्तिहान है। जिसके पास जो कुछ हो, सच्चे सूरमा की क़सम, पीछे क़दम न हटाइये। मरदो! रुपये ख़र्च हो जायेंगे, नाम हमेशा के लिए रह जायेगा। ऐसा तमाशा लाखों में भी सस्ता है। देखिये, लखनऊ की हसीनों की रानी एक ज़ाहिद पर अपने हुस्न का मन्त्र कैसे चलाती है?

भाषण समाप्त करते ही मिर्ज़ाजी ने हरएक की जेव की तलाशी शुरू कर दी। पहले मिस्टर

खन्ना की तलाशी हुई। उनकी जेव से पांच रुपये निकले।

मिर्ज़ा ने मुंह फीका करके कहा—वाह खन्ना साहव, वाह! नाम वड़े दर्शन थोड़े। इतनी कम्पनियों के डाइरेक्टर, लाखों की आमदनी और आपकी जेव में पांच रुपये। लाहौल विला कूवत। कहां हैं मेहता? आप ज़रा जाकर मिसेज़ खन्ना से कम-से-कम सौ रुपये वसूल कर लायें।

खन्ना खिसियाकर वोले—अजी, उनके पास एक पैसा भी न होगा। कौन जानता था कि यहां आप तलाशी लेना शुरू करेंगे?

'ख़ैर, आप ख़ामोश रहिये। हम तक़दीर तो आज़मा लें।'

'अच्छा, तो मैं जाकर उनसे पूछता हूं।'

'जी नहीं, आप यहां से हिल नहीं सकते। मिस्टर मेहता, आप फ़िलासफ़र हैं, मनोविज्ञान के पण्डित। देखिये, अपनी भद न कराइयेगा।'

मेहता शराव पीकर मस्त हो जाते थे। उस मस्ती में उनका दर्शन उड़ जाता था और विनोद सजीव हो जाता था। लपककर मिसेज़ खन्ना के पास गये और पांच मिनट ही में मुंह लटकाये लौट आये।

मिर्ज़ा ने पूछा—अरे, क्या ख़ाली हाथ?

रायसाहव हंसे—क़ाज़ी के घर चूहे भी सयाने।

मिर्ज़ा ने कहा—हो वड़े ख़ुशनसीव खन्ना, ख़ुदा की क़सम।

मेहता ने क़हक़हा मारा और जेव से सौ-सौ रुपये के पांच नोट निकाले। मिर्ज़ा ने लपककर उन्हें गले लगा लिया।

चारों तरफ़ से आवाज़ें आने लगीं—कमाल है, मानता हूं उस्ताद, क्यों न हो, फ़िलासफ़र ही जो ठहरे।

मिर्ज़ा ने नोटों को आंखों से लगाकर कहा—भई मेहता, आज से मैं तुम्हारा शागिर्द हो गया। वताओ, क्या जादू मारा?

मेहता अकड़कर, लाल-लाल आंखों से ताकते हुए वोले—अजी कुछ नहीं। ऐसा कौन-सा बड़ा काम था। जाकर पूछा—अन्दर आऊं? वोलीं—आप हैं मेहताजी, आइये। मैंने अन्दर जाकर कहा, वहां लोग व्रिज खेल रहे हैं। अंगूठी एक हज़ार से कम की नहीं है। आपने तो देखा है। वस, वही। आपके पास रुपये हों, तो पांच सौ रुपये देकर एक हज़ार की चीज़ ले लीजिये। ऐसा मौक़ा फिर न मिलेगा। मिस मालती ने इस वक़्त रुपये न दिये, तो वेदाग़ निकल जायेंगी। पीछे से कौन देता है, शायद इसीलिए उन्होंने अंगूठी निकाली है कि पांच सौ रुपये किसके पास धरे होंगे। मुसकरायीं और चट अपने वटुवे से पांच नोट निकालकर दे दिये, और वोलीं—मैं विना कुछ लिये घर से नहीं निकलती। न जाने कव क्या ज़रूरत पड़े?

खन्ना खिसियाकर वोले—जव हमारे प्रोफ़ेसरों का यह हाल है, तो यूनिवर्सिटी का ईश्वर ही मालिक है।

ख़ुर्शेद ने घाव पर नमक छिड़का—अरे, तो ऐसी कौन-सी वड़ी रक़म है, जिसके लिए आपका दिल वैठा जाता है। ख़ुदा झूठ न वुलवाये, तो यह आपकी एक दिन की आमदनी है। समझ लीजियेगा, एक दिन वीमार पड़ गये, और जायेगा भी, तो मिस मालती ही के हाथ में। आपके दर्दे-जिगर की दवा मिस मालती ही के पास तो है।

मालती ने ठोकर मारी—देखिये मिर्ज़ाजी, तवेले में लतिआहुज अच्छी नहीं।

मिर्ज़ा ने दुम हिलायी—कान पकड़ता हूं देवीजी!

मिस्टर तंखा की तलाशी हुई। मुश्किल से दस रुपये निकले, मेहता की जेव से केवल अठन्नी निकली। कई सज्जनों ने एक-एक, दो-दो रुपये ख़ुद दे दिये। हिसाव जोड़ा गया, तो तीन सौ की कमी

थी। यह कमी रायसाहव ने उदारता के साथ पूरी कर दी।

सम्पादकजी ने मेवे और फल खाये थे और ज़रा कमर सीधी कर रहे थे कि रायसाहव ने जाकर कहा—आपको मिस मालती याद कर रही हैं।

खुश होकर वोले—मिस मालती मुझे याद कर रही हैं, धन्य भाग! रायसाहव के साथ ही हाल में आ विराजे।

उधर नौकरों ने मेज़ें साफ़ कर दी थीं। मालती ने आगे वढ़कर उनका स्वागत किया। सम्पादकजी ने नम्रता दिखायी—वैठिये, तकल्लुफ़ न कीजिये। मैं इतना वड़ा आदमी नहीं हूं।

मालती ने श्रद्धा-भरे स्वर में कहा—आप तकल्लुफ़ समझते होंगे, मैं समझती हूं, मैं अपना सम्मान वढ़ा रही हूं। यों आप अपने को कुछ समझें, और आपको शोभा भी नहीं देती है, लेकिन यहां जितने सज्जन जमा हैं, सभी आपकी राष्ट्र और साहित्य-सेवा से भलीभांति परिचित हैं। आपने इस क्षेत्र में जो महत्त्वपूर्ण काम किया है, अभी चाहे लोग उसका मूल्य न समझें, लेकिन वह समय वहुत दूर नहीं है—मैं तो कहती हूं, वह समय आ गया है—जव हरएक नगर में आपके नाम की सड़कें वनेंगी, क्लव वनेंगे, टाउनहालों में आपके चित्र लटकाये जायेंगे। इस वक्त जो थोड़ी-वहुत जागृति है, वह आप ही के महान् उद्योग का प्रसाद है। आपको यह जानकर आनन्द होगा कि देश में अव आपके ऐसे अनुयायी पैदा हो गये हैं, जो आपके देहात-सुधार आन्दोलन में आपका हाथ वंटाने को उत्सुक हैं, और उन सज्जनों की वड़ी इच्छा है कि यह काम संगठित रूप से किया जाये और एक देहात-सुधार संघ स्थापित किया जाये, जिसके आप सभापति हों।

ओंकारनाथ के जीवन में यह पहला अवसर था कि उन्हें चोटी के आदमियों में इतना सम्मान मिले। यों वह कभी-कभी आम जलसों में वोलते थे और कई सभाओं के मन्त्री और उपमन्त्री भी थे, लेकिन शिक्षित-समाज ने अव तक उनकी उपेक्षा ही की थी। उन लोगों में वह किसी तरह मिल न पाते थे, इसलिए आम जलसों में उनकी निष्क्रियता और स्वार्थान्धता की शिकायत किया करते थे, और अपने पत्र में एक-एक को रगेदते थे। क़लम तेज़ थी, वाणी कठोर, साफ़गोई की जगह उच्छृंखलता कर वैठते थे, इसलिए लोग उन्हें ख़ाली ढोल समझते थे। उसी समाज में आज उनका इतना सम्मान! कहां हैं आज 'स्वराज' और 'स्वाधीन भारत' और 'हण्टर' के सम्पादक, आकर देखें और अपना कलेजा ठण्डा करें। आज अवश्य ही देवताओं की उन पर कृपादृष्टि है। सदुद्योग कभी निष्फल नहीं जाता, यह ऋषियों का वाक्य है। वह स्वयं अपनी नज़रों में उठ गये। कृतज्ञता से पुलकित होकर वोले—देवीजी, आप तो मुझे कांटों में घसीट रही हैं। मैंने तो जनता की जो कुछ भी सेवा की, अपना कर्तव्य समझकर की। मैं इस सम्मान को अपना नहीं, उस उद्देश्य का सम्मान समझ रहा हूं, जिसके लिए मैंने अपना जीवन अर्पित कर दिया है, लेकिन मेरा नम्र-निवेदन है कि प्रधान का पद किसी प्रभावशाली पुरुष को दिया जाये, मैं पदों में विश्वास नहीं रखता। मैं तो सेवक हूं और सेवा करना चाहता हूं।

मिस मालती इसे किसी तरह स्वीकार नहीं कर सकतीं। सभापति पण्डितजी को वनना पड़ेगा। नगर में उसे ऐसा प्रभावशाली व्यक्ति दूसरा नहीं दिखाई देता। जिसकी क़लम में जादू है, जिसकी ज़वान में जादू है, जिसके व्यक्तित्व में जादू है, वह कैसे कहता है कि वह प्रभावशाली नहीं है। वह ज़माना गया, जव धन और प्रभाव में मेल था। अव प्रतिभा और प्रभाव के मेल का युग है। सम्पादकजी को यह पद अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। मन्त्री मिस मालती होंगी। इस सभा के लिए एक हज़ार का चन्दा भी हो गया है, तो अभी तो सारा शहर और प्रान्त पड़ा हुआ है। चार-पांच लाख मिल जाना मामूली वात है।

ओंकारनाथ पर कुछ नशा-सा चढ़ने लगा। उनके मन में जो एक प्रकार की फुरहरी-सी उठ रही थी, उसने गम्भीर उत्तरदायित्व का रूप धारण कर लिया। वोले—मगर यह आप समझ लें, मिस

मालती कि यह बड़ी ज़िम्मेदारी का काम है और आपको अपना बहुत समय देना पड़ेगा। मैं अपनी तरफ़ से आपको विश्वास दिलाता हूं कि आप सभा-भवन में मुझे सबसे पहले मौजूद पायेंगी।

मिर्ज़ाजी ने पुचारा दिया—आपका बड़े-से-बड़ा दुश्मन भी यह नहीं कह सकता कि आप अपना फ़र्ज़ अदा करने में कभी किसी से पीछे रहे।

मिस मालती ने देखा, शराब कुछ-कुछ असर करने लगी है, तो और भी गम्भीर बनकर बोलीं—अगर हम लोग इस काम की महानता न समझते, तो न यह सभा स्थापित होती और न आप इसके सभापति होते। हम किसी रईस या ताल्लुक़ेदार को सभापति बनाकर खूब धन बटोर सकते हैं, और सेवा की आड़ में स्वार्थ सिद्ध कर सकते हैं, लेकिन यह हमारा उद्देश्य नहीं। हमारा एकमात्र उद्देश्य जनता की सेवा करना है, और उसका सबसे बड़ा साधन आपका पत्र है। हमने निश्चय किया है कि हरएक नगर और गांव में उसका प्रचार किया जाये और जल्द-से-जल्द उसकी ग्राहक-संख्या को बीस हज़ार तक पहुंचा दिया जाये। प्रान्त की सभी म्युनिसिपैलिटियों और ज़िला बोर्ड के चेयरमैन हमारे मित्र हैं। कई चेयरमैन तो यहीं विराजमान हैं। अगर हरएक ने पांच-पांच सौ प्रतियां भी ले लीं, तो पच्चीस हज़ार प्रतियां तो आप यक़ीनी समझें। फिर रायसाहब और मिर्ज़ा साहब की यह सलाह है कि कौंसिल में इस विषय का एक प्रस्ताव रखा जाये कि प्रत्येक गांव के लिए 'बिजली' की एक प्रति सरकारी तौर पर मंगायी जाये या कुछ वार्षिक सहायता स्वीकार की जाये और हमें पूरा विश्वास है कि यह प्रस्ताव पास हो जायेगा।

ओंकारनाथ ने जैसे नशे में झूमते हुए कहा—हमें गवर्नर के पास डेपुटेशन ले जाना होगा।

मिर्ज़ा खुर्शेद बोले—ज़रूर-ज़रूर।

'उनसे कहना होगा कि किसी सभ्य शासन के लिए यह कितनी लज्जा और कलंक की बात है कि ग्रामोत्थान का अकेला पत्र होने पर भी 'बिजली' का अस्तित्व तक नहीं स्वीकार किया जाता।'

मिर्ज़ा खुर्शेद ने कहा—अवश्य-अवश्य।

'मैं गर्व नहीं करता। अभी गर्व करने का समय नहीं आया, लेकिन मुझे इसका दावा है कि ग्राम्य-संगठन के लिए 'बिजली' ने जितना उद्योग किया है...'

मिस्टर मेहता ने सुधारा—नहीं महाशय, तपस्या कहिये।

'मैं मिस्टर मेहता को धन्यवाद देता हूं। हां, इसे तपस्या ही कहना चाहिए, बड़ी कठोर तपस्या। 'बिजली' ने जो तपस्या की है, वह प्रान्त के ही नहीं, इस राष्ट्र के इतिहास में अभूतपूर्व है।'

मिर्ज़ा खुर्शेद बोले—ज़रूर-ज़रूर।

मिस मालती ने एक पेग और दिया—हमारे संघ ने यह निश्चय भी किया है कि कौंसिल में अब की जो जगह ख़ाली हो, उसके लिए आपको उम्मीदवार खड़ा किया जाये। आपको केवल अपनी स्वीकृति देनी होगी। शेष सारा काम हम लोग कर लेंगे। आपको न ख़र्च से मतलब, न प्रोपेगैण्डा, न दौड़-धूप से।

ओंकारनाथ की आंखों की ज्योति दुगुनी हो गयी। गर्वपूर्ण नम्रता से बोले—मैं आप लोगों का सेवक हूं, मुझसे जो काम चाहे, ले लीजिये।

'हम लोगों को आपसे ऐसी ही आशा है। हम अब तक झूठे देवताओं के सामने नाक रगड़ते-रगड़ते हार गये और कुछ हाथ न लगा। अब हमने आपमें सच्चा पथ-प्रदर्शक, सच्चा गुरु पाया है और इस शुभ दिन के आनन्द में आज हमें एक मन, एक प्राण होकर अपने अहंकार को, अपने दम्भ को तिलाञ्जलि दे देना चाहिए। हममें आज से कोई ब्राह्मण नहीं है, कोई शूद्र नहीं है, कोई हिन्दू नहीं है, कोई मुसलमान नहीं है, कोई ऊंचा नहीं है, कोई नीच नहीं है। हम सब एक ही माता के बालक, एक ही गोद में खेलनेवाले, एक थाली के खानेवाले भाई हैं। जो लोग भेद-भाव में विश्वास रखते हैं, जो लोग पृथक्ता और कट्टरता के उपासक हैं, उनके लिए हमारी सभा में स्थान नहीं है।

जिस सभा के सभापति पूज्य ओंकारनाथ जैसे विशाल-हृदय व्यक्ति हैं, उस सभा में ऊंच-नीच का, खान-पान का और जाति-पांति का भेद नहीं हो सकता। जो महानुभाव एकता में और राष्ट्रीयता में विश्वास न रखते हों, वे कृपा करके यहां से उठ जायें।

रायसाहव ने शंका की—मेरे विचार में एकता का यह आशय नहीं है कि सब लोग खान-पान का विचार छोड़ दें। मैं शराव नहीं पीता, तो क्या मुझे इस सभा से अलग हो जाना पड़ेगा?

मालती ने निर्मम स्वर में कहा—वेशक अलग हो जाना पड़ेगा। आप इस संघ में रहकर किसी तरह का भेद नहीं रख सकते।

मेहताजी ने घड़े को ठोंका—मुझे सन्देह है कि हमारे सभापतिजी स्वयं खान-पान की एकता में विश्वास नहीं रखते हैं।

ओंकारनाथ का चेहरा ज़र्द पड़ गया। इस वदमाश ने यह क्या वेवक्त की शहनाई वजा दी। दुष्ट कहीं गड़े मुरदे न उखाड़ने लगे, नहीं यह सरा सौभाग्य स्वप्न की भांति शून्य में विलीन हो जायेगा।

मिस मालती ने उनके मुंह की ओर जिज्ञासा की दृष्टि से देखकर दृढ़ता से कहा—आपका सन्देह निराधार है मेहता महोदय! क्या आप समझते हैं कि राष्ट्र की एकता का ऐसा अन्य उपासक, ऐसा उदारचेता पुरुष, ऐसा रसिक कवि इस निरर्थक और लज्जाजनक भेद को मान्य समझेगा? ऐसी शंका करना उसकी राष्ट्रीयता का अपमान करना है।

ओंकारनाथ का मुख-मण्डल प्रदीप्त हो गया। प्रसन्नता और सन्तोष की आभा झलक पड़ी।

मालती ने उसी स्वर में कहा—और इससे भी अधिक उनकी पुरुष-भावना का। एक रमणी के हाथों से शराव का प्याला पाकर वह कौन भद्र पुरुष होगा, जो इनकार कर दे? यह तो नारी-जाति का अपमान होगा। उस नारी-जाति का, जिसके नयन-वाणों से अपने हृदय को विंधवाने की लालसा पुरुष-मात्र में होती है, जिसकी अदाओं पर मर-मिटने के लिए वड़े-वड़े महीप लालायित रहते हैं। लाइये, वोतल और प्याले, और दौर चलने दीजिये। इस महान् अवसर पर, किसी तरह की शंका, किसी तरह की आपत्ति राष्ट्रद्रोह से कम नहीं। पहले हम अपने सभापति की सेहत का जाम पियेंगे।

वर्फ़, शराव और सोडा पहले ही से तैयार था। मालती ने ओंकारनाथ को अपने हाथों से लाल विष से भरा हुआ गिलास दिया, और उन्हें कुछ ऐसी जादू-भरी चितवन से देखा कि उनकी सारी निष्ठा, सारी वर्ण-श्रेष्ठता काफूर हो गयी। मन ने कहा—सारा आचार-विचार परिस्थितियों के अधीन है। आज तुम दरिद्र हो, किसी मोटरकार को धूल उड़ाते देखते हो, तो ऐसा विगड़ते हो कि उसे पत्थरों से चूर-चूर कर दो, लेकिन क्या तुम्हारे मन में कार की लालसा नहीं है? परिस्थिति ही विधि है, और कुछ नहीं। वाप-दादों ने नहीं पी थी, न पी हो। उन्हें ऐसा अवसर ही कव मिला था। उनकी जीविका पोथी-पत्रों पर थी। शराव लाते कहां से, और पीते भी, तो जाते कहां? फिर वह तो रेलगाड़ी पर न चढ़ते थे, कल का पानी न पीते थे, अंग्रेजी पढ़ना पाप समझते थे। समय कितना वदल गया है। समय के साथ अगर नहीं चल सकते, तो वह तुम्हें पीछे छोड़कर चला जायेगा। ऐसी महिला के कोमल हाथों से विष भी मिले, तो शिरोधार्य करना चाहिए। जिस सौभाग्य के लिए वड़े-वड़े राजे तरसते हैं, वह आज उनके सामने खड़ा है। क्या वह उसे ठुकरा सकते हैं?

उन्होंने गिलास ले लिया और सिर झुकाकर अपनी कृतज्ञता दिखाते हुए एक ही सांस में पी गये और तव लोगों को गर्व-भरी आंखों से देखा, मानो कह रहे हों, अव तो आपको मुझ पर विश्वास आया। क्या समझते हैं, मैं निरा पोंगा पण्डित हूं। अव तो मुझे दम्भी और पाखण्डी कहने का साहस नहीं कर सकते?

हाल में ऐसा शोरगुल मचा कि कुछ न पूछो, जैसे पिटारे में वन्द कहकहे निकल पड़े हों। वाह देवीजी! क्या कहना है! कमाल है मिस मालती, कमाल है। तोड़ दिया, नमक का क़ानून तोड़ दिया, धर्म का क़िला तोड़ दिया, नेम का घड़ा फोड़ दिया।

ओंकारनाथ के कण्ठ के नीचे शराब का पहुंचना था कि उनकी रसिकता वाचाल हो गयी। मुस्कराकर बोले—मैंने अपने धर्म की थाती मिस मालती के कोमल हाथों में सौंप दी और मुझे विश्वास है, वह उसकी यथोचित रक्षा करेंगी। उनके चरण-कमलों के इस प्रसाद पर मैं ऐसे एक हज़ार धर्मों को न्योछावर कर सकता हूं।

क़हक़हों से हाल गूंज उठा।

सम्पादकजी का चेहरा फूल उठा था, आंखें झुकी पड़ती थीं। दूसरा गिलास भरकर बोले—यह मिस मालती की सेहत का जाम है। आप लोग पियें और उन्हें आशीर्वाद दें।

लोगों ने फिर अपने-अपने गिलास ख़ाली कर दिये।

उसी वक़्त मिर्ज़ा ख़ुर्शेद ने एक माला लाकर सम्पादकजी के गले में डाल दी और बोले—सज्जनो, फ़िदवी ने अभी अपने पूज्य सदर साहब की शान में एक क़सीदा कहा है। आप लोगों की इजाज़त हो, तो सुनाऊं।

चारों तरफ़ से आवाज़ें आयीं—हां-हां, ज़रूर सुनाइये।

ओंकारनाथ भंग तो आये दिन पिया करते थे और उनका मस्तिष्क उसका अभ्यस्त हो गया था, मगर शराब पीने का उन्हें यह पहला अवसर था। भंग का नशा मन्थर गति से एक स्वप्न की भांति आता था और मस्तिष्क पर मेघ के समान छा जाता था। उनकी चेतना बनी रहती थी। उन्हें ख़ुद मालूम होता था कि इस समय उनकी वाणी बड़ी लच्छेदार है, और उनकी कल्पना बहुत प्रबल। शराब का नशा उनके ऊपर सिंह की भांति झपटा और दबोच बैठा। वह कहते कुछ हैं, मुंह से निकलता कुछ है। फिर यह ज्ञान भी जाता रहा। वह क्या कहते हैं और क्या करते हैं, इसकी सुधि ही नहीं रही। यह स्वप्न का रोमानी वैचित्र्य न था, जागृति का वह चक्कर था, जिसमें साकार निराकार हो जाता है।

न जाने कैसे उनके मस्तिष्क में यह कल्पना जाग उठी कि क़सीदा पढ़ना कोई बड़ा अनुचित काम है। मेज़ पर हाथ पटककर बोले—नहीं, कदापि नहीं। यहां कोई क़सीदा नई ओगा, नई ओगा। हम सभापति हैं। हमारा हुक्म है। हम अबी इस सबा को तोड़ सकते हैं। अबी तोड़ सकते हैं। सब को निकाल सकते हैं। कोई हमारा कुछ नई कर सकता। हम सभापति हैं। कोई दूसरा सभापति नई है।

मिर्ज़ा ने हाथ जोड़कर कहा—हुज़ूर इस क़सीदे में तो आपकी तारीफ़ की गयी है।

सम्पादकजी ने लाल, पर ज्योतिहीन नेत्रों से देखा—तुम हमारी तारीप क्यों की? बोलो, क्यों हमारी तारीप की? हम किसी का नौकर नहीं है। किसी के बाप का नौकर नहीं हैं, किसी साले का दिया नहीं खाते। हम ख़ुद सम्पादक है। हम 'बिजली' का सम्पादक है। हम उसमें सबका तारीप करेगा। देवीजी, हम तुम्हारा तारीप नई करेंगा। हम कोई बड़ा आदमी नई है। हम सबका गुलाम है। हम आपका चरण-रज है। मालती देवी हमारी लक्ष्मी, हमारी सरस्वती, हमारी राधा.....

यह कहते हुए वे मालती के चरणों की तरफ़ झुके और मुंह के बल फ़र्श पर गिर पड़े। मिर्ज़ा ख़ुर्शेद ने दौड़कर उन्हें संभाला और कुर्सियां हटाकर वहीं ज़मीन पर लिटा दिया। फिर उनके कानों के पास मुंह ले जाकर बोले—राम-नाम सत्त है। कहिये, तो आपका जनाज़ा निकालें?

रायसाहब ने कहा—कल देखना, कितना बिगड़ता है। एक-एक को अपने पत्र में रगेदेगा, और ऐसा रगेदेगा कि आप भी याद करेंगे। एक ही दुष्ट है, किसी पर दया नहीं करता। लिखने में तो अपना जोड़ ही नहीं रखता। ऐसा गधा आदमी कैसे इतना अच्छा लिखता है, यह रहस्य है।

कई आदमियों ने सम्पादकजी को उठाया और ले जाकर उनके कमरे में लिटा दिया। उधर पण्डाल में धनुष-यज्ञ हो रहा था। कई बार इन लोगों को बुलाने के लिए आदमी आ चुके थे। कई हुक्काम भी पण्डाल में आ पहुंचे थे। लोग इधर जाने को तैयार हो रहे थे कि सहसा एक अफ़ग़ान आकर खड़ा हो गया। गोरा रंग, बड़ी-बड़ी, मूंछे, ऊंचा कद, चौड़ा सीना, आंखों में निर्भयता का

उन्माद भरा हुआ, ढीला नीचा कुरता, पैरों में सलवार, ज़री के काम की सदरी, सिर पर पगड़ी और कुलाह, कन्धे में चमड़े का वैग लटकाये, कन्धे पर वन्दूक़ रखे और कमर में तलवार वांधे, न जाने किधर से आ खड़ा हो गया और गरजकर वोला—ख़वरदार! कोई यहां से मत जाओ। अमारा साथ का आदमी पर डाका पड़ा है। यहां का जो सरकार है, वह अमारा आदमी को लूट लिया है, उसका माल तुमको देना होगा। एक-एक कौड़ी देना होगा। कहां है सरदार, उसको वुलाओ।

रायसाहव ने सामने आकर क्रोध-भरे स्वर में कहा—कैसी लूट? कैसा डाका? यह तुम लोगों का काम है। यहां कोई किसी को नहीं लूटता। साफ़-साफ़ कहो, क्या मामला है?

अफ़ग़ान ने आंखें निकाली और वन्दूक का कुन्दा ज़मीन पर पटककर वोला—हमसे पूछता है कैसा लूट, कैसा डाका? तुम लूटता है, तुम्हारा आदमी लूटता है। अम यहां की कोठी का मालिक है। अमारी कोठी में पचास जवान है। अमारा आदमी रुपये तहवील कर लाता था। एक हज़ार। वह तुम लूट लिया, और कहता है, कैसा डाका? अम वतलायेगा, कैसा डाका होता है। अमारा पचीसों जवान अव आता है। अम तुमारा गांव लूट लेगा। कोई साला कुछ नईं कर सकता, कुछ नईं कर सकता।

खन्ना ने अफ़ग़ान के तेवर देखे, तो चुपके से उठे कि निकल जायें। सरदार ने ज़ोर से डांटा—कां जाता तुम? कोई कईं नईं जा सकता, नईं अम सवको क़तल कर देगा। अवी फ़ैर कर देगा, अमारा तुम कुछ नईं कर सकता। अम तुम्हारा पुलिस से नईं डरता। पुलिस का आदमी अमारा सक्ल देख कर भागता है। अमारा अपना कांसल है, अम उसको खत लिखकर लाट साहव के पास जा सकता है। अम यां से किसी को नईं जाने देगा। तुम हमारा एक हज़ार रुपया लूट लिया। अमारा रुपया नईं देगा, तो अम किसी को ज़िन्दा नईं छोड़ेगा। तुम सव आदमी दूसरों के माल की लूट करता है और यां माशूक़ के साथ शराव पीता है।

मिस मालती उसकी आंख वचाकर कमरे से निकलने लगीं कि वह वाज़ की तरह टूट कर उनके सामने आ खड़ा हुआ, वोला—तुम इन वदमाशों से अमारा माल दिलवाओ, नईं अम तुमको उठा ले जायेगा, अपनी कोठी में जश्न मनायेगा। तुम्हारा हुस्न पर हम आशिक़ हो गया। या तो अमको एक हज़ार अवी-अवी दे दो या तुमको अमारे साथ चलना पड़ेगा। तुमको अम नईं छोड़ेगा। अम तुम्हारा आशिक़ हो गया है। अमारा दिल और जिगर फटा जाता है। अमारा इस जगह पचीस जवान है। इस ज़िला में हमारा पांच सौ जवान काम करता है। अम अपने क़वीले का खान है। अमारे क़वीले में दस हज़ार सिपाही हैं। अम क़ावुल के अमीर से लड़ सकता है। अंग्रेज़ सरकार अमको वीस हज़ार सालाना खिराज़ देता है। अगर तुम हमारा रुपया नईं देगा, तो अम गांव लूट लेगा और तुम्हारे माशूक़ को उठा ले जायेगा। खून करने में अमको लुत्फ़ आता है। अम खून का दरिया वहा देगा।

मजलिस पर आंतक छा गया। मिस मालती अपना चहकना भूल गयीं। खन्ना की पिण्डलियां कांप रही थीं। वेचारे चोट-चपेट के भय से एक मंज़िले वंगले में रहते थे। ज़ीने पर चढ़ना उनके लिए सूली पर चढ़ने से कम न था। गरमी में भी डर के मारे कमरे में सोते थे। रायसाहव को ठकुराई का अभिमान था। वह अपने ही गांव में एक पठान से डर जाना हास्यास्पद समझते, लेकिन उसकी वन्दूक को क्या करते? उन्होंने ज़रा भी चीं-चपड़ किया और इसने वन्दूक़ चलायी। हूश तो होते ही हैं ये सव, और निशाना भी इन सवों का कितना अचूक होता है। अगर उसके हाथ में वन्दूक न होती, तो रायसाहव उससे सींग मिलाने को भी तैयार हो जाते। मुश्किल यही थी कि दुष्ट किसी को वाहर नहीं जाने देता। नहीं, दम-के-दम में सारा गांव जमा हो जाता और इसके पूरे जत्थे को पीट-पाटकर रख देता।

आख़िर उन्होंने दिल मज़वूत किया और जान पर खेलकर वोले—हमने आपसे कह दिय हम चोर-डाकू नहीं है। मैं यहां की कौंसिल का मेम्वर हूं और यह देवीजी लखनऊ की सुप्र डॉक्टर हैं। यहां सभी शरीफ़ और इज़्ज़तदार लोग जमा हैं। हमें विलकुल ख़वर नहीं, अ

आदमियों को किसने लूटा? आप जाकर थाने में रपट कीजिये।

ख़ान ने ज़मीन पर पैर पटके, पैंतरे बदले और बन्दूक़ को कन्धे से उतारकर हाथ में लेता हुआ दहाड़ा—मत वक-वक करो। काउन्सिल का मेम्वर को अम इस तरह पैरों से कुचल देता है (ज़मीन पर पांव रगड़ता है)। अमारा हाथ मज़वूत है, अमारा दिल मज़वूत है, अम ख़ुदाताला के सिवा और किसी से नई डरता। तुम अमारा रुपया नहीं देगा, तो अम (रायसाहव की तरफ़ इशारा कर) अवी तुमको कृतल कर देगा।

अपनी तरफ़ वन्दूक़ की नली देखकर रायसाहव झुककर मेज़ के वरावर आ गये। अजीव मुसीवत में जान फंसी थी। शैतान वरवस कहे जाता है, तुमने हमारे रुपये लूट लिये। न कुछ सुनता है, न कुछ समझता है, न किसी को वाहर जाने-आने देता है। नौकर-चाकर, सिपाही-प्यादे, सव धनुप-यज्ञ देखने में मगन थे। ज़मींदारी के नौकर यों भी आलसी और कामचोर होते ही हैं, जव तक दस दफ़े न पुकारा जाता, वोलते ही नहीं, और इस वक्त तो वे एक शुभ काम में लगे हुए थे। धनुप-यज्ञ उनके लिए केवल तमाशा नहीं, भगवान् की लीला थी। अगर एक आदमी भी इधर आ जाता, तो सिपाहियों को ख़वर हो जाती और दम-भर में ख़ान का सारा ख़ानपना निकल जाता, दाढ़ी के एक-एक वाल नुच जाते। कितना ग़ुस्सेवर है। होते भी तो जल्लाद हैं! न मरने का ग़म, न जीने की ख़ुशी।

मिर्ज़ा साहव ने चकित नेत्रों से देखा—क्या वताऊं, कुछ अक्ल काम नहीं करती। मैं आज अपना पिस्तौल घर छोड़ आया, नहीं मज़ा चखा देता।

खन्ना रोना मुंह वनाकर वोले—कुछ रुपये देकर किसी तरह इस वला को टालिये।

रायसाहव ने मालती की ओर देखा—देवीजी, अव आपकी क्या सलाह है?

मालती का मुखमण्डल तमतमा रहा था। वोलीं—होगा क्या, मेरी इतनी वेइज़्ज़ती हो रही है और आप लोग वैठे देख रहे हैं। वीस मरदों के होते एक उजड्ड पठान मेरी इतनी दुर्गति कर रहा है और आप लोगों के खून में ज़रा भी गरमी नहीं आती। आपको जान इतनी प्यारी है? क्यों एक आदमी वाहर जाकर शोर नहीं मचाता? क्यों आप लोग उस पर झपटकर उसके हाथ से वन्दूक़ नहीं छीन लेते? वन्दूक़ ही तो चलायेगा? चलाने दो। एक या दो की जान ही तो जायेगी? जाने दो।

मगर देवीजी मर जाने को जितना आसान समझती थीं, और लोग न समझते थे। कोई आदमी वाहर निकलने की फिर हिम्मत करे और पठान ग़ुस्से में आकर दस-पांच फ़ैर कर दे, तो यहां सफ़ाया हो जायेगा। वहुत होगा, पुलिस उसे फांसी की सज़ा दे देगी। वह भी क्या ठीक! एक वड़े क़वीले का सरदार है। उसे फांसी देते हुए सरकार भी सोच-विचार करेगी। ऊपर से दवाव पड़ेगा। राजनीति के सामने न्याय को कौन पूछता है? हमारे ऊपर उलटे मुक़दमे दायर हो जायें और दण्डकारी पुलिस विठा दी जाये, तो आश्चर्य नहीं। कितने मज़े में हंसी-मज़ाक़ हो रहा था? अव तक ड्रामा का आनन्द उठाते होते। इस शैतान ने आकर एक नयी विपत्ति खड़ी कर दी, और ऐसा जान पड़ता है विना दो-एक खून किये मानेगा नहीं।

खन्ना ने मालती को फटकारा—देवीजी, आप तो हमें लताड़ रही हैं। मानो अपनी प्राणरक्षा करना कोई पाप है। प्राण का मोह प्राणि-मात्र में होता है और हम लोगों में भी हो, तो कोई लज्जा की वात नहीं। आप हमारी जान इतनी सस्ती समझती हैं, यह देखकर मुझे खेद होता है। एक हज़ार का ही तो मुआमला है। आपके पास मुफ़्त के एक हज़ार हैं, उसे देकर क्यों नहीं विदा कर देतीं? आप खुद अपनी वेइज़्ज़ती करा रही हैं, इसमें हमारा क्या दोष?

रायसाहव ने गरम होकर कहा—अगर इसने देवीजी को हाथ लगाया, तो चाहे मेरी लाश यहीं तड़पने लगे, मैं इससे भिड़ जाऊंगा। आख़िर यह भी आदमी ही तो है।

मिर्ज़ा साहव ने सन्देह से सिर हिलाकर कहा—रायसाहव, आप अभी इन सवों के मिज़ाज से

वाक़िफ़ नहीं हैं। यह फ़ैर करना शुरू करेगा, तो फिर किसी को ज़िन्दा न छोड़ेगा। इनका निशाना वेख़ता होता है।

मिस्टर तंखा वेचारे आने वाले चुनाव की समस्या सुलझाने आये थे। दस-पांच हज़ार का वारा-न्यारा करके घर जाने का स्वप्न देख रहे थे। यहां जीवन ही संकट में पड़ गया। वोले—सवसे सरल उपाय यही है, जो अभी खन्ना जी ने वतलाया। एक हज़ार ही की तो वात है, और रुपये मौजूद हैं, तो आप लोग क्यों इतना सोच-विचार कर रहे हैं?

मिस मालती ने तंखा को तिरस्कार-भरी आंखों से देखा।

'आप लोग इतने कायर हैं, यह मैं न समझती थी।'

'मैं भी यह न समझता था कि आपको रुपये इतने प्यारे हैं और वह भी मुफ़्त के?'

'जव आप लोग मेरा अपमान देख सकते हैं, तो अपने घर की स्त्रियों का अपमान भी देख सकते होंगे।'

'तो आप भी पैसे के लिए अपने घर के पुरुषों को होम करने में संकोच न करेंगी।'

ख़ान इतनी देर तक झल्लाया हुआ-सा इन लोगों की गिटपिट सुन रहा था। एकाएक गरजकर वोला—अम अव नईं मानेगा। अम इतनी देर से यहां खड़ा है, तुम लोग रुपया नईं देगा। (जेब से सीटी निकालकर) अम तुमको एक लमहा और देता है, अगर तुम रुपया नईं देता, तो अम सीटी वजायेगा और अमारा पचीस जवान यहां आ जायेगा। वस।

फिर आंखों में प्रेम की ज्वाला भरकर उसने मिस मालती को देखा।

'तुम अमारे साथ चलेगा दिलदार! अम तुम्हारे ऊपर फ़िदा हो जायेगा। अपना जान तुम्हारे क़दमों पर रख देगा। इतना आदमी तुम्हारा आशिक़ है, मगर कोई सच्चा आशिक़ नहीं। सच्चा इश्क़ क्या है, अम दिखा देगा। तुम्हारा इशारा पाते ही अम अपने सीने में ख़ंजर चुबा सकता है।

मिर्ज़ा ने घिघियाकर कहा—देवीजी, खुदा के लिए इस मूज़ी को रुपये दे दीजिए।

खन्ना ने हाथ जोड़कर याचना की—हमारे ऊपर दया करो मिस मालती!

रायसाहव तनकर वोले—हर्गिज़ नहीं। आज जो कुछ होना है, हो जाने दीजिये। या तो हम खुद मर जायेंगे या इन ज़ालिमों को हमेशा के लिए सबक़ दे देंगे।

तंखा ने रायसाहव को डांट वतायी—शेर की मांद में घुसना कोई वहादुरी नहीं है। मैं इसे मूर्खता समझता हूं।

मगर मिस मालती के मनोभाव कुछ और ही थे। ख़ान के लालसा-प्रदीप्त नेत्रों ने उन्हें आश्वस्त कर दिया था और अव इस काण्ड में मनचलेपन का आनन्द आ रहा था। उनका हृदय कुछ देर इन नरपुंगवों के वीच में रहकर उसके वर्वर प्रेम का आनन्द उठाने के लिए ललचा रहा था। शिष्ट प्रेम की दुर्वलता और निर्जीवता का उन्हें अनुभव हो चुका था। आज अक्खड़, अनघड़ पठानों के उन्मत्त प्रेम के लिए उनका मन दौड़ रहा था, जैसे संगीत का आनन्द उठाने के बाद कोई मस्त हाथियों की लड़ाई देखने के लिए दौड़े।

उन्होंने ख़ां साहव के सामने जाकर निश्शंक भाव से कहा—तुम्हें रुपये नहीं मिलेंगे।

ख़ान ने हाथ वढ़ाकर कहा—तो अम तुमको लूट ले जायेगा।

'तुम इतने आदमियों के वीच से हमें नहीं ले जा सकता।'

'अम आदमियों के वीच से ले जा सकता है।'

'तुमको जान से हाथ धोना पड़ेगा।'

'अम अपने माशूक़ के लिए अपने जिस्म का एक-एक वोटी नुचवा सकता है।'

उसने मालती का हाथ पकड़कर खींचा। उसी वक्त होरी ने कमरे में क़दम रखा। वह राजा जनक का माली वना हुआ था और उसके अभिनय ने देहातियों को हंसाते-हंसाते लोटा दिया था।

उसने सोचा, मालिक अभी तक क्यों नहीं आये? वह भी तो आकर देखें कि देहाती इस काम में कितने कुशल होते हैं। उनके यार-दोस्त भी देखें। कैसे मालिक को बुलाये? वह अवसर खोज रहा था, और ज्यों ही मुहलत मिली, दौड़ा हुआ यहां आया, मगर यहां का दृश्य देखकर भौचक्का-सा खड़ा रह गया। सब लोग चुप्पी साधे, थर-थर कांपते, कातर नेत्रों से ख़ान को देख रहे थे और ख़ान मालती को अपनी तरफ़ खींच रहा था। उसकी सहज बुद्धि ने परिस्थिति का अनुमान कर लिया। उसी वक्त रायसाहब ने पुकारा—होरी, दौड़कर जा और सिपाहियों को बुला ला, जल्द दौड़।

होरी पीछे मुड़ा था कि ख़ान ने उसके सामने बन्दूक़ तानकर डांटा—कां जाता है सुअर, अम गोली मार देगा।

होरी गंवार था। लाल पगड़ी देखकर उसके प्राण निकल जाते, लेकिन मस्त सांड पर लाठी लेकर पिल पड़ता था। वह कायर न था, मारना और मरना दोनों जानता था, मगर पुलिस के हथकण्डों के सामने उसकी एक न चलती थी। बंधे-बंधे कौन फिरे, रिश्वत के रुपये कहां से लाये, बाल-बच्चों को किस पर छोड़े, मगर जब मालिक ललकारते हैं, तो फिर किसका डर? तब तो वह मौत के मुंह में भी कूद सकता है।

उसने झपटकर ख़ान की कमर पकड़ी और ऐसा अड़ंगा मारा कि ख़ान चारों खाने चित्त ज़मीन पर आ रहे और लगे पश्तो में गालियां देने। होरी उनकी छाती पर चढ़ बैठा और ज़ोर से दाढ़ी पकड़कर खींची। दाढ़ी उसके हाथ में आ गयी। ख़ान ने तुरन्त अपनी कुलाह उतार फेंकी और ज़ोर मारकर खड़ा हो गया। अरे! यह तो मिस्टर मेहता हैं। वही।

लोगों ने चारों तरफ़ से मेहता को घेर लिया। कोई उनकी पीठ पर थपकियां देता था और मिस्टर मेहता के चेहरे पर न हंसी थी, न गर्व। चुपचाप खड़े थे, मानो कुछ हुआ ही नहीं।

मालती ने नक़ली रोष से कहा—आपने यह बहरूपपन कहां सीखा? मेरा दिल अभी तक धड़-धड़ कर रहा है।

मेहता ने मुसकराते हुए कहा—ज़रा इन भले आदमियों की जवांमरदी की परीक्षा ले रहा था। जो गुस्ताख़ी हुई हो, उसे क्षमा कीजियेगा।

:7:

यह अभिनय जब समाप्त हुआ, तो उधर रंगशाला में धनुष-यज्ञ समाप्त हो चुका था और सामाजिक प्रहसन की तैयारी हो रही थी, मगर इन सज्जनों को उससे विशेष दिलचस्पी न थी। केवल मिस्टर मेहता देखने गये और आदि से अन्त तक जमे रहे। उन्हें बड़ा मज़ा आ रहा था। बीच-बीच में तालियां बजाते थे और 'फिर कहो, फिर कहो' का आग्रह करके अभिनेताओं को प्रोत्साहन भी देते जाते थे। रायसाहब ने इस प्रहसन में एक मुक़दमेबाज़ देहाती ज़मींदार का ख़ाका उड़ाया था। कहने को प्रहसन था, मगर करुणा से भरा हुआ। नायक का बात-बात में क़ानून की धाराओं का उल्लेख करना, पत्नी पर केवल इसलिए मुक़दमा दायर कर देना कि उसने भोजन तैयार करने में ज़रा-सी देर कर दी, फिर वकीलों के नख़रे और देहाती गवाहों की चालाकियां और झांसे, पहले गवाही के लिए चट-पट तैयार हो जाना, मगर इजलास पर तलबी के समय खूब मनावन कराना और नाना प्रकार की फ़रमाइशें करके उल्लू बनाना, ये सभी दृश्य देखकर लोग हंसी के मारे लोटे जाते थे। सबसे सुन्दर वह दृश्य था, जिसमें वकील गवाहों को उनके बयान रटा रहा था। गवाहों का बार-बार भूलें करना, वकील का बिगड़ना, फिर नायक का देहाती बोली में गवाहों को समझाना और अन्त में इजलास पर गवाहों का बदल जाना, ऐसा सजीव और सत्य था कि मिस्टर मेहता उछल पड़े और तमाशा समाप्त होने पर नायक को गले लगा लिया और सभी नटों को एक-एक मेडल देने की घोषणा की। रायसाहब के प्रति उनके मन में श्रद्धा के भाव जाग उठे। रायसाहब स्टेज के पीछे ड्रामे का सञ्चालन कर रहे थे।

मेहता दौड़कर उनके गले लिपट गये और मुग्ध होकर बोले—आपकी दृष्टि इतनी पैनी है, इसका मुझे अनुमान न था।

दूसरे दिन जलपान के बाद शिकार का प्रोग्राम था। वहीं किसी नदी के तट पर बाग़ में भोजन बने, खूब जलक्रीड़ा की जाये और शाम को लोग घर आयें। देहाती जीवन का आनन्द उठाया जाये। जिन मेहमानों को विशेष काम था, वह तो विदा हो गये, केवल वे ही लोग बच रहे, जिनकी रायसाहब से घनिष्ठता थी। मिसेज़ खन्ना के सिर में दर्द था, न जा सकीं, और सम्पादकजी इस मण्डली से जले हुए थे और इनके विरुद्ध एक लेखमाला निकालकर इनकी ख़बर लेने के विचार में मग्न थे। सब-के-सब छटे हुए गुण्डे हैं। हराम के पैसे उड़ाते हैं और मूंछों पर ताव देते हैं। दुनिया में क्या हो रहा है, इन्हें क्या ख़बर? इनके पड़ोस में कौन मर रहा, इन्हें क्या परवाह? इन्हें तो अपने भोग-विलास से काम है। यह मेहता, जो फ़िलासफ़र बना फिरता है, उसे यही धुन है कि जीवन को सम्पूर्ण बनाओ। महीने में एक हज़ार मार लेते हो, तुम्हें अख़्तियार है, जीवन को सम्पूर्ण बनाओ या परिपूर्ण बनाओ। जिसको यह फ़िक्र दबाये डालती है कि लड़कों का ब्याह कैसे हो या बीमार स्त्री के लिए वैद्य कैसे आये या अबकी घर का किराया किसके घर से आयेगा, वह अपना जीवन कैसे सम्पूर्ण बनाये? छूटे सांड़ बने दूसरों के खेत में मुंह मारते फिरते हो, और समझते हो, संसार में सब सुखी हैं। तुम्हारी आंखें तब खुलेंगी, जब क्रान्ति होगी और तुमसे कहा जायेगा—बचा, खेत में चलकर हल जोतो। तब देखें, तुम्हारा जीवन कैसे सम्पूर्ण होता है। और वह जो है मालती, जो बहत्तर घाटों का पानी पीकर भी मिस बनी फिरती है। शादी नहीं करेगी, इससे जीवन बन्धन में पड़ जाता है, और बन्धन में जीवन का पूरा विकास नहीं होता। बस, जीवन का पूरा विकास इसी में है कि दुनिया को लूटे जाओ और निर्द्वन्द्व विलास किये जाओ। सारे बन्धन तोड़ दो, धर्म और समाज को गोली मारो, जीवन के कर्तव्यों को पास न फटकने दो, बस, तुम्हारा जीवन सम्पूर्ण हो गया। इससे ज़्यादा आसान और क्या होगा? मां-बाप से नहीं पटती, उन्हें धता बताओ, शादी मत करो, यह बन्धन है, बच्चे होंगे, यह मोहपाश है, मगर टैक्स क्यों देते हो? क़ानून भी तो बन्धन है, उसे क्यों नहीं तोड़ते? उससे क्यों कन्नी काटते हो? जानते हो न कि क़ानून की ज़रा भी अवज्ञा की और बेड़ियां पड़ जायेंगी। बस, वही बन्धन तोड़ो जिसमें अपनी भोग-लिप्सा में बाधा नहीं पड़ती। रस्सी को सांप बनाकर पीटो और तीस-मार ख़ां बनो। जीते सांप के पास जाओ ही क्यों, वह फुंकार भी मारेगा, तो लहरें आने लगेंगी। उसे आते देखो, तो दुम दबाकर भागो। यह तुम्हारा सम्पूर्ण जीवन है।

आठ बजे शिकार-पार्टी चली। खन्ना ने कभी शिकार न खेला था, बन्दूक़ की आवाज़ से कांपते थे, लेकिन मिस मालती जा रही थी, वह कैसे रुक सकते थे? मिस्टर तंखा को अभी तक इलेक्शन के विषय में बातचीत करने का अवसर न मिला था। शायद वहां वह अवसर मिल जाये। रायसाहब अपने इस इलाक़े में बहुत दिनों से नहीं गये थे। वहां का रंग-ढंग देखना चाहते थे। कभी-कभी इलाक़े में आने-जाने से आदमियों से एक सम्बन्ध भी हो जाता है, और रोब भी रहता है। कारकुन और प्यादे भी सचेत रहते हैं। मिर्ज़ा खुर्शेद को जीवन के नये अनुभव प्राप्त करने का शौक़ था, विशेषकर ऐसे, जिनमें कुछ साहस दिखाना पड़े। मिस मालती अकेले कैसे रहतीं? उन्हें तो रसिकों का जमघट चाहिए। केवल मिस्टर मेहता शिकार खेलने के सच्चे उत्साह से जा रहे थे। रायसाहब की इच्छा तो थी कि भोजन की सामग्री, रसोइया, कहार, ख़िदमतगार, सब साथ चलें, लेकिन मिस्टर मेहता ने इसका विरोध किया।

खन्ना ने कहा—आख़िर वहां भोजन करेंगे या भूखों मरेंगे?

मेहता ने जवाब दिया—भोजन क्यों न करेंगे, लेकिन आज हम खुद अपना सारा काम करेंगे। देखना तो चाहिए कि नौकरों के बग़ैर हम ज़िन्दा रह सकते हैं या नहीं। मिस मालती पकायेंगी और हम लोग खायेंगे। देहातों में हांडियां और पत्तल मिल ही जाते हैं, और ईंधन की कोई कमी नहीं।

शिकार हम करेंगे ही।

मालती ने गिला किया—क्षमा कीजिये। आपने रात मेरी कलाई इतने ज़ोर से पकड़ी कि अभी तक दर्द हो रहा है।

'काम तो हम लोग करेंगे, आप केवल बताती जाइयेगा।'

मिर्ज़ा खुर्शेद बोले—अजी आप लोग तमाशा देखते रहियेगा, मैं सारा इन्तिज़ाम कर दूंगा। बात ही कौन-सी है? जंगल में हांड़ी और बर्तन ढूंढ़ना हिमाकत है। हिरन का शिकार कीजिये, भूनिये, खाइये और वहीं दरख्त के साये में ख़र्राटे लीजिये।

यही प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। दो मोटरें चलीं। एक मिस मालती ड्राइव कर रही थीं, दूसरी खुद रायसाहब। कोई बीस-पचीस मील पर पहाड़ी प्रान्त शुरू हो गया। दोनों तरफ ऊंची पर्वतमाला दौड़ी चली आ रही थी। सड़क भी पेंचदार होती जाती थी। कुछ दूर चढ़ाई के बाद एकाएक ढाल आ गया और मोटर नीचे की ओर चली। दूर से नदी का पाट नज़र आया, किसी रोगी की भांति दुर्बल निस्पन्द कगार पर एक घने वटवृक्ष की छांह में कारें रोक दी गयीं और लोग उतरे। यह सलाह हुई कि दो-दो की टोली बने और शिकार खेलकर बारह बजे तक यहां आ जायें। मिस मालती मेहता के साथ चलने को तैयार हो गयीं। खन्ना मन में ऐंठकर रह गये। जिस विचार से आये थे, उसमें जैसे पंचर हो गया। अगर जानते, मालती दग़ा देगी, तो घर लौट जाते, लेकिन रायसाहब का साथ उतना रोचक न होते हुए भी बुरा न था। उनसे बहुत-सी मुआमले की बातें करनी थीं। खुर्शेद और तंखा बच रहे। उनकी टोली बनी-बनायी थी। तीनों टोलियां एक-एक तरफ़ चल दीं।

कुछ दूर तक पथरीली पगडण्डी पर मेहता के साथ चलने के बाद मालती ने कहा—तुम तो चले ही जाते हो। ज़रा दम ले लेने दो।

मेहता मुस्कराये—अभी तो हम एक मील भी नहीं आये। अभी से थक गयीं?

'थकी नहीं, लेकिन क्यों न ज़रा दम ले लो।'

'जब तक कोई शिकार हाथ न आ जाये, हमें आराम करने का अधिकार नहीं।'

'मैं शिकार खेलने न आयी थी।'

मेहता ने अनजान बनकर कहा—अच्छा, यह मैं न जानता था। फिर क्या करने आयी थीं?

'अब तुमसे क्या बताऊं?'

हिरनों का एक झुण्ड चरता हुआ नज़र आया। दोनों एक चट्टान की आड़ में छिप गये और निशाना बांधकर गोली चलायी। निशाना ख़ाली गया। झुण्ड भाग निकला।

मालती ने पूछा—अब?

'कुछ नहीं, चलो फिर कोई शिकार मिलेगा।'

दोनों कुछ देर तक चुपचाप चलते रहे। फिर मालती ने ज़रा रुककर कहा—गरमी के मारे बुरा हाल हो रहा है। आओ, इस वृक्ष के नीचे बैठ जायें।

'अभी नहीं। तुम बैठना चाहती हो, तो बैठो। मैं तो नहीं बैठता।'

'बड़े निर्दयी हो तुम, सच कहती हूं।'

'जब तक कोई शिकार न मिल जाये, मैं बैठ नहीं सकता।'

'तब तो तुम मुझे मार ही डालोगे। अच्छा बताओ, रात तुमने मुझे इतना क्यों सताया? मुझे तुम्हारे ऊपर बड़ा क्रोध आ रहा था। याद है, तुमने मुझे क्या कहा था? तुम हमारे साथ चलेगा दिलदार? मैं न जानती थी, तुम इतने शरीर हो। अच्छा, सच कहना, तुम उस वक्त मुझे अपने साथ ले जाते?'

मेहता ने कोई जवाब न दिया, मानो सुना ही नहीं।

दोनों कुछ दूर चलते रहे। एक तो जेठ की धूप, दूसरे पथरीला रास्ता। मालती थककर बैठ

गयी।

मेहता खड़े-खड़े बोले—अच्छी बात है, तुम आराम कर लो। मैं यहीं आ जाऊंगा।

'मुझे अकेले छोड़कर चले जाओगे?'

'मैं जानता हूं, तुम अपनी रक्षा कर सकती हो।'

'कैसे जानते हो?'

'नये युग की देवियों की यही सिफ़त है। वह मरद का आश्रय नहीं चाहतीं, उससे कन्धा मिलाकर चलना चाहती हैं।'

मालती ने झेंपते हुए कहा—तुम कोरे फ़िलासफ़र हो मेहता, सच।

सामने वृक्ष पर एक मोर बैठा हुआ था। मेहता ने निशाना साधा, और बन्दूक़ चलायी, मोर उड़ गया।

मालती प्रसन्न होकर बोली—बहुत अच्छा हुआ। मेरा शाप पड़ा।

मेहता ने बन्दूक़ कन्धे पर रखकर कहा—तुमने मुझे नहीं, अपने आपको शाप दिया। शिकार मिल जाता, तो मैं तुम्हें दस मिनट की मुहलत देता। अब तो तुमको फ़ौरन चलना पड़ेगा।

मालती उठकर मेहता का हाथ पकड़ती हुई बोली—फ़िलासफ़रों के शायद हृदय नहीं होता। तुमने अच्छा किया, विवाह नहीं किया। उस ग़रीब को मार ही डालते, मगर मैं यों न छोड़ूंगी। तुम मुझे छोड़कर नहीं जा सकते।

मेहता ने एक झटके से हाथ छुड़ा लिया और आगे बढ़े।

मालती सजल नेत्र होकर बोली—मैं कहती हूं, मत जाओ। नहीं मैं इसी चट्टान पर सिर पटक दूंगी।

मेहता ने तेज़ी से क़दम बढ़ाये। मालती उन्हें देखती रही। जब वह बीस क़दम निकल गये, तो झुंझलाकर उठी और उनके पीछे दौड़ी। अकेले विश्राम करने में कोई आनन्द न था।

समीप आकर बोली—मैं तुम्हें इतना पशु न समझती थी।

'मैं जो हिरन मारूंगा, उसकी खाल तुम्हें भेंट करूंगा।'

'खाल जाये भाड़ में। मैं अब तुमसे बात न करूंगी।'

'कहीं हम लोगों के हाथ कुछ न लगा और दूसरों ने अच्छे शिकार मारे, तो मुझे बड़ी झेंप होगी।'

एक चौड़ा नाला मुंह फैलाये बीच में खड़ा था। बीच की चट्टानें उसके दांतों-सी लगती थीं। धार में इतना वेग था कि लहरें उछली पड़ती थीं। सूर्य मध्यान्ह पर आ पहुंचा था, और उसकी प्यासी किरणें जल में क्रीड़ा कर रही थीं।

मालती ने प्रसन्न होकर कहा—अब तो लौटना पड़ा।

'क्यों? उस पार चलेंगे। वहीं तो शिकार मिलेंगे।'

'धारा में कितना वेग है? मैं तो बह जाऊंगी।'

'अच्छी बात है! तुम यहीं बैठो, मैं जाता हूं।'

'हां, आप जाइये। मुझे अपनी जान से वैर नहीं है।'

मेहता ने पानी में क़दम रखा और पांव साधते हुए चले। ज्यों-ज्यों आगे जाते थे, [illegible] होता जाता था। यहां तक कि छाती तक आ गया।

मालती अधीर हो उठी। शंका से मन चन्चल हो उठा। ऐसी [illegible] ऊंचे स्वर में बोली—पानी गहरा है। ठहर जाओ, मैं भी आती हूं।

'नहीं-नहीं, तुम फिसल जाओगी। धार तेज़ है।'

'कोई हरज नहीं, मैं आ रही हूं। आगे न बढ़ना, ख़बरदार।'

मालती साड़ी ऊपर चढ़ाकर नाले में पैठी। मगर [illegible]

आ गया।

मेहता घबराये। दोनों हाथों से उसे लौट जाने को कहते हुए बोले—तुम यहां मत आओ मालती! यहां तुम्हारी गर्दन तक पानी है।

मालती ने एक क़दम और आगे बढ़कर कहा—होने दो। तुम्हारी यही इच्छा है कि मैं मर जाऊं, तो तुम्हारे पास ही मरूंगी।

मालती पेट तक पानी में थी। धार इतनी तेज़ थी कि मालूम होता था, क़दम उखड़ा। मेहता लौट पड़े और मालती को एक हाथ से पकड़ लिया।

मालती ने नशीली आंखों में रोष भरकर कहा—मैंने तुम्हारे-जैसा बेदर्द आदमी कभी न देखा था। बिलकुल पत्थर हो। ख़ैर, आज सता लो, जितना सताते बने, मैं भी कभी समझूंगी।

मालती के पांव उखड़ते हुए मालूम हुए। वह बन्दूक़ संभालती हुई उनसे चिमट गयी।

मेहता ने आश्वासन देते हुए कहा—तुम यहां खड़ी नहीं रह सकतीं। मैं तुम्हें अपने कन्धे पर बिठाये लेता हूं।

मालती ने भृकुटी टेढ़ी करके कहा—तो उस पार जाना क्या इतना ज़रूरी है?

मेहता ने कुछ उत्तर न दिया। बन्दूक़ कनपटी से कन्धे पर दबा ली और मालती को दोनों हाथों से उठाकर कन्धे पर बैठा लिया।

मालती अपनी पुलक को छिपाती हुई बोली—अगर कोई देख ले?

'भद्दा तो लगता है।'

दो पग के बाद उसने करुण स्वर में कहा—अच्छा बताओ, मैं यहीं पानी में डूब जाऊं, तो तुम्हें रंज हो या न हो? मैं तो समझती हूं, तुम्हें बिलकुल रंज न होगा।

मेहता ने आहत स्वर से कहा—तुम समझती हो, मैं आदमी नहीं हूं?

'मैं तो यही समझती हूं, क्यों छिपाऊं?'

'सच कहती हो मालती?'

'तुम क्या समझते हो?'

'मैं! कभी बतलाऊंगा।'

पानी मेहता की गर्दन तक आ गया। कहीं अगला क़दम उठाते ही सिर तक न आ जाये। मालती का हृदय धक-धक करने लगा। बोली—मेहता, ईश्वर के लिए अब आगे मत जाओ, नहीं मैं पानी में कूद पड़ूंगी।

उस संकट में मालती को ईश्वर याद आया, जिसका वह मज़ाक़ उड़ाया करती थी। जानती थी, ईश्वर कहीं बैठा नहीं है, जो आकर उन्हें उबार लेगा, लेकिन मन को जिस अवलम्बन और शक्ति की ज़रूरत थी, वह और कहां मिल सकती थी?

पानी कम होने लगा था। मालती ने प्रसन्न होकर कहा—अब तुम मुझे उतार दो।

'नहीं-नहीं, चुपचाप बैठी रहो। कहीं आगे गढ़ा मिल जाये।'

'तुम समझते होगे, यह कितनी स्वार्थिनी है।'

'मुझे इसकी मज़दूरी दे देना।'

मालती के मन में गुदगुदी हुई।

'क्या मज़दूरी लोगे?'

'यही कि जब तुम्हें जीवन में ऐसा ही कोई अवसर आये, तो मुझे बुला लेना।'

किनारे आ गये। मालती ने रेत पर अपनी साड़ी का पानी निचोड़ा, जूते का पानी निकाला मुंह-हाथ धोया, पर ये शब्द अपने रहस्यमय आशय के साथ उसके सामने नाचते रहे।

उसने इस अनुभव का आनन्द उठाते हुए कहा—यह दिन याद रहेगा।

मेहता ने पूछा—तुम बहुत डर रही थीं?

'पहले तो डरी, लेकिन फिर मुझे विश्वास हो गया कि तुम हम दोनों की रक्षा कर सकते हो।

मेहता ने गर्व से मालती को देखा—उनके मुख पर परिश्रम की लाली के साथ तेज था।

'मुझे यह सुनकर कितना आनन्द आ रहा है, तुम यह समझ सकोगी मालती?'

'तुमने समझाया कब? उलटे और जंगलों में घसीटते फिरते हो, और अभी फिर लौटती बार यही नाला पार करना पड़ेगा। तुमने कैसी आफ़त में जान डाल दी। मुझे तुम्हारे साथ रहना पड़े, तो एक दिन न पटे।'

मेहता मुसकराये। इन शब्दों का संकेत खूब समझ रहे थे।

'तुम मुझे इतना दुष्ट समझती हो। और जो मैं कहूं कि तुमसे प्रेम करता हूं, मुझसे विवाह करोगी?'

'ऐसे काठ-कठोर से कौन विवाह करेगा? रात-दिन जलाकर मार डालोगे।' और मधुर नेत्रों से देखा, मानो कह रही हो—इसका आशय तुम खूब समझते हो। इतने बुद्धू नहीं हो।

मेहता ने जैसे सचेत होकर कहा—तुम सच कहती हो मालती! मैं किसी रमणी को प्रसन्न नहीं रख सकता। मुझसे कोई स्त्री प्रेम का स्वांग नहीं कर सकती। मैं उसके अन्तस्तल तक पहुंच जाऊंगा। फिर उससे अरुचि हो जायेगी।

मालती कांप उठी। इन शब्दों में कितना सत्य था।

उसने पूछा—बताओ, तुम कैसे प्रेम से सन्तुष्ट होगे?

'बस, यही कि जो मन में हो, वही मुख पर हो। मेरे लिए रंग-रूप और हाव-भाव और नाज़ो-अन्दाज़ का मूल्य उतना ही है, जितना होना चाहिए। मैं वह भोजन चाहता हूं, जिससे आत्मा की तृप्ति हो। उत्तेजक और शोषक पदार्थों की मुझे ज़रूरत नहीं।'

मालती ने होंठ सिकोड़कर ऊपर को सांस खींचते हुए कहा—तुमसे कोई पेश न पायेगा। एक ही घाघ हो। अच्छा बताओ, मेरे विषय में तुम्हारा क्या ख़याल है?

मेहता ने नटखटपन से मुसकराकर कहा—तुम सब कुछ कर सकती हो, बुद्धिमती हो, चतुर हो, प्रतिभावान हो, दयालु हो, चञ्चल हो, स्वाभिमानी हो, त्याग कर सकती हो, लेकिन प्रेम नहीं कर सकतीं।

मालती ने पैनी दृष्टि से ताककर कहा—झूठे हो तुम, बिलकुल झूठे। मुझे तुम्हारा [illegible] निस्सार मालूम होता है कि तुम नारी-हृदय तक पहुंच जाते हो।

दोनों नाले के किनारे-किनारे चले जा रहे थे। बारह बज चुके थे, पर अब [illegible] की इच्छा थी, न लौटने की। आज के सम्भाषण में उसे एक ऐसा आनन्द आ रहा था, [illegible] बिलकुल नया था। उसने कितने ही विद्वानों और नेताओं को एक मुसकान में, [illegible] रसीले वाक्य में उल्लू बनाकर छोड़ दिया था। ऐसी बातों [illegible] आधार नहीं रख सकती थी। आज उसे वह कठोर, ठोस, पत्थर-से [illegible] से चिनगारियां निकाल रही थी और उसकी कठोरता उसे [illegible]

धायं की आवाज़ हुई। एक लालसर नाले पर उड़ा जा रहा था। [illegible] चोट खाकर भी कुछ दूर उड़ी, फिर बीच धार में गिर पड़ी [illegible]

'अब?'

'अभी जाकर लाता हूं। जाती कहां है?'

यह कहने के साथ ही वह रेत में दौड़े [illegible] और बहाव की ओर तैरने लगे, मगर अब [illegible] चिड़िया मरकर भी जैसे उड़ी जा रही थी।

सहसा उन्होंने देखा, एक युवती किनारे की एक झोंपड़ी से निकली, चिड़िया को वहते देखकर साड़ी को जांघों तक चढ़ाया और पानी में घुस पड़ी। एक क्षण में उसने चिड़िया पकड़ ली और मेहता को दिखाती हुई बोली—पानी से निकल आओ बाबूजी, तुम्हारी चिड़िया यह है। मेहता युवती की चपलता और साहस देखकर मुग्ध हो गये। तुरन्त किनारे की ओर हाथ चलाये और दो मिनट में युवती के पास जा खड़े हुए।

युवती का रंग था तो काला और वह भी गहरा, कपड़े बहुत ही मैले और फूहड़, आभूषण के नाम पर केवल हाथों में दो-दो मोटी चूड़ियां, सिर के बाल उलझे, अलग-अलग। मुखमण्डल का कोई भाग ऐसा नहीं, जिसे सुन्दर या सुघड़ कहा जा सके, लेकिन उस स्वच्छ, निर्मल जलवायु ने उसके कालेपन में ऐसा लावण्य भर दिया था और प्रकृति की गोद में पलकर उसके अंग इतने सुडौल, सुगठित और स्वच्छन्द हो गये थे कि यौवन का चित्र खींचने के लिए उससे सुन्दर कोई रूप न मिलता। उसका सबल स्वास्थ्य जैसे मेहता के मन में बल और तेज भर रहा था।

मेहता ने उसे धन्यवाद देते हुए कहा—तुम बड़े मौके से पहुंच गयीं, नहीं मुझे न जाने कितनी दूर तैरना पड़ता।

युवती ने प्रसन्नता से कहा—मैंने तुम्हें तैरते आते देखा, तो दौड़ी। शिकार खेलने आये होंगे?

'हां, आये तो थे शिकार ही खेलने, मगर दोपहर हो गया और यही चिड़िया मिली है।'

'तेंदुआ मारना चाहो, तो मैं उसका ठौर दिखा दूं। रात को यहां रोज़ पानी पीने आता है। कभी-कभी दोपहर में भी आ जाता है।'

फिर ज़रा सकुचाकर सिर झुकाये बोली—उसकी खाल हमें देनी पड़ेगी। चलो मेरे द्वार पर। वहां पीपल की छाया है। यहां धूप में कब तक खड़े रहोगे? कपड़े भी तो गीले हो गये हैं।

मेहता ने उसकी देह में चिपकी हुई गीली साड़ी की ओर देखकर कहा—तुम्हारे कपड़े भी तो गीले हैं।

उसने लापरवाही में कहा—ऊंह, हमारा क्या, हम तो जंगल के हैं। दिन-दिन भरी धूप और पानी में खड़े रहते हैं। तुम थोड़े ही रह सकते हो।

लड़की कितनी समझदार है और बिलकुल गंवार।

'तुम खाल लेकर क्या करोगी?'

'हमारे दादा बाजार में बेचते हैं। यही तो हमारा काम है।'

'लेकिन दोपहरी यहां काटें, तो तुम खिलाओगी क्या?'

युवती ने लजाते हुए कहा—तुम्हारे खाने लायक हमारे घर में क्या है? मक्के की रोटियां खाओ, तो धरी हैं। चिड़िये का सालन पका दूंगी। तुम बताते जाना, जैसे बनाना हो। थोड़ा-सा दूध भी है। हमारी गैया को एक बार तेंदुए ने घेरा था। उसे सींगों से भगाकर भाग आयी, तब से तेंदुआ उससे डरता है।

'लेकिन मैं अकेला नहीं हूं। मेरे साथ एक औरत भी है।'

'तुम्हारी घरवाली होगी?'

'नहीं, घरवाली तो अभी नहीं है, जान-पहचान की है।'

'तो मैं दौड़कर उनको बुला लाती हूं। तुम चलकर छांह में बैठो।'

'नहीं-नहीं, मैं बुला लाता हूं।'

'तुम थक गये होंगे। शहर का रहैया जंगल में काहे आते होंगे? हम तो जंगली आदमी हैं। किनारे ही तो खड़ी होंगी।'

जब तक मेहता कुछ बोलें, वह हवा हो गयी। मेहता ऊपर चढ़कर पीपल की छांह में बैठे। इस स्वच्छन्द जीवन से उनके मन में अनुराग उत्पन्न हुआ। सामने की पर्वतमाला दर्शन-तत्त्व की भांति

गम्य और अत्यन्त फैली हुई, मानो ज्ञान का विस्तार कर रही हो, मानो आत्मा उस ज्ञान को, उस प्रकाश को, उस अगम्यता को, उसके प्रत्यक्ष विराट् रूप में देख रही हो। दूर के एक वहुत ऊंचे शिखर पर एक छोटा-सा मन्दिर था, जो उस अगम्यता में वुद्धि की भांति ऊंचा, पर खोया हुआ-सा खड़ा था, मानो वहां तक पर मारकर पक्षी विश्राम लेना चाहता है और कहीं स्थान नहीं पाता।

मेहता इन्हीं विचारों में डूवे हुए थे कि युवती मिस मालती को साथ लिये आ पहुंची। एक वन-पुष्प की भांति धूप में खिली हुई, दूसरी गमले के फूल की भांति धूप में मुरझायी और निर्जीव।

मालती ने वेदिली के साथ कहा—पीपल की छांह वहुत अच्छी लग रही है क्या? और यहां भूख के मारे प्राण निकले जा रहे हैं।

युवती दो वड़े-वड़े मटके उठा लायी और वोली—तुम तव तक यहीं वैठो, मैं अभी दौड़कर पानी लाती हूं, फिर चूल्हा जला दूंगी, और मेरे हाथ का खाओ, तो मैं एक छन में रोटियां सेक दूंगी, नहीं, अपने आप सेक लेना। गेहूं का आटा मेरे घर में नहीं है और यहां कहीं कोई दुकान भी नहीं है कि ला दूं।

मालती को मेहता पर क्रोध आ रहा था। वोली—तुम यहां क्यों आकर पड़ रहे?

मेहता ने चिढ़ाते हुए कहा—एक दिन ज़रा इस जीवन का आनन्द भी तो उठाओ। देखो, मक्के की रोटियों में कितना स्वाद है।

'मुझसे मक्के की रोटियां खायी ही न जायेंगी, और किसी तरह निगल भी जाऊं, तो हज़म न होंगी। तुम्हारे साथ आकर मैं वहुत पछता रही हूं। रास्ते-भर दौड़ा के मार डाला, और अव यहां लाकर पटक दिया।'

मेहता ने कपड़े उतार दिये थे और केवल एक नीला जांघिया पहने हुए वैठे थे। युवती को मटके ले जाते देखा, तो उसके हाथ से मटके छीन लिये और कुएं पर पानी भरने चले। दर्शन के गहरे अध्ययन में भी उन्होंने अपने स्वास्थ्य की रक्षा की थी और दोनों मटके लेकर चलते हुए उनकी मांसल और चौड़ी छाती और मछलीदार जांघें किसी यूनानी प्रतिमा के सुगठित अंगों की भांति उनके पुरुषार्थ का परिचय दे रही थीं। युवती उन्हें पानी खींचते हुए अनुराग-भरी आंखों से देख रही थी। वह अव दया के पात्र नहीं, श्रद्धा के पात्र हो गये थे।

कुआं वहुत गहरा था, कोई साठ हाथ, मटके भारी थे और मेहता कसरत का अभ्यास करते रहने पर भी एक मटका खींचते-खींचते शिथिल हो गये। युवती ने दौड़कर उनके हाथ से रस्सी छीन ली और वोली—तुमसे न खिंचेगा। तुम जाकर खाट पर वैठो, मैं खींचे लेती हूं।

मेहता अपने पुरुषत्व का यह अपमान न सह सके। रस्सी उसके हाथ से फिर ले ली, और ज़ोर मारकर एक क्षण में दूसरा मटका भी खींच लिया। और दोनों हाथों में दोनों मटके लिये, आकर झोंपड़ी के द्वार पर खड़े हो गये। युवती ने चटपट आग जलायी, लालसर के पंख झुलस डाले, छुरे से उसकी वोटियां वनायीं और चूल्हे में आग जलाकर मांस चढ़ा दिया और चूल्हे के दूसरे ऐले पर कढ़ाई में दूध उवालने लगी।

और मालती भौंहें चढ़ाये, खाट पर खिन्न-मन पड़ी इस तरह यह दृश्य देख रही थी, मानो उसके ऑपरेशन की तैयारी हो रही हो।

मेहता झोंपड़ी के द्वार पर खड़े होकर, युवती के गृह-कौशल को अनुरक्त नेत्रों से देखते हुए वोले—मुझे भी तो कोई काम वताओ, मैं क्या करूं?

युवती ने मीठी झिड़की के साथ कहा—तुम्हें कुछ नहीं करना है, जाकर वाई के पास वैठो, वेचारी वहुत भूखी है। दूध गरम हुआ जाता है, उसे पिला देना।

उसने एक घड़े से आटा निकाला और गूंधने लगी। मेहता उसके अंगों का विलास देखते रहे। युवती भी रह-रहकर उन्हें कनखियों से देखकर अपना काम करने लगती थी।

मालती ने पुकारा—तुम वहां क्या खड़े हो? मेरे सिर में ज़ोर का दर्द हो रहा है। आधा सिर ऐसा फटा पड़ता है, जैसे गिर जायेगा।

मेहता ने आकर कहा—मालूम होता है, धूप लग गयी है।

'मैं क्या जानती थी, तुम मुझे मार डालने के लिए यहां ला रहे हो।'

'तुम्हारे साथ कोई दवा भी तो नहीं है।'

'क्या मैं किसी मरीज़ को देखने आ रही थी, जो दवा लेकर चलती? मेरा एक दवाओं का बक्स है, वह सेमरी में है। उफ़! सिर फटा जाता है।'

मेहता ने उसके सिर की ओर ज़मीन पर बैठकर धीरे-धीरे उसका सिर सहलाना शुरू किया। मालती ने आंखें बन्द कर लीं।

युवती हाथों में आटा भरे, सिर के बाल बिखेरे, आंखें धुएं से लाल और सजल, सारी देह पसीने में तर, जिससे उसका उभरा हुआ वक्ष साफ़ झलक रहा था, आकर खड़ी हो गयी और मालती को आंखें बन्द किये पड़ी देखकर बोली— बाई को क्या हो गया है?'

मेहता बोले—सिर में बड़ा दर्द है।

'पूरे सिर में है कि आधे में?'

'आधे में बतलाती हैं।'

'दायीं ओर है कि बायीं ओर?'

'बायीं ओर।'

'मैं अभी दौड़ के एक दवा लाती हूं। घिसकर लगाते ही अच्छा हो जायेगा।'

'तुम इस धूप में कहां जाओगी?'

युवती ने सुना ही नहीं। वेग से एक ओर जाकर पहाड़ियों में छिप गयी। कोई आधा घण्टा बाद मेहता ने उसे ऊंची पहाड़ी पर चढ़ते देखा। दूर से बिलकुल गुड़िया-सी लग रही थी। मन में सोचा—इस जंगली छोकरी में सेवा का कितना भाव और कितना व्यावहारिक ज्ञान है। लू और धूप में आसमान पर चढ़ी चली जा रही है।

मालती ने आंखें खोलकर देखा—कहां गयी वह कलूटी। ग़ज़ब की काली है, जैसे आबनूस का कुन्दा हो। इसे भेज दो, रायसाहब से कह आये, कार यहां भेज दें। इस तपिश में मेरा दम निकल जायेगा।

'कोई दवा लेने गयी है। कहती है, उससे आधा-सीसी का दर्द बहुत जल्द आराम हो जाता है।'

'इनकी दवाएं इन्हीं को फ़ायदा करती हैं, मुझे न करेंगी। तुम तो इस छोकरी पर लट्टू हो गये हो। कितने छिछोरे हो? जैसी रूह वैसे फ़रिश्ते।'

मेहता को कटु सत्य कहने में संकोच न होता था।

'कुछ बातें तो उसमें ऐसी हैं कि अगर तुममें होतीं, तो तुम सचमुच देवी हो जातीं।'

'उसकी खूबियां उसे मुबारक, मुझे देवी बनने की इच्छा नहीं।'

'तुम्हारी इच्छा हो, तो मैं जाकर कार लाऊं, यद्यपि कार यहां आ भी सकेगी, मैं नहीं कह सकता।'

'उस कलूटी को क्यों नहीं भेज देते?'

'वह तो दवा लेने गयी है, फिर भोजन पकायेगी।'

'तो आज आप उसके मेहमान हैं? शायद रात को भी यहीं रहने का विचार होगा। रात को शिकार भी तो अच्छे मिलते हैं।'

मेहता ने इस आरोप से चिढ़कर कहा—इस युवती के प्रति मेरे मन में जो प्रेम और श्रद्धा है, वह ऐसी है कि अगर मैं उसकी ओर वासना से देखूं, तो आंखें फूट जायें। मैं अपने किसी घनिष्ठ मित्र

के लिए भी इस धूप और लू में उस ऊंची पहाड़ी पर न जाता। और हम केवल घड़ी-भर के मेहमान हैं, यह वह जानती है। वह किसी ग़रीब औरत के लिए भी इसी तत्परता से दौड़ जायेगी। मैं विश्व-बन्धुत्व और विश्व-प्रेम पर केवल लेख लिख सकता हूं, केवल भाषण दे सकता हूं, वह उस प्रेम और त्याग का व्यवहार कर सकती है। कहने से करना कहीं कठिन है। इसे तुम भी जानती हो।

मालती ने उपहास भाव से कहा—बस-बस, वह देवी है। मैं मान गयी। उसके वक्ष में उभार है, नितम्बों में भारीपन है, देवी होने के लिए और क्या चाहिए।

मेहता तिलमिला उठे। तुरन्त उठे और कपड़े पहने, जो सूख गये थे। बन्दूक़ उठायी और चलने को तैयार हुए। मालती ने फुंकार मारी—तुम नहीं जा सकते, मुझे अकेली छोड़कर।

'तब कौन जायेगा?'

'वही, तुम्हारी देवी।'

मेहता हतबुद्धि-से खड़े थे। नारी पुरुष पर कितनी आसानी से विजय पा सकती है, इसका आज उन्हें जीवन में पहला अनुभव हुआ।

वह दौड़ी हांफती चली आ रही थी। वही कलूटी युवती, हाथ में एक झाड़ लिये हुए। समीप आकर मेहता को कहीं जाने को तैयार देखकर बोली—मैं वह जड़ी खोज लायी। अभी घिसकर लगाती हूं, लेकिन तुम कहां जा रहे हो? मांस तो पक गया होगा, मैं रोटियां सेक देती हूं। दो-एक खा लेना। बाई दूध पी लेगी। ठण्डा हो जाये, तो चले जाना।

उसने निस्संकोच भाव से मेहता के अचकन की बटनें खोल दीं। मेहता अपने को बहुत रोके हुए थे। जी होता था, इस गंवारिन के चरणों को चूम लें।

मालती ने कहा—अपनी दवाई रहने दो। नदी के किनारे, बरगद के नीचे हमारी मोटरकार खड़ी है। वहां और लोग होंगे। उनसे कहना, कार यहां लायें। दौड़ी हुई जा।

युवती ने दीन नेत्रों से मेहता को देखा। इतनी मेहनत से बूटी लायी, उसका यह अनादर! इस गंवारिन की दवा इन्हें नहीं जंची, तो न सही, उसका मन रखने को ही जरा-सी लगवा लेतीं, तो क्या होता!

उसने बूटी ज़मीन पर रखकर पूछा—तब तक तो चूल्हा ठण्डा हो जायेगा बाईजी। कहो तो रोटियां सेककर रख दूं। बाबूजी खाना खा लें, तुम दूध पी लो और दोनों जने आराम करो। तब तक मैं मोटरवाले को बुला लाऊंगी।

वह झोंपड़ी में गयी, बुझी हुई आग फिर जलायी। देखा, तो मांस उबल गया था। कुछ जल भी गया था। जल्दी-जल्दी रोटियां सेंकीं, दूध गरम था, उसे ठण्डा किया और एक कटोरे में मालती के पास लायी। मालती ने कटोरे के भद्देपन पर मुंह बनाया, लेकिन दूध त्याग न सकी। मेहता झोंपड़ी के द्वार पर बैठकर एक थाली में मांस और रोटियां खाने लगे। युवती खड़ी पंखा झल रही थी।

मालती ने युवती से कहा—उन्हें खाने दो। कहीं भागे नहीं जाते हैं। तू जाकर गाड़ी ला।

युवती ने मालती की ओर एक बार सवाल की आंखों से देखा, यह क्या चाहती हैं? इनका आशय क्या है? उसे मालती के चेहरे पर रोगियों की-सी नम्रता और कृतज्ञता और याचना न दिखाई दी। उसकी जगह अभिमान और प्रमाद की झलक थी। गंवारिन मनोभावों के पहचानने में चतुर थी। बोली—मैं किसी की लौंडी नहीं हूं बाईजी! तुम बड़ी हो, अपने घर की बड़ी हो। मैं तुमसे कुछ मांगने तो नहीं जाती। मैं गाड़ी लेने न जाऊंगी।

मालती ने डांटा—अच्छा, तूने गुस्ताखी पर कमर बांधी! बता, तू किसके इलाक़े में रहती है?

'यह रायसाहब का इलाका है।'

'तो तुझे उन्हीं रायसाहब के हाथों हण्टरों से पिटवाऊंगी।'

'मुझे पिटवाने से तुम्हें सुख मिले तो पिटवा लेना बाईजी। कोई रानी-महारानी

लस्कर भेजनी पड़ेगी।'

मेहता ने दो-चार कौर निगले थे कि मालती की यह बातें सुनीं। कौर कण्ठ में अटक गया जल्दी से हाथ धोया और बोले—यह नहीं जायेगी। मैं जा रहा हूं।

मालती भी खड़ी हो गयी—उसे जाना पड़ेगा।

मेहता ने अंग्रेज़ी में कहा—उसका अपमान करके तुम अपना सम्मान बढ़ा नहीं रही हो मालती।

मालती ने फटकार बतायी—ऐसी ही लौंडियां मरदों को पसन्द आती हैं, जिनमें और कोई गुण हो या न हो, उनकी टहल दौड़-दौड़कर प्रसन्न मन से करें और अपना भाग्य सराहें कि इस पुरुष ने मुझसे यह काम करने को तो कहा। वह देवियां हैं, शक्तियां हैं, विभूतियां हैं। मैं समझती थी, वह पुरुषत्व तुममें कम-से-कम नहीं है, लेकिन अन्दर से, संस्कारों से, तुम भी वही बर्बर हो।

मेहता मनोविज्ञान के पण्डित थे। मालती के मनोरहस्यों को समझ रहे थे। ईर्ष्या का ऐसा अनोखा उदाहरण उन्हें कभी न मिला था। उस रमणी में, जो इतनी मृदु-स्वभाव, इतनी उदार, इतनी प्रसन्न-मुख थी, ईर्ष्या की ऐसी प्रचण्ड ज्वाला!

बोले—कुछ भी कहो, मैं उसे न जाने दूंगा। उसकी सेवाओं और कृपाओं का यह पुरस्कार देकर मैं अपनी नज़रों में नीच नहीं बन सकता।

मेहता के स्वर में कुछ ऐसा तेज था कि मालती धीरे से उठी और चलने को तैयार हो गयी। उसने जलकर कहा—अच्छा, तो मैं ही जाती हूं, तुम उसके चरणों की पूजा करके पीछे आना।

मालती दो-तीन क़दम चली गयी, तो मेहता ने युवती से कहा—अब मुझे आज्ञा दो बहन, तुम्हारा यह नेह, तुम्हारी निःस्वार्थ सेवा हमेशा याद रहेगी।

युवती ने दोनों हाथों से सजल नेत्र होकर उन्हें प्रणाम किया और झोंपड़ी के अन्दर चली गयी।

* * *

दूसरी टोली रायसाहब और खन्ना की थी। रायसाहब तो अपने उसी रेशमी कुरते और रेशमी चादर में थे, मगर खन्ना ने शिकारी सूट डाला था, जो शायद आज ही के लिए बनवाया गया था, क्योंकि खन्ना को असामियों के शिकार से इतनी फ़ुर्सत कहां थी कि जानवरों का शिकार करते। खन्ना ठिगने, इकहरे, रूपवान आदमी थे। गेहुंआ रंग, बड़ी-बड़ी आंखें, मुंह पर चेचक के दाग़, बातचीत में बड़े कुशल।

कुछ देर चलने के बाद खन्ना ने मिस्टर मेहता का ज़िक्र छेड़ दिया, जो कल से ही उनके मस्तिष्क में राहु की भांति समाये हुए थे।

बोले— यह मेहता भी कुछ अजीब आदमी है। मुझे तो कुछ बना हुआ मालूम होता है।

रायसाहब मेहता की इज़्ज़त करते थे और उन्हें सच्चा और निष्कपट आदमी समझते थे, पर खन्ना से लेन-देन का व्यवहार था, कुछ स्वभाव से शान्तिप्रिय भी थे, विरोध न कर सके। बोले— मैं तो उन्हें केवल मनोरंजन की वस्तु समझता हूं। कभी उनसे बहस नहीं करता और करना भी चाहूं, तो उतनी विद्या कहां से लाऊं? जिसने जीवन के क्षेत्र में कभी क़दम ही नहीं रखा, वह अगर जीवन के विषय में कोई नया सिद्धान्त अलापता है, तो मुझे उस पर हंसी आती है। मज़े से एक हज़ार माहवार फटकारते हैं। न जोरू, न जाता, न कोई चिन्ता, न बाधा, वह दर्शन न बघारे, तो कौन बघारे? आप निर्द्वन्द्व रहकर जीवन को सम्पूर्ण बनाने का स्वप्न देखते हैं। ऐसे आदमी से क्या बहस की जाये?

'मैंने सुना, चरित्र का अच्छा नहीं है।'

'बेफ़िक्री में चरित्र अच्छा रह ही कैसे सकता है? समाज में रहो और समाज के कर्तव्यों और मर्यादाओं का पालन करो, तब पता चले।'

'मालती न जाने क्या देखकर उन पर लट्टू हुई जाती है।'

'मैं समझता हूं, वह केवल तुम्हें जला रही है।'

'मुझे वह क्या जलायेगी? वेचारी! मैं उसे खिलौने से ज़्यादा नहीं समझता।'

'यह तो न कहो मिस्टर खन्ना, मिस मालती पर जान तो देते हो तुम।'

'यों तो मैं आपको भी यही इल्ज़ाम दे सकता हूं।'

'मैं सचमुच खिलौना समझता हूं। आप उन्हें प्रतिमा वनाये हुए हैं।'

खन्ना ने ज़ोर से क़हक़हा मारा, हालांकि हंसी की कोई वात न थी।

'अगर एक लोटा जल चढ़ा देने से वरदान मिल जाये, तो क्या वुरा है?'

अव की रायसाहव ने ज़ोर से क़हक़हा मारा, जिसका कोई प्रयोजन न था।

'तव आपने उस देवी को समझा ही नहीं। आप जितनी ही उसकी पूजा करेंगे, उतना ही वह आपसे दूर भागेगी। जितना ही दूर भागियेगा, उतना ही आपकी ओर दौड़ेगी।'

'तव तो उन्हें आपकी ओर दौड़ना चाहिए था।'

'मेरी ओर! मैं उस रसिक-समाज से विलकुल वाहर हूं मिस्टर खन्ना, सच कहता हूं। मुझमें जितनी वुद्धि, जितना वल है, वह इस इलाक़े के प्रवन्ध में ही ख़र्च हो जाता है। घर के जितने प्राणी हैं, सभी अपनी-अपनी धुन में मस्त, कोई उपासना में, कोई विषय-वासना में। कोऊ काहू में मगन, कोऊ काहू में मगन। और इन सव अजगरों को भक्ष्य देना मेरा काम है, कर्तव्य है। मेरे वहुत से ताल्लुक़ेदार भाई भोग-विलास करते हैं, यह सव मैं जानता हूं। मगर वह लोग घर फूंककर तमाशा देखते हैं। क़र्ज़ का वोझ सिर पर लदा जा रहा है, रोज़ डिग्रियां हो रही हैं। जिससे लेते हैं, उसे देना नहीं जानते, चारों तरफ़ वदनाम। मैं तो ऐसी ज़िन्दगी से मर जाना अच्छा समझता हूं। मालूम नहीं, किस संस्कार से मेरी आत्मा में ज़रा-सी जान वाक़ी रह गयी, जो मुझे देश और समाज के वन्धन में वांधे हुए है। सत्याग्रह-आन्दोलन छिड़ा। मेरे सारे भाई शराव-कवाव में मस्त थे। मैं अपने को न रोक सका। जेल गया और लाखों रुपये की ज़ेरवारी उठायी और अभी तक उसका तावान दे रहा हूं। मुझे उसका पछतावा नहीं है, विलकुल नहीं। मुझे उसका गर्व है। मैं उस आदमी को आदमी नहीं समझता, जो देश और समाज की भलाई के लिए उद्योग न करे और वलिदान न करे। मुझे क्या अच्छा लगता है कि निर्जीव किसानों का रक्त चूसूं और अपने परिवार वालों की वासनाओं की तृप्ति के साधन जुटाऊं, मगर करूं क्या? जिस व्यवस्था में पला और जिया, उससे घृणा होने पर भी उसका मोह त्याग नहीं सकता और उसी चरखे में रात-दिन पड़ा रहता हूं कि किसी तरह इज़्ज़त-आवरू वची रहे और आत्मा की हत्या न होने पाये। ऐसा आदमी मिस मालती क्या, किसी भी मिस के पीछे नहीं पड़ सकता, और पड़े, तो उसका सर्वनाश ही समझिये। हां, थोड़ा-सा मनोरंजन कर लेना दूसरी वात है।'

मिस्टर खन्ना भी साहसी आदमी थे, संग्राम में आगे वढ़ने वाले। दो वार जेल हो आये थे। किसी से दवना न जानते थे। खद्दर न पहनते थे और फ्रांस की शराव पीते थे। अवसर पड़ने पर वड़ी-वड़ी तकलीफ़ें झेल सकते थे। जेल में शराव छुई तक नहीं, और ए क्लास में रहकर भी सी क्लास की रोटियां खाते रहे। हालांकि उन्हें हर तरह का आराम मिल सकता था, मगर रण-क्षेत्र में जानेवाला रथ भी तो विना तेल के नहीं चल सकता। उनके जीवन में थोड़ी-सी रसिकता लाज़िमी थी। वोले—आप संन्यासी वन सकते हैं, मैं तो नहीं वन सकता। मैं तो समझता हूं, जो भोगी नहीं है, वह संग्राम में भी पूरे उत्साह से नहीं जा सकता। जो रमणी से प्रेम नहीं कर सकता, उसके देश-प्रेम में मुझे विश्वास नहीं।

रायसाहव मुस्कराये—आप मुझी पर आवाज़ें कसने लगे।

'आवाज़ नहीं है, तत्त्व की वात है।'

'शायद हो।'

'आप अपने दिल के अन्दर पैठकर देखिये, तो पता चले।'

'मैंने तो पैठकर देखा है, और मैं आपको विश्वास दिलाता हूं, वहां और चाहे जितनी बुराइयां हों, विषय की लालसा नहीं है।'

'तब मुझे आपके ऊपर दया आती है। आप जो इतने दुखी और निराश और चिन्तित हैं, इसका एकमात्र कारण आपका निग्रह है। मैं तो यह नाटक खेलकर रहूंगा, चाहे दुखान्त ही क्यों न हो, वह मुझसे मज़ाक़ करती है, दिखाती है कि मुझे तेरी परवाह नहीं है, लेकिन मैं हिम्मत हारनेवाला मनुष्य नहीं हूं। मैं अब तक उसका मिज़ाज नहीं समझ पाया। कहां निशाना ठीक बैठेगा, इसका निश्चय न कर सका।'

'लेकिन वह कुन्जी आपको शायद ही मिले। मेहता शायद आपसे बाज़ी मार ले जायें।'

एक हिरन कई हिरनियों के साथ चर रहा था, बड़ी सींगोंवाला, बिलकुल काला। रायसाहब ने निशाना बांधा। खन्ना ने रोका—क्यों हत्या करते हो यार? बेचारा चर रहा है, चरने दो। धूप तेज़ हो गयी। आइए, कहीं बैठ जायें। आपसे कुछ बातें करनी हैं।

रायसाहब ने बन्दूक़ चलायी, मगर हिरन भाग गया। बोले—एक शिकार मिला भी, तो निशाना ख़ाली गया।

'एक हत्या से बचे।'

'आपके इलाक़े में ऊख होती है?'

'बड़ी कसरत से।'

'तो फिर क्यों न हमारे शुगर मिल में शामिल हो जाइये। हिस्से धड़ाधड़ बिक रहे हैं। आप ज़्यादा नहीं, एक हज़ार हिस्से ख़रीद लें।'

'ग़ज़ब किया, मैं इतने रुपये कहां से लाऊंगा?'

'इतने नामी इलाक़ेदार और आपको रुपयों की कमी! कुल पचास हज़ार ही तो होते हैं। उनमें भी अभी पच्चीस फ़ीसदी ही देना है।'

'नहीं भाई साहब, मेरे पास इस वक़्त बिलकुल रुपये नहीं हैं।'

'रुपये जितने चाहें, मुझसे लीजिये। बैंक आपका है। हां, अभी आपने अपनी ज़िन्दगी इन्श्योर्ड न करायी होगी। मेरी कम्पनी में एक अच्छी-सी पालिसी लीजिये। सौ-दो सौ रुपये तो आप बड़ी आसानी से हर महीने दे सकते हैं। और इकट्ठी रक़म मिल जायेगी—चालीस-पचास हज़ार। लड़कों के लिए इससे अच्छा प्रबन्ध आप नहीं कर सकते। हमारी नियमावली देखिये। हम पूर्ण सहकारिता के सिद्धान्त पर काम करते हैं। दफ़्तर और कर्मचारियों के ख़र्च के सिवा नफ़े की एक पाई भी किसी की जेब में नहीं जाती। आपको आश्चर्य होगा कि इस नीति से कम्पनी चल कैसे रही है! और मेरी सलाह से थोड़ा-सा स्पेकुलेशन का काम भी शुरू कर दीजिये। यह जो आज सैकड़ों करोड़पति बने हुए हैं, सब इसी स्पेकुलेशन से बने हैं। रुई, शक्कर, गेहूं, रबर किसी जिन्स का सट्टा कीजिये। मिनटों में लाखों का वारा-न्यारा होता है। काम ज़रा अटपटा है। बहुत-से लोग गच्चा खा जाते हैं, लेकिन वही, जो अनाड़ी हैं। आप जैसे अनुभवी, सुशिक्षित और दूरन्देश लोगों के लिए इससे ज़्यादा नफ़े का काम ही नहीं। बाज़ार का उतार-चढ़ाव कोई आकस्मिक घटना नहीं। इसका भी विज्ञान है। एक बार उसे ग़ौर से देख लीजिये, फिर क्या मजाल कि धोखा हो जाये।'

रायसाहब कम्पनियों पर अविश्वास करते थे, दो-एक बार इसका उन्हें कड़वा अनुभव हो भी चुका था, लेकिन मिस्टर खन्ना को उन्होंने अपनी आंखों से बढ़ते देखा था और उनकी कार्यक्षमता के क़ाइल हो गये थे। अभी दस साल पहले जो व्यक्ति बैंक में क्लर्क था, वह केवल अपने अध्यवसाय, पुरुषार्थ और प्रतिभा से शहर में पुजता था। उसकी सलाह की उपेक्षा न की जा सकती थी। इस विषय में अगर खन्ना उनके पथ-प्रदर्शक हो जायें, तो उन्हें बहुत कुछ कामयाबी हो सकती है। ऐसा अवसर क्यों छोड़ा जाये? तरह-तरह के प्रश्न करते रहे।

सहसा एक देहाती एक वड़ी-सी टोकरी में कुछ जड़ें, कुछ पत्तियां, कुछ फल लिये जाता नज़र आया।

खन्ना ने पूछा—अरे, क्या वेचता है?

देहाती सकपका गया। डरा, कहीं वेगार में न पकड़ जाये। वोला—कुछ तो नहीं मालिक! यही घास-पात है।

'क्या करेगा इनका?'

'वेचूंगा मालिक! जड़ी-वूटी है।'

'कौन-कौन-सी जड़ी-वूटी है, वता?'

देहाती ने अपना औषधालय खोलकर दिखलाया। मामूली चीज़ें थीं, जो जंगल के आदमी उखाड़कर ले जाते हैं और शहर में अत्तारों के हाथ दो-चार आने में वेच आते हैं, जैसे मकोय, कंघी, सहदेइया, कुकरौंधे, धतूरे के वीज, मदार के फूल, करजे, घुमची आदि। हरएक चीज़ दिखाता था और रटे हुए शब्दों में उसके गुण भी वयान करता जाता था! यह मकोय है सरकार! ताप हो, मन्दाग्नि हो, तिल्ली हो, धड़कन हो, शूल हो, खांसी हो, एक खोराक में आराम हो जाता है। यह धतूरे के वीच हैं मालिक! गठिया हो, वाई हो.....

खन्ना ने दाम पूछा—उसने आठ आने कहे। खन्ना ने एक रुपया फेंक दिया और उसे पड़ाव तक रख आने का हुक्म दिया। ग़रीव ने मुंह-मांगा दाम ही नहीं पाया, उसका दुगुना पाया। आशीर्वाद देता चला गया।

रायसाहव ने पूछा—आप यह घास-पात लेकर क्या करेंगे?

खन्ना ने मुस्कराकर कहा—इनकी अशर्फ़ियां वनाऊंगा। मैं कीमियागर हूं। यह आपको शायद नहीं मालूम।

'तो यार, वह मन्त्र हमें सिखा दो।'

'हां-हां, शौक़ से। मेरी शागिर्दी कीजिये। पहले सवा सेर लड्डू लाकर चढ़ाइये, तव वताऊंगा। वात यह है कि मेरा तरह-तरह के आदमियों से सावक़ा पड़ता है। कुछ ऐसे लोग भी आते हैं, जो जड़ी-वूटियों पर जान देते हैं। उनको इतना मालूम हो जाये कि यह किसी फ़क़ीर की दी हुई वूटी है, फिर आपकी ख़ुशामद करेंगे, नाक रगड़ेंगे, और आप यह चीज़ उन्हें दे दें, हमेशा के लिए आपके ऋणी हो जायेंगे। एक रुपये में अगर दस-वीस वुद्धुओं पर एहसान का नमदा कसा जा सके, तो क्या वुरा है? ज़रा-से एहसान से वड़े-वड़े काम निकल जाते हैं।'

रायसाहव ने कुतूहल से पूछा— मगर इन वूटियों के गुण आपको याद कैसे रहेंगे?

खन्ना ने क़हक़हा मारा— आप भी रायसाहव! वड़े मज़े की वातें करते हैं। जिस वूटी में जो गुण चाहे वता दीजिये, वह आपकी लियाक़त पर मुनहसर है। सेहत तो रुपये में आठ आने विश्वास से होती है। आप जो इन वड़े-वड़े अफ़्सरों को देखते हैं, और इन लम्वी पूंछवाले विद्वानों को, और इन रईसों को, ये सव अन्धविश्वासी होते हैं। मैं तो वनस्पति-शास्त्र के प्रोफ़ेसर को जानता हूं, जो कुकरौंधे का नाम भी नहीं जानते। इन विद्वानों का मज़ाक़ तो हमारे स्वामीजी खूव उड़ाते हैं। आपको तो कभी उनके दर्शन न हुए होंगे। अवकी आप आयेंगे, उनसे मिलाऊंगा। जव से मेरे वग़ीचे में ठहरे हैं, रात-दिन लोगों का तांता लगा रहता है। माया तो उन्हें छू भी नहीं गयी। केवल एक वार दूध पीते हैं। ऐसा विद्वान् महात्मा मैंने आज तक नहीं देखा। न जाने कितने वर्ष हिमालय पर तप करते रहे। पूरे सिद्ध पुरुष हैं। आपको देखते ही आपका भूत-भविष्य सव कह सुनायेंगे। ऐसे प्रसन्न मुख हैं कि देखते ही मन खिल उठता है। ताज्जुव तो यह है कि ख़ुद इतने वड़े महात्मा हैं, मगर संन्यास और त्याग, मन्दिर और मठ, सम्प्रदाय और पन्थ, इन सवको ढोंग कहते हैं, पाखण्ड कहते हैं, रूढ़ियों के वन्धन को तोड़ो और मनुष्य वनो, देवता वनने का ख़याल छोड़ो। देवता वनकर तुम मनुष्य न रहोगे।

रायसाहब के मन में शंका हुई। महात्माओं में उन्हें भी वह विश्वास था, जो प्रभुतावालों में आमतौर पर होता है। दुखी प्राणी को आत्मचिन्तन में जो शान्ति मिलती है, उसके लिए वह भी लालायित रहते थे। जब आर्थिक कठिनाइयों से निराश हो जाते, मन में आता, संसार से मुंह मोड़कर एकान्त में जा बैठें और मोक्ष की चिन्ता करें। संसार के बन्धनों को वह भी साधारण मनुष्यों की भांति आत्मोन्नति के मार्ग की बाधाएं समझते थे और इनसे दूर हो जाना ही उनके जीवन का भी आदर्श था, लेकिन संन्यास और त्याग के बिना बन्धनों को तोड़ने का और क्या उपाय है?

'लेकिन जब वह संन्यास को ढोंग कहते हैं, तो खुद क्यों संन्यास लिया है?'

'उन्होंने संन्यास कब लिया है साहब, वह तो कहते हैं—आदमी को अन्त तक काम करते रहना चाहिए। विचार-स्वातन्त्र्य उनके उपदेशों का तत्त्व है।'

'मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है। विचार-स्वातन्त्र्य का आशय क्या है?

'समझ में तो मेरे भी कुछ नहीं आता, अबकी आइये, तो उनसे बातें हों। वह प्रेम को जीवन का सत्य कहते हैं, और इसकी ऐसी सुन्दर व्याख्या करते हैं कि मन मुग्ध हो जाता है।'

'मिस मालती को उनसे मिलाया या नहीं?'

'आप भी दिल्लगी करते हैं। मालती को भला इनसे क्या मिलाता...'

वाक्य पूरा न हुआ था कि वह सामने झाड़ी में सरसराहट की आवाज़ सुनकर चौंक पड़े और प्राण-रक्षा की प्रेरणा से रायसाहब के पीछे आ गये। झाड़ी में से एक तेंदुआ निकला और मन्द गति से सामने की ओर चला।

रायसाहब ने बन्दूक़ उठायी और निशाना बांधना चाहते थे कि खन्ना ने कहा—यह क्या करते हैं आप? ख्वाहमख्वाह उसे छेड़ रहे हैं। कहीं लौट पड़े तो?

'लौट क्या पड़ेगा, वहीं ढेर हो जायेगा।'

'तो मुझे उस टीले पर चढ़ जाने दीजिये। मैं शिकार का ऐसा शौक़ीन नहीं हूं।'

'तब क्या शिकार खेलने चले थे?'

'शामत और क्या।'

रायसाहब ने बन्दूक़ नीचे कर ली।

'बड़ा अच्छा शिकार निकल गया। ऐसे अवसर कम मिलते हैं।'

'मैं तो अब यहां नहीं ठहर सकता। ख़तरनाक जगह है।'

'एकाध शिकार तो मार लेने दीजिये। ख़ाली हाथ लौटते शर्म आती है।'

'आप मुझे कृपा करके कार के पास पहुंचा दीजिये, फिर चाहे तेंदुए का शिकार कीजिये या चीते का।'

'आप बड़े डरपोक हैं मिस्टर खन्ना, सच।'

'व्यर्थ में अपनी जान ख़तरे में डालना बहादुरी नहीं है।'

'अच्छा, तो आप खुशी से लौट सकते हैं।'

'अकेला?'

'रास्ता बिलकुल साफ़ है।'

'जी नहीं। आपको मेरे साथ चलना पड़ेगा।'

रायसाहब ने बहुत समझाया, मगर खन्ना ने एक न मानी। मारे भय के उनका चेहरा पीला पड़ गया था। उस वक्त अगर झाड़ी में से एक गिलहरी भी निकल आती, तो वह चीख़ मारकर गिर पड़ते। बोटी-बोटी कांप रही थी। पसीने से तर हो गये थे। रायसाहब को लाचार होकर उनके साथ लौटना पड़ा।

जब दोनों आदमी बड़ी दूर निकल आये, तो खन्ना के होश ठिकाने आये।

बोले—ख़तरे से नहीं डरता, लेकिन ख़तरे के मुंह में उंगली डालना हिमाक़त है।

'अजी, जाओ भी। ज़रा-सा तेंदुआ देख लिया, तो जान निकल गयी।'

'मैं शिकार खेलना उस ज़माने का संस्कार समझता हूं, जब आदमी पशु था। तब से संस्कृति बहुत आगे बढ़ गयी है।'

'मैं मिस मालती से आपकी क़लई खोलूंगा।'

'मैं अहिंसावादी होना लज्जा की बात नहीं समझता।'

'अच्छा, तो यह आपका अहिंसावाद था। शाबाश!'

खन्ना ने गर्व से कहा—जी हां, यह मेरा अहिंसावाद था। आप बुद्ध और शंकर के नाम पर गर्व करते हैं और पशुओं की हत्या करते हैं, लज्जा आपको आनी चाहिए, न कि मुझे।

कुछ दूर दोनों फिर चुपचाप चलते रहे। तब खन्ना बोले—तो आप कब तक आयेंगे? मैं चाहता हूं, आप पालिसी का फ़ार्म आज ही भर दें और शक्कर के हिस्सों का भी। मेरे पास दोनों फ़ार्म भी मौजूद हैं।

रायसाहब ने चिन्तित स्वर में कहा—ज़रा सोच लेने दीजिये।

'इसमें सोचने की ज़रूरत नहीं।'

* * *

तीसरी टोली मिर्ज़ा खुर्शेद और मिस्टर तंखा की थी। मिर्ज़ा खुर्शेद के लिए भूत और भविष्य सादे काग़ज़ की भांति था। वह वर्तमान में रहते थे। न भूत का पछतावा था, न भविष्य की चिन्ता। जो कुछ सामने आ जाता था, उसमें जी-जान से लग जाते थे। मित्रों की मण्डली में वह विनोद के पुतले थे। कौंसिल में उनसे ज़्यादा उत्साही मेम्बर कोई न था। जिस प्रश्न के पीछे पड़ जाते, मिनिस्टरों को रुला देते। किसी के साथ रू-रियायत करना न जानते थे। बीच-बीच में परिहास भी करते जाते थे। उनके लिए आज जीवन था, कल का पता नहीं। ग़ुस्सेवर भी ऐसे थे कि ताल ठोंककर सामने आ जाते थे। नम्रता के सामने दण्डवत् करते थे, लेकिन जहां किसी ने शान दिखायी और यह हाथ धोकर उसके पीछे पड़े। न अपना लेना याद रखते थे, न दूसरों का देना। शौक़ था शाइरी का और शराब का। औरत केवल मनोरंजन की वस्तु थी। बहुत दिन हुए हृदय का दिवाला निकाल चुके थे।

मिस्टर तंखा दांव-पेच के आदमी थे, सौदा पटाने में, मुआमला सुलझाने में, अड़ंगा लगाने में, बालू से तेल निकालने में, गला दबाने में, दुम झाड़कर निकल जाने में बड़े सिद्धहस्त। कहिये रेत में नाव चला दें, पत्थर पर दूब उगा दें। ताल्लुक़ेदारों को महाजनों से क़र्ज़ दिलाना, नयी कम्पनियां खोलना, चुनाव के अवसर पर उम्मीदवार खड़े करना, यही उनका व्यवसाय था। ख़ासकर चुनाव के समय उनकी तक़दीर चमकती थी। किसी पोढ़े उम्मीदवार को खड़ा करते, दिलोजान से उसका काम करते और दस-बीस हज़ार बना लेते। जब कांग्रेस का ज़ोर था, तो कांग्रेस के उम्मीदवारों के सहायक थे। जब साम्प्रदायिक दल का ज़ोर हुआ, तो हिन्दूसभा की ओर से काम करने लगे, मगर इस उलट-फेर के समर्थन के लिए उनके पास ऐसी दलीलें थीं कि कोई उंगली न दिखा सकता था। शहर के सभी रईस, सभी हुक्काम, सभी अमीरों से उनका याराना था। दिल में चाहे लोग उनकी नीति पसन्द न करें, पर वह स्वभाव के इतने नम्र थे कि कोई मुंह पर कुछ न कह सकता था।

मिर्ज़ा खुर्शेद ने रुमाल से माथे का पसीना पोंछकर कहा—आज तो शिकार खेलने के लायक़ दिन नहीं है। आज तो कोई मुशाइरा होना चाहिए था।

वकील ने समर्थन किया— जी हां, वहीं बाग़ में। बड़ी बहार रहेगी।

थोड़ी देर के बाद मिस्टर तंखा ने मामले की बात छेड़ी।

'अबकी चुनाव में बड़े-बड़े गुल खिलेंगे। आपके लिए भी मुश्किल है।'

मिर्ज़ा विरक्त मन से बोले— अबकी मैं खड़ा न हूंगा।

तंखा ने पूछा— क्यों?

'मुफ़्त की बकबक कौन करे! फ़ायदा ही क्या! मुझे अब इस डेमाक्रेसी में भक्ति नहीं रही। ज़रा-सा काम और महीनों की बहस। हां, जनता की आंखों में धूल झोंकने के लिए अच्छा स्वांग है। इससे तो कहीं अच्छा है कि एक गवर्नर रहे, चाहे वह हिन्दुस्तानी हो या अंग्रेज़, इससे बहस नहीं। एक इंजिन जिस गाड़ी को बड़े मज़े से हज़ारों मील खींच ले जा सकता है, उसे दस हज़ार आदमी मिलकर भी उतनी तेज़ी से नहीं खींच सकते। मैं तो सारा तमाशा देखकर कौंसिल से बेज़ार हो गया हूं। मेरा बस चले, तो कौंसिल में आग लगा दूं। जिसे हम डेमाक्रेसी कहते हैं, वह व्यवहार में बड़े-बड़े व्यापारियों और ज़मींदारों का राज्य है, और कुछ नहीं। चुनाव में वही बाज़ी ले जाता है, जिसके पास रुपये हैं। रुपये के ज़ोर से उसके लिए सभी सुविधाएं तैयार हो जाती हैं। बड़े-बड़े पण्डित, बड़े-बड़े मौलवी, बड़े-बड़े लिखने और बोलनेवाले, जो अपनी ज़बान और क़लम से पब्लिक को जिस तरफ़ चाहें फेर दें, सभी सोने के देवता के पैरों पर माथा रगड़ते हैं। मैंने तो इरादा कर लिया है, अब इलेक्शन के पास न जाऊंगा। मेरा प्रोपगैण्डा अब डेमाक्रेसी के ख़िलाफ़ होगा।

मिर्ज़ा साहब ने क़ुर्आन की आयतों से सिद्ध किया कि पुराने ज़माने के बादशाहों के आदर्श कितने ऊंचे थे। आज तो हम उसकी तरफ़ ताक भी नहीं सकते। हमारी आंखों में चकाचौंध आ जायेगी। बादशाह को खज़ाने की एक कौड़ी भी निजी ख़र्च में लाने का अधिकार न था। वह किताबें नक़ल करके, कपड़े सीकर, लड़कों को पढ़ाकर अपना गुज़र करता था। मिर्ज़ा ने आदर्श महीपों की एक लम्बी सूची गिना दी। कहां तो वह प्रजा को पालने वाला बादशाह, और कहां आजकल के मन्त्री और मिनिस्टर, पांच, छः, सात, आठ हज़ार माहवार मिलना चाहिए। लूट है या डेमाक्रेसी।

हिरनों का एक झुण्ड चरता हुआ नज़र आया। मिर्ज़ा के मुख पर शिकार का जोश चमक उठा। बन्दूक़ संभाली और निशाना मारा। एक काला-सा हिरन गिर पड़ा। वह मारा। इस उन्मत्त ध्वनि के साथ मिर्ज़ा भी बेतहाशा दौड़े— बिलकुल बच्चों की तरह उछलते, कूदते, तालियां बजाते।

समीप ही एक वृक्ष पर एक आदमी लकड़ियां काट रहा था। वह भी चट-पट वृक्ष से उतरकर मिर्ज़ाजी के साथ दौड़ा। हिरन की गर्दन में गोली लगी थी, उसके पैरों में कम्पन हो रहा था और आंखें पथरा गयी थीं।

लकड़हारे ने हिरन को करुण नेत्रों से देखकर कहा—अच्छा पट्ठा था, मन-भर से कम न होगा। हुकुम हो, तो मैं उठाकर पहुंचा दूं?

मिर्ज़ा कुछ बोले नहीं। हिरन की टंगी हुई, दीन वेदना से भरी आंखें देख रहे थे। अभी एक मिनट पहले इसमें जीवन था। ज़रा-सा पत्ता भी खड़कता, तो कान खड़े करके चौकड़ियां भरता हुआ निकल भागता। अपने मित्रों और बाल-बच्चों के साथ ईश्वर की उगायी हुई घास खा रहा था, मगर अब निस्पन्द पड़ा है। उसकी खाल उधेड़ लो, उसकी बोटियां कर डालो, उसका क़ीमा बना डालो, उसे ख़बर न होगी। उसके क्रीड़ामय जीवन में जो आकर्षण था, जो आनन्द था, वह क्या इस निर्जीव शव में है? कितनी सुन्दर गठन थी, कितनी प्यारी आंखें, कितनी मनोहर छवि! उसकी छलांगें हृदय में आनन्द की तरंगें पैदा कर देती थीं। उसकी चौकड़ियों के साथ हमारा मन भी चौकड़ियां भरने लगता था। उसकी स्फूर्ति जीवन-सा बिखेरती चलती थी, जैसे फूल सुगन्ध बिखेरता है, लेकिन अब! उसे देखकर ग्लानि होती है।

लकड़हारे ने पूछा— कहां पहुंचाना होगा मालिक? मुझे भी दो-चार पैसे दे देना।

मिर्ज़ाजी जैसे ध्यान से चौंक पड़े। बोले— अच्छा, उठा ले। कहां चलेगा?

'जहां हुकुम हो मालिक!'

'नहीं, जहां तेरी इच्छा हो, वहां ले जा। मैं तुझे देता हूं।'

लकड़हारे ने मिर्ज़ा की ओर कुतूहल से देखा। कानों पर विश्वास न आया।

'अरे नहीं मालिक, हुजूर ने सिकार किया है, तो हम कैसे खा लें?'

'नहीं-नहीं, मैं खुशी से कहता हूं, तुम इसे ले जाओ। तुम्हारा घर यहां से कितनी दूर है?'

'कोई आधा कोस होगा मालिक!'

'तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा। देखूंगा, तुम्हारे बाल-बच्चे कैसे खुश होते हैं।'

'ऐसे तो मैं न ले जाऊंगा सरकार! आप इतनी दूर से आये, इस कड़ी धूप में सिकार किया, मैं कैसे उठा ले जाऊं?'

'उठा-उठा, देर न कर। मुझे मालूम हो गया, तू भला आदमी है।'

लकड़हारे ने डरते-डरते और रह-रहकर मिर्ज़ाजी के मुख की ओर सशंक नेत्रों से देखते हुए कि कहीं बिगड़ न जायें, हिरन को उठाया। सहसा उसने हिरन छोड़ दिया और खड़ा होकर बोला—मैं समझ गया मालिक, हुजूर ने इसकी हलाली नहीं की।

मिर्ज़ाजी ने हंसकर कहा— बस-बस, तूने खूब समझा। अब उठा ले और घर चल।

मिर्ज़ाजी धर्म के इतने पाबन्द न थे। दस साल से उन्होंने नमाज़ न पढ़ी थी। दो महीने में एक दिन व्रत रख लेते थे। बिलकुल निराहार, निर्जल, मगर लकड़हारे को इस ख़याल से जो सन्तोष हुआ [illegible] कि हिरन अब इन लोगों के लिए अखाद्य हो गया है, उसे फीका न करना चाहते थे।

लकड़हारे ने हलके मन से हिरन को गर्दन पर रख लिया और घर की ओर चला। [illegible] तटस्थ-से वहीं पेड़ के नीचे खड़े थे। धूप में हिरन के पास जाने का कष्ट क्यों उठाते? [illegible] आ रहा था कि मुआमला क्या है, लेकिन जब लकड़हारे को उलटी दिशा में जाते देखा, [illegible] मिर्ज़ा से बोले—आप उधर कहां जा रहे हैं हज़रत? क्या रास्ता भूल गये?

मिर्ज़ा ने अपराधी भाव से मुस्कराकर कहा—मैंने शिकार इस गरीब [illegible] ज़रा इसके घर चल रहा हूं। आप भी आइये न।

तंखा ने मिर्ज़ा को कुतूहल की दृष्टि से देखा और बोले—[illegible]

'कह नहीं सकता, मुझे खुद नहीं मालूम।'

'शिकार इसे क्यों दे दिया?'

'इसलिए कि उसे पाकर इसे जितनी खुशी होगी, मुझे [illegible]'

तंखा खिसियाकर बोले—जाइये। सोचा था, खूब [illegible] किरकिरा कर दिया। ख़ैर, रायसाहब और मेहता कुछ-न-कुछ [illegible] इलेक्शन के बारे में कुछ अर्ज़ करना चाहता हूं। [illegible] मर्ज़ी, लेकिन आपको इसमें क्या ताम्मुल है कि [illegible] वसूल की जाये। मैं आपसे सिर्फ़ इतना चाहता हूं कि [illegible] खड़े हो रहे हैं। सिर्फ़ इतनी मेहरबानी कीजिये [illegible] रहे हैं। रईसों के वोट सोलहों आने उनकी तरफ़ हैं [illegible] पब्लिक पर आपका जो असर है, उससे [illegible] दस-बीस हज़ार रुपये महज़ यह ज़ाहिर कर देने [illegible] हैं......नहीं मुझे अर्ज़ कर लेने दीजिये। [illegible] बैठे रहिये। मैं आपकी तरफ़ से एक [illegible] हज़ार नक़द वसूल कर लीजिये।

मिर्ज़ा साहब ने उनकी ओर [illegible] भेजता हूं।

मिस्टर तंखा ने ज़रा भी बुरा नहीं माना। [illegible]

'मुझ पर जितनी लानत चाहें भेजें, मगर रुपये पर लानत भेजकर आप अपना ही नुकसान कर रहे हैं।'

'मैं ऐसी रक़म को हराम समझता हूं।'

'आप शरीयत के इतने पावन्द तो नहीं हैं।'

'लूट की कमाई को हराम समझने के लिए शरा का पावन्द होने की ज़रूरत नहीं है।'

'तो इस मुआमले में क्या आप अपना फ़ैसला तब्दील नहीं कर सकते?'

'जी नहीं।'

'अच्छी बात है, इसे जाने दीजिये। किसी बीमा कम्पनी के डाइरेक्टर बनने में तो आपको कोई एतराज़ नहीं है? आपको कम्पनी का एक हिस्सा भी न ख़रीदना पड़ेगा। आप सिर्फ़ अपना नाम दे दीजियेगा।'

'जी नहीं, मुझे यह भी मंजूर नहीं है। मैं कई कम्पनियों का डाइरेक्टर, कई का मैनेजिंग एजेण्ट, कई का चेयरमैन था। दौलत मेरे पांव चूमती थी। मैं जानता हूं, दौलत से आराम और तकल्लुफ़ के कितने सामान जमा किये जा सकते हैं, मगर यह भी जानता हूं कि दौलत इन्सान को कितना ख़ुदग़रज़ वना देती है, कितना ऐश-पसन्द, कितना मक्कार, कितना बेग़ैरत।'

वकील साहब को फिर कोई प्रस्ताव करने का साहस न हुआ। मिर्ज़ा की बुद्धि और प्रभाव में उनका जो विश्वास था, वह बहुत कम हो गया। उनके लिए धन ही सब कुछ था, और ऐसे आदमी से, जो लक्ष्मी को ठोकर मारता हो, उनका कोई मेल न हो सकता था।

लकड़हारा हिरन को कन्धे पर रखे लपका चला जा रहा था। मिर्ज़ा ने भी क़दम बढ़ाया, पर स्थूलकाय तंखा पीछे रह गये।

उन्होंने पुकारा—ज़रा सुनिये मिर्ज़ाजी, आप तो भागे जा रहे हैं।

मिर्ज़ाजी ने बिना रुके हुए जवाब दिया—वह ग़रीब बोझ लिये इतनी तेज़ी से चला जा रहा है। हम क्या अपना वदन लेकर भी उसके बराबर नहीं चल सकते?

लकड़हारे ने हिरन को एक ठूंठ पर उतारकर रख दिया था और दम लेने लगा था।

मिर्ज़ा साहब ने आकर पूछा—'थक गये, क्यों?'

लकड़हारे ने सकुचाते हुए कहा—'बहुत भारी है सरकार।'

'तो लाओ, कुछ दूर मैं ले चलूं।'

लकड़हारा हंसा। मिर्ज़ा डील-डौल में उससे कहीं ऊंचे और मोटे-ताज़े थे, फिर भी वह दुबला-पतला आदमी उनकी इस बात पर हंसा। मिर्ज़ाजी पर जैसे चाबुक पड़ गया।

'तुम हंसे क्यों? क्या तुम समझते हो, मैं इसे नहीं उठा सकता?'

लकड़हारे ने मानो क्षमा मांगी—सरकार, आप लोग बड़े आदमी हैं। बोझ उठाना तो हम-जैसे मजूरों का ही काम है।

'मैं तुम्हारा दुगुना जो हूं।'

'इससे क्या होता है मालिक?'

मिर्ज़ाजी का पुरुषत्व अपना और अपमान न सह सका। उन्होंने बढ़कर हिरन को गर्दन पर उठा लिया और चले, मगर मुश्किल से पचास क़दम चले होंगे कि गर्दन फटने लगी, पांव थरथराने लगे और आंखों में तितलियां उड़ने लगीं। कलेजा मज़बूत किया और एक बीस क़दम और चले। कम्बख़्त कहां रह गया? जैसे इस लाश में सीसा भर दिया गया हो। ज़रा मिस्टर तंखा की गर्दन पर रख दूं, तो मज़ा आये। मशक की तरह जो फूले चलते हैं, ज़रा इसका मज़ा भी देखें, लेकिन बोझा उतारें कैसे? दोनों अपने दिल में कहेंगे, वड़ी जवांमर्दी दिखाने चले थे। पचास क़दम में चीं बोल गये।

लकड़हारे ने चुटकी ली—कहो मालिक, कैसे रंग-ढंग हैं? वहुत हलका है न?

मिर्ज़ाजी को बोझ कुछ हलका मालूम होने लगा। बोले—उतनी दूर तो ले ही जाऊंगा, जितनी दूर तुम लाये हो।

'कई दिन गर्दन दुखेगी मालिक!'

'तुम क्या समझते हो, मैं यों ही फूला हुआ हूं?'

'नहीं मालिक, अब तो ऐसा नहीं समझता। मुदा आप हैरान न हों, वह चट्टान है, उस पर उतार दीजिये।'

'मैं अभी इसे इतनी ही दूर और ले जा सकता हूं।'

'मगर यह अच्छा तो नहीं लगता कि मैं डाला चलूं और आप लादे रहें।'

मिर्ज़ा साहब ने चट्टान पर हिरन को उतारकर रख दिया। वकील साहब भी आ पहुंचे।

मिर्ज़ा ने दाना फेंका—अब आपको भी कुछ दूर ले चलना पड़ेगा जनाब।

वकील साहब की नज़रों में अब मिर्ज़ाजी का कोई महत्त्व न था। बोले—मुआफ़ कीजिये। मुझे अपनी पहलवानी का दावा नहीं है।

'बहुत भारी नहीं है, सच।'

'अजी, रहने भी दीजिये।'

'आप अगर इसे सौ क़दम ले चलें, तो मैं वादा करता हूं, आप मेरे सामने जो तज्वीज़ रखेंगे, उसे मंजूर कर लूंगा।'

'मैं इन चकमों में नहीं आता।'

'मैं चकमा नहीं दे रहा हूं, वल्लाह। आप जिस हलके से कहेंगे, खड़ा हो जाऊंगा। जब हुक्म देंगे, बैठ जाऊंगा। जिस कम्पनी का डाइरेक्टर, मेम्बर, मुनीम, कनवेसर, जो कुछ कहियेगा, बन जाऊंगा। बस, सौ क़दम ले चलिये। मेरी तो ऐसे ही दोस्तों से निभती है, जो मौक़ा पड़ने पर सब कुछ कर सकते हों।'

तंखा का मन चुलबुला उठा। मिर्ज़ा अपने क़ौल के पक्के हैं। इसमें कोई सन्देह न था। हिरन ऐसा क्या बहुत भारी होगा! आख़िर मिर्ज़ा इतनी दूर ले ही आये। बहुत ज़्यादा थके तो नहीं जान पड़ते। अगर इनकार करते हैं, तो सुनहरा अवसर हाथ से जाता है। आख़िर ऐसा क्या कोई पहाड़ है? बहुत होगा, चार-पांच पंसेरी होगा। दो-चार दिन गर्दन ही तो दुखेगी। जेब में रुपये हों, तो थोड़ी-सी बीमारी सुख की वस्तु है।

'सौ क़दम की रही।'

'हां, सौ क़दम। मैं गिनता चलूंगा।'

'देखिये, निकल न जाइयेगा।'

'निकल जानेवाले पर लानत भेजता हूं।'

तंखा ने जूते का फीता फिर से बांधा, कोट उतारकर लकड़हारे को दिया, पतलून ऊपर उढ़ाया, रुमाल से मुह पोंछा और इस तरह हिरन को देखा, मानो ओखली में सिर देने जा रहे हों। फिर हिरन को उठाकर गर्दन पर रखने की चेष्टा की। दो-तीन बार ज़ोर लगाने पर लाश गर्दन पर तो आ गयी, पर गर्दन न उठ सकी। कमर झुक गयी, हांफ उठे और लाश को ज़मीन पर पटकनेवाले थे कि मिर्ज़ा ने उन्हें सहारा देकर आगे बढ़ाया।

तंखा ने एक डग इस तरह उठाया, जैसे दलदल में पांव रख रहे हों। मिर्ज़ा ने बढ़ावा दिया—शाबाश! मेरे शेर, वाह-वाह!

तंखा ने एक डग और रखा। मालूम हुआ, गर्दन टूटी जाती है।

'मार लिया मैदान। जीते रहो पट्ठे!'

तंखा दो डग और बढ़े। आंखें निकली पड़ती थीं।

'बस, एक बार और ज़ोर मारो दोस्त! सौ क़दम की शर्त ग़लत। पचास क़दम की ही रही।'

वकील साहब का बुरा हाल था। वह बेजान हिरन शेर की तरह उनको दबोचे हुए, उनका हृदय-रक्त चूस रहा था। सारी शक्तियां जवाब दे चुकी थीं। केवल लोभ, किसी लोहे की धरन की तरह छत को संभाले हुए था। एक से पच्चीस हज़ार तक की गोटी थी। मगर अन्त में वह शहतीर भी जवाब दे गयी। लोभ की कमर टूट गयी। आंखों के सामने अंधेरा छा गया। सिर में चक्कर आया और वह शिकार गर्दन पर लिये पथरीली ज़मीन पर गिर पड़े।

मिर्ज़ा ने तुरन्त उन्हें उठाया और अपने रुमाल से हवा करते हुए उनकी पीठ ठोंकी।

'ज़ोर तो यार तुमने खूब मारा, लेकिन तक़दीर के खोटे हो।'

तंखा ने हांफते हुए लम्बी सांस खींचकर कहा—आपने तो आज मेरी जान ही ले ली थी। दो मन से कम न होगा ससुर।

मिर्ज़ा ने हंसते हुए कहा—लेकिन भाईजान, मैं भी तो इतनी दूर उठाकर लाया ही था।

वकील साहब ने खुशामद करनी शुरू की—मुझे तो आपकी फ़रमाइश पूरी करनी थी। आपको तमाशा देखना था, वह आपने देख लिया। अब आपको अपना वादा पूरा करना होगा।

'आपने मुआहदा कब पूरा किया?'

'कोशिश तो जान तोड़कर की।'

'इसकी सनद नहीं।'

लकड़हारे ने फिर हिरन उठा लिया था और भागा चला जा रहा था। वह दिखा देना चाहता था कि तुम लोगों ने कांख-कूंखकर दस क़दम इसे उठा लिया, तो यह न समझो कि पास हो गये। इस मैदान में मैं दुर्बल होने पर भी तुमसे आगे रहूंगा। हां, कागद तुम चाहे जितना काला करो और झूठे मुक़दमे चाहे जितने बनाओ।

एक नाला मिला, जिसमें बहुत थोड़ा पानी था। नाले के उस पार टीले पर एक छोटा-सा पांच-छः घरों का पुरवा था और कई लड़के इमली के नीचे खेल रहे थे। लकड़हारे को देखते ही सबों ने दौड़कर उसका स्वागत किया और लगे पूछने—किसने मारा बापू? कैसे मारा, कहां मारा, कैसे गोली लगी, कहां लगी, इसी को क्यों लगी, और हिरनों को क्यों न लगी? लकड़हारा 'हूं-हां' करता इमली के नीचे पहुंचा और हिरन को उतारकर पास की झोंपड़ी से दोनों महानुभावों के लिए खाट लेने दौड़ा। उसके चारों लड़कों ने शिकार को अपने चार्ज में ले लिया और अन्य लड़कों को भगाने की चेष्टा करने लगे।

सबसे छोटे बालक ने कहा—यह हमारा है।

उसकी बड़ी बहिन ने, जो चौदह-पन्द्रह साल की थी, मेहमानों की ओर देखकर छोटे भाई को डांटा—चुप, नहीं सिपाई पकड़ ले जायेगा।

मिर्ज़ा ने लड़के को छेड़ा—तुम्हारा नहीं, हमारा है।

बालक ने हिरन पर बैठकर अपना कब्ज़ा सिद्ध कर दिया और बोला—बापू तो लाये हैं।

बहिन ने सिखाया—कह दे भैया, तुम्हारा है।

इन बच्चों की मां बकरी के लिए पत्तियां तोड़ रही थी। दो नये भले आदमियों को देखकर ज़रा-सा घूंघट निकाल लिया और शरमायी कि उसकी साड़ी कितनी मैली, कितनी फटी, कितनी उटंगी है। वह इस वेष में मेहमानों के सामने कैसे जाये? और गये बिना काम नहीं चलता। पानी-वानी देना है।

अभी दोपहर होने में कुछ कसर थी, लेकिन मिर्ज़ा साहब ने दोपहरी इसी गांव में काटने का निश्चय किया। गांव के आदमियों को जमा किया। शराब मंगवायी, शिकार पका, समीप के बाज़ार से घी और मैदा मंगाया और सारे गांव को भोज दिया। छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष सबों ने दावत उड़ायी। मर्दों

ने खूब शराब पी और मस्त होकर शाम तक गाते रहे। और मिर्ज़ाजी बालकों के साथ बालक, शराबियों के साथ शराबी, बूढ़ों के साथ बूढ़े, जवानों के साथ जवान बने हुए थे। इतनी देर में सारे गांव से उनका इतना घनिष्ठ परिचय हो गया था, मानो यहीं के निवासी हों। लड़के तो उन पर लदे पड़ते थे। कोई उनकी फुंदनेदार टोपी सर पर रखे लेता था, कोई उनकी राइफ़ल कन्धे पर रखकर अकड़ता हुआ चलता था, कोई उनकी कलाई की घड़ी खोलकर अपनी कलाई पर बांध लेता था। मिर्ज़ा ने खुद खूब देशी शराब पी और झूम-झूमकर जंगली आदमियों के साथ गाते रहे।

जब ये लोग सूर्यास्त के समय यहां से विदा हुए, तो गांव-भर के नर-नारी इन्हें बड़ी दूर तक पहुंचाने आये। कई तो रोते थे। ऐसा सौभाग्य उन ग़रीबों के जीवन में शायद पहली ही बार आया हो कि किसी शिकारी ने उनकी दावत की हो। ज़रूर यह कोई राजा है, नहीं तो इतना दरियाव दिल किसका होता है। इनके दर्शन फिर काहे को होंगे!

कुछ दूर चलने के बाद मिर्ज़ा ने पीछे फिरकर देखा और बोले—बेचारे कितने खुश थे! काश, मेरी ज़िन्दगी में ऐसे मौके रोज़ आते। आज का दिन बड़ा मुबारक था।

तंखा ने बेरुखी के साथ कहा—आपके लिए मुबारक होगा, मेरे लिए तो मनहूस ही था। मतलब की कोई बात न हुई। दिन-भर जंगलों और पहाड़ों की ख़ाक छानने के बाद अपना-सा मुंह लिये लौटे जाते हैं।

मिर्ज़ा ने निर्दयता से कहा—मुझे आपके साथ हमदर्दी नहीं है।

दोनों आदमी जब बरगद के नीचे पहुंचे, तो दोनों टोलियां लौट चुकी थीं। मेहता मुंह लटकाये हुए थे। मालती विमन-सी अलग बैठी थी, जो नयी बात थी। रायसाहब और खन्ना दोनों भूखे रह गये थे और किसी के मुंह से बात न निकलती थी। वकील साहब इसलिए दुखी थे कि मिर्ज़ा ने उनके साथ बेवफ़ाई की। अकेले मिर्ज़ा साहब प्रसन्न थे और वह प्रसन्नता अलौकिक थी।

:8:

जब से होरी के घर में गाय आ गयी है, घर की श्री ही कुछ और हो गयी है। धनिया का घमण्ड तो उसके संभाल से बाहर हो-हो जाता है। जब देखो गाय की चर्चा।

भूसा छिज गया था। ऊख में थोड़ी-सी चरी बो दी गयी थी। उसी की कुट्टी काटकर जानवरों को खिलाना पड़ता था। आंखें आकाश की ओर लगी रहती थीं कि कब पानी बरसे और घास निकले। आधा आषाढ़ बीत गया और वर्षा न हुई।

सहसा एक दिन बादल उठे और आषाढ़ का एक दौंगड़ा गिरा। किसान खरीफ़ बोने के लिए हल ले-लेकर निकले कि रायसाहब के कारकुन ने कहला भेजा, जब तक बाक़ी न चुक जायेगी, किसी को खेत में हल न ले जाने दिया जायेगा। किसानों पर जैसे वज्रपात हो गया। और कभी तो इतनी कड़ाई न होती थी, अब की यह कैसा हुक्म। कोई गांव छोड़कर भागा थोड़ा ही जाता है। अगर खेतों में हल न चले, तो रुपये कहां से आ जायेंगे? निकालेंगे तो खेत ही से। सब मिलकर कारकुन के पास जाकर रोये। कारकुन का नाम था पण्डित नोखेराम। आदमी बुरे न थे, मगर मालिक का हुक्म था। उसे कैसे टालें? अभी उस दिन रायसाहब ने कैसी दया और धर्म की बातें की थीं, और आज असामियों पर यह ज़ुल्म। होरी मालिक के पास जाने को तैयार हुआ, लेकिन फिर सोचा, उन्होंने कारकुन को एक बार जो हुक्म दे दिया, उसे क्यों टालने लगे? वह अगुवा बनकर क्यों बुरा बने? जब और कोई कुछ नहीं बोलता, तो वही आग में क्यों कूदे? जो सब के सिर पड़ेगी, वह भी झेल लेगा।

किसानों में खलबली मची हुई थी। सभी गांव के महाजनों के पास रुपये के लिए दौड़े। गांव में

मंगरू साह की आजकल चढ़ी हुई थी। इस साल सन में उसे अच्छा फ़ायदा हुआ था। गेहूं और अलसी में भी उसने कुछ कम नहीं कमाया था। पण्डित दातादीन और दुलारी सहुआइन भी लेन-देन करती थीं। सबसे बड़े महाजन थे झिंगुरीसिंह। वह शहर के एक बड़े महाजन के एजेण्ट थे। उनके नीचे कई आदमी और थे, जो आस-पास के देहातों में घूम-घूमकर लेन-देन करते थे। उनके अतिरिक्त और भी कई छोटे-मोटे महाजन थे, जो दो आने रुपये ब्याज पर बिना लिखा-पढ़ी के रुपये देते थे। गांववालों को लेन-देन का कुछ ऐसा शौक़ था कि जिसके पास दस-बीस रुपये जमा हो जाते, वही महाजन बन बैठता था। एक समय होरी ने भी महाजनी की थी। उसी का यह प्रभाव था कि लोग अभी तक यही समझते थे कि होरी के पास दबे हुए रुपये हैं। आखिर वह धन गया कहां? बंटवारे में निकला नहीं, होरी ने कोई तीर्थ, व्रत, भोज किया नहीं, गया तो कहां गया? जूते जाने पर भी उसके घट्टे बने रहते हैं।

किसी ने किसी देवता को सीधा किया, किसी ने किसी को। किसी ने आना रुपया ब्याज देना स्वीकार किया, किसी ने दो आना। होरी में आत्मसम्मान का सर्वथा लोप न हुआ था। जिन लोगों के रुपये उस पर बाक़ी थे, उनके पास कौन मुंह लेकर जाये? झिंगुरीसिंह के सिवा उसे और कोई न सूझा। वह पक्का काग़ज़ लिखाते थे, नज़राना अलग लेते थे, दस्तूरी अलग, स्टाम्प की लिखाई अलग। उस पर एक साल का ब्याज पेशगी काटकर रुपया देते थे। पचीस रुपये का काग़ज़ लिखा, तो मुश्किल से सत्रह रुपये हाथ लगते, मगर इस गाढ़े समय में और क्या किया जाये? रायसाहब की ज़बरदस्ती है, नहीं इस समय किसी के सामने क्यों हाथ फैलाना पड़ता?

झिंगुरीसिंह बैठे दातून कर रहे थे। नाटे, मोटे, खल्वाट, काले, लम्बी नाक और बड़ी-बड़ी मूंछों वाले आदमी थे, बिलकुल विदूषक जैसे, और थे भी बड़े हंसोड़। इस गांव को अपनी ससुराल बनाकर मर्दों से साले या ससुर और औरतों से साली या सलहज का नाता जोड़ लिया था। रास्ते में लड़के उन्हें चिढ़ाते—पण्डितजी पाल्लगी? और झिंगुरीसिंह उन्हें चटपट आशीर्वाद देते—तुम्हारी आंखें फूटें, घुटना टूटे, मिर्गी आये, घर में आग लग जाये आदि। लड़के इस आशीर्वाद से कभी न अघाते थे, मगर लेन-देन में बड़े कठोर थे। सूद की एक पाई नहीं छोड़ते थे और वादे पर बिना रुपये लिये द्वार से न टलते थे।

होरी ने सलाम करके अपनी विपत्ति कथा सुनायी।

झिंगुरीसिंह ने मुसकराकर कहा—वह सब पुराना रुपया क्या कर डाला?

'पुराने रुपये होते ठाकुर, तो महाजनों से अपना गला न छुड़ा लेता कि सूद भरते किसी को अच्छा लगता है?'

'गड़े रुपये न निकलें, चाहे सूद कितना ही देना पड़े। तुम लोगों की यही नीति है।'

'कहां के गड़े रुपये बाबू साहब, खाने को तो होता नहीं। लड़का जवान हो गया, ब्याह का कहीं ठिकाना नहीं। बड़ी लड़की भी ब्याहने जोग हो गयी। रुपये होते, तो किस दिन के लिए गाड़े रखते?'

झिंगुरीसिंह ने जब से उसके द्वार पर गाय देखी थी, उस पर दांत लगाये हुए थे। गाय की डील-डौल और गठन कह रहा था कि उसमें पांच सेर से कम दूध नहीं है। मन में सोच लिया था, होरी को किसी अदब में डालकर गाय को उड़ा लेना चाहिए। आज वह अवसर आ गया।

बोले—अच्छा भाई, तुम्हारे पास कुछ नहीं है, अब राज़ी हुए। जितने रुपये चाहो, ले जाओ, लेकिन तुम्हारे भले के लिए कहते हैं, कुछ गहने-गाठे हों, तो गिरवी रखकर रुपये ले लो। इस्टाम लिखोगे, तो सूद बढ़ेगा और झमेले में पड़ जाओगे।

होरी ने क़सम खायी कि घर में गहने के नाम कच्चा सूत भी नहीं है। धनिया के हाथों में कड़े हैं, वह भी गिलट के।

झिंगुरीसिंह ने सहानुभूति का रंग मुंह पर पोतकर कहा—तो एक बात करो, यह नयी गाय जो

लाये हो, इसे हमारे हाथ बेच दो। सूद, इस्टाम सब झगड़ों से बच जाओ, चार आदमी जो दाम कहें, वह हमसे ले लो। हम जानते हैं, तुम उसे अपने शौक़ से लाये हो और बेचना नहीं चाहते, लेकिन यह संकट तो टालना ही पड़ेगा।

होरी पहले तो इस प्रस्ताव पर हंसा, उस पर शान्त मन से विचार भी न करना चाहता था, लेकिन ठाकुर ने ऊंच-नीच सुझाया, महाजनी के हथकण्डों का ऐसा भीषण रूप दिखाया कि उसके मन में भी यह बात बैठ गयी। ठाकुर ठीक ही तो कहते हैं, जब हाथ में रुपये आ जायें, गाय ले लेना। तीस रुपये का कागद लिखने पर कहीं पच्चीस रुपये मिलेंगे और तीन-चार साल तक न दिये गये, तो पूरे सौ हो जायेंगे। पहले का अनुभव यही बताता था कि क़र्ज़ वह मेहमान है, जो एक बार आकर जाने का नाम नहीं लेता।

बोला—मैं घर जाकर सबसे सलाह कर लूं, तो बताऊं।

'सलाह नहीं करना है, उनसे कह देना है कि रुपये उधार लेने में अपनी बरबादी के सिवा और कुछ नहीं।'

'मैं समझ रहा हूं ठाकुर, अभी आके जवाब देता हूं।'

लेकिन घर आकर उसने ज्यों ही प्रस्ताव किया कि कुहराम मच गया। धनिया तो कम चिल्लायी, दोनों लड़कियों ने तो दुनिया सिर पर उठा ली। नहीं देते अपनी गाय, रुपये जहां से चाहे लाओ। सोना ने तो यहां तक कह डाला, इससे तो कहीं अच्छा है मुझे बेच डालो। गाय से कुछ बेसी ही मिल जायेगा। होरी असमञ्जस में पड़ गया। दोनों लड़कियां सचमुच गाय पर जान देती थीं। रूपा तो उसके गले से लिपट जाती थी और बिना उसे खिलाये कौर मुंह में नहीं डालती थी। गाय कितने प्यार से उसका हाथ चाटती थी, कितनी स्नेहभरी आंखों से उसे देखती थी! उसका बछड़ा कितना सुन्दर होगा! अभी से उसका नामकरण हो गया था—मटरू। वह उसे अपने साथ लेकर सोयेगी। इस गाय के पीछे दोनों बहिनों में कई बार लड़ाइयां हो चुकी थीं। सोना कहती, मुझे ज्यादा चाहती है, रूपा कहती थी मुझे। इसका निर्णय अभी तक न हो सका था, और दोनों दावे क़ायम थे।

मगर होरी ने आगा-पीछा सुझाकर आख़िर धनिया को किसी तरह राज़ी कर लिया। एक मित्र से गाय उधार लेकर बेच देना भी बहुत ही वैसी बात है, लेकिन विपत में तो आदमी का धरम तक चला जाता है, यह कौन-सी बड़ी बात है। ऐसा न हो, तो लोग विपत से इतना डरें क्यों? गोबर ने भी विशेष आपत्ति न की। वह आजकल दूसरी ही धुन में मस्त था। यह तय किया गया कि जब दोनों लड़कियां रात को सो जायें, तो गाय झिंगुरीसिंह के पास पहुंचा दी जाये।

दिन किसी तरह कट गया। सांझ हुई। दोनों लड़कियां आठ बजते-बजते खा-पीकर सो गयीं। गोबर इस करुण दृश्य से भागकर कहीं चला गया था। वह गाय को जाते कैसे देख सकेगा? अपने आंसुओं को कैसे रोक सकेगा? होरी भी ऊपर ही से कठोर बना हुआ था। मन उसका चञ्चल था, ऐसा कोई माई का लाल नहीं, जो इस वक्त उसे पच्चीस रुपये उधार दे-दे, चाहे फिर पचास रुपये ही ले ले। वह गाय के सामने जाकर खड़ा हुआ, तो उसे ऐसा जान पड़ा कि उसकी काली-काली सजीव आंखों में आंसू भरे हुए हैं। और वह कह रही है—क्या चार दिन में ही तुम्हारा मन मुझसे भर गया? तुमने तो वचन दिया था कि जीते-जी इसे न बेचूंगा। यही वचन था तुम्हारा? मैंने तो तुमसे कभी किसी बात का गिला नहीं किया। जो कुछ रूखा-सूखा तुमने दिया, वही खाकर सन्तुष्ट हो गयी, बोलो।

धनिया ने कहा—लड़कियां तो सो गयीं। अब इसे ले क्यों नहीं जाते? जब बेचना ही है, तो अभी बेच दो।

होरी ने कांपते स्वर में कहा—मेरा तो हाथ नहीं उठता धनिया! उसका मुंह नहीं देखती? रहने दो, रुपये सूद पर ले लूंगा। भगवान् ने चाहा, तो सब अदा हो जायेंगे। तीन-चार सौ होते ही क्या हैं? एक बार ऊख लग जाय।

धनिया ने गर्व-भरे प्रेम से उसकी ओर देखा—और क्या, इतनी तपस्या के बाद तो घर में गऊ आयी। उसे भी बेच दो। लो कल रुपये। जैसे और सब चुकाये जायेंगे, वैसे इसे भी चुका देंगे!

भीतर बड़ी उमस हो रही थी। हवा बन्द थी। एक पत्ती न हिलती थी। बादल छाये हुए थे, पर वर्षा के लक्षण न थे। होरी ने गाय को बाहर बांध दिया। धनिया ने टोका भी, कहां लिये जाते हो? पर होरी ने सुना नहीं, बोला—बाहर हवा में बांधे देता हूं। आराम से रहेगी। उसके भी तो जान है। गाय बांधकर वह अपने मंझले भाई शोभा को देखने गया। शोभा को इधर कई महीने से दमे का आरज़ा हो गया था। दवा-दारू की जुगत नहीं, खाने-पीने का प्रबन्ध नहीं, और काम करना पड़ता था जी तोड़कर, इसलिए उसकी दशा दिन-दिन बिगड़ती जाती थी। शोभा सहनशील आदमी था, लड़ाई-झगड़े से कोसों भागने वाला। किसी से मतलब नहीं। अपने काम से काम। होरी उसे चाहता था। और वह भी होरी का अदब करता था। दोनों में रुपये-पैसे की बातें होने लगीं। रायसाहब का यह नया फ़रमान आलोचनाओं का केन्द्र बना हुआ था।

कोई ग्यारह बजते-बजते होरी लौटा और भीतर जा रहा था कि उसे भास हुआ, जैसे गाय के पास कोई आदमी खड़ा है। पूछा—कौन खड़ा है वहां?

हीरा बोला—मैं हूं दादा, तुम्हारे कौड़े में आग लेने आया था।

हीरा उसके कौड़े में आग लेने आया है, इस ज़रा-सी बात में होरी को भाई की आत्मीयता का परिचय मिला। गांव में और भी तो कौड़े हैं। कहीं से आग मिल सकती थी। हीरा उसके कौड़े में आग ले रहा है, तो अपना ही समझकर तो। सारा गांव इस कौड़े में आग लेने आता था। गांव में सबसे सम्पन्न यही कौड़ा था, मगर हीरा का आना दूसरी बात थी। और उस दिन की लड़ाई के बाद। हीरा के मन में कपट नहीं रहता। गुस्सैल है, लेकिन दिल का साफ़।

उसने स्नेह-भरे स्वर में पूछा—तमाखू है कि ला दूं?

'नहीं, तमाखू तो है दादा।'

'सोभा तो आज बहुत बेहाल है।'

'कोई दवाई नहीं खाता, तो क्या किया जाये। उसके लेखे तो सारे बैद, डॉक्टर, हकीम अनाड़ी हैं। भगवान् के पास जितनी अक्कल थी, वह उसके और उसकी घरवाली के हिस्से पड़ गयी।'

होरी ने चिन्ता से कहा—यही तो बुराई है उसमें। अपने सामने किसी को गिनता ही नहीं, और चिढ़ने तो बीमारी में सभी हो जाते हैं। तुम्हें याद है कि नहीं, जब तुम्हें इफिंजा हो गया था, तो दवाई उठाकर फेंक देते थे। मैं तुम्हारे दोनों हाथ पकड़ता था, तब तुम्हारी भाभी तुम्हारे मुंह में दवाई डालती थी। उस पर तुम उसे हज़ारों गालियां देते थे।

'हां दादा, भला वह बात भूल सकता हूं? तुमने इतना न किया होता, तो तुमसे लड़ने के लिए कैसे बचा रहता?

होरी को ऐसा मालूम हुआ कि हीरा का स्वर भारी हो गया है। उसका गला भी भर आया।

'बेटा, लड़ाई-झगड़ा तो ज़िन्दगी का धरम है। इससे जो अपने हैं, वह पराये थोड़े ही हो जाते हैं। जब घर में चार आदमी रहते हैं, तभी तो लड़ाई-झगड़े भी होते हैं। जिसके कोई है ही नहीं, उसके कौन लड़ाई करेगा?'

दोनों ने साथ चिलम पी। तब हीरा अपने घर गया, होरी अन्दर भोजन करने चला।

धनिया रोष से बोली—देखी अपने सपूत की लीला? इतनी रात हो गयी और अभी उसे अपने सैल से छुट्टी नहीं मिली। मैं सब जानती हूं। मुझको सारा पता मिल गया है। भोला की वह रांड़ लड़की नहीं है, झुनिया, उसी के फेर में पड़ा रहता है।

होरी के कानों में भी इस बात की भनक पड़ी थी, पर उसे विश्वास न आया था। गोबर बेचारा इन बातों को क्या जाने!

बोला—किसने कहा तुमसे?

धनिया प्रचण्ड हो गयी—तुमसे छिपी होगी, और तो सभी जगह चर्चा चल रही है। यह भुग्गा, वह बत्तर घाट का पानी पिये हुए। इसे उंगलियों पर नचा रही है, और यह समझता है, वह इस पर जान देती है। तुम उसे समझा दो, नहीं कोई ऐसी-वैसी बात हो गयी, तो कहीं के न रहोगे।

होरी का दिल उमंग पर था। चुहल की सूझी—झुनिया देखने-सुनने में तो बुरी नहीं है। उसी से कर ले सगाई। ऐसी सस्ती मेहरिया और कहां मिली जाती है?

धनिया को यह चुहल तीर-सा लगा—झुनिया इस घर में आये, तो मुंह झुलस दूं रांड़ का। गोबर की चहेती है, तो उसे लेकर जहां चाहे रहे।

'और जो गोबर इसी घर में लाये?'

'तो यह दोनों लड़कियां किसके गले बांधोगे? फिर बिरादरी में तुम्हें कौन पूछेगा, कोई द्वार पर खड़ा तक तो होगा नहीं?'

'उसे इसकी क्या परवाह?'

'इस तरह नहीं छोड़ूंगी लाला को। मर-मर के मैंने पाला है और झुनिया आकर राज करेगी। मुंह में आग लगा दूंगी रांड़ के।'

सहसा गोबर आकर घबरायी हुई आवाज़ में बोला—दादा, सुन्दरिया के क्या हो गया? क्या काले नाग ने छू लिया? वह तो पड़ी तड़प रही है।

होरी चौके में जा चुका था। थाली सामने छोड़कर बाहर निकल आया और बोला—क्या असगुन मुंह से निकालते हो? अभी तो मैं देख कर आ रहा हूं। लेटी थी।

तीनों बाहर गये। चिराग़ लेकर देखा। सुन्दरिया के मुंह से फिचकुर निकल रहा था। आंखें पथरा गयी थीं, पेट फूल गया था और चारों पांव फैल गये थे। धनिया सिर पीटने लगी। होरी पण्डित दातादीन के पास दौड़ा। गांव में पशु-चिकित्सा के वही आचार्य थे। पण्डितजी सोने जा रहे थे। दौड़े हुए आये। दम-के-दम में सारा गांव जमा हो गया। गाय को किसी ने कुछ खिला दिया। लक्षण स्पष्ट थे। साफ़ विष दिया गया है, लेकिन गांव में कौन मुद्दई है, जिसने विष दिया हो? ऐसी वारदात तो इस गांव में कभी हुई नहीं, लेकिन बाहर का कौन आदमी गांव में आया? होरी की किसी से दुश्मनी भी न थी कि उस पर सन्देह किया जाये। हीरा से कुछ कहा-सुनी हुई थी, मगर वह भाई-भाई का झगड़ा था। सबसे ज्यादा दुखी तो हीरा ही था। धमकियां दे रहा था कि जिसने यह हत्यारों का काम किया है, उसे पाये तो खून पी जाये। वह लाख गुस्सैल हो, पर नीच काम नहीं कर सकता।

आधी रात तक जमघट रहा। सभी होरी के दुःख में दुखी थे और वधिक को गालियां देते थे। वह इस समय पकड़ा जा सकता, तो उसके प्राणों की कुशल न थी। जब यह हाल है, तो कोई जानवरों को बाहर कैसे बांधेगा? अभी तक रात-बिरात सभी जानवर बाहर पड़े रहते थे। किसी तरह की चिन्ता न थी, लेकिन अब तो एक नयी विपत्ति आ खड़ी हुई थी। क्या गाय थी कि बस, देखता रहे, पूजने [illegible] पांच सेर से दूध कम न था। सौ-सौ का एक-एक बछड़ा होता। आते देर न हुई और यह [illegible] पड़ा।

जब सब लोग अपने-अपने घर चले गये, तो धनिया होरी को कोसने लगी—तुम्हें कोई [illegible] समझाये, करोगे अपने मन की। तुम गाय खोलकर आंगन से चले, तब तक मैं [illegible] न ले जाओ। हमारे दिन पतले हैं, न जाने, कब क्या हो जाये, लेकिन नहीं, उसे [illegible] तो खूब ठण्डी हो गयी है और तुम्हारा कलेजा भी ठण्डा हो गया। ठाकुर मांगते [illegible] एक बोझ सिर से उतर जाता और निहोरा होता, मगर यह तमाचा कैसे पड़ता [illegible] वाली होती है, तो मति पहले ही हर जाती है। इतने दिन मजे से घर में [illegible] जूड़ी आयी। इतनी जल्दी सबको पहचान [illegible] कि मालूम [illegible]

बच्चे उसके सींगों से खेलते रहते थे। सिर तक न हिलाती थी। जो कुछ नांद में डाल दो, चाट-पोंछकर साफ़ कर देती थी। लच्छमी थी, अभागों के घर क्या रहती, सोना और रूपा भी यह हलचल सुनकर जाग गयी थीं और विलख-विलखकर रो रही थी। उसकी सेवा का भार अधिकतर उन्हीं दोनों पर था। उनकी संगिनी हो गयी थी। दोनों खाकर उठतीं, तो एक-एक टुकड़ा रोटी उसे अपने हाथों से खिलातीं। कैसा जीभ निकालकर खा लेती थी, और जब तक उनके हाथ का कौर न पा लेती, खड़ी ताकती रहती। भाग्य फूट गये।

गोबर और दोनों लड़कियां रो-धोकर सो गयी थीं। होरी भी लेटा। धनिया उसके सिरहाने पानी का लोटा रखने आयी, तो होरी ने धीरे से कहा—तेरे पेट में बात पचती नहीं, कुछ सुन पायेगी, तो गांव-भर में ढिंढोरा पीटती फिरेगी।

धनिया ने आपत्ति की—भला सुनूं, मैंने कौन-सी बात पीट दी कि यों ही नाम बदनाम कर दिया।

'अच्छा, तेरा सन्देह किसी पर होता है?'

'मेरा सन्देह तो किसी पर नहीं। कोई बाहरी आदमी था।'

'किसी से कहेगी तो नहीं?'

'कहूंगी नहीं, तो गांववाले मुझे गहने कैसे गढ़वा देंगे?'

'अगर किसी से कहा, तो मार ही डालूंगा।'

'मुझे मारकर सुखी न रहोगे। अब दूसरी मेहरिया नहीं मिली जाती। जब तक हूं, तुम्हारा घर संभाले हुए हूं। जिस दिन मर जाऊंगी, सिर पर हाथ धरकर रोओगे। अभी मुझमें सारी बुराइयां ही बुराइयां हैं, तब आंखों से आंसू निकलेंगे।'

'मेरा सन्देह हीरा पर होता है।'

'झूठ, बिलकुल झूठ। हीरा इतना नीच नहीं है। वह मुंह का ही खराब है।'

'मैंने अपनी आंखों से देखा। सच, तेरे सिर की सौंह।'

'तुमने अपनी आंखों देखा? कब?'

'वही, मैं सोभा को देखकर आया, तो वह सुन्दरिया की नांद के पास खड़ा था। मैंने पूछा—कौन है, बोला, मैं हूं हीरा, कौड़े में से आग लेने आया था। थोड़ी देर मुझसे बातें करता रहा। मुझे चिलम पिलायी। वह उधर गया, मैं भीतर आया और वहीं गोबर ने पुकार मचायी। मालूम होता है, मैं गाय बांधकर सोभा के घर गया हूं और इसने इधर आकर कुछ खिला दिया है। शायद फिर यह देखने आया था कि मरी या नहीं।

धनिया ने लम्बी सांस लेकर कहा—इस तरह के होते हैं भाई, जिन्हें भाई का गला काटने में भी हिचक नहीं होती। उफ्फोह! हीरा मन का इतना काला है! और दाढ़ीजार को मैंने पाल-पोसकर बड़ा किया।

'अच्छा, जा, सो रह, मगर किसी से भूलकर भी जिकर न करना।'

'कौन, सबेरा होते ही लाला को थाने न पहुंचाऊं, तो अपने असल बाप की नहीं। यह हत्यारा भाई कहने जोग है? यही भाई का काम है? वह बैरी है, पक्का बैरी और बैरी को मारने में पाप नहीं, छोड़ने में पाप है।'

होरी ने धमकी दी—मैं कहे देता हूं धनिया, अनर्थ हो जायेगा।

धनिया आवेश में बोली—अनर्थ नहीं, अनर्थ का बाप हो जाये। मैं बिना लाला को बड़े घर भिजवाये मानूंगी नहीं। तीन साल चक्की पिसवाऊंगी, तीन साल। वहां से छूटेंगे, तो हत्या लगेगी। तीरथ करना पड़ेगा। भोज देना पड़ेगा। इस धोखे में न रहें लाला, और गवाही दिलाऊंगी तुमसे, बेटे के सिर पर हाथ रखकर।

उसने भीतर जाकर किवाड़ बन्द कर लिये और होरी बाहर अपने को कोसता पड़ा रहा। जब

स्वयं उसके पेट में बात न पची, तो धनिया के पेट में क्या पचेगी! अब यह चुड़ैल मानने वाली नहीं। ज़िद पर आ जाती है, तो किसी की सुनती ही नहीं। आज उसने अपने जीवन में सबसे बड़ी भूल की।

चारों ओर नीरव अन्धकार छाया था। दोनों बैलों के गले की घण्टियां कभी-कभी बज उठती थीं। दस क़दम पर मृतक गाय पड़ी हुई थी और होरी घोर पश्चात्ताप में करवटें बदल रहा था। अन्धकार में प्रकाश की रेखा कहीं नज़र न आती थी।

:9:

प्रातःकाल होरी के घर में एक पूरा हंगामा हो गया। होरी धनिया को मार रहा था। धनिया उसे गालियां दे रही थी। दोनों लड़कियां बाप के पांवों से लिपटी चिल्ला रही थीं और गोबर मां को बचा रहा था। बार-बार होरी का हाथ पकड़कर पीछे ढकेल देता, पर ज्यों ही धनिया के मुंह से कोई गाली निकल जाती, होरी अपने हाथ छुड़ाकर उसे दो-चार घूंसे और लात जमा देता। उसका बूढ़ा क्रोध जैसे किसी गुप्त सञ्चित शक्ति को निकाल लाया हो। सारे गांव में हलचल पड़ गयी। लोग समझाने के बहाने तमाशा देखने आ पहुंचे। शोभा लाठी टेकता आ खड़ा हुआ। दातादीन ने डांटा—यह क्या है होरी, तुम बावले हो गये हो क्या? कोई इस तरह घर की लक्ष्मी पर हाथ छोड़ता है? तुम्हें तो यह रोग न था। क्या हीरा की छूत तुम्हें भी लग गयी?

होरी ने पालागन करके कहा—महाराज, तुम इस बखत न बोलो। मैं आज इसकी बान छुड़ाकर तब दम लूंगा। मैं जितना ही तरह देता हूं, उतना ही यह सिर चढ़ती जाती है।

धनिया सजल क्रोध में बोली—महाराज, तुम गवाह रहना। मैं आज इसे और इसके हत्यारे भाई को जेहल भेजवाकर तब पानी पिऊंगी। इसके भाई ने गाय को माहुर खिलाकर मार डाला। अब जो मैं थाने में रपट लिखाने जा रही हूं, तो यह हत्यारा मुझे मारता है। इसके पीछे अपनी जिन्दगी चौपट कर दी, उसका यह इनाम दे रहा है।

होरी ने दांत पीसकर और आंखें निकालकर कहा—फिर वही बात मुंह से निकाली? तूने देखा था हीरा को माहुर खिलाते?

'तू कसम खा जा कि तूने हीरा को गाय की नांद के पास खड़े नहीं देखा?'

'हां, मैंने नहीं देखा, कसम खाता हूं।'

'बेटे के माथे पर हाथ रख के कसम खा।'

होरी ने गोबर के माथे पर कांपता हुआ हाथ रखकर कांपते हुए स्वर में कहा—मैं बेटे की कसम खाता हूं कि मैंने हीरा को नांद के पास नहीं देखा।

धनिया ने ज़मीन पर थूक्कर कहा—थुड़ी है तेरी झुठाई पर। तूने खुद मुझसे कहा कि हीरा चोरों की तरह नांद के पास खड़ा था, और अब भाई के पक्ष में झूठ बोलता है। थुड़ी है। अगर मेरे बेटे का बाल भी बांका हुआ, तो घर में आग लगा दूंगी। सारी गृहस्थी में आग लगा दूंगी। भगवान्, आदमी मुंह से बात कहकर इतनी बेसरमी से मुकर जाता है।

होरी पांव पटककर बोला—धनिया, गुस्सा मत दिला, नहीं बुरा होगा।

'मार तो रहा है, और मार ले। जा, तू अपने बाप का बेटा होगा, तो आज मुझे मारकर तब पानी पियेगा। पापी ने मारते-मारते मेरा भुरकस निकाल दिया, फिर भी इसका जी नहीं भरा। मुझे मारकर समझता है मैं बड़ा वीर हूं। भाइयों के सामने बिल्ली बन जाता है, पापी कहीं का, हत्यारा।'

फिर वह बैन कहकर रोने लगी—इस घर में आकर उसने क्या नहीं झेला, पेट-तन नहीं काटा, किस तरह एक-एक लत्ते को तरसी, किस तरह एक-एक पैसा सञ्चा, किस तरह घर-भर को खिलाकर आप पानी पीकर सो रही। और आज

रस्कार! भगवान् वैठे यह अन्याय देख रहे हैं और उसकी रक्षा को नहीं दौड़ते। गज की ओर । रक्षा करने वैकुण्ठ से दौड़े थे। आज क्यों नींद में सोये हुए हैं?

नमत धीरे-धीरे धनिया की ओर आने लगा। इसमें अव किसी को सन्देह नहीं रहा कि हीरा ने को ज़हर दिया। होरी ने विलकुल झूठी क़सम खायी है, इसका भी लोगों को विश्वास हो गया। को भी वाप की इस झूठी क़सम और उसके फलस्वरूप आने वाली विपत्ति की शंका ने होरी के द्र कर दिया। उस पर जो दातादीन ने डांट वतायी, तो होरी परास्त हो गया। चुपके से वाहर चला । सत्य ने विजय पायी।

दातादीन ने शोभा से पूछा—तुम कुछ जानते हो शोभा, क्या वात हुई?

शोभा ज़मीन पर लेटा हुआ वोला—मैं तो महाराज, आठ दिन से वाहर नहीं निकला। होरी दाद. भी-कभी जाकर कुछ दे आते हैं, उसी से काम चलता है। रात भी वह मेरे पास गये थे। किसने क्या क्या, मैं कुछ नहीं जानता। हां, कल सांझ को हीरा मेरे घर खुरपी मांगने गया था। कहता था, एक जड़ी खोदना है। फिर तव से मेरी उससे भेंट नहीं हुई।

धनिया इतनी शह पाकर वोली—पण्डित दादा, यह उसी का काम है। सोभा के घर से खुरपी मांगकर लाया और कोई जड़ी खोदकर गाय को खिला दी। उस रात को जो झगड़ा हुआ था, उसी दिन से वह खार खाये वैठा था।

दातादीन वोले—यह वात सावित हो गयी, तो उसे हत्या लगेगी। पुलिस कुछ करे या न करे, धरम तो विना दण्ड दिये न रहेगा। चली तो जा रुपिया, हीरा को वुला ला। कहना, पण्डित दादा वुला रहे हैं। अगर उसने हत्या नहीं की है, तो गंगाजली उठा ले और चौरे पर चढ़कर कसम खाये।

धनिया वोली—महाराज, उसके कसम का भरोसा नहीं। चटपट खा लेगा। जव इसने झूठी कसम खा ली, जो वड़ा धर्मात्मा वनता है, तो हीरा का क्या विश्वास!

अव गोवर वोला—खा ले झूठी कसम। वंस का अन्त हो जाये। वूढ़े जीते रहें। जवान जीकर क्या करेंगे?

रूपा एक क्षण में आकर वोली—काका घर में नहीं है, पण्डित दादा! काकी कहती हैं, कहीं चले गये हैं।

दातादीन ने लम्वी दाढ़ी फटकारकर कहा—तूने पूछा नहीं, कहां चले गये हैं? घर में छिपा वैठा न हो। देख तो सोना, भीतर तो नहीं वैठा है?

धनिया ने टोका—उसे मत भेजो दादा! हीरा के सिर हत्या सवार है, न जाने क्या कर वैठे?

दातादीन ने खुद लकड़ी संभाली और ख़वर लाये कि हीरा सचमुच कहीं चला गया है। पुनिया कहती है, लुटिया-डोर और डण्डा सव लेकर गये हैं। पुनिया ने पूछा भी, कहां जाते हो, पर वता नहीं। उसने पांच रुपये आले में रखे थे। रुपये वहां नहीं हैं। साइत रुपये भी लेता गया।

धनिया शीतल हृदय से वोली—मुंह में कालिख लगाकर कहीं भागा होगा।

शोभा वोला—भाग के कहां जायेगा? गंगा नहाने न चला गया हो।

धनिया ने शंका की—गंगा जाता, तो रुपये क्यों ले जाता, और आजकल कोई परव भी तो है।

इस शंका का कोई समाधान न मिला। धारणा दृढ़ हो गयी।

आज होरी के घर भोजन नहीं पका। न किसी ने वैलों को सानी-पानी दिया। सारे सनसनी फैली हुई थी। दो-दो, चार-चार आदमी जगह-जगह जमा होकर इसी विषय की अ कर रहे थे। हीरा अवश्य कहीं भाग गया। देखा होगा कि भेद खुल गया, अव जेहल जाना पड़े अलग लगेगी। वस, कहीं भाग गया। पुनिया अलग रो रही थी, कुछ कहा न सुना, न जाने दिये।

जो कुछ कसर रह गयी थी, वह सन्ध्या-समय हलके के थानेदार ने आकर पूरी कर दी। गांव के चौकीदार ने इस घटना की रपट की, जैसा उसका कर्तव्य था। और थानेदार साहब भला अपने कर्तव्य से कब चूकने वाले थे? अब गांववालों को भी उनकी सेवा-सत्कार करके अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। दातादीन, झिंगुरीसिंह, नोखेराम, उनके चारों प्यादे, मंगरू साह और लाला पटेश्वरी सभी आ पहुंचे और दारोग़ाजी के सामने हाथ बांधकर खड़े हो गये। होरी की तलबी हुई। जीवन में यह पहला अवसर था कि वह दारोग़ा के सामने आया। ऐसा डर रहा था, जैसे फांसी हो जायेगी। धनिया को पीटते समय उसका एक-एक अंग फड़क रहा था। दारोग़ा के सामने कछुए की भांति भीतर सिमटा जाता था। दारोग़ा ने उसे आलोचक नेत्रों से देखा और उसके हृदय तक पहुंच गये। आदमियों की नस पहचानने का उन्हें अच्छा अभ्यास था। किताबी मनोविज्ञान में कोरे, पर व्यावहारिक मनोविज्ञान के मर्मज्ञ थे। यक़ीन हो गया, आज अच्छे का मुंह देखकर उठे हैं। और होरी का चेहरा कहे देता था, इसे केवल एक घुड़की काफ़ी है।

दारोग़ा ने पूछा—तुझे किस पर शुबहा है?

होरी ने ज़मीन छुई और हाथ बांधकर बोला—मेरा सुबहा किसी पर नहीं है सरकार, गाय अपनी मौत से मरी है। बुड्ढी हो गयी थी।

धनिया भी आकर पीछे खड़ी थी। तुरन्त बोली—गाय मारी है तुम्हारे भाई हीरा ने। सरकार ऐसे बौड़म नहीं हैं कि जो कुछ तुम कह दोगे, वह मान लेंगे। यहां जांच-तहक़ीक़ात करने आये हैं।

दारोग़ाजी ने पूछा—यह कौन औरत है?

कई आदमियों ने दारोग़ाजी से कुछ बातचीत करने का सौभाग्य प्राप्त करने के लिए चढ़ा-ऊपरी की। एक साथ बोले और अपने मन को इस कल्पना से सन्तोष दिया कि पहले मैं बोला—होरी की घरवाली है सरकार!

'तो इसे बुलाओ, मैं पहले इसी का बयान लिखूंगा। वह कहां है हीरा?'

विशिष्ट जनों ने एक स्वर से कहा—वह तो आज सबेरे से कहीं चला गया है सरकार!

'मैं उसके घर की तलाशी लूंगा।'

तलाशी। होरी की सांस तले-ऊपर होने लगी। उसके भाई हीरा के घर की तलाशी न होने पायेगी, और धनिया से अब उसका कोई सम्बन्ध नहीं। जहां चाहे जाये। जब वह उसकी इज़्ज़त बिगाड़ने पर आ गयी, तो उसके घर में कैसे रह सकती है? जब गली-गली ठोकर खायेगी, तब पता चलेगा।

गांव के विशिष्ट जनों ने इस महान् संकट को टालने के लिए कानाफूसी शुरू की।

दातादीन ने गंजा सिर हिलाकर कहा—यह सब कमाने के ढंग हैं। पूछो, हीरा के घर में क्या रखा है?

पटेश्वरी लाल बहुत लम्बे थे, पर लम्बे होकर भी बेवकूफ़ न थे। अपना लम्बा काला मुंह और लम्बा करके बोले—और यहां आया है किसलिए, और जब आया है, बिना कुछ लिये-दिये गया कब है?

झिंगुरीसिंह ने होरी को बुलाकर कान में कहा—निकालो जो कुछ देना हो। यों गला न छूटेगा।

दारोग़ाजी ने अब ज़रा गरजकर कहा—मैं हीरा के घर की तलाशी लूंगा।

होरी के मुख का रंग ऐसे उड़ गया था, जैसे देह का सारा रक्त सूख गया हो। तलाशी उसके घर हुई तो, उसके भाई के घर हुई तो, एक ही बात है। हीरा अलग रहे, पर दुनिया तो जानती है कि वह उसका भाई है, मगर इस वक्त उसका कुछ बस नहीं। उसके पास रुपये होते, तो इसी रुपये लाकर दारोग़ाजी के चरणों पर रख देता और कहता—सरकार, मेरी इज़्ज़त आपके हाथ है। मगर उसके पास तो ज़हर खाने को भी एक पैसा नहीं है। धनिया के पास भले ही हों

हों, पर वह चुड़ैल भला क्यों देने लगी, मृत्युदण्ड पाये हुए आदमी की भांति सिर झुकाये, अपने अपमान की वेदना का तीव्र अनुभव करता हुआ चुपचाप खड़ा रहा।

दातादीन ने होरी को सचेत किया—अब इस तरह खड़े रहने से काम न चलेगा होरी, रुपये की कोई जुगत करो।

होरी दीन स्वर में बोला—अब मैं क्या अरज करूं महाराज? अभी तो पहले ही की गठरी सिर पर लदी है, और किस मुंह से मांगूं, लेकिन इस संकट से उबार लो। जीता रहा, तो कौड़ी-कौड़ी चुका दूंगा। मैं मर भी जाऊं, तो गोबर तो है ही।

नेताओं में सलाह होने लगी। दारोग़ाजी को क्या भेंट किया जाये। दातादीन ने पचास का प्रस्ताव किया। झिंगुरीसिंह के अनुमान में सौ से कम पर सौदा न होगा। नोखेराम भी सौ के पक्ष में थे। और होरी के लिए सौ और पचास में कोई अन्तर न था। इस तलाशी का संकट उसके सिर से टल जाये। पूजा चाहे कितनी ही चढ़ानी पड़े। मरे को मन-भर लकड़ी से जलाओ या दस मन से, उसे क्या चिन्ता?

मगर पटेश्वरी से यह अन्याय न देखा गया। कोई डाका या क़तल तो हुआ नहीं। केवल तलाशी हो रही है। इसके लिए बीस रुपये बहुत हैं।

नेताओं ने धिक्कारा—तो फिर दारोग़ाजी से बातचीत करना। हम लोग नगीच न जायेंगे। कौन घुड़कियां खाये?

होरी ने पटेश्वरी के पांव पर अपना सिर रख दिया—भैया, मेरा उद्धार करो। जब तक जिऊंगा, तुम्हारी ताबेदारी करूंगा।

दारोग़ाजी ने फिर अपने विशाल वक्ष और विशालतर उदर की पूरी शक्ति से कहा—कहां है हीरा का घर? मैं उसके घर की तलाशी लूंगा।

पटेश्वरी ने आगे बढ़कर दारोग़ाजी के कान में कहा—तलासी लेकर क्या करोगे हुजूर, उसका भाई आपकी ताबेदारी के लिए हाज़िर है।

दोनों आदमी ज़रा अलग जाकर बातें करने लगे।

'कैसा आदमी है?'

'बहुत ही ग़रीब हुजूर। भोजन का ठिकाना भी नहीं।'

'सच?'

'हां हुजूर, ईमान से कहता हूं।'

'अरे! तो क्या एक पचासे का डौल भी नहीं है?'

'कहां की बात हुजूर? दस मिल जायें, तो हज़ार समझिए। पचास तो पचास जनम में भी मुमकिन नहीं और वह भी जब कोई महाजन खड़ा हो जायेगा।'

दारोग़ाजी ने एक मिनट तक विचार करके कहा—तो फिर उसे सताने से फ़ायदा? मैं ऐसों को नहीं सताता, जो आप ही मर रहे हों।

पटेश्वरी ने देखा, निशाना और आगे जा पड़ा। बोले—नहीं हुजूर, ऐसा न कीजिये, नहीं फिर हम कहां जायेंगे। हमारे पास दूसरी और कौन-सी खेती है?

'तुम इलाक़े के पटवारी हो जी, कैसी बातें करते हो?'

'जब ऐसा ही कोई अवसर आ जाता है, तो आपकी बदौलत हम भी कुछ पा जाते हैं। नहीं पटवारी को कौन पूछता है?'

'अच्छा जाओ, तीस रुपये दिलवा दो। बीस रुपये हमारे, दस रुपये तुम्हारे।'

'चार मुखिया हैं, इसका खयाल कीजिये।'

'अच्छा, आधे-आध पर रखो, जल्दी करो। मुझे देर हो रही है।'

पटेश्वरी ने झिंगुरी से कहा। झिंगुरी ने होरी को इशारे से बुलाया, अपने घर ले गये, तीस रुपये गिनकर उसके हवाले किये और एहसान से दबाते हुए बोले—आज ही कागज लिखा लेना। तुम्हारा मुंह देखकर रुपये दे रहा हूं, तुम्हारी भलमंसी पर।

होरी ने रुपये लिये और अंगोछे के कोर में बांधे प्रसन्न-मुख आकर दारोग़ाजी की ओर चला।

सहसा धनिया झपटकर आगे आयी और अंगोछी एक झटके के साथ उसके हाथ से छीन ली। गांठ पक्की न थी। झटका पाते ही खुल गयी और सारे रुपये ज़मीन पर बिखर गये। नागिन की तरह फुंकारकर बोली—ये रुपये कहां लिये जा रहा है, बता? भला चाहता है, तो सब रुपये लौटा दे, नहीं कहे देती हूं। घर के परानी रात-दिन मरें और दाने-दाने को तरसें, लत्ता भी पहनने को मयस्सर न हो और अंजुरी-भर रुपये लेकर चला है इज्जत बचाने। ऐसी बड़ी है तेरी इज्जत। जिसके घर में चूहे लोटें, वह भी इज्जतवाला है? दारोगा तलासी ही तो लेगा। ले-ले जहां चाहे तलासी। एक तो सौ रुपये की गाय गयी, उस पर यह पलेथन। वाह री तेरी इज्जत!

होरी खून का घूंट पीकर रह गया। सारा समूह जैसे थर्रा उठा। नेताओं के सिर झुक गये। दारोग़ा का मुंह ज़रा-सा निकल आया। अपने जीवन में उसे ऐसी लताड़ न मिली थी।

होरी स्तम्भित-सा खड़ा रहा। जीवन में आज पहली बार धनिया ने उसे भरे अखाड़े में पटकनी दी, आकाश तका दिया। अब वह कैसे सिर उठाये?

मगर दारोग़ाजी इतनी जल्दी हार माननेवाले न थे। खिसियाकर बोले—मुझे ऐसा मालूम होता है कि इस शैतान की खाला ने हीरा को फंसाने के लिए खुद गाय को ज़हर दे दिया।

धनिया हाथ मटकाकर बोली—हां, दे दिया। अपनी गाय थी, मार डाली, फिर किसी दूसरे का जानवर तो नहीं मारा? तुम्हारे तहकीकात में यही निकलता है, तो यही लिखो। पहना दो मेरे हाथ में हथकड़ियां। देख लिया तुम्हारा न्याय और तुम्हारे अक्कल की दौड़। गरीबों का गला काटना दूसरी बात है, दूध का दूध और पानी का पानी करना दूसरी बात।

होरी आंखों से अंगारे बरसाता धनिया की ओर लपका, पर गोबर सामने आकर खड़ा हो गया और उग्र भाव से बोला—अच्छा दादा, अब बहुत हुआ। पीछे हट जाओ, नहीं मैं कहे देता हूं, मेरा मुंह न देखोगे। तुम्हारे ऊपर हाथ न उठाऊंगा। ऐसा कपूत नहीं हूं। यहीं गले में फांसी लगा लूंगा।

होरी पीछे हट गया और धनिया शेर होकर बोली—तू हट जा गोबर, देखूं तो क्या करता है मेरा? दारोगाजी बैठे हैं। इसकी हिम्मत देखूं। घर में तलासी होने से इसकी इज़्जत जाती है। अपनी मेहरिया को सारे गांव के सामने लतियाने से इसकी इज्जत नहीं जाती। यही तो वीरों का धरम है। बड़ा वीर है, तो किसी मरद से लड़। जिसकी बांह पकड़कर लाया, उसे मारकर बहादुर न कहलायेगा। तू समझता होगा, मैं इसे रोटी-कपड़ा देता हूं। आज से अपना घर संभाल। देख तो, इसी गांव में तेरी छाती पर मूंग दलकर रहती हूं कि नहीं, और उससे अच्छा खाऊं-पहनूंगी। इच्छा हो, देख ले।

होरी परास्त हो गया। उसे अब ज्ञात हुआ स्त्री के सामने पुरुष कितना निर्बल, कितना निरुपाय है।

नेताओं ने रुपये चुनकर उठा लिये थे और दारोग़ाजी को वहां से चलने का इशारा कर रहे थे। धनिया ने एक ठोकर और जमायी—जिसके रुपये हों, ले जाकर उसे दे दो। हमें किसी से उधार नहीं लेना है। और जो देना है, तो उसी से लेना। मैं दमड़ी भी न दूंगी। चाहे मुझे हाकिम के इजलास तक ही चढ़ना पड़े। हम बाकी चुकाने को पच्चीस रुपये मांगते थे, किसी ने न दिया। आज अंजुरी-भर रुपये टनाटन निकाल के दे दिये। मैं सब जानती हूं। यहां तो बांट-बखरा होने वाला था, सभी के मुंह मीठे होते। ये हत्यारे गांव के मुखिया हैं, गरीबों का खून चूसनेवाले। सूद-ब्याज, डेढ़ी-सवाई, नजर-नजराना, घूस-घास जैसे भी हो, गरीबों को लूटो। उस पर सुराज चाहिए। जेल जाने से सुराज न मिलेगा। सुराज मिलेगा धरम से, न्याय से।

नेताओं के मुंह में कालिख-सी लगी हुई थी। दारोग़ाजी के मुंह पर झाडू-सी फिरी हुई थी। इज़्ज़त बचाने के लिए हीरा के घर की ओर चले।

रास्ते में दारोग़ा ने स्वीकार किया—औरत है बड़ी दिलेर।

पटेश्वरी बोले—दिलेर नहीं है हुजूर, कर्कशा है। ऐसी औरत को तो गोली मार दे।

'तुम लोगों का क़ाफ़िया तंग कर दिया उसने। चार-चार तो मिलते ही।'

'हुजूर के भी तो पन्द्रह रुपये गये।'

'मेरे कहां जा सकते हैं? वह न देगा, गांव के मुखिया देंगे, और पन्द्रह रुपये की जगह पूरे पचास रुपये। आप लोग चटपट इन्तज़ाम कीजिये।'

पटेश्वरीलाल ने हंसकर कहा—हुजूर बड़े दिल्लगीबाज़ हैं।

दातादीन बोले—बड़े आदमियों के यही लक्षण हैं। ऐसे भाग्यवानों के दर्शन कहां होते हैं?

दारोग़ाजी ने कठोर स्वर में कहा—यह खुशामद फिर कीजियेगा। इस वक्त तो मुझे पचास रुपये दिलवाइये, नक़द, और यह समझ लो कि आनाकानी की, तो मैं तुम चारों के घर की तलाशी लूंगा। बहुत मुमकिन है कि तुमने हीरा और होरी को फंसाकर उनसे सौ-पचास ऐंठने के लिए यह पाखण्ड रचा हो।

नेतागण अभी तक यह समझ रहे हैं, दारोग़ाजी विनोद कर रहे हैं।

झिंगुरीसिंह ने आंखें मारकर कहा—निकालो पचास रुपये पटवारी साहब!

नोखेराम ने उनका समर्थन किया—पटवारी साहब का इलाका है। उन्हें जरूर आपकी खातिर करनी चाहिए।

पण्डित नोखेरामजी की चौपाल आ गयी। दारोग़ाजी एक चारपाई पर बैठ गये और बोले—तुम लोगों ने क्या निश्चय किया? रुपये निकालते हो या तलाशी करवाते हो?

दातादीन ने आपत्ति की—मगर हुजूर....।

'मैं अगर-मगर कुछ नहीं सुनना चाहता।'

झिंगुरीसिंह ने साहस किया—सरकार यह तो सरासर......

'मैं पन्द्रह मिनट का समय देता हूं। अगर इतनी देर में पूरे पचास रुपये न आये, तो तुम चारों के घर की तलाशी होगी, और गण्डासिंह को जानते हो। उसका मारा पानी भी नहीं मांगता।'

पटेश्वरीलाल ने तेज़ स्वर से कहा—आपको अख्तियार है, तलाशी ले लें। यह अच्छी दिल्लगी है, काम कौन करे, पकड़ा कौन जाये।

'मैंने पच्चीस साल थानेदारी की है, जानते हो?'

'लेकिन ऐसा अन्धेर तो कभी नहीं हुआ।'

'तुमने अभी अन्धेर नहीं देखा। कहो तो वह भी दिखा दूं। एक-एक को पांच-पांच साल के लिए भेजवा सकता हूं। यह मेरे बायें हाथ का खेल है। डाके में सारे गांव को काले पानी भेजवा सकता हूं। इस धोखे में न रहना।'

चारों सज्जन चौपाल के अन्दर जाकर विचार करने लगे।

फिर क्या हुआ किसी को मालूम नहीं, हां, दारोग़ाजी प्रसन्न दिखाई दे रहे थे, और चारों सज्जनों के मुंह पर फटकार बरस रही थी।

दारोग़ाजी घोड़े पर सवार होकर चले, तो चारों नेता दौड़ रहे थे। घोड़ा दूर निकल गया, तो चारों सज्जन लौटे। इस तरह, मानो किसी प्रियजन का संस्कार करके श्मशान से लौट रहे हों।

सहसा दातादीन बोले—मेरा सराप न पड़े, तो मुंह न दिखाऊं।

नोखेराम ने समर्थन किया—ऐसा धन कभी फलते नहीं देखा।

पटेश्वरी ने भविष्यवाणी की—हराम की कमाई हराम में जायेगी।

झिंगुरी को आज ईश्वर की न्यायपरता में सन्देह हो गया था। भगवान् न जाने कहां हैं कि यह अन्धेर देखकर भी पापियों को दण्ड नहीं देते।

इस वक्त इन सज्जनों की तस्वीर खींचने लायक़ थी।

:10:

हीरा का कहीं पता न चला और दिन गुज़रते जाते थे। होरी से जहां तक दौड़-धूप हो सकी, की, फिर हारकर बैठ रहा। खेती-बारी की भी फ़िक्र करनी थी। अकेला आदमी क्या-क्या करता? और अब अपनी खेती से ज़्यादा फ़िक्र थी पुनिया की खेती की। पुनिया अब अकेली होकर और भी प्रचण्ड हो गयी थी। होरी को अब उसकी ख़ुशामद करते बीतती थी। हीरा था, तो वह पुनिया को दबाये रहता था। उसके चले जाने से अब पुनिया पर कोई अंकुश न रह गया था। होरी की पट्टीदारी हीरा से थी। पुनिया अबला थी। उससे वह क्या तनातनी करता? और पुनिया उसके स्वभाव से परिचित थी और उसकी सज्जनता का उसे खूब दण्ड देती थी। खैरियत यही हुई कि कारकुन साहब ने पुनिया से बक़ाया लगान वसूल करने की कोई सख़्ती न की, केवल थोड़ी-सी पूजा लेकर राज़ी हो गये। नहीं, होरी अपनी बक़ाया के साथ उसकी बक़ाया चुकाने के लिए भी क़र्ज़ लेने को तैयार था। सावन में धान की रोपाई की। ऐसी धूम रही कि मजूर न मिले और होरी अपने खेतों में धान न रोप सका, लेकिन पुनिया के खेतों में कैसे न रोपाई होती? होरी ने पहर रात-रात तक काम करके उसके धान रोपे। अब होरी ही तो उसका रक्षक है। अगर पुनिया को कोई कष्ट हुआ, तो दुनिया उसी को तो हंसेगी। नतीजा यह हुआ कि होरी की खरीफ़ की फ़सल में बहुत थोड़ा अनाज मिला और पुनिया के बखार में धान रखने की जगह न रही।

होरी और धनिया में उस दिन से बराबर मनमुटाव चला आता था। गोबर से भी होरी की बोलचाल बन्द थी। मां-बेटे ने मिलकर उसका बहिष्कार कर दिया था। अपने घर में परदेसी बना हुआ था। दो नावों पर सवार होने वालों की जो दुर्गति होती है, वही उसकी हो रही थी। गांव में भी अब उसका उतना आदर न था। धनिया ने अपने साहस से स्त्रियों का ही नहीं, पुरुषों का नेतृत्व भी प्राप्त कर लिया था। महीनों तक आसपास के इलाक़ों में इस काण्ड की खूब चर्चा रही। यहां तक कि वह अलौकिक रूप तक धारण करता जाता था—'धनिया नाम है उसका जी। भवानी का इष्ट है उसे। दारोग़ाजी ने ज्यों ही उसके आदमी के हाथ में हथकड़ी डाली कि धनिया ने भवानी का सुमिरन किया। भवानी उसके सिर आ गयी। फिर तो उसमें इतनी शक्ति आ गयी कि उसने एक झटके में पति की हथकड़ी तोड़ डाली और दारोग़ा की मूंछें पकड़कर उखाड़ लीं, फिर उसकी छाती पर चढ़ बैठी। दारोग़ा ने जब बहुत मानता की, तब जाकर उसे छोड़ा।' कुछ दिन तक तो लोग धनिया के दर्शनों को आते रहे। वह बात अब पुरानी पड़ गयी थी, लेकिन गांव में धनिया का सम्मान बहुत बढ़ गया। उसमें अद्भुत साहस है और समय पड़ने पर वह मरद के भी कान काट सकती है।

मगर धीरे-धीरे धनिया में एक परिवर्तन हो रहा था। होरी को पुनिया की खेती में लगे देखकर भी वह कुछ न बोलती थी। और यह इसलिए नहीं कि वह होरी से विरक्त हो गयी थी, बल्कि इसलिए कि पुनिया पर अब उसे भी दया आती थी। हीरा का घर से भाग जाना उसकी प्रतिशोध-भावना की तुष्टि के लिए काफ़ी था।

इसी बीच में होरी को ज्वर आने लगा। फ़सली बुख़ार फैला था ही। होरी उसकी चपेट में आ गया। और कई साल के बाद जो ज्वर आया, तो उसने सारी बक़ाया चुका ली। एक महीने तक होरी खाट पर पड़ा रहा। इस बीमारी ने होरी को तो कुचल डाला ही, पर धनिया पर भी विजय पा गयी। पति जब मर रहा है, तो उससे कैसा बैर? ऐसी दशा में तो बैरियों से भी बैर न[illegible] तो अपना

पति है। लाख बुरा हो, पर उसी के साथ जीवन के पच्चीस साल कटे हैं, सुख किया है, तो उसी के साथ, दुःख भोगा है, तो उसी के साथ, अब तो चाहे वह अच्छा है या बुरा, अपना है। दाढ़ीजार ने मुझे सबके सामने मारा, सारे गांव के सामने मेरा पानी उतार लिया, लेकिन तब से कितना लज्जित है कि सीधे ताकता नहीं। खाने आता है, तो सिर झुकाये खाकर उठ जाता है, डरता रहता है कि मैं कुछ कह न बैठूं।

होरी जब अच्छा हुआ, तो पति-पत्नी में मेल हो गया था।

एक दिन धनिया ने कहा—तुम्हें इतना गुस्सा कैसे आ गया? मुझे तो तुम्हारे ऊपर कितना ही गुस्सा आये, मगर हाथ न उठाऊंगी।

होरी लजाता हुआ बोला—अब उसकी चर्चा न कर धनिया। मेरे ऊपर कोई भूत सवार था। इसका मुझे कितना दुःख हुआ है, इसे मैं ही जानता हूं।

'और जो मैं भी उस क्रोध में डूब मरी होती?'

'तो क्या मैं रोने के लिए बैठा रहता? मेरी लहास भी तेरे साथ चिता पर जाती।'

'अच्छा चुप रहो, बेबात की बात मत करो।'

'गाय गयी सो गयी, मेरे सिर पर एक विपत्ति डाल गयी। पुनिया की फिकर मुझे मारे डालती है।'

'इसीलिए तो कहते हैं, भगवान् घर का बड़ा न बनाये। छोटों को कोई नहीं हंसता। नेकी-बदी सब बड़ों के सिर जाती है।'

माघ के दिन थे। मघावट लगी हुई थी। घटाटोप अंधेरा छाया हुआ था। एक तो जाड़ों की रात, दूसरे माघ की वर्षा। मौत का-सा सन्नाटा छाया हुआ था। अंधेरा तक न सूझता था। होरी भोजन करके पुनिया के मटर के खेत की मेंड़ पर अपनी मड़ैया में लेटा हुआ था। चाहता था, शीत को भूल जाये और सो रहे, लेकिन तार-तार कम्बल और फटी हुई मिरजई और शीत के झोंकों से गीली पुआल। इतने शत्रुओं के सम्मुख आने का नींद में साहस न था। आज तमाखू भी न मिला कि उसी से मन बहलाता। उपला सुलगा लाया था, पर शीत में वह भी बुझ गया। बिवाई फटे पैरों को पेट में डालकर और हाथों को जांघों के बीच में दबाकर और कम्बल में मुंह छिपाकर अपनी ही गरम सांसों से अपने को गरम करने की चेष्टा कर रहा था। पांच साल हुए, यह मिरजई बनवायी थी। धनिया ने एक प्रकार से ज़बरदस्ती बनवा दी थी, वही जब एक बार काबुली से कपड़े लिये थे, जिसके पीछे कितनी सांसत हुई, कितनी गालियां खानी पड़ीं। और कम्बल उसके जन्म से भी पहले का है। बचपन में अपने बाप के साथ वह इसी में सोता था, जवानी में गोबर को लेकर इसी कम्बल में उसके जाड़े कटे थे और बुढ़ापे में आज वही कम्बल उसका साथी है, पर अब वह भोजन को चबाने वाला दांत नहीं, दुखने वाला दांत है।

जीवन में ऐसा तो कोई दिन ही नहीं आया कि लगान और महाजन को देकर कभी कुछ बचा हो, और बैठे-बैठाये यह एक नया जञ्जाल पड़ गया। न करो, तो दुनिया हंसे, करो, तो यह संशय बना रहे कि लोग क्या कहते हैं। सब यह समझते कि वह पुनिया को लूट लेता है, उसकी सारी उपज घर में भर लेता है। एहसान तो क्या होगा, उलटा कलंक लग रहा है। और उधर भोला कई बेर याद दिला चुके हैं कि कहीं कोई सगाई का डौल करो, अब काम नहीं चलता। सोभा उससे कई बार कह चुका है कि पुनिया के विचार उसकी ओर से अच्छे नहीं हैं। न हो, पुनिया की गृहस्थी तो उसे संभालनी ही पड़ेगी, चाहे हंसकर संभाले या रोकर।

धनिया का दिल भी अभी तक साफ़ नहीं हुआ। अभी तक उसके मन में मलाल बना हुआ है। मुझे सब आदमियों के सामने उसको मारना न चाहिए था। जिसके साथ पच्चीस साल गुज़र गये, उसे मारना और सारे गांव के सामने, मेरी नीचता थी, लेकिन धनिया ने भी तो मेरी आबरू उतारने में

कोई कसर नहीं छोड़ी। मेरे सामने से कैसा कतराकर निकल जाती है, जैसे कभी की जान-पहचान ही नहीं। कोई वात कहनी होती है, तो सोना या रूपा से कहलाती है। देखता हूं, उसकी साड़ी फट गयी है, मगर कल मुझसे कहा भी, तो सोना की साड़ी के लिए, अपनी साड़ी का नाम तक न लिया। सोना की साड़ी अभी दो-एक महीने थेगलियां लगाकर चल सकती है। उसकी साड़ी तो मारे पेवन्दों के विलकुल कथरी हो गयी है। और फिर मैं ही कौन उसका मनुहार कर रहा हूं? अगर मैं ही उसके मन की दो-चार वातें करता रहता, तो कौन छोटा हो जाता? यही तो होता, वह थोड़ा-सा अदरावन करती, दो-चार लगनेवाली वात कहती, तो क्या मुझे चोट लग जाती, लेकिन मैं वुड्ढा होकर भी उल्लू वना रह गया। वह तो कहो, इस वीमारी ने आकर उसे नरम कर दिया, नहीं जाने कव तक मुंह फुलाये रहती।

और आज उन दोनों में जो वातें हुई थीं, वह मानो भूखे का भोजन थीं। वह दिल से वोली थी और होरी गद्गद हो गया था। उसके जी में आया, उसके पैरों पर सिर रख दे और कहे—मैंने तुझे मारा है, तो ले, मैं सिर झुकाये लेता हूं, जितना चाहे मार ले, जितनी गालियां देना चाहे, दे ले।

सहसा उसे मड़ैया के सामने चूड़ियों की झंकार सुनाई दी। उसने कान लगाकर सुना। हां, कोई है, पटवारी की लड़की होगी, चाहे पण्डित की घरवाली हो। मटर उखाड़ने आयी होगी। न जाने क्यों इन लोगों की नीयत खोटी है। सारे गांव से अच्छा पहनते हैं, सारे गांव से अच्छा खाते हैं, घर में हजारों रुपये गड़े हैं, लेन-देन करते हैं, ड्योढ़ी-सवाई चलाते हैं, घूस लेते हैं, दस्तूरी लेते हैं, एक-न-एक मामला खड़ा करके हमा-सुमा को पीसते ही रहते हैं, फिर भी नीयत का यह हाल! वाप जैसा होगा, वैसी ही सन्तान भी होगी। और आप नहीं आते, औरतों को भेजते हैं। अभी उठकर हाथ पकड़ लूं, तो क्या पानी रह जाये? नीच कहने को नीच हैं, जो ऊंचे हैं उनका मन तो और नीचा है। औरत जात का हाथ पकड़ते भी तो नहीं वनता, आंखों देखकर मक्खी निगलनी पड़ती है? उखाड़ ले भाई, जितना तेरा जी चाहे। समझ ले, मैं नहीं हूं। वड़े आदमी अपनी लाज न रखें, छोटों को तो उनकी लाज रखनी ही पड़ती है।

मगर नहीं, यह तो धनिया है। पुकार रही है।

धनिया ने पुकारा—सो गये कि जागते हो?

होरी झटपट उठा और मड़ैया के वाहर निकल आया। आज मालूम होता है, देवी प्रसन्न हो गयी, उसे वरदान देने आयी है, इसके साथ ही इस वादल-वूंदी और जाड़े-पाले में इतनी रात गये उसका आना शंकाप्रद भी था। जरूर कोई-न-कोई वात हुई है।

वोला—ठण्डी के मारे नींद भी आती है? तू इस जाड़े-पाले में कैसे आयी? कुसल तो है?

'हां, सव कुसल है।'

'गोवर को भेजकर मुझे क्यों नहीं वुलवा लिया?'

धनिया ने कोई उत्तर न दिया। मड़ैया में आकर पुआल पर वैठती हुई वोली—गोवर ने तो मुंह में कालिख लगा दी, उसकी करनी क्या पूछते हो। जिस वात को डरती थी, वह होकर रही।

'क्या हुआ? किसी से मार-पीट कर वैठा?'

'अव मैं क्या जानूं, क्या कर वैठा, चलकर पूछो उसी रांड़ से?'

'किस रांड़ से? क्या कहती है तू? वौरा तो नहीं गयी?'

'हां, वौरा क्यों न जाऊंगी? वात ही ऐसी हुई है कि छाती दुगुनी हो जाये।'

होरी के मन में प्रकाश की एक लम्वी रेखा ने प्रवेश किया।

'साफ-साफ क्यों नहीं कहती। किस रांड़ को कह रही है?'

'उसी झुनिया को, और किसको।'

'तो झुनिया क्या यहां आयी है?'

'और कहां जाती, पूछता कौन?'

'गोबर क्या घर में नहीं है?'

'गोबर का कहीं पता नहीं। जाने कहां भाग गया? इसे पांच महीने का पेट है।'

होरी सब कुछ समझ गया। गोबर को बार-बार अहिराने जाते देखकर वह खटका था ज़रूर, मगर उसे ऐसा खिलाड़ी न समझता था। युवकों में कुछ रसिकता होती ही है, इसमें कोई नयी बात नहीं। मगर जिस रुई के गाले को उसने नीले आकाश में हवा के झोंके से उड़ते देखकर केवल मुस्करा दिया था, वह सारे आकाश में छाकर उसके मार्ग को इतना अन्धकारमय बना देगा, यह तो कोई देवता भी न जान सकता था। गोबर ऐसा लम्पट! वह सरल गंवार, जिसे वह अभी बच्चा समझता था, लेकिन उसे भोज की चिन्ता न थी, पंचायत का भय न था, झुनिया घर में कैसे रहेगी, इसकी चिन्ता भी उसे न थी। उसे चिन्ता थी गोबर की। लड़का लज्जाशील है, अनाड़ी है, आत्माभिमानी है, कहीं कोई नादानी न कर बैठे।

घबराकर बोला—झुनिया ने कुछ कहा नहीं, गोबर कहां गया? उससे कहकर ही गया होगा?

धनिया झुंझलाकर बोली—तुम्हारी अक्कल तो घास खा गयी है। उसकी चहेती तो यहां बैठी है, भागकर जायेगा कहां? यहीं कहीं छिपा बैठा होगा। दूध थोड़े ही पीता है कि खो जायेगा। मुझे तो इस कलमुंही झुनिया की चिन्ता है कि इसे क्या करूं? अपने घर में मैं छन-भर भी न रहने दूंगी। जिस दिन से गाय लाने गया है, उसी दिन से दोनों में तक-झक होने लगी। पेट न रहता, तो अभी बात न खुलती। मगर जब पेट रह गया, तो झुनिया लगी घबराने। कहने लगी, कहीं भाग चलो। गोबर टालता रहा। एक औरत को साथ लेके कहां जाये, कुछ न सूझा। आखिर जब आज वह सिर हो गयी कि मुझे यहां से ले चलो, नहीं मैं परान दे दूंगी, तो बोला—तू चलकर मेरे घर में रह, कोई कुछ न बोलेगा, अम्मां को मना लूंगा। यह गधी उसके साथ चल पड़ी। कुछ दूर तो आगे-आगे आता रहा, फिर न जाने किधर सरक गया। यह खड़ी-खड़ी उसे पुकारती रही। जब रात भीग गयी और वह न लौटा, भागी यहां चली आयी। मैंने तो कह दिया, जैसा किया है, वैसा फल भोग। चुड़ैल ने ले के मेरे लड़के को चौपट कर दिया। तब से बैठी रो रही है। उठती ही नहीं। कहती है, अपने घर कौन मुंह लेकर जाऊं? भगवान् ऐसी सन्तान से तो बांझ ही रखे, तो अच्छा। सवेरा होते-होते सारे गांव में कांव-कांव मच जायेगी। ऐसा जी होता है, माहुर खा लूं। मैं तुमसे कहे देती हूं, मैं अपने घर में न रखूंगी। गोबर को रखना हो, अपने सिर पर रखे। घर में ऐसी छत्तीसियों के लिए जगह नहीं है और अगर तुम बीच में बोले, तो फिर या तो तुम्हीं रहोगे या मैं ही रहूंगी।

होरी बोला—तुझसे बना नहीं, उसे घर में आने ही न देना चाहिए था।

'सब कुछ कहके हार गयी। टलती नहीं। धरना दिये बैठी है।'

'अच्छा चल, देखूं कैसे नहीं उठती, घसीटकर बाहर निकाल दूंगा।'

'दाढ़ीजार भोला सब कुछ देख रहा था, पर चुप्पी साधे बैठा रहा। बाप भी ऐसे बेहया होते हैं?'

'वह क्या जानता था, इनके बीच में क्या खिचड़ी पक रही है।'

'जानता क्यों नहीं था? गोबर रात-दिन घेरे रहता था, तो क्या उसकी आंखें फूट गयी थीं? सोचना चाहिए था न कि यहां क्यों दौड़-दौड़ आता है।'

'चल, मैं झुनिया से पूछता हूं न।'

दोनों मड़ैया से निकलकर गांव की ओर चले। होरी ने कहा—पांच घड़ी रात के ऊपर गयी होगी।

धनिया बोली—हां, और क्या, मगर कैसा सोता पड़ गया है? कोई चोर आये, तो सारे गांव को मूस ले जाये।

'चोर ऐसे गांव में नहीं आते। धनियों के घर जाते हैं।'

धनिया ने ठिठककर होरी का हाथ पकड़ लिया और बोली—देखो, हल्ला न मचाना, नहीं सारा

गांव जाग उठेगा और बात फैल जायेगी।

होरी ने कठोर स्वर में कहा—मैं यह कुछ नहीं जानता। हाथ पकड़कर घसीट लाऊंगा और गांव के बाहर कर दूंगा। बात तो एक दिन खुलनी ही है, फिर आज ही क्यों न खुल जाये? वह मेरे घर आयी क्यों? जाये जहां गोबर है। उसके साथ कुकरम किया, तो क्या हमसे पूछकर किया था?

धनिया ने फिर उसका हाथ पकड़ा और धीरे-से बोली—तुम उसका हाथ पकड़ोगे, तो वह चिल्लायेगी।

'तो चिल्लाया करे।'

'मुदा इतनी रात गये, अंधेरे सन्नाटे रात में जायेगी कहां, यह तो सोचो?'

'जाये जहां उसके सगे हों। हमारे घर में उसका क्या रखा है?'

'हां, लेकिन इतनी रात गये, घर से निकालना उचित नहीं। पांव भारी है, कहीं डर-डरा जाये, तो और आफत हो। ऐसी दशा में कुछ करते-धरते भी तो नहीं बनता।'

'हमें क्या करना है, मरे या जिये। जहां चाहे जाये। क्यों अपने मुंह में कालिख लगाऊं? मैं तो गोबर को भी निकाल बाहर करूंगा।'

धनिया ने गम्भीर चिन्ता से कहा—कालिख जो लगनी थी, वह तो अब लग चुकी। वह अब जीते-जी नहीं छूट सकती। गोबर ने नौका डुबा दी।

'गोबर ने नहीं, डुबायी इसी ने। वह तो बच्चा था। इसके पंजे में आ गया।'

'किसी ने डुबायी, अब तो डूब गयी।'

दोनों द्वार के सामने पहुंच गये। सहसा धनिया ने होरी के गले में हाथ डालकर कहा—देखो, तुम्हें मेरी सौंह, उस पर हाथ न उठाना। वह तो आप ही रो रही है। भाग की खोटी न होती, तो यह दिन ही क्यों आता?

होरी की आंखें आर्द्र हो गयीं। धनिया का यह मातृ-स्नेह उस अंधेरे में भी जैसे दीपक के समान उसकी चिन्ता-जर्जर आकृति को शोभा प्रदान करने लगा। दोनों ही के हृदय में जैसे अतीत यौवन सचेत हो उठा। होरी को इस गतयौवना में भी वही कोमल हृदय बालिका नज़र आयी, जिसने पच्चीस साल पहले उसके जीवन में प्रवेश किया था। उस आलिंगन में कितना अथाह वात्सल्य था, जो सारे कलंक, सारी बाधाओं और सारी मूलबद्ध परम्पराओं को अपने अन्दर समेट लेता था।

दोनों ने द्वार पर आकर किवाड़ों के दराज़ से अन्दर झांका। दीवट पर तेल की कुप्पी जल रही थी और उसके मद्धिम प्रकाश में झुनिया घुटने पर सिर रखे, द्वार की ओर मुंह किये, अन्धकार में उस आनन्द को खोज रही थी, जो एक क्षण पहले अपनी मोहिनी छवि दिखाकर विलीन हो गया था। वह आफ़त की मारी, व्यंग्य-बाणों से आहत और जीवन के आघातों से व्यथित किसी वृक्ष की छांह खोजती फिरती थी, और उसे एक भवन मिल गया था, जिसके आश्रय में वह अपने को सुरक्षित और सुखी समझ रही थी, पर आज वह भवन अपना सारा सुख-विलास लिये अलादीन के राजमहल की भांति ग़ायब हो गया था और भविष्य एक विकराल दानव के समान उसे निगल जाने को खड़ा था।

एकाएक द्वार खुलते और होरी को आते देखकर वह भय से कांपती हुई उठी और होरी के पैरों पर गिरकर रोती हुई बोली—दादा, अब तुम्हारे सिवाय मुझे दूसरा ठौर नहीं है, चाहे मारो, चाहे काटो, लेकिन अपने द्वार से दुरदुराओ मत।

होरी ने झुककर उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए प्यार-भरे स्वर में कहा—डर मत बेटी, डर मत। तेरा घर है, तेरा द्वार है, तेरे हम हैं। आराम से रह। जैसी तू भोला की बेटी है, वैसी ही मेरी बेटी है। जब तक हम जीते हैं, किसी बात की चिन्ता मत कर। हमारे रहते, कोई तुझे तिरछी आंखों न देख सकेगा। भोज-भात जो लगेगा, वह हम सब दे लेंगे, तू खातिर-जमा रख।

झुनिया, सान्त्वना पाकर और भी होरी के पैरों से चिमट गयी और बोली—दादा, अब तुम्हीं मेरे बाप हो, और अम्मां, तुम्हीं मेरी मां हो। मैं अनाथ हूं। मुझे सरन दो, नहीं मेरे काका और भाई मुझे कच्चा ही खा जायेंगे।

धनिया अपने करुणा के आवेग को अब न रोक सकी। बोली—तू चल, घर में बैठ, मैं देख लूंगी काका और भैया को। संसार में उन्हीं का राज नहीं है। बहुत करेंगे अपने गहने ले लेंगे। फेंक देना उतारकर।

अभी ज़रा देर पहले धनिया ने क्रोध के आवेश में झुनिया को कुलटा और कलंकिनी और कलमुंही, न जाने क्या-क्या कह डाला था। झाड़ू मारकर घर से निकालने जा रही थी। अब जो झुनिया ने स्नेह, क्षमा और आश्वासन से भरे यह वाक्य सुने, तो होरी के पांव छोड़कर धनिया के पांव से लिपट गयी और वही साध्वी, जिसने होरी के सिवा किसी पुरुष को आंख भरकर देखा भी न था, इस पापिष्ठा को गले लगाये उसके आंसू पोंछ रही थी और उसके त्रस्त हृदय को कोमल शब्दों से शान्त कर रही थी, जैसे कोई चिड़िया अपने बच्चे को परों में छिपाये बैठी हो।

होरी ने धनिया को संकेत किया कि इसे कुछ खिला-पिला दे और झुनिया से पूछा—क्यों बेटी, तुझे कुछ मालूम है, गोबर किधर गया?

होरी अपनी व्याकुलता न छिपा सका।

'जब तूने आज उसे देखा, तो कुछ दुखी था?'

'बातें तो हंस-हंसकर कर रहे थे। मन का हाल भगवान् जाने।'

'तेरा मन क्या कहता है, गांव में ही है कि कहीं बाहर चला गया?'

'मुझे तो शंका होती है, कहीं बाहर चले गये हैं।'

'यही मेरा मन भी कहता है, कैसी नादानी की? हम उसके दुश्मन थोड़े ही थे। जब भली या बुरी एक बात हो गयी, तो उसे निभानी पड़ती है। इस तरह भागकर उसने हमारी जान आफत में डाल दी।'

धनिया ने झुनिया का हाथ पकड़कर अन्दर ले जाते हुए कहा—कायर कहीं का। जिसकी बांह पकड़ी, उसका निबाह करना चाहिए कि मुंह में कालिख लगाकर भाग जाना चाहिए। अब जो आये, तो घर में बैठने न दूं।

होरी वहीं पुआल में लेटा। गोबर कहां गया? यह प्रश्न उसके हृदयाकाश में किसी पक्षी की भांति मंडराने लगा।

:11:

ऐसे असाधारण काण्ड पर गांव में जो कुछ हलचल मचना चाहिए था, वह मचा और महीनों तक मचता रहा। झुनिया के दोनों भाई लाठियां लिये गोबर को खोजते फिरते थे। भोला ने कसम खायी कि अब न झुनिया का मुंह देखेंगे और न इस गांव का। होरी से उन्होंने अपनी सगाई की जो बातचीत की थी, वह अब टूट गयी। अब वह अपनी गाय के दाम लेंगे और नकद, और इसमें विलम्ब हुआ, तो होरी पर दावा करके उसका घर-द्वार नीलाम करा लेंगे। गांववालों ने होरी को जाति-बाहर कर दिया। कोई उसका हुक्का नहीं पीता, न उसके घर का पानी पीता है। पानी बन्द कर देने की कुछ बातचीत थी, लेकिन धनिया का चण्डी-रूप सब देख चुके थे, इसलिए किसी की आगे आने की हिम्मत न पड़ी।

धनिया ने सबको सुना-सुनाकर कह दिया—किसी ने उसे पानी भरने से रोका, तो उसका और अपना खून एक कर देगी। इस ललकार ने सभी के पित्ते पानी कर दिये। सबसे दुखी है झुनिया, जिसके कारण यह सब उपद्रव हो रहा है, और गोबर की कोई खोज-खबर न मिलना इस दुःख को

और भी दारुण वना रहा है। सारे दिन मुंह छिपाये घर में पड़ी रहती है। वाहर निकले, तो चारों ओर से वाग्वाणों की ऐसी वर्षा हो कि जान वचाना मुश्किल हो जाये। दिन-भर घर के धन्धे करती रहती है और जव अवसर पाती है, रो लेती है। हरदम थर-थर कांपती रहती है कि कहीं धनिया कुछ कह न वैटे। अकेला भोजन तो नहीं पका सकती, क्योंकि कोई उसके हाथ का खायेगा नहीं, वाक़ी सारा काम उसने अपने ऊपर ले लिया। गांव में जहां चार स्त्री-पुरुष जमा हो जाते हैं, यही कुत्सा होने लगती है।

एक दिन धनिया हाट से चली आ रही थी कि रास्ते में पण्डित दातादीन मिल गये। धनिया ने सिर नीचा कर लिया और चाहती थी कि कतराकर निकल जाये, पर पण्डितजी छेड़ने का अवसर पाकर कव चूकने वाले थे? छेड़ ही तो दिया—गोवर का कुछ सर-सन्देश मिला कि नहीं धनिया? ऐसा कपूत निकला कि घर की सारी मरजाद विगाड़ दी।

धनिया के मन में स्वयं यही भाव आते रहते थे। उदास मन से वोली—वुरे दिन आते हैं वावा, तो आदमी की मति फिर जाती है, और क्या कहूं?

दातादीन वोले—तुम्हें इस दुष्टा को घर में न रखना चाहिए था। दूध में मक्खी पड़ जाती है, तो आदमी उसे निकालकर फेंक देता है और दूध पी जाता है। सोचो, कितनी वदनामी और जग-हंसाई हो रही है। वह कुलटा घर में न रहती, तो कुछ न होता। लड़कों से इस तरह की भूल-चूक होती रहती है। जव तक विरादरी को भात न दोगे, व्राह्मनों को भोज न दोगे, कैसे उद्धार होगा? उसे घर में न रखते, तो कुछ न होता। होरी तो पागल है ही, तू कैसे धोखा खा गयी?

दातादीन का लड़का मातादीन एक चमारिन से फंसा हुआ था। इसे सारा गांव जानता था, पर वह तिलक लगाता था, पोथी-पत्रे वांचता था, कथा-भागवत कहता था, धर्म-संस्कार कराता था। उसकी प्रतिष्ठा में ज़रा भी कमी न थी। वह नित्य स्नान-पूजा करके अपने पापों का प्रायश्चित्त कर लेता था। धनिया जानती थी, झुनिया को आश्रय देने ही से यह सारी विपत्ति आयी है। उसे न जाने कैसे दया आ गयी, नहीं, उसी रात को झुनिया को निकाल देती, तो क्यों इतना उपहास होता? लेकिन यह भय भी होता था कि तव उसके लिए नदी या कुआं के सिवा और ठिकाना कहां था? एक प्राण का मूल्य देकर—एक नहीं दो प्राणों का—वह अपने मरजाद की रक्षा कैसे करती? फिर झुनिया के गर्भ में जो वालक है, वह धनिया ही के हृदय का टुकड़ा तो है। हंसी के डर से उसके प्राण कैसे ले लेती? और फिर झुनिया की नम्रता और दीनता भी उसे निरस्त्र करती रहती थी। वह जली-भुनी वाहर से आती, पर ज्यों ही झुनिया पानी का लोटा लाकर रख देती और उसके पांव दवाने लगती, उसका क्रोध पानी हो जाता। वेचारी अपनी लज्जा और दुःख से आप दवी हुई है, उसे और क्या दवाये, मरे को क्या मारे?

उसने तीव्र स्वर में कहा—हमको कुल-परतिष्ठा इतनी प्यारी नहीं है महाराज कि उसके पीछे एक जीव की हत्या कर डालते। व्याहता न सही, पर उसकी वांह तो पकड़ी है मेरे वेटे ने ही। किस मुंह से निकाल देती? वही काम वड़े-वड़े करते हैं, मुदा उनसे कोई नहीं वोलता, उन्हें कलंक ही नहीं लगता। वही काम छोटे आदमी करते हैं, तो उनकी मरजाद विगड़ जाती है, नाक कट जाती है। वड़े आदमियों को अपनी नाक दूसरों की जान से प्यारी होगी, हमें तो अपनी नाक इतनी प्यारी नहीं।

दातादीन हार माननेवाले जीव न थे। वह इस गांव के नारद थे। यहां की वहां, वहां की यहां, यही उनका व्यवसाय था। वह चोरी तो न करते थे, उसमें जान-जोखिम था, पर चोरी के माल में हिस्सा वंटाने के समय अवश्य पहुंच जाते थे। कहीं पीठ में धूल न लगने देते थे। ज़मींदार को आज तक लगान की एक पाई न दी थी, कुर्की आती, तो कुएं में गिरने चलते, नोखेराम के किये कुछ न वनता, मगर असामियों को सूद पर रुपये उधार देते थे। किसी स्त्री को कोई आभूषण वनवाना है, दातादीन उसकी सेवा के लिए हाजिर हैं। शादी-व्याह तय करने में उन्हें वड़ा आनन्द आता है, यश भी मिलता है, दक्षिणा भी मिलती है। वीमारी में दवा-दारू भी करते हैं, झाड़-फूंक भी, जैसी मरीज की इच्छा हो।

बालकों में बालक और बूढ़ों में बूढ़े। चोर के भी मित्र हैं और साह के भी। गांव में किसी को उन पर विश्वास नहीं है, पर उनकी वाणी में कुछ ऐसा आकर्षण है कि लोग बार-बार धोखा खाकर भी उन्हीं की शरण जाते हैं।

सिर और दाढ़ी हिलाकर बोले—यह तू ठीक कहती है धनिया! धर्मात्मा लोगों का यही धरम है, लेकिन लोक-रीति का निवाह तो करना ही पड़ता है।

इसी तरह एक दिन लाला पटेश्वरी ने होरी को छेड़ा। वह गांव में पुण्यात्मा मशहूर थे। पूर्णमासी को नित्य सत्यनारायण की कथा सुनते, पर पटवारी होने के नाते खेत बेगार में जुतवाते थे, सिंचाई बेगार में करवाते थे और असामियों को एक-दूसरे से लड़ाकर रक़में मारते थे। सारा गांव उनसे कांपता था। ग़रीबों को दस-दस, पांच-पांच क़र्ज़ देकर उन्होंने कई हज़ार की सम्पत्ति बना ली थी। फ़सल की चीज़ें असामियों से लेकर कचहरी और पुलिस के अमलों की भेंट करते रहते थे। इससे इलाक़े-भर में उनकी अच्छी धाक थी। अगर कोई उनके हत्थे नहीं चढ़ा, तो वह दारोग़ा गण्डासिंह थे, जो हाल में इस इलाक़े में आये थे। परमार्थी भी थे। बुख़ार के दिनों में सरकारी कुनैन बांटकर यश कमाते थे, कोई बीमार आराम हो, तो उसकी कुशल पूछने अवश्य जाते थे। छोटे-मोटे झगड़े आपस में ही तय करा देते थे। शादी-ब्याह में अपनी पालकी, क़ालीन और महफ़िल के सामान मंगनी देकर लोगों का उबार कर देते थे। मौक़ा पाकर न चूकते थे, पर जिसका खाते थे, उसका काम भी करते थे।

बोले—यह तुमने क्या रोग पाल लिया होरी?

होरी ने पीछे फिरकर पूछा—तुमने क्या कहा लाला? मैंने सुना नहीं।

पटेश्वरी पीछे से क़दम बढ़ाते हुए बराबर आकर बोले—यही कह रहा था कि धनिया के साथ क्या तुम्हारी बुद्धि भी घास खा गयी? झुनिया को क्यों नहीं उसके बाप के घर भेज देते, सेंत-मेंत में अपनी हंसी करा रहे हो। न जाने किसका लड़का लेकर आ गयी और तुमने घर में बैठा लिया। अभी तुम्हारी दो-दो लड़कियां ब्याहने को बैठी हुई हैं, सोचो, कैसे बेड़ा पार होगा?

होरी इस तरह की आलोचनाएं और शुभकामनाएं सुनते-सुनते तंग आ गया था। खिन्न होकर बोला—यह सब मैं समझता हूं लाला। लेकिन तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूं? मैं झुनिया को निकाल दूं, भोला उसे रख लेंगे? अगर वह राजी हों, तो आज मैं उसे उनके घर पहुंचा दूं। अगर तुम उन्हें [illegible]ी कर दो, तो जनम-भर तुम्हारा औसान मानूं, मगर वहां तो उनके दोनों लड़के खून करने को उतारू हो रहे हैं। फिर मैं उसे कैसे निकाल दूं? एक तो नालायक आदमी मिला कि उसकी बांह पकड़कर दगा दे गया। मैं भी निकाल दूंगा, तो इस दशा में वह कहीं मेहनत-मजदूरी भी तो न कर सकेगी। कहीं डूब-धंस मरी, तो किसे अपराध लगेगा? रहा लड़कियों का ब्याह, सो भगवान् मालिक है। जब उसका समय आयेगा, कोई-न-कोई रास्ता निकल ही आयेगा। लड़की तो हमारी बिरादरी में आज तक कभी कुंआरी नहीं रही। बिरादरी के डर से हत्यारे का काम नहीं कर सकता।

होरी नम्र स्वभाव का आदमी था। सदा सिर झुकाकर चलता और चार बातें ग़म खा लेता था। हीरा को छोड़कर गांव में कोई उसका अहित न चाहता था पर समाज इतना बड़ा अनर्थ कैसे सह ले? और उसकी मुटमरदी तो देखो कि समझाने पर भी नहीं समझता। स्त्री-पुरुष दोनों जैसे समाज को चुनौती दे रहे हैं कि देखें, कोई उनका क्या कर लेता है, तो समाज भी दिखा देगा कि उसकी मर्यादा तोड़नेवाले सुख की नींद नहीं सो सकते।

उसी रात को इस समस्या पर विचार करने के लिए गांव के विधाताओं की बैठक हुई।

दातादीन बोले—मेरी आदत किसी की निन्दा करने की नहीं है। संसार में क्या-क्या कुकर्म नहीं होता, अपने से क्या मतलब, मगर वह रांड़ धनिया तो मुझसे लड़ने पर उतारू हो गयी। भाइयों का हिस्सा दबाकर हाथ में चार पैसे हो गये, तो अब कुपन्थ के सिवा और क्या सूझेगी? नीच जात, जहां

पेट-भर रोटी खायी और टेढ़े चले। इसी से तो सासतरों में कहा है—नीच जात लतियाये अच्छा।

पटेश्वरी ने नारियल का कश लगाते हुए कहा—यही तो इनमें बुराई है कि चार पैसे देखे और आंखें बदलीं। आज होरी ने ऐसी हेकड़ी जतायी कि मैं अपना-सा मुंह लेकर रह गया। न जाने अपने को क्या समझता है। अब सोचो, इस अनीति का गांव में क्या फल होगा? झुनिया को देखकर दूसरी विधवाओं का मन बढ़ेगा कि नहीं? आज भोला के घर में यह बात हुई। कल हमारे-तुम्हारे घर में भी होगी। समाज तो भय के बल से चलता है। आज समाज का आंकुस जाता रहे, फिर देखो संसार में क्या-क्या अनर्थ होने लगते हैं।

झिंगुरीसिंह दो स्त्रियों के पति थे। पहली पत्नी पांच लड़के-लड़कियां छोड़कर मरी थी। उस समय इनकी अवस्था पैंतालीस के लगभग थी, पर आपने दूसरा व्याह किया और जब उससे कोई सन्तान न हुई, तो तीसरा व्याह कर डाला। अब इनकी पचास की अवस्था थी और दो जवान पत्नियां घर में बैठी थीं। उन दोनों ही के विषय में तरह-तरह की बातें फैल रही थीं, पर ठाकुर साहब के डर से कोई कुछ कह न सकता था, और कहने का अवसर भी तो हो। पति की आड़ में सब कुछ जायज़ है। मुसीबत तो उसको है, जिसे कोई आड़ नहीं। ठाकुर साहब स्त्रियों पर बड़ा कठोर शासन रखते थे और उन्हें घमण्ड था कि उनकी पत्नियों का घूंघट तक किसी ने न देखा होगा। मगर घूंघट की आड़ में क्या होता है, उसकी उन्हें क्या ख़बर?

बोले—ऐसी औरत का तो सिर काट ले। होरी ने इस कुलटा को घर रखकर समाज में विष बोया है। ऐसे आदमी को गांव में रहने देना सारे गांव को भ्रष्ट करना है। रायसाहब को इसकी सूचना देनी चाहिए। साफ़-साफ़ कह देना चाहिए, अगर गांव में यह अनीति चली, तो किसी की आबरू सलामत न रहेगी।

पण्डित नोखेराम कारकुन बड़े कुलीन ब्राह्मण थे। इनके दादा किसी राजा के दीवान थे, पर अपना सब कुछ भगवान् के चरणों में भेंट करके साधु हो गये थे। इनके बाप ने भी राम-नाम की खेती में उम्र काट दी। नोखेराम ने भी वही भक्ति तरके में पायी थी। प्रातःकाल पूजा पर बैठ जाते थे और दस बजे तक बैठे राम-नाम लिखा करते थे, मगर भगवान् के सामने से उठते ही उनकी मानवता इन अवरोध में विकृत होकर उनके मन, वचन और कर्म सभी को विषाक्त कर देती थी। इस प्रस्ताव में उनके अधिकार का अपमान होता था, फूले हुए गालों में धंसी हुई आंखें निकालकर बोले—इसमें रायसाहब से क्या पूछना है? मैं जो चाहूं, कर सकता हूं। लगा दो सौ रुपये डांड़। आप गांव छोड़कर भागेगा। इधर बेदख़ली भी दायर किये देता हूं।

पटेश्वरी ने कहा—मगर लगान तो बेबाक़ कर चुका है।

झिंगुरीसिंह ने समर्थन किया—हां, लगान के लिए तो उसने बैल बेच दिये हैं।

नोखेराम ने घमण्ड के साथ कहा—लेकिन अभी रसीद तो नहीं दी। सबूत क्या है कि लगान बेबाक़ कर दिया?

सर्वसम्मति से यही तय हुआ कि होरी पर सौ रुपये तावान लगा दिया जाये। केवल एक दिन गांव के आदमियों को बटोरकर उनकी मंजूरी ले लेने का अभिनय आवश्यक था। सम्भव था, इसमें दस-पांच दिन की देर हो जाती, पर आज ही रात को झुनिया के लड़का पैदा हो गया, और दूसरे ही दिन गांववालों की पंचायत बैठ गयी। होरी और धनिया, दोनों अपनी क़िस्मत का फ़ैसला सुनने के लिए बुलाये गये। चौपाल में इतनी भीड़ थी कि कहीं तिल रखने को जगह न थी। पंचायत ने फ़ैसला किया कि होरी पर सौ रुपये नक़द और तीस मन अनाज डांड़ लगाया जाये।

धनिया भरी सभा में रुंधे हुए कण्ठ से बोली—पंचो, गरीब को सताकर सुख न पाओगे, इतना समझ लेना। हम तो मिट जायेंगे, कौन जाने इस गांव में रहें या न रहें, लेकिन मेरा सराप तुमको भी जरूर लगेगा। मुझसे इतना बड़ा जरीवाना इसीलिए लिया जा रहा है कि मैंने अपनी बहू को क्यों अपने

घर में रखा? क्यों उसे घर से निकालकर सड़क की भिखारिन नहीं बना दिया। यही न्याय है, ऐं?

पटेश्वरी बोले—वह तेरी बहू नहीं है, हरजाई है।

होरी ने धनिया को डांटा—तू क्यों बोलती है धनिया? पंच में परमेसर रहते हैं। उनका जो न्याय है, वह सिर आंखों पर। अगर भगवान् की यही इच्छा है कि हम गांव छोड़कर भाग जायें, तो हमारा क्या बस? पंचो, हमारे पास जो कुछ है, वह अभी खलिहान में है। एक दाना भी घर में नहीं आया, जितना चाहो, ले लो। सब लेना चाहो, सब ले लो। हमारा भगवान् मालिक, जितनी कमी पड़े, उसमें हमारे दोनों बैल ले लेना।

धनिया दांत कटकटाकर बोली—मैं एक दाना न अनाज दूंगी, न कौड़ी डांड़। जिसमें बूता हो, चलकर मुझसे ले। अच्छी दिल्लगी है। सोचा होगा, डांड़ के बहाने इसकी सब जैजात ले लो और नजराना लेकर दूसरों को दे दो। बाग-बगीचा बेचकर मजे से तर माल उड़ाओ। धनिया के जीते-जी यह नहीं होने का, और तुम्हारी लालसा तुम्हारे मन में ही रहेगी। हमें नहीं रहना है बिरादरी में। बिरादरी में रहकर हमारी मुकत न हो जायेगी। अब भी अपने पसीने की कमाई खाते हैं, तब भी पसीने की कमाई खायेंगे।

होरी ने उसके सामने हाथ जोड़कर कहा—धनिया, तेरे पैरों पड़ता हूं, चुप रह। हम सब बिरादरी के चाकर हैं, उसके बाहर नहीं जा सकते। वह जो डांड़ लगाती है, उसे सिर झुकाकर मंजूर कर। नक्कू बनकर जीने से तो गले में फांसी लगा लेना अच्छा है। आज मर जायें, तो बिरादरी ही तो इस मिट्टी को पार लगायेगी? बिरादरी ही तारेगी, तो तरेंगे। पंचो, मुझे अपने जवान बेटे का मुंह देखना नसीब न हो, अगर मेरे पास खलिहान के अनाज के सिवा और कोई चीज हो। मैं बिरादरी से दगा न करूंगा। पंचों को मेरे बाल-बच्चों पर दया आये, तो उनकी कुछ परवरिस करें, नहीं मुझे तो उनकी आज्ञा पालनी है।

धनिया झल्लाकर वहां से चली गयी और होरी पहर रात तक खलिहान से अनाज ढो-ढोकर झिंगुरीसिंह की चौपाल में ढेर करता रहा। बीस मन जौ था, पांच मन गेहूं और इतना ही मटर, थोड़ा-सा चना और तेलहन भी था। अकेला अदमी और दो गृहस्थियों का बोझ। यह जो कुछ हुआ, धनिया के पुरुषार्थ से हुआ। झुनिया भीतर का सारा काम कर लेती थी और धनिया अपनी लड़कियों के साथ खेती में जुट गयी थी। दोनों ने सोचा था, गेहूं और तेलहन से लगान की एक किस्त अदा हो जायेगी और हो सके, तो थोड़ा-थोड़ा सूद भी दे देंगे। जौ खाने के काम में आयेगा। लंगे-तंगे पांच-छः महीने कट जायेंगे, तब तक जुआर, मक्का, सांवा, धान के दिन आ जायेंगे। वह सारी आशा मिट्टी में मिल गयी। अनाज तो हाथ से गये ही, सौ रुपये की गठरी और सिर पर लद गयी। अब भोजन का कहीं ठिकाना नहीं। और गोबर का क्या हाल, भगवान् जाने। न हाल, न हवाल। अगर दिल इतना कच्चा था, तो ऐसा काम ही क्यों किया, मगर होनहार को कौन टाल सकता है? बिरादरी का वह आतंक था कि अपने सिर पर लादकर अनाज ढो रहा था, मानो अपने हाथों अपनी क़ब्र खोद रहा हो। ज़मींदार, साहूकार, सरकार, किसका इतना रोब था? कल बाल-बच्चे क्या खायेंगे, इसकी चिन्ता प्राणों को सोखे लेती थी, पर बिरादरी का भय पिशाच की भांति सिर पर सवार आंकुस दिये जा रहा था। बिरादरी से पृथक् जीवन की वह कोई कल्पना ही न कर सकता था। शादी-ब्याह, मूंड़न-छेदन, जन्म-मरण सब कुछ बिरादरी के हाथ में है। बिरादरी उसके जीवन में वृक्ष की भांति जड़ जमाये हुए थी और उसकी नसें रोम-रोम में बिंधी हुई थीं। बिरादरी से निकलकर उसका जीवन विशृंखल हो जायेगा, तार-तार हो जायेगा।

जब खलिहान में केवल डेढ़-दो मन जौ रह गया, तो धनिया ने दौड़कर उसका हाथ पकड़ लिया और बोली—अच्छा, अब रहने दो। ढो तो चुके बिरादरी की लाज। बच्चों के लिए भी कुछ छोड़ोगे कि सब बिरादरी के भाड़ में झोंक दोगे? मैं तुमसे हार जाती हूं। मेरे भाग्य में तुम्हीं जैसे बुद्धू का संग लिखा

था।

होरी ने अपना हाथ छुड़ाकर टोकरी में अनाज भरते हुए कहा—यह न होगा धनिया, पंचों की आंख बचाकर एक दाना भी रख लेना मेरे लिए हराम है। मैं ले जाकर सब-का-सब वहां ढेर कर देता हूं। फिर पंचों के मन में दया उपजेगी, तो कुछ मेरे बाल-बच्चों के लिए देंगे, नहीं भगवान् मालिक है।

धनिया तिलमिलाकर बोली—यह पंच नहीं हैं, राच्छस हैं, पक्के राच्छस। यह सब हमारी जगह-जमीन छीनकर माल मारना चाहते हैं। डांड़ तो बहाना है। समझाती जाती हूं, पर तुम्हारी आंखें नहीं खुलतीं। तुम इन पिसाचों से दया की आसा रखते हो, सोचते हो, दस-पांच मन निकालकर तुम्हें दे देंगे। मुंह धो रखो।

जब होरी ने न माना और टोकरी सिर पर रखने लगा, तो धनिया ने दोनों हाथों से पूरी शक्ति के साथ टोकरी पकड़ ली और बोली—इसे तो मैं न ले जाने दूंगी, चाहे तुम मेरी जान ही ले लो। मर-मरकर हमने कमाया, पहर रात-रात को सींचा, अगोरा, इसलिए कि पंच लोग मूंछों पर ताव देकर भोग लगायें और हमारे बच्चे दाने-दाने को तरसें? तुमने अकेले ही सब कुछ नहीं कर लिया है। मैं भी बच्चियों के साथ सती हुई हूं। सीधे टोकरी रख दो, नहीं आज सदा के लिए नाता टूट जायेगा। कहे देती हूं।

होरी सोच में पड़ गया। धनिया के कथन में सत्य था। उसे अपने बाल-बच्चों की कमाई छीनकर तावान देने का क्या अधिकार है? वह घर का स्वामी इसलिए है कि सबका पालन करे, इसलिए नहीं कि उनकी कमाई छीनकर बिरादरी की नज़र में सुर्खरू बने। टोकरी उसके हाथ से छूट गयी। धीरे से बोला—तू ठीक कहती है धनिया। दूसरों के हिस्से पर मेरा कोई जोर नहीं है। जो कुछ बचा है, वह ले जा। मैं पंचों से कहे देता हूं।

धनिया अनाज की टोकरी घर में रखकर अपनी दोनों लड़कियों के साथ पोते के जन्मोत्सव में गला फाड़-फाड़कर सोहर गा रही थी, जिससे सारा गांव सुन ले। आज यह पहला मौक़ा था कि ऐसे शुभ अवसर पर बिरादरी की कोई औरत न थी। सौर से झुनिया ने कहला भेजा था, सोहर गाने का काम नहीं है, लेकिन धनिया कब मानने लगी। अगर बिरादरी को उसकी परवा नहीं है, तो वह भी बिरादरी की परवा नहीं करती।

उसी वक़्त होरी अपने घर को अस्सी रुपये में झिंगुरीसिंह के हाथ गिरों रख रहा था। डांड़ के रुपये का इसके सिवा वह और कोई प्रबन्ध न कर सकता था। बीस रुपये तो तेलहन, गेहूं और मटर से मिल गये। शेष के लिए घर लिखना पड़ गया। नोखेराम तो चाहते थे कि बैल बिकवा लिये जायें, लेकिन पटेश्वरी और दातादीन ने इसका विरोध किया। बैल बिक गये, तो होरी खेती कैसे करेगा? बिरादरी उसकी जायदाद के रुपये वसूल करे, पर ऐसा तो न करे कि वह गांव छोड़कर भाग जाये। इस तरह बैल बच गये।

होरी रेहननामा लिखकर कोई ग्यारह बजे रात घर आया, तो धनिया ने पूछा—इतनी रात तक वहां क्या करते रहे?

होरी ने जुलाहे का गुस्सा दाढ़ी पर उतारते हुए कहा—करता क्या रहा, इस लौंडे की करनी भरता रहा। अभागा आप तो चिनगारी छोड़कर भागा, आग मुझे बुझानी पड़ रही है। अस्सी रुपये में घर रेहन लिखना पड़ा। करता क्या? अब हुक्का खुल गया। बिरादरी ने अपराध क्षमा कर दिया।

धनिया ने ओठ चबाकर कहा—न हुक्का खुलता, तो हमारा क्या बिगड़ा जाता था? चार-पांच महीने नहीं किसी का हुक्का पिया, तो क्या छोटे हो गये? मैं कहती हूं, तुम इतने भोंदू क्यों हो? मेरे सामने तो बड़े बुद्धिमान बनते हो, बाहर तुम्हारा मुंह क्यों बन्द हो जाता है? ले-दे के बाप-दादों की निसानी एक घर बच रहा था, आज तुमने उसका भी बारा-न्यारा कर दिया। इसी तरह कल यह

तीन-चार बीघे जमीन है, इसे भी लिख देना और तब गली-गली भीख मांगना। मैं पूछती हूं, तुम्हारे मुंह में जीभ न थी कि उन पंचों से पूछते, तुम क़हां के बड़े धर्मात्मा हो, जो दूसरों पर डांड़ लगाते फिरते हो, तुम्हारा तो मुंह देखना भी पाप है।

होरी ने डांटा—चुप रह, बहुत चढ़-चढ़ न बोल। बिरादरी के चक्कर में अभी पड़ी नहीं है, नहीं मुंह से बात न निकलती।

धनिया उत्तेजित हो गयी—कौन-सा पाप किया है, जिसके लिए बिरादरी से डरें? किसी की चोरी की है, किसी का माल काटा है। मेहरिया रख लेना पाप नहीं है। हां, रख के छोड़ देना पाप है। आदमी का बहुत सीधा होना भी बुरा है। उसके सीधेपन का फल यही होता है कि कुत्ते भी मुंह चाटने लगते हैं। आज उधर तुम्हारी वाह-वाह हो रही होगी कि बिरादरी की कैसी मरजाद रख ली। मेरे भाग फूट गये थे कि तुम जैसे मर्द से पाला पड़ा। कभी सुख की रोटी न मिली।

'मैं तेरे बाप के पांव पड़ने गया था? वही तुझे मेरे गले बांध गया।'

'पत्थर पड़ गया था उनकी अक्कल पर और उन्हें क्या कहूं? न जाने क्या देखकर लट्टू हो गये। ऐसे कोई बड़े सुन्दर भी तो न थे तुम।'

विवाद विनोद के क्षेत्र में आ गया। अस्सी रुपये गये, लाख रुपये का बालक तो मिल गया। उसे तो कोई न छीन लेगा। गोबर घर लौट आये, धनिया अलग झोंपड़ी में भी सुखी रहेगी।

होरी ने पूछा—बच्चा किसको पड़ा है?

धनिया ने प्रसन्न-मुख होकर जवाब दिया—बिलकुल गोबर को पड़ा है। सच।

'रिष्ट-पुष्ट तो है?'

'हां, अच्छा है।'

:12:

रात को गोबर झुनिया के साथ चला, तो ऐसा कांप रहा था, जैसे उसकी नाक कटी हुई हो। झुनिया को देखते ही सारे गांव में कुहराम मच जायेगा, लोग चारों ओर से कैसी हाय-हाय मचायेंगे, धनिया कितनी गालियां देगी, यह सोच-सोचकर उसके पांव पीछे रह गये थे। होरी का तो उसे भय न था। वह केवल एक बार धाड़ेंगे, फिर शान्त हो जायेंगे। डर था धनिया का, ज़हर खाने लगेगी, घर में आग लगाने लगेगी। नहीं, इस वक्त वह झुनिया के साथ घर नहीं जा सकता।

लेकिन कहीं धनिया ने झुनिया को घर में घुसने न दिया और झाड़ू लेकर मारने दौड़ी, तो वह बेचारी कहां जायेगी? अपने घर तो लौट ही नहीं सकती। कहीं कुएं में कूद पड़े या गले में फांसी लगा ले, तो क्या हो? उसने लम्बी सांस ली। किसकी शरण ले?

मगर अम्मां इतनी निर्दयी नहीं हैं कि मारने दौड़ें। क्रोध में दो-चार गालियां देंगी। लेकिन जब झुनिया उनके पांव पकड़कर रोने लगेगी, तो उन्हें ज़रूर दया आ जायेगी। तब तक वह खुद कहीं छिपा रहेगा। जब उपद्रव शान्त हो जायेगा, तब वह एक दिन धीरे से आयेगा और अम्मां को मना लेगा। अगर इस बीच उसे कहीं मजूरी मिल जाये और दो-चार रुपये लेकर घर लौटे, तो फिर धनिया का मुंह बन्द हो जायेगा।

झुनिया बोली—मेरी छाती धक्-धक् कर रही है। मैं क्या जानती थी, तुम मेरे गले यह रोग मढ़ दोगे? न जाने किस बुरी साइत में तुमको देखा। न तुम गाय लेने आते, न यह सब कुछ होता। तुम आगे-आगे जाकर जो कुछ कहना-सुनना हो, कह-सुन लेना। मैं पीछे से आऊंगी।

गोबर ने कहा—नहीं-नहीं, पहले तुम जाना और कहना, मैं बाजार से सौदा बेचकर घर जा रही थी। रात हो गयी है, अब कैसे जाऊं? तब तक मैं आ जाऊंगा।

झुनिया ने चिन्तित मन से कहा—तुम्हारी अम्मां बड़ी गुस्सैल हैं। मेरा तो जी कांपता है। कहीं

मुझे मारने लगें, तो क्या करूंगी?

गोबर ने धीरज दिलाया—अम्मां की आदत ऐसी नहीं। हम लोगों तक को तो कभी एक तमाचा मारा नहीं, तुम्हें क्या मारेंगी? उनको जो कुछ कहना होगा, मुझे कहेंगी, तुमसे तो बोलेंगी भी नहीं।

गांव समीप आ गया। गोबर ने ठिठककर कहा—अब तुम जाओ।

झुनिया ने अनुरोध किया—तुम भी देर न करना।

'नहीं-नहीं, छन-भर में आता हूं, तू चल तो।'

'मेरा जी न जाने कैसा हो रहा है? तुम्हारे ऊपर क्रोध आता है।'

'तुम इतना डरती क्यों हो? मैं तो आ ही रहा हूं।'

'इससे तो कहीं अच्छा था कि किसी दूसरी जगह भाग चलते।'

'जब अपना घर है, तो क्यों कहीं भागें? तुम नाहक डर रही हो।'

'जल्दी से आओगे न?'

'हां-हां, अभी आता हूं।'

'मुझसे दगा तो नहीं कर रहे हो? मुझे घर भेजकर आप कहीं चलते बनो?'

'इतना नीच नहीं हूं झूना। जब तेरी बांह पकड़ी है, तो मरते दम तक निभाऊंगा।'

झुनिया घर की ओर चली। गोबर एक क्षण दुविधा में पड़ा रहा। फिर एकाएक सिर पर मंडराने वाली धिक्कार की कल्पना भयंकर रूप धारण करके उसके सामने खड़ी हो गयी। कहीं सचमुच अम्मां मारने दौड़े, तो क्या हो? उसके पांव जैसे धरती से चिमट गये। उसके और उसके घर के बीच केवल आमों का छोटा-सा बाग़ था। झुनिया की काली परछाईं धीरे-धीरे जाती हुई दीख रही थी। उसकी ज्ञानेन्द्रियां बहुत तेज़ हो गयी थीं। उसके कानों में ऐसी भनक पड़ी, जैसे अम्मां झुनिया को गाली दे रही है। उसके मन की कुछ ऐसी दशा हो रही थी, मानो सिर पर गड़ांसे का हाथ पड़ने वाला हो। देह का सारा रक्त जैसे सूख गया हो। एक क्षण के बाद उसने देखा, जैसे धनिया घर से निकलकर कहीं जा रही हो। दादा के पास जाती होगी। साइत दादा खा-पीकर मटर अगोरने चले गये हैं। वह मटर के खेत की ओर चला। जौ-गेहूं के खेतों को रौंदता हुआ वह इस तरह भागा जा रहा था, मानो पीछे दौड़ आ रही है। वह है दादा की मड़ैया। वह रुक गया और दबे पांव आकर मड़ैया के पीछे बैठ गया। उसका अनुमान ठीक निकला। वह पहुंचा ही था कि धनिया की बोली सुनाई दी। ओह! गजब हो गया! अम्मां इतनी कठोर है। एक अनाथ लड़की पर इन्हें तनिक भी दया नहीं आती। और जो मैं सामने जाकर फटकार दूं कि तुमको झुनिया से बोलने की कोई मजाल नहीं है, तो सारी सेखी निकल जाये। अच्छा! दादा भी बिगड़ रहे हैं। केले के लिए आज ठीकरा भी तेज हो गया। मैं जरा अदब करता हूं, उसी का फल है। यह तो दादा भी वहीं जा रहे हैं। अगर झुनिया को इन्होंने मारा-पीटा तो मुझसे न सहा जायेगा। भगवान्! अब तुम्हारा ही भरोसा है। मैं न जानता था, इस विपत में जान फंसेगी। झुनिया मुझे अपने मन में कितना धूर्त, कायर और नीच समझ रही होगी, मगर उसे मार कैसे सकते हैं? घर से निकाल भी कैसे सकते हैं? क्या घर में मेरा हिस्सा नहीं है? अगर झुनिया पर किसी ने हाथ उठाया, तो आज महाभारत हो जायेगा। मां-बाप जब तक लड़कों की रक्षा करें, तब तक मां-बाप हैं। जब उनमें ममता ही नहीं है, तो कैसे मां-बाप?

होरी ज्यों ही मड़ैया से निकला, गोबर भी दबे पांव धीरे-धीरे चला, लेकिन द्वार पर प्रकाश देखकर उसके पांव बंध गये। उस प्रकाश-रेखा के अन्दर वह पांव नहीं रख सकता। वह अंधेरे में ही दीवार से चिमटकर खड़ा हो गया। उसकी हिम्मत ने जवाब दे दिया। हाय! बेचारी झुनिया पर निरपराध यह लोग झल्ला रहे हैं, और वह कुछ नहीं कर सकता। उसने खेल-खेल में जो एक चिनगारी फेंक दी थी, वह सारे खलिहान को भस्म कर देगी, यह उसने न समझा था, और अब उसमें इतना साहस न था कि सामने आकर कहे—हां, मैंने चिनगारी फेंकी थी। जिन टिकौनों से उसने

अपने मन को संभाला था, वे सब इस भूकम्प में नीचे आ रहे और वह झोंपड़ा नीचे गिर पड़ा। वह पीछे लौटा। अब वह झुनिया को क्या मुंह दिखाये?

वह सौ क़दम चला, पर इस तरह जैसे कोई सिपाही मैदान से भागे। उसने झुनिया से प्रीति और विवाह की जो बातें की थीं, वह सब याद आने लगीं। वह अभिसार की मीठी स्मृतियां याद आयीं, जब वह अपने उन्मत्त उसांसों में, अपनी नशीली चितवनों में, मानो अपने प्राण निकालकर उसके चरणों पर रख देता था। झुनिया किसी वियोगी पक्षी की भांति अपने छोटे-से घोंसले में एकान्त जीवन काट रही थी। वहां नर का मत्त आग्रह न था, न वह उद्दीप्त उल्लास, न शावकों की मीठी आवाज़ें, मगर बहेलिये का जाल और छल भी तो वहां न था। गोबर ने उसके एकान्त घोंसले में जाकर उसे कुछ आनन्द पहुंचाया या नहीं, कौन जाने, पर उसे विपत्ति में तो डाल ही दिया। वह संभल गया। भागता हुआ सिपाही मानो अपने एक साथी का बढ़ावा सुनकर पीछे लौट पड़ा।

उसने द्वार पर आकर देखा, तो किवाड़ बन्द हो गये थे। किवाड़ों के दराज़ों से प्रकाश की रेखाएं बाहर निकल रही थीं। उसने एक दराज़ से बाहर झांका। धनिया उसे समझा रही थी—बेटी, तू चलकर घर में बैठ। मैं तेरे काका और भाइयों को देख लूंगी। जब तक हम जीते हैं, किसी बात की चिन्ता नहीं है। हमारे रहते कोई तुझे तिरछी आंखों देख भी न सकेगा। गोबर गद्‌गद हो गया। आज वह किसी लायक़ होता, तो दादा और अम्मां को सोने से मढ़ देता और कहता— अब तुम कुछ परवा न करो, आराम से बैठे खाओ और जितना दान-पुन चाहो, करो। झुनिया के प्रति अब उसे कोई शंका नहीं है। वह उसे जो आश्रय देना चाहता था, वह मिल गया। झुनिया उसे दगाबाज समझती है, तो समझे। वह तो अब तभी घर आयेगा, जब वह पैसे के बल से सारे गांव का मुंह बन्द कर सके और दादा और अम्मां उसे कुल का कलंक न समझकर कुल का तिलक समझें।

मन पर जितना ही गहरा आघात होता है, उसकी प्रतिक्रिया भी उतनी ही गहरी होती है। इस अपकीर्ति और कलंक ने गोबर के अन्तस्तल को मथकर वह रत्न निकाल लिया, जो अभी तक छिपा पड़ा था। आज पहली बार उसे अपने दायित्व का ज्ञान हुआ और उसके साथ ही संकल्प भी। अब तक वह कम-से-कम करना और ज़्यादा-से-ज़्यादा खाना अपना हक़ समझता था। उसके मन में कभी यह विचार ही नहीं उठा कि घरवालों के साथ उसका भी कुछ कर्तव्य है। आज माता-पिता की उदात्त क्षमा ने जैसे उसके हृदय में प्रकाश डाल दिया। जब धनिया और झुनिया भीतर चली गयीं, तो वह होरी की उसी मड़ैया में जा बैठा और भविष्य के मन्सूबे बांधने लगा।

शहर के बेलदारों को पांच-छः आने रोज़ मिलते हैं, यह उसने सुन रखा था। बाहर उसे छः आने रोज मिलें और वह एक आने में गुज़र कर ले, तो पांच आने रोज़ बच जायें। महीने में दस रुपये होते हैं, और साल-भर में सवा-सौ। वह सवा-सौ की थैली लेकर घर आये, तो किसकी मजाल है, जो उसके सामने मुंह खोल सके? यही दातादीन और यही पटेसरी आकर उसकी हां-में-हां मिलायेंगे, और झुनिया तो मारे गर्व के फूल जाये। दो-चार साल वह इसी तरह कमाता रहे, तो घर का सारा दलिद्दर मिट जाय। अभी तो सारे घर की कमाई भी सवा सौ नहीं होती। अब वह अकेला सवा सौ कमायेगा। यही तो लोग कहेंगे कि मजूरी करता है। कहने दो। मजूरी करना कोई पाप तो नहीं है। और सदा छः आने ही थोड़े मिलेंगे। जैसे-जैसे वह काम में होशियार होगा, मजूरी भी तो बढ़ेगी। तब वह दादा से कहेगा, अब तुम घर बैठकर भगवान् का भजन करो। इस खेती में जान-खपाने के सिवा और क्या रखा है? सबसे पहले वह एक पछाईं गाय लायेगा, जो चार-पांच सेर दूध देगी और दादा से कहेगा, तुम गऊ माता की सेवा करो। इससे तुम्हारा लोक बनेगा, परलोक भी।

और क्या, एक आने में उसका गुज़र आराम से न होगा? घर-द्वार लेकर क्या करना है? किसी के ओसारे में पड़ा रहेगा। सैकड़ों मन्दिर हैं, धरमसाले हैं। और फिर जिसकी वह मजूरी करेगा, क्या वह उसे रहने के लिए जगह न देगा? आटा रुपये का दस सेर आता है। एक आने में ढाई पाव हुआ।

पुरुष ने उसके केश पकड़कर घसीटना शुरू किया। युवती भूमि पर लोट गयी।

पुरुष ने हारकर कहा—मैं फिर कहता हूं, उठकर चल।

स्त्री ने उसी दृढ़ता से कहा—मैं तेरे घर सात जनम न जाऊंगी, बोटी-बोटी काट डाल।

'मैं तेरा गला काट लूंगा।'

'तो फांसी पाओगे।'

पुरुष ने उसके केश छोड़ दिये और सिर पर हाथ रखकर बैठ गया। पुरुषत्व अपनी चरम सीमा तक पहुंच गया। उसके आगे अब उसका कोई बस नहीं है।

एक क्षण में वह फिर खड़ा हुआ और परास्त होकर बोला—आखिर तू क्या चाहती है?

युवती भी उठ बैठी और निश्चल भाव से बोली—मैं यही चाहती हूं, तू मुझे छोड़ दे।

'कुछ मुंह से कहेगी, क्या बात हुई?'

'मेरे भाई-बाप को कोई गाली दे?'

'किसने गाली दी, तेरे भाई-बाप को?'

'जाकर अपने घर में पूछ।'

'चलेगी तभी तो पूछूंगा?'

'तू क्या पूछेगा? कुछ दम भी है। जाकर अम्मां के आंचल में मुंह ढांक कर सो। वह तेरी मां होगी। मेरी कोई नहीं है। तू उसकी गालियां सुन। मैं क्यों सुनूं? एक रोटी खाती हूं, तो चार रोटी का काम करती हूं। क्यों किसी की धौंस सहूं? मैं तेरा एक पीतल का छल्ला भी तो नहीं जानती।'

राहगीरों को इस कलह में अभिनय का आनन्द आ रहा था, मगर उसके जल्द समाप्त होने की कोई आशा न थी। मंज़िल खोटी होती थी। एक-एक करके लोग खिसकने लगे। गोबर को पुरुष की निर्दयता बुरी लग रही थी। भीड़ के सामने तो कुछ न कह सकता था। मैदान खाली हुआ तो बोला—भाई, मर्द और औरत के बीच में बोलना तो नहीं चाहिए, मगर इतनी बेदर्दी भी अच्छी नहीं होती।

पुरुष ने कौड़ी की-सी आंखें निकालकर पूछा—तुम कौन हो?

गोबर ने निःशंक भाव से कहा—मैं कोई हूं, लेकिन अनुचित बात देखकर सभी को बुरा लगता है।

पुरुष ने सिर हिलाकर कहा—मालूम होता है अभी मेहरिया नहीं आयी, तभी इतना दर्द है।

'मेहरिया आयेगी, तो भी उसके झोंटे पकड़कर न खींचूंगा।'

'अच्छा, तो अपनी राह लो। मेरी औरत है, मैं उसे मारूंगा-काटूंगा, तुम कौन होते हो बोलने वाले? चले जाओ सीधे से, यहां मत खड़े हो।'

गोबर का गरम खून और गरम हो गया। वह क्यों चला जाये? सड़क सरकार की है। किसी के बाप की नहीं है। वह जब तक चाहे वहां खड़ा रह सकता है। वहां से हटाने का किसी को अधिकार नहीं है।

पुरुष ने होंठ चबाकर कहा—तो तुम न जाओगे? आऊं?

गोबर ने अंगोछा कमर में बांध लिया और समर के लिए तैयार होकर बोला—तुम आओ या न आओ। मैं तो तभी जाऊंगा, जब मेरी इच्छा होगी।

'तो मालूम होता है, हाथ-पैर तुड़ा के जाओगे?'

'यह कौन जानता है, किसके हाथ-पांव टूटेंगे।'

'तो तुम न जाओगे?'

'ना।'

पुरुष मुट्ठी बांध गोबर की ओर झपटा। उसी क्षण युवती ने उसकी धोती पकड़ ली और उसे अपनी ओर खींचती हुई गोबर से बोली—तुम क्यों लड़ाई करने पर उतारू हो रहे हो जी, अपनी राह

क्यों नहीं जाते? यहां कोई तमाशा है? हमारा आपस का झगड़ा है। कभी वह मुझे मारता है, कभी मैं उसे डांटती हूं। तुमसे मतलव?

गोवर यह धिक्कार पाकर चलता वना। दिल में कहा—यह औरत मार खाने ही लायक है।

गोवर आगे निकल गया, तो युवती ने पति को डांटा—तुम सवसे लड़ने क्यों लगते हो? उसने कौन-सी वुरी वात कही थी कि तुम्हें चोट लग गयी? वुरा काम करोगे, तो दुनिया वुरा कहेगी ही, मगर है किसी भले घर का और अपनी विरादरी का ही जान पड़ता है। क्यों न उसे अपनी वहन के लिए ठीक कर लेते?

पति ने सन्देह के स्वर में कहा—क्या अव तक कुंवारा वैठा होगा?

'तो पूछ ही क्यों न लो?'

पुरुष ने दस क़दम दौड़कर आवाज़ दी और हाथ से ठहर जाने का इशारा किया। गोवर ने समझा, शायद फिर इसके सिर भूत सवार हुआ, तभी ललकार रहा है। मार खाये विना न मानेगा। अपने गांव में कुत्ता भी शेर हो जाता है, लेकिन आने दो।

लेकिन उसके मुख पर समर की ललकार न थी, मैत्री का निमन्त्रण था। उसने गांव, नाम और जाति पूछी। गोवर ने ठीक-ठाक वता दिया। उस पुरुष का नाम कोदई था।

कोदई ने मुसकराकर कहा—हम दोनों में लड़ाई होते-होते वची। तुम चले आये, तो मैंने सोचा—तुमने ठीक ही कहा। मैं नाहक तुमसे तन वैठा। कुछ खेती-वारी घर में होती है ना?

गोवर ने वताया, उसके मौरूसी पांच वीघे खेत हैं और एक हल की खेती होती है।

'मैंने तुम्हें जो भला-वुरा कहा है, उसकी माफी दे दो भाई! क्रोध में आदमी अन्धा हो जाता है। औरत गुन-सहूर में लक्ष्मी है, मुदा कभी-कभी ना जाने कौन-सा भूत इस पर सवार हो जाता है। अव तुम ही वताओ माता पर मेरा क्या वस है? जनम तो उन्होंने दिया है, पाला-पोसा तो उन्होंने है। जव कोई वात होगी, तो मैं जो कुछ कहूंगा, लुगाई ही से कहूंगा। उस पर अपना वस है। तुम्हीं सोचो, मैं कुपद तो नहीं कह रहा हूं? हां, मुझे उसका वाल पकड़कर घसीटना न था, लेकिन औरत जात विना कुछ ताड़ना दिये कावू में भी तो नहीं रहती। चाहती है, मां से अलग हो जाऊं। तुम्हीं सोचो, कैसे अलग हो जाऊं और किससे अलग हो जाऊं? अपनी मां से? जिसने जन्म दिया? यह मुझसे ना होगा। औरत रहे या जाये।'

गोवर को भी अपनी राय वदलनी पड़ी।—माता का आदर करना तो सव का धर्म है भाई! माता से कौन उरिन हो सकता है?

कोदई ने उसे अपने घर चलने का नेवता दिया। आज वह किसी तरह लखनऊ नहीं पहुंच सकता। कोस दो-कोस जाते-जाते सांझ हो जायेगी। रात को कहीं टिकना ही पड़ेगा।

गोवर ने विनोद किया—लुगाई मान गयी?

'न मानेगी, तो क्या करेगी।'

'मुझे तो उसने ऐसी फटकार वतायी कि मैं लजा गया।'

'वह खुद पछता रही है। चलो, जरा माताजी को समझा देना। मुझसे तो कुछ कहते नहीं वनता। उन्हें भी सोचना चाहिए कि वहू को वाप-भाई की गाली क्यों देती हैं। हमारी ही वहिन है। चार दिन में उसकी सगाई हो जायेगी। उसकी सास हमें गालियां देगी, तो उससे सुना जायेगा? सव दोस लुगाई का ही नहीं है। माता का भी दोस है। जव हर वात में वह अपनी वेटी का पक्ष करेगी, तो हमें वुरा लगेगा ही। इसमें इतनी वात अच्छी है कि घर से रूठकर चली जाये, पर गाली का जवाव गाली से नहीं देती।'

गोवर को रात के लिए कोई ठिकाना चाहिए था ही। कोदई के साथ हो लिया। दोनों फिर उसी जगह आये, जहां युवती वैठी हुई थी। वह अव गृहिणी वन गयी थी। जरा-सा घूंघट निकाल लिया था

और लजाने लगी थी।

कोदई ने मुसकराकर कहा—यह तो आते ही न थे। कहते थे, ऐसी डांट सुनने के बाद उनके घर कैसे जायें? युवती ने घूंघट की आड़ से गोबर को देखकर कहा—इतनी ही डांट में डर गये? लुगाई आ जायेगी, तब कहां भागोगे?

गांव समीप ही था। गांव क्या था, पुरवा था, दस-बारह घरों का, जिसमें आधे खपरैल के थे, आधे फूंस के। कोदई ने अपने घर पहुंचकर खाट निकाली, उस पर एक दरी डाल दी, शरबत बनाने को कह, चिलम भर लाया। और एक क्षण में वही युवती लोटे में शरबत लेकर आयी और गोबर को पानी का एक छींटा मारकर, मानो क्षमा मांग ली। वह अब उसका ननदोई हो रहा था। फिर क्यों न अभी से छेड़-छाड़ शुरू कर दे?

:13:

गोबर अंधेरे ही मुंह उठा और कोदई से विदा मांगी। सबको मालूम हो गया था कि उसका ब्याह हो चुका है, इसलिए उससे कोई विवाह-सम्बन्धी चर्चा नहीं की। उसके शील-स्वभाव ने सारे घर को मुग्ध कर दिया था। कोदई की माता को उसने ऐसे मीठे शब्दों में और उसके मातृपद की रक्षा करते हुए, ऐसा उपदेश दिया कि उसने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया था।

'तुम बड़ी हो माताजी, पूज्य हो। पुत्र माता के रिन से सौ जन्म लेकर भी उरिन नहीं हो सकता, लाख जन्म लेकर भी उरिन नहीं हो सकता। करोड़ जन्म लेकर भी नहीं।'

बुढ़िया इस संख्यातीत श्रद्धा पर गद्‌गद हो गयी। इसके बाद गोबर ने जो कुछ कहा, उसमें बुढ़िया को अपना मंगल ही दिखाई दिया। वैद्य एक बार रोगी को चंगा कर दे, फिर रोगी उसके हाथों विष भी खुशी से पी लेगा—अब जैसे आज ही बहू घर से रूठकर चली गयी, तो किसकी हेठी हुई। बहू को कौन जानता है? किसकी लड़की है, किसकी नातिन है, कौन जानता है? सम्भव है उसका बाप घसियारा ही रहा हो.....।

बुढ़िया ने निश्चयात्मक भाव से कहा—घसियारा तो है ही बेटा, पक्का घसियारा। सबेरे उसका मुंह देख लो, तो दिन-भर पानी न मिले।

गोबर बोला—तो ऐसे आदमी की क्या हंसी हो सकती है? हंसी हुई तुम्हारी, और तुम्हारे आदमी की। जिसने पूछा, यही पूछा कि किसकी बहू है? फिर वह अभी लड़की है, अबोध, अल्हड़। नीच माता-पिता की लड़की है, अच्छी कहां से बन जाये? तुमको तो बूढ़े तोते को राम-नाम पढ़ाना पड़ेगा। मारने से तो वह पढ़ेगा नहीं, उसे तो सहज स्नेह ही से पढ़ाया जा सकता है। ताड़ना भी दो, लेकिन उसके मुंह मत लगो। उसका तो कुछ नहीं बिगड़ता, तुम्हारा अपमान होता है।

जब गोबर चलने लगा, तो बुढ़िया ने खांड़ और सत्तू मिलाकर उसे खाने को दिया। गांव के और कई आदमी मजूरी की टोह में शहर जा रहे थे। बातचीत में रास्ता कट गया और नौ बजते-बजते सब लोग अमीनाबाद के बाज़ार में जा पहुंचे। गोबर हैरान था, इतने आदमी नगर में कहां से आ गये? आदमी पर आदमी गिरा पड़ता था।

उस दिन बाज़ार में चार-पांच सौ मज़दूरों से कम न थे। राज और बढ़ई और लुहार और बेलदार और खाट बुनने वाले और टोकरी ढोने वाले और संगतराश सभी जमा थे। गोबर यह जमघट देखकर निराश हो गया। इतने सारे मजूरों को कहां काम मिल जाता है। और उसके हाथ तो कोई औज़ार भी नहीं है। कोई क्या जानेगा कि वह क्या काम कर सकता है? कोई उसे क्यों रखने लगा? बिना औज़ार के उसे कौन पूछेगा?

धीरे-धीरे एक-एक करके मजूरों को काम मिलता जा रहा था। कुछ लोग निराश होकर घर

लौटे जा रहे थे। अधिकतर वह बूढ़े और निकम्मे बच रहे थे, जिनका कोई पुछत्तर न था, और उन्हीं में गोबर भी था। लेकिन अभी आज उसके पास खाने को है। कोई ग़म नहीं।

सहसा मिर्ज़ा खुर्शेद ने मज़दूरों के बीच आकर ऊंची आवाज़ से कहा—जिसको छः आने रोज़ पर काम करना हो, वह मेरे साथ आये। सबको छः आने मिलेंगे। पांच बजे छुट्टी मिलेगी।

दस-पांच राजों और बढ़इयों को छोड़कर सब-के-सब उनके साथ चलने को तैयार हो गये। चार सौ फटेहालों की एक विशाल सेना सज गयी। आगे मिर्ज़ा थे, कन्धे पर मोटा सोटा रखे हुए। पीछे भुखमरों की लम्बी क़तार थी, जैसे भेड़ें हों।

एक बूढ़े ने मिर्ज़ा से पूछा—कौन काम करना है मालिक?

मिर्ज़ा ने जो काम बतलाया, उस पर सब और भी चकित हो गये। केवल एक कबड्डी खेलना। यह कैसा आदमी है, जो कबड्डी खेलने के छः आना रोज़ दे रहा है। सनकी तो नहीं है कोई? बहुत धन पाकर आदमी सनक ही जाता है। बहुत पढ़ लेने से भी आदमी पागल हो जाते हैं। कुछ लोगों को सन्देह होने लगा, कहीं यह कोई मखौल तो नहीं है? यहां से घर पर ले जाकर कह दे, कोई काम नहीं है, तो कौन उसका क्या कर लेगा? वह चाहे कबड्डी खिलाये, चाहे आंखमिचौनी, चाहे गुल्ली-डण्डा, मजूरी पेशगी दे दे। ऐसे झक्कड़ आदमी का क्या भरोसा?

गोबर ने डरते-डरते कहा—मालिक, हमारे पास कुछ खाने को नहीं है। पैसे मिल जायें, तो कुछ लेकर खा लूं।

मिर्ज़ा ने झट छः आने पैसे उसके हाथ में रख दिये और ललकार कर बोले—मजूरी सबको चलते-चलते पेशगी दे दी जायेगी। इसकी चिन्ता मत करो।

मिर्ज़ा साहब ने शहर के बाहर थोड़ी-सी ज़मीन ले रखी थी। मजूरों ने जाकर देखा, तो एक बड़ा अहाता घिरा हुआ था और उसके अन्दर केवल एक छोटी-सी फूंस की झोंपड़ी थी, जिसमें तीन-चार कुर्सियां थीं, एक मेज़। थोड़ी-सी किताबें मेज़ पर रखी हुई थीं। झोंपड़ी बेलों और लताओं से घिरी हुई बहुत सुन्दर लगती थी। अहाते में एक तरफ़ आम और नीबू और अमरूद के पौधे लगे हुए थे, दूसरी तरफ़ कूछ फूल। बड़ा हिस्सा परती था। मिर्ज़ा ने सबको क़तार में खड़ा करके ही मजूरी बांट दी। अब किसी को उनके पागलपन में सन्देह न रहा।

गोबर पैसे पहले ही पा चुका था, मिर्जा ने उसे बुलाकर पौधे सींचने का काम सौंपा। उसे कबड्डी खेलने को न मिलेगी। मन में ऐंठकर रह गया। इन बुड्ढों को उठा-उठाकर पटकता, लेकिन कोई परवाह नहीं। बहुत कबड्डी खेल चुका है। पैसे तो पूरे मिल गये।

आज युगों के बाद इन जराग्रस्तों को कबड्डी खेलने का सौभाग्य मिला। अधिकतर तो ऐसे थे, जिन्हें याद भी न आता था कि कभी कबड्डी खेली है या नहीं। दिन-भर शहर में पिसते थे। पहर रात गये घर पहुंचते थे और जो कुछ रूखा-सूखा मिल जाता था, खाकर पड़े रहते थे। प्रातःकाल फिर वही चरखा शुरू हो जाता था। जीवन नीरस, निरानन्द, केवल एक ढर्रा मात्र हो गया था। आज जो यह अवसर मिला, तो बूढ़े भी जवान हो गये। अधमरे बूढ़े ठठरियां लिये, मुंह में दांत न पेट में आंत, जांघ के ऊपर धोतियां या तहमद चढ़ाये, ताल ठोक-ठोककर उछल रहे थे, मानो उन बूढ़ी हड्डियों में जवानी धंस पड़ी हो। चटपट पाली बन गयी, दो नायक बन गये। गोइयों का चुनाव होने लगा और बारह बजते-बजते खेल शुरू हो गया। जाड़ों की ठण्डी धूप ऐसी क्रीड़ाओं के लिए आदर्श ऋतु है। इधर अहाते के फाटक पर मिर्ज़ा साहब तमाशाइयों को टिकट बांट रहे थे। उन पर इस तरह कोई-न-कोई सनक हमेशा सवार रहती थी। अमीरों से पैसा लेकर ग़रीबों को बांट देना। इस बूढ़ी कबड्डी का विज्ञापन कई दिन से हो रहा था। बड़े-बड़े पोस्टर चिपकाये गये थे। नोटिस बांटे थे। यह खेल अपने ढंग का निराला होगा, बिलकुल अभूतपूर्व। भारत के बूढ़े आज भी कैसे पोढ़े हैं, जिन्हें यह देखना हो आयें, और अपनी आंखें तृप्त कर लें। जिसने यह तमाशा न देखा, वह पछतायेगा। ऐसा

सुअवसर फिर न मिलेगा। टिकट दस रुपये से लेकर दो आने तक के थे। तीन बजते-बजते सारा अहाता भर गया। मोटरों और फ़िटनों का तांता लगा हुआ था। दो हज़ार से कम की भीड़ न थी। रईसों के लिए कुर्सियों और बेंचों का इन्तजाम था। साधारण जनता के लिए साफ़-सुथरी ज़मीन।

मिस मालती, मेहता, खन्ना, तंखा और रायसाहब सभी विराजमान थे।

खेल शुरू हुआ, तो मिर्ज़ा ने मेहता से कहा—आइये डॉक्टर साहब, एक गोई हमारी और आपकी हो जाये।

मिस मालती बोली—फ़िलासफ़र का जोड़ तो फ़िलासफ़र ही से हो सकता है।

मिर्ज़ा ने मूंछों पर ताव देकर कहा—तो क्या आप समझती हैं, मैं फ़िलासफ़र नहीं हूं? मेरे पास पुछल्ला नहीं है, लेकिन हूं मैं फ़िलासफ़र। आप मेरा इम्तिहान ले सकते हैं मेहताजी!

मालती ने पूछा—अच्छा बतलाइये, आप आइडियलिस्ट हैं या मेटीरियलिस्ट?

'मैं दोनों हूं।'

'यह क्योंकर?'

'बहुत अच्छी तरह। जब जैसा मौक़ा देखा, वैसा बन गया।'

'तो आपका अपना कोई निश्चय नहीं है।'

'जिस बात का आज तक कभी निश्चय न हुआ, और न कभी होगा, उसका निश्चय मैं भला क्या कर सकता हूं। और लोग आंखें फोड़कर और किताबें चाटकर जिस नतीजे पर पहुंचते हैं, वहां मैं यों ही पहुंच गया। आप बता सकती हैं, किसी फ़िलासफ़र ने अक्लीगद्दे लड़ाने के सिवाय और कुछ किया है?'

डॉक्टर मेहता ने अचकन के बटन खोलते हुए कहा—तो चलिये हमारी और आपकी बाज़ी हो ही जाये। और कोई माने या न माने, मैं आपको फ़िलासफ़र मानता हूं।

मिर्ज़ा ने खन्ना से पूछा—आपके लिए भी कोई जोड़ ठीक करूं?

मालती ने पुचारा दिया—हां, हां, इन्हें ज़रूर ले जाइये मिस्टर तंखा के साथ।

खन्ना झेंपते हुए बोले—जी नहीं, मुझे क्षमा कीजिये।

मिर्ज़ा ने रायसाहब से पूछा—आपके लिए कोई जोड़ लाऊं?

रायसाहब बोले—मेरा जोड़ तो ओंकारनाथ का है, मगर वह आज नज़र नहीं आते।

मिर्ज़ा और मेहता भी नंगी देह, केवल जांघिये पहने हुए मैदान में पहुंच गये। एक इधर, दूसरा उधर। खेल शुरू हो गया।

जनता बूढ़े कुलेलों पर हंसती थी, तालियां बजाती थी, गालियां देती थी, ललकारती थी, बाज़ियां लगाती थी। वाह! ज़रा इन बूढ़े बाबा को देखो। किस शान से जा रहे हैं, जैसे सबको मारकर ही लौटेंगे। अच्छा, दूसरी तरफ़ से भी उन्हीं के बड़े भाई निकले। दोनों कैसे पैंतरे बदल रहे हैं? इन हड्डियों में अभी बहुत जान है। इन लोगों ने जितना घी खाया है, उतना अब हमें पानी भी मयस्सर नहीं। लोग कहते हैं, भारत धनी हो रहा है। होता होगा। हम तो यही देखते हैं कि इन बुड्ढों जैसे जीवट के जवान भी आज मुश्किल से निकलेंगे। वह उधर वाले बुड्ढे ने इसे दबोच लिया। बेचारा छूट निकलने के लिए कितना ज़ोर मार रहा है, मगर अब नहीं जा सकते बच्चा। एक को तीन लिपट गये। इस तरह लोग अपनी दिलचस्पी ज़ाहिर कर रहे थे। उनका सारा ध्यान मैदान की ओर था। खिलाड़ियों के आघात-प्रतिघात, उछल-कूद, धर-पकड़ और उनके मरने- जीने में तन्मय हो रहे थे। कभी चारों तरफ़ से क़हक़हे पड़ते, कभी कोई अन्याय या धांधली देखकर लोग 'छोड़ दो, छोड़ दो' का गुल मचाते। कुछ लोग तैश में आकर पाली की तरफ़ दौड़ते, लेकिन जो थोड़े-से सज्जन शामियाने में ऊंचे दर्जे के टिकट लेकर बैठे थे, उन्हें इस खेल में विशेष आनन्द न मिल रहा था। वे इससे अधिक महत्त्व की बातें कर रहे थे।

खन्ना ने जिंजर का गिलास ख़ाली करके सिगार सुलगाया और रायसाहव से वोले—मैंने आपसे कह दिया, वैंक इससे कम सूद पर किसी तरह राज़ी न होगा और यह रिआयत भी मैंने आपके साथ की है, क्योंकि आपके साथ घर का मुआमला है।

रायसाहव ने मूंछों में मुसकराहट को लपेटकर कहा—आपकी नीति में घरवालों को ही उलटे छुरे से हलाल करना चाहिए?

'यह आप क्या फ़रमा रहे हैं?'

'ठीक कह रहा हूं। सूर्यप्रताप सिंह से आपने केवल सात फ़ीसदी लिया है, मुझसे नौ फ़ीसदी मांग रहे हैं, और उस पर एहसान भी रखते हैं। क्यों न हो?'

'उन शर्तों पर मैं आपसे भी वही सूद ले लूंगा। हमने उनकी जायदाद रेहन रख ली है और शायद यह जायदाद फिर उनके हाथ न जायेगी।'

'मैं अपनी कोई जायदाद निकाल दूंगा। नौ परसेण्ट देने से यह कहीं अच्छा है कि फ़ालतू जायदाद अलग कर दूं। मेरी जैकसन रोडवाली कोठी आप निकलवा दें। कमीशन ले लीजियेगा।'

'उस कोठी का सुभीते से निकलना ज़रा मुश्किल है। आप जानते हैं, वह जगह वस्ती से कितनी दूर है, मगर खैर, देखूंगा। आप उसकी क़ीमत का क्या अन्दाज़ा करते हैं?'

रायसाहव ने एक लाख पच्चीस हज़ार वताये। पन्द्रह वीघे ज़मीन भी तो है उसके साथ। खन्ना स्तम्भित रह गये। वोले—आप आज के पन्द्रह साल पहले का स्वप्न देख रहे हैं रायसाहव! आपको मालूम होना चाहिए कि इधर जायदादों के मूल्य में पचास परसेण्ट की कमी हो गयी है।

रायसाहव ने वुरा मानकर कहा—जी नहीं, पन्द्रह साल पहले उसकी क़ीमत डेढ़ लाख थी।

'मैं ख़रीददार की तलाश में रहूंगा, मगर मेरा कमीशन पांच प्रतिशत होगा आपसे।'

'औरों से शायद दस प्रतिशत हो, क्यों, क्या करोगे इतने रुपये लेकर?'

'आप जो चाहे दे दीजियेगा। अव तो राज़ी हुए। शुगर मिल के हिस्से अभी तक आपने न ख़रीदे? अव वहुत थोड़े-से हिस्से वच रहे हैं। हाथ मलते रह जाइयेगा। इंश्योरेंस की पालिसी भी आपने न ली। आपमें टाल-मटोल की वुरी आदत है। जव अपने लाभ की वातों का इतने टाल-मटोल, तव दूसरों को आप लोगों से क्या लाभ हो सकता है! इसी से कहते हैं, रियासत आदमी की अक़्ल चर जाती है। मेरा वस चले, तो मैं ताल्लुक़ेदारों की रियासतें ज़व्त कर लूं।'

मिस्टर तंखा मालती पर जाल फेंक रहे थे। मालती ने साफ़ कह दिया था कि वह इलेक्शन के झमेले में नहीं पड़ना चाहती, पर तंखा इतनी आसानी से हार मानने वाले व्यक्ति न थे। आकर कुहनियों के वल मेज़ पर टिककर वोले—आप ज़रा उस मुआमले पर फिर विचार करें। मैं कहता हूं, ऐसा मौक़ा शायद आपको फिर न मिले। रानी साहव चन्दा को आपके मुक़ावले में रुपये में एक आना भी चांस नहीं है। मेरी इच्छा केवल यह है कि कौंसिल में ऐसे लोग जायें, जिन्होंने जीवन में कुछ अनुभव प्राप्त किया है और जनता की कुछ सेवा की है। जिस महिला ने भोग-विलास के सिवा कुछ जाना ही नहीं, जिसने जनता को हमेशा अपनी कार का पेट्रोल समझा, जिसकी सवसे मूल्यवान् सेवा वे पार्टियां हैं, जो वह गवर्नरों और सेक्रेटरियों को दिया करती हैं, उनके लिए इस कौंसिल में स्थान नहीं है। नयी कौंसिल में वहुत कुछ अधिकार प्रतिनिधियों के हाथ में होगा, और मैं नहीं चाहता कि वह अधिकार अनधिकारियों के हाथ में जाये।

मालती ने पीछा छुड़ाने के लिए कहा—लेकिन साहव, मेरे पास दस-वीस हज़ार इलेक्शन पर ख़र्च करने के लिए कहां है? रानी साहव तो दो-चार लाख ख़र्च कर सकती हैं। मुझे भी साल में हज़ार-पांच सौ रुपये उनसे मिल जाते हैं, यह रक़म भी हाथ से निकल जायेगी।

'पहले आप यह वता दें कि आप जाना चाहती हैं या नहीं?'

'जाना तो चाहती हूं, मगर फ़्री पास मिल जाये तो।'

'तो यह मेरा ज़िम्मा रहा, आपको फ़्री पास मिल जायेगा।'

'जी नहीं, क्षमा कीजिये। मैं हार की ज़िल्लत नहीं उठाना चाहती। जब रानी साहब रुपये की थैलियां खोल देंगी और एक-एक वोट पर एक-एक अशर्फ़ी चढ़ने लगेगी, तो शायद आप भी उधर वोट देंगे।'

'आपके ख़याल में इलेक्शन महज़ रुपये से जीता जा सकता है?'

'जी नहीं, व्यक्ति भी एक चीज़ है। लेकिन मैंने केवल एक बार जेल जाने के सिवा और क्या जन-सेवा की है? और सच पूछिये, तो उस बार भी मैं अपने मतलब ही से गयी थी, उसी तरह जैसे रायसाहब और खन्ना गये थे। इस नयी सभ्यता का आधार धन है। विद्या और सेवा और कुल और जाति सब धन के सामने हेय हैं। कभी-कभी इतिहास में ऐसे अवसर आ जाते हैं, जब धन को आन्दोलन के सामने नीचा देखना पड़ता है, मगर इसे अपवाद समझिये। मैं अपनी ही बात कहती हूं। कोई ग़रीब औरत दवाख़ाने में आ जाती है, तो घण्टों उससे बोलती तक नहीं, पर कोई महिला कार पर आ गयी, तो द्वार तक जाकर उसका स्वागत करती हूं और उसकी ऐसी उपासना करती हूं, मानो साक्षात् देवी है। मेरा और रानी साहब का कोई मुक़ाबला नहीं। जिस तरह के कौंसिल बन रहे हैं, उनके लिए रानी साहब ही ज़्यादा उपयुक्त हैं।

उधर मैदान में मेहता की टीम कमज़ोर पड़ती जाती थी। आधे से ज़्यादा खिलाड़ी मर चुके थे। मेहता ने अपने जीवन में कभी कबड्डी न खेली थी। मिर्ज़ा इस फ़न के उस्ताद थे। मेहता की तातीलें अभिनय के अभ्यास में कटती थीं। रूप भरने में वह अच्छे-अच्छे को चकित कर देते थे, और मिर्ज़ा के लिए सारी दिलचस्पी अखाड़े में थी, पहलवानों के भी और परियों के भी।

मालती का ध्यान उधर भी लगा हुआ था। उठकर रायसाहब से बोली—मेहता की पार्टी तो बुरी तरह पिट रही है।

रायसाहब और खन्ना में इंश्योरेन्स की बातें हो रही थीं। रायसाहब उस प्रसंग से ऊबे हुए मालूम होते थे। मालती ने मानो उन्हें एक बन्धन से मुक्त कर दिया। उठकर बोले—जी हां, पिट तो रही है। मिर्ज़ा पक्का खिलाड़ी है।

'मेहता को यह क्या सनक सूझी? व्यर्थ अपनी भद्द करा रहे हैं।'

'इसमें काहे की भद्द? दिल्लगी तो है।'

'मेहता की तरफ़ से जो बाहर निकलता है, वही मर जाता है।'

एक क्षण के बाद उसने पूछा—क्या इस खेल में हाफ़ टाइम नहीं होता?

खन्ना को शरारत सूझी। बोले—आप चले थे मिर्ज़ा से मुक़ाबला करने। समझते थे, यह भी फ़िलासफ़ी है।

'मैं पूछती हूं, इस खेल में हाफ़ टाइम नहीं होता?'

खन्ना ने फिर चिढ़ाया—अब खेल ही ख़तम हुआ जाता है। मज़ा आयेगा तब, जब मिर्ज़ा मेहता को दबोचकर रगड़ेंगे और मेहता साहब 'चीं' बोलेंगे।

'मैं तुमसे नहीं पूछती। रायसाहब से पूछती हूं।'

रायसाहब बोले—इस खेल में हाफ़ टाइम? एक ही एक आदमी तो सामने आता है।

'अच्छा, मेहता का एक आदमी और मर गया।'

खन्ना बोले—आप देखती रहिये। इसी तरह सब मर जायेंगे और आख़िर में मेहता साहब भी मरेंगे।

मालती जल गयी—आपकी हिम्मत न पड़ी बाहर निकलने की?

'मैं गंवारों के खेल नहीं खेलता। मेरे लिए टेनिस है।'

'टेनिस में भी मैं तुम्हें सैकड़ों गेम दे चुकी हूं।'

'आपसे जीतने का दावा ही कब है?'

'अगर दावा हो, तो मैं तैयार हूं।'

मालती उन्हें फटकार बताकर फिर अपनी जगह आ बैठी। किसी को मेहता से हमदर्दी नहीं है। कोई यह नहीं कहता कि अब खेल ख़त्म कर दिया जाये। मेहता भी अजीब बुद्धू आदमी हैं, कुछ धांधली क्यों नहीं कर बैठते? यहां अपनी न्यायप्रियता दिखा रहे हैं। अभी हारकर लौटेंगे, तो चारों तरफ़ से तालियां पड़ेंगी। अब शायद बीस-आदमी उनकी तरफ़ और होंगे, और लोग कितने खुश हो रहे हैं!

ज्यों-ज्यों अन्त समीप आता जाता था, लोग अधीर होते जाते थे और पाली की तरफ़ बढ़ते जाते थे। रस्सी का जो कठघरा-सा बनाया गया था, वह तोड़ दिया गया। स्वयंसेवक रोकने की चेष्टा कर रहे थे, पर उस उत्सुकता के उन्माद में उनकी एक न चलती थी। यहां तक कि ज्वार अन्तिम बिन्दु तक आ पहुंचा और मेहता अकेले बच गये और अब उन्हें गूंगे का पार्ट खेलना पड़ेगा। अब सारा दारमदार उन्हीं पर है, अगर वह बचकर अपनी पाली में लौट आते हैं, तो उनका पक्ष बचता है। नहीं हार का सारा अपमान और लज्जा लिये हुए उन्हें लौटना पड़ता है। वह दूसरे पक्ष के जितने आदमियों को छूकर अपनी पाली में आयेंगे, वह सब मर जायेंगे और उतने ही आदमी उनकी तरफ़ जी उठेंगे। सबकी आंखें मेहता की ओर लगी हुई थीं। वह मेहता चले। जनता ने चारों ओर से आकर पाली को घेर लिया। तन्मयता अपनी पराकाष्ठा पर थी। मेहता कितने शान्त भाव से शत्रुओं की ओर जा रहे हैं। उनकी प्रत्येक गति जनता पर प्रतिबिम्बित हो जाती है, किसी की गर्दन टेढ़ी हुई जाती है, कोई आगे को झुका पड़ता है। वातावरण गरम हो गया, पारा ज्वाला-बिन्दु पर आ पहुंचा है। मेहता शत्रु-दल में घुसे। दल पीछे हटता जाता है। उनका संगठन इतना दृढ़ है कि मेहता की पकड़ या स्पर्श में कोई नहीं आ रहा है। बहुतों को आशा थी, मेहता कम-से-कम अपने पक्ष के दस-पांच आदमियों को तो जिला ही लेंगे, वे निराश होते जा रहे हैं।

सहसा मिर्ज़ा एक छलांग मारते हैं और मेहता की कमर पकड़ लेते हैं। मेहता अपने को छुड़ाने के लिए ज़ोर मार रहे हैं। मिर्ज़ा को पाली की तरफ़ खींचे लिये आ रहे हैं। लोग उन्मत्त हो जाते हैं। अब इसका पता चलना मुश्किल है कि कौन खिलाड़ी, कौन तमाशाई। सब एक गडमड हो गये हैं। मिर्ज़ा और मेहता में मल्लयुद्ध हो रहा है। मिर्ज़ा के कई बुड्ढे मेहता की तरफ़ लपके और उनसे लिपट गये। मेहता ज़मीन पर चुपचाप पड़े हुए हैं। अगर वह किसी तरह खींच-खांचकर दो हाथ और ले जायें, तो उनके पचासों आदमी जी उठते हैं, मगर वह एक इन्च भी नहीं खिसक सकते। मिर्ज़ा उनकी गर्दन पर बैठे हुए हैं। मेहता का मुख लाल हो रहा है। आंखें बीर-बहूटी बनी हुई हैं। पसीना टपक रहा है, और मिर्ज़ा अपने स्थूल शरीर का भार उनकी पीठ पर हुमच रहे हैं।

मालती ने समीप जाकर उत्तेजित स्वर में कहा—मिर्ज़ा खुर्शेद, यह फ़ेयर नहीं है। बाज़ी ड्रान रही।

खुर्शेद ने मेहता की गर्दन पर एक घस्सा लगाकर कहा—जब तक यह 'चीं' न बोलेंगे, मैं हरगिज़ न छोडूंगा। क्यों नहीं 'चीं' बोलते?

मालती और आगे बढ़ी—'चीं' बुलाने के लिए आप इतनी ज़बरदस्ती नहीं कर सकते।

मिर्ज़ा ने मेहता की पीठ पर हुमचकर कहा—बेशक कर सकता हूं। आप इनसे कह दें, 'चीं' बोलें, मैं अभी उठा जाता हूं।

मेहता ने एक बार फिर उठने की चेष्टा की, पर मिर्ज़ा ने उनकी गर्दन दबा दी।

मालती ने उनका हाथ पकड़कर घसीटने की कोशिश करके कहा—यह खेल नहीं, अदावत है।

'अदावत ही सही।'

'आप न छोड़ेंगे?'

स्त्री मेरी नज़र में क्या है। संसार में जो कुछ सुन्दर है, उसी की प्रतिमा को मैं स्त्री कहता हूं। मैं उससे यह आशा रखता हूं कि उसे मार ही डालूं, तो भी प्रतिहिंसा का भाव उसमें न आये। अगर मैं उसकी आंखों के सामने किसी स्त्री को प्यार करूं, तो भी उसकी ईर्ष्या न जागे। ऐसी नारी पाकर मैं उसके चरणों में गिर पड़ूंगा और उस पर अपने को अर्पण कर दूंगा।

मिर्ज़ा ने सिर हिलाकर कहा—ऐसी औरत आपको इस दुनिया में तो शायद ही मिले।

मेहता ने हाथ मारकर कहा—एक नहीं, हज़ारों, वरना दुनिया वीरान हो जाती।

'ऐसी एक ही मिसाल दीजिये।'

'मिसेज़ खन्ना को ही ले लीजिये।'

'लेकिन खन्ना।'

'खन्ना अभागे हैं, जो हीरा पाकर कांच का टुकड़ा समझ रहे हैं। सोचिये, कितना त्याग है, उसके साथ ही कितना प्रेम है। खन्ना के रूपासक्त मन में शायद उसके लिए रत्ती-भर भी स्थान नहीं है, लेकिन आज खन्ना पर कोई आफ़त आ जाये, तो वह अपने को उन पर न्योछावर कर देगी। खन्ना आज अन्धे या कोढ़ी हो जायें, तो भी उसकी वफ़ादारी में फ़र्क़ न आयेगा। अभी खन्ना उसकी क़द्र नहीं कर सकते हैं, मगर आप देखेंगे, एक दिन यही खन्ना उसके चरण धो-धोकर पियेंगे। मैं ऐसी बीवी नहीं चाहता, जिससे मैं आइंस्टीन के सिद्धान्त पर वहस कर सकूं, या जो मेरी रचनाओं के प्रूफ़ देखा करे। मैं ऐसी औरत चाहता हूं, जो मेरे जीवन को पवित्र और उज्ज्वल वना दे, अपने प्रेम और त्याग से।'

ख़ुर्शेद ने दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए जैसे कोई भूली हुई वात याद करके कहा—आपका ख़याल वहुत ठीक है मिस्टर मेहता! ऐसी औरत अगर कहीं मिल जाये, तो मैं भी शादी कर लूं, लेकिन मुझे उम्मीद नहीं है कि मिले।

मेहता ने हंसकर कहा—आप भी तलाश में रहिये, मैं भी तलाश में हूं। शायद कभी तक़दीर जागे।

'मगर मिस मालती आपको छोड़ने वाली नहीं। कहिये लिख दूं।'

'ऐसी औरतों से मैं केवल मनोरंजन कर सकता हूं, व्याह नहीं। व्याह तो आत्मसमर्पण है।'

'अगर व्याह आत्मसमर्पण है, तो प्रेम क्या है?'

'प्रेम जब आत्मसमर्पण का रूप लेता है, तभी व्याह है, उसके पहले ऐयाशी है।'

मेहता ने कपड़े पहने और विदा हो गये। शाम हो गयी थी। मिर्ज़ा ने जाकर देखा, तो गोवर अभी तक पेड़ों को सींच रहा था। मिर्ज़ा ने प्रसन्न होकर कहा—जाओ, अव तुम्हारी छुट्टी है। कल फिर आओगे?

गोवर ने कातर भाव से कहा—मैं कहीं नौकरी चाहता हूं मालिक!

'नौकरी करना है, तो हम तुझे रख लेंगे।'

'कितना मिलेगा हुज़ूर?'

'जितना तू मांगे।'

'मैं क्या मांगूं? आप जो चाहे दे दें।'

'हम तुम्हें पन्द्रह रुपये देंगे और खूव कसकर काम लेंगे।'

गोवर मेहनत से नहीं डरता। उसे रुपये मिलें, तो वह आठों पहर काम करने को तैयार है। पन्द्रह रुपये मिलें, तो क्या पूछना? वह तो प्राण भी दे देगा।

वोला—मेरे लिए कोठरी मिल जाये, वहीं पड़ा रहूंगा।

'हां-हां, जगह का इन्तज़ाम मैं कर दूंगा। इसी झोंपड़ी में एक किनारे तुम भी पड़ जाना।'

गोवर को जैसे स्वर्ग मिल गया।

उसी वक्त जैसे कोई भूकम्प आ गया। मिर्ज़ा साहब ज़मीन पर पड़े हुए थे और मेहता दौड़े हुए पाली की ओर भागे जा रहे थे और हज़ारों आदमी पागलों की तरह टोपियां और पगड़ियां और छड़ियां उछाल रहे थे। कैसे यह कायापलट हुई, कोई समझ न सका।

मिर्ज़ा ने मेहता को गोद में उठा लिया और लिये हुए शामियाने तक आये। प्रत्येक मुख पर यह शब्द थे—डॉक्टर साहब ने बाज़ी मार ली। और प्रत्येक आदमी इस हारी हुई बाज़ी के एक बारगी पलट जाने पर विस्मित था। सभी मेहता के जीवट और धैर्य का बखान कर रहे थे।

मज़दूरों के लिए पहले से नारंगियां मंगा ली गयी थीं। उन्हें एक-एक नारंगी देकर विदा किया गया। शामियाने में मेहमानों के चाय-पानी का आयोजन था। मेहता और मिर्ज़ा एक ही मेज़ पर आमने-सामने बैठे। मालती मेहता के बग़ल में बैठी।

मेहता ने कहा—मुझे आज एक नया अनुभव हुआ। महिला की सहानुभूति हार को जीत बना सकती है।

मिर्ज़ा ने मालती की ओर देखा—अच्छा। यह बात थी। जभी तो मुझे हैरत हो रही थी कि आप एकाएक कैसे ऊपर आ गये।

मालती शर्म से लाल हुई जाती थी। बोली—आप बड़े बेमुरौवत आदमी हैं मिर्ज़ाजी, मुझे आज मालूम हुआ।

'कुसूर इनका था। यह क्यों 'चीं' नहीं बोलते थे?'

'मैं तो 'चीं' न बोलता, चाहे आप मेरी जान ही ले लेते।'

कुछ देर मित्रों में गप-शप होती रही। फिर धन्यवाद के और मुबारकबाद के भाषण हुए और मेहमान लोग विदा हुए। मालती को एक विज़िट करनी थी। वह भी चली गयी। केवल मेहता और मिर्ज़ा रह गये। उन्हें अभी स्नान करना था। मिट्टी में सने हुए थे। कपड़े कैसे पहनते? गोबर पानी खींच लाया और दोनों दोस्त नहाने लगे।

मिर्ज़ा ने पूछा—शादी कब तक होगी?

मेहता ने अचम्भे में आकर पूछा—किसकी?

'आपकी।'

'मेरी शादी! किसके साथ हो रही है?'

'वाह! आप तो ऐसा उड़ रहे हैं, गोया यह भी छिपाने की बात है।'

'नहीं-नहीं, मैं सच कहता हूं, मुझे बिलकुल ख़बर नहीं है। क्या मेरी शादी होने जा रही है?'

'और आप क्या समझते हैं, मिस मालती आपकी कम्पेनियन बनकर रहेंगी?'

मेहता गम्भीर भाव से बोले—आपका ख़याल बिलकुल ग़लत है मिर्ज़ाजी! मिस मालती हसीन हैं, खुशमिज़ाज हैं, समझदार हैं, रोशनख़याल हैं और भी उनमें कितनी खूबियां हैं। लेकिन मैं अपनी जीवन-संगिनी में जो बात देखना चाहता हूं, वह उनमें नहीं है और न शायद हो सकती है। मेरे ज़ेहन में औरत वफ़ा और त्याग की मूर्ति है, जो अपनी बेज़बानी से, अपनी कुर्बानी से, अपने को बिलकुल मिटाकर पति की आत्मा का एक अंश बन जाती है। देह पुरुष की रहती है, पर आत्मा स्त्री की होती है। आप कहेंगे, मर्द अपने को क्यों नहीं मिटाता? औरत ही से क्यों इसकी आशा करता है? मर्द में वह सामर्थ्य ही नहीं है। वह अपने को मिटायेगा, तो शून्य हो जायेगा। वह किसी खोह में जा बैठेगा और सर्वात्मा में मिल जाने का स्वप्न देखेगा। वह तेजप्रधान जीव है, और अहंकार में यह समझकर कि वह ज्ञान का पुतला है, सीधा ईश्वर में लीन होने की कल्पना किया करता है। स्त्री पृथ्वी की भांति धैर्यवान् है, शान्ति-सम्पन्न है, सहिष्णु है। पुरुष में नारी के गुण आ जाते हैं, तो वह महात्मा बन जाता है। नारी में पुरुष के गुण आ जाते हैं, तो वह कुलटा हो जाती है। पुरुष आकर्षित होता है स्त्री की ओर, जो सर्वांश में स्त्री हो। मालती ने अभी तक मुझे आकर्षित नहीं किया। मैं आपसे किन शब्दों में कहूं कि

स्त्री मेरी नज़र में क्या है। संसार में जो कुछ सुन्दर है, उसी की प्रतिमा को मैं स्त्री कहता हूं। मैं उससे यह आशा रखता हूं कि उसे मार ही डालूं, तो भी प्रतिहिंसा का भाव उसमें न आये। अगर मैं उसकी आंखों के सामने किसी स्त्री को प्यार करूं, तो भी उसकी ईर्ष्या न जागे। ऐसी नारी पाकर मैं उसके चरणों में गिर पड़ूंगा और उस पर अपने को अर्पण कर दूंगा।

मिर्ज़ा ने सिर हिलाकर कहा—ऐसी औरत आपको इस दुनिया में तो शायद ही मिले।

मेहता ने हाथ मारकर कहा—एक नहीं, हज़ारों, वरना दुनिया वीरान हो जाती।

'ऐसी एक ही मिसाल दीजिये।'

'मिसेज़ खन्ना को ही ले लीजिये।'

'लेकिन खन्ना।'

'खन्ना अभागे हैं, जो हीरा पाकर कांच का टुकड़ा समझ रहे हैं। सोचिये, कितना त्याग है, उसके साथ ही कितना प्रेम है। खन्ना के रूपासक्त मन में शायद उसके लिए रत्ती-भर भी स्थान नहीं है, लेकिन आज खन्ना पर कोई आफ़त आ जाये, तो वह अपने को उन पर न्योछावर कर देगी। खन्ना आज अन्धे या कोढ़ी हो जायें, तो भी उसकी वफ़ादारी में फ़र्क़ न आयेगा। अभी खन्ना उसकी क़द्र नहीं कर सकते हैं, मगर आप देखेंगे, एक दिन यही खन्ना उसके चरण धो-धोकर पियेंगे। मैं ऐसी बीवी नहीं चाहता, जिससे मैं आइंस्टीन के सिद्धान्त पर बहस कर सकूं, या जो मेरी रचनाओं के प्रूफ़ देखा करे। मैं ऐसी औरत चाहता हूं, जो मेरे जीवन को पवित्र और उज्ज्वल बना दे, अपने प्रेम और त्याग से।'

ख़ुर्शेद ने दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए जैसे कोई भूली हुई बात याद करके कहा—आपका ख़याल बहुत ठीक है मिस्टर मेहता! ऐसी औरत अगर कहीं मिल जाये, तो मैं भी शादी कर लूं, लेकिन मुझे उम्मीद नहीं है कि मिले।

मेहता ने हंसकर कहा—आप भी तलाश में रहिये, मैं भी तलाश में हूं। शायद कभी तक़दीर जागे।

'मगर मिस मालती आपको छोड़ने वाली नहीं। कहिये लिख दूं।'

'ऐसी औरतों से मैं केवल मनोरंजन कर सकता हूं, ब्याह नहीं। ब्याह तो आत्मसमर्पण है।'

'अगर ब्याह आत्मसमर्पण है, तो प्रेम क्या है?'

'प्रेम जब आत्मसमर्पण का रूप लेता है, तभी ब्याह है, उसके पहले ऐयाशी है।'

मेहता ने कपड़े पहने और विदा हो गये। शाम हो गयी थी। मिर्ज़ा ने जाकर देखा, तो गोबर अभी तक पेड़ों को सींच रहा था। मिर्ज़ा ने प्रसन्न होकर कहा—जाओ, अब तुम्हारी छुट्टी है। कल फिर आओगे?

गोबर ने कातर भाव से कहा—मैं कहीं नौकरी चाहता हूं मालिक!

'नौकरी करना है, तो हम तुझे रख लेंगे।'

'कितना मिलेगा हुज़ूर?'

'जितना तू मांगे।'

'मैं क्या मांगूं? आप जो चाहे दे दें।'

'हम तुम्हें पन्द्रह रुपये देंगे और ख़ूब कसकर काम लेंगे।'

गोबर मेहनत से नहीं डरता। उसे रुपये मिलें, तो वह आठों पहर काम करने को तैयार है। पन्द्रह रुपये मिलें, तो क्या पूछना? वह तो प्राण भी दे देगा।

बोला—मेरे लिए कोठरी मिल जाये, वहीं पड़ा रहूंगा।

'हां-हां, जगह का इन्तज़ाम मैं कर दूंगा। इसी झोंपड़ी में एक किनारे तुम भी पड़ जाना।'

गोबर को जैसे स्वर्ग मिल गया।

: 14 :

होरी की फ़सल सारी-की-सारी डांड़ की भेंट हो चुकी थी। वैशाख तो किसी तरह कटा, मगर जेठ लगते-लगते घर में अनाज का एक दाना न रहा। पांच-पांच पेट खानेवाले और घर में अनाज नदारद। दोनों जून न मिले, एक जून तो मिलना ही चाहिए। भर-पेट न मिले, आधा पेट तो मिले। निराहार कोई कै दिन रह सकता है। उधार ले, तो किससे? गांव के छोटे-बड़े महाजनों से तो मुंह चुराना पड़ता था। मजूरी भी करे, तो किसकी? जेठ में अपना ही काम ढेरों था। ऊख की सिंचाई लगी हुई थी, लेकिन ख़ाली पेट मेहनत भी कैसे हो?

सांझ हो गयी थी। छोटा बच्चा रो रहा था। मां को भोजन न मिले, तो दूध कहां से निकले? सोना परिस्थिति समझती थी, मगर रूपा क्या समझे? बार-बार रोटी-रोटी चिल्ला रही थी। दिन-भर तो कच्ची अमिया से जी बहला, मगर अब तो कोई ठोस चीज़ चाहिए। होरी दुलारी सहुआइन से अनाज उधार मांगने गया था, पर वह दुकान बन्द करके पैठ चली गयी थी। मंगरू साह ने केवल इनकार ही न किया, लताड़ भी दी—उधार मांगने चले हैं, तीन साल से धेला सूद नहीं दिया, पर उधार दिये जाओ। अब आकबत में देंगे। खोटी नीयत हो जाती है, तो यही हाल होता है। भगवान् से भी यह अनीति नहीं देखी जाती। कारकुन की डांट पड़ी, तो कैसे चुपके से रुपये उगल दिये। मेरे रुपये ही नहीं हैं। और मेहरिया है कि उसका मिज़ाज ही नहीं मिलता।

वहां से रुआंसा होकर उदास बैठा था कि पुन्नी आग लेने आयी। रसोई के द्वार पर जाकर देखा, तो अंधेरा पड़ा हुआ था। बोली—आज रोटी नहीं बना रही हो क्या भाभीजी? अब तो बेला हो गयी।

जब से गोबर भागा था, पुन्नी और धनिया में बोलचाल हो गयी थी। होरी का एहसान भी मानने लगी थी। हीरा को अब वह गालियां देती थी—हत्यारा, गऊ-हत्या करके भागा। मुंह में कालिख लगी है, घर कैसे आये और आये भी, तो घर के अन्दर पांव न रखने दूं। गऊ-हत्या करते इसे लाज भी न आयी। बहुत अच्छा होता, पुलिस बांधकर ले जाती और चक्की पिसवाती।

धनिया कोई बहाना न कर सकी। बोली—रोटी कहां से बने, घर में दाना तो है ही नहीं। तेरे महतो ने बिरादरी का पेट भर दिया, बाल-बच्चे मरें या जियें। अब बिरादरी झांकती तक नहीं।

पुन्नी की फ़सल अच्छी हुई थी, और वह स्वीकार करती थी कि यह होरी का पुरुषार्थ है। हीरा के साथ कभी इतनी बरक्कत न हुई थी।

बोली—अनाज मेरे घर से क्यों नहीं मंगवा लिया? वह भी तो महतो ही की कमाई है कि किसी और की? सुख के दिन आयें, तो लड़ लेना, दुःख तो साथ रोने ही से कटता है। मैं क्या ऐसी अन्धी हूं कि आदमी का दिल नहीं पहचानती? महतो ने न संभाला होता, तो आज मुझे कहां सरन मिलती?

वह उलटे पांव लौटी और सोना को भी साथ लेती गयी। एक क्षण में दो डल्ले अनाज से भरे लाकर आंगन में रख दिये। दो मन से कम जौ न था। धनिया अभी कुछ कहने न पायी थी कि वह फिर चल दी और एक क्षण में एक बड़ी-सी टोकरी अरहर की दाल से भरी हुई लाकर रख दी और बोली—चलो, मैं आग जलाये देती हूं।

धनिया ने देखा, तो जौ के ऊपर एक छोटी-सी डलिया में चार-पांच सेर आटा भी था। आज जीवन में पहली बार वह परास्त हुई। आंखों में प्रेम और कृतज्ञता के मोती भरकर बोली—सब-का-सब उठा लायी कि घर में भी कुछ छोड़ा? कहीं भागा जाता था।

आंगन में बच्चा खटोले पर पड़ा रो रहा था। पुनिया उसे गोद में लेकर दुलराती हुई बोली—तुम्हारी दया से अभी बहुत है भाभीजी। पन्द्रह मन तो जौ हुआ है और दस मन गेहूं। पांच मन मटर हुआ, तुमसे क्या छिपाना है। दोनों घरों का काम चल जायेगा। दो-तीन महीने में फिर मकई हो

जायेगी। आगे भगवान् मालिक है।

झुनिया ने आकर अञ्चल से छोटी सास के चरण छुए। पुनिया ने असीस दिया। सोना आग जलाने चली, रूपा ने पानी के लिए कलसा उठाया। रुकी हुई गाड़ी चल निकली। जल में अवरोध के कारण जो चक्कर था, फेन था, शोर था, गति की तीव्रता थी, वह अवरोध के हट जाने से शान्त मधुर-ध्वनि के साथ सम, धीमी, एक-रस धार में वहने लगी।

पुनिया वोली—महतो को डांड़ देने की ऐसी जल्दी क्या पड़ी थी?

धनिया ने कहा—विरादरी में सुरखरू कैसे होते?

'भाभी, वुरा न मानो, तो एक वात कहूं?'

'कह, वुरा क्यों मानूंगी?'

'न कहूंगी, कहीं तुम विगड़ने न लगो?'

'कहती हूं, कुछ न वोलूंगी, कह तो।'

'तुम्हें झुनिया को घर में रखना न चाहिए था।'

'तव क्या करती? वह डूवी मरती थी।'

'मेरे घर में रख देती। तव तो कोई कुछ न कहता।'

'यह तो तू आज कहती है। उस दिन भेज देती, तो झाडू लेकर दौड़ती।'

'इतने खरच में तो गोवर का व्याह हो जाता।'

'होनहार को कौन टाल सकता है पगली? अभी इतने ही से गला नहीं छूटा, भोला अव अपनी गाय के दाम मांग रहा है। तव तो गाय दी कि मेरी सगाई कहीं ठीक कर दो। अव कहता है, मुझे सगाई नहीं करनी, मेरे रुपये दे दो। उसके दोनों वेटे लाठी लिये फ़िरते हैं। हमारे कौन वैठा है, जो उससे लड़े? इस सत्यानासी गाय ने आकर चौपट कर दिया।'

कुछ और वातें करके पुनिया आग लेकर चली गयी। होरी सव कुछ देख रहा था। भीतर आकर वोला—पुनिया दिल की साफ़ है।

'हीरा भी तो दिल का साफ़ था?'

धनिया ने अनाज तो रख लिया था, पर मन में लज्जित और अपमानित हो रही थी। यह दिनों का फेर है कि आज उसे यह नीचा देखना पड़ा।

'तू किसी का औसान नहीं मानती, यही तुझमें वुराई है।'

'औसान क्यों मानूं? मेरा आदमी उसकी गिरस्ती के पीछे जान नहीं दे रहा है? फिर मैंने दान थोड़े ही लिया है। उसका एक-एक दाना भर दूंगी।'

मगर पुनिया अपनी जिठानी के मनोभाव समझकर भी होरी का एहसान चुकाती जाती थी। जव यहां अनाज चुक जाता, मन-दो मन दे जाती, मगर जव चौमासा आ गया और वर्षा न हुई, तो समस्या अत्यन्त जटिल हो गयी। सावन का महीना आ गया था और वगूले उठ रहे थे। कुओं का पानी भी सूख गया था और ऊख ताप से जली जा रही थी। नदी से थोड़ा-थोड़ा पानी मिलता था, मगर उसके पीछे आये दिन लाठियां निकलती थीं। यहां तक कि नदी ने भी जवाव दे दिया। जगह-जगह चोरियां होने लगीं, डाके पड़ने लगे। सारे प्रान्त में हाहाकार मच गया। वारे कुशल हुई कि भादों में वर्षा हो गयी और किसानों के प्राण हरे हुए। कितना उछाह था उस दिन। प्यासी पृथ्वी जैसे अघाती ही न थी और प्यासे किसान ऐसे उछल रहे थे, मानो पानी नहीं, अशर्फियां वरस रही हों। वटोर लो, जितना वटोरते वने। खेतों में जहां वगूले उठते थे, वहां हल चलने लगे। वालवृन्द निकल-निकलकर तालावों और पोखरों और गड़हियों का मुआयना कर रहे थे। ओहो! तालाव तो आधा भर गया, और वहां से गड़हिया की तरफ़ दौड़े।

मगर अव कितना ही पानी वरसे, ऊख तो विदा हो गयी। एक-एक हाथ ही होके रह जाएगी।

मक्का और जुआर और कोदों से लगान थोड़े ही चुकेगा, महाजन का पेट थोड़े ही भरा जायेगा। हां, गौओं के लिए चारा हो गया और आदमी जी गया।

जब माघ बीत गया और भोला के रुपये न मिले, तो एक दिन वह झल्लाया हुआ होरी के घर आ धमका और बोला—यही है तुम्हारा कौल? इसी मुंह से तुमने ऊख पेरकर मेरे रुपये देने का वादा किया था? अब तो ऊख पेर चुके। लाओ रुपये मेरे हाथ में।

होरी जब अपनी विपत्ति सुनाकर और सब तरह से चिरौरी करके हार गया और भोला द्वार से न हटा, तो उसने झुंझलाकर कहा—तो महतो इस बखत तो मेरे पास रुपये नहीं हैं, और न मुझे कहीं उधार ही मिल सकते हैं। मैं कहां से लाऊं? दाने-दाने की तंगी हो रही है। विश्वास न हो, घर में आकर देख लो। जो कुछ मिले, उठा ले जाओ।

भोला ने निर्मम भाव से कहा—मैं तुम्हारे घर में क्यों तलासी लेने जाऊं और न मुझे इससे मतलब है कि तुम्हारे पास रुपये हैं या नहीं। तुमने ऊख पेरकर रुपये देने को कहा था। ऊख पेर चुके। अब मेरे रुपये मेरे हवाले करो।

'तो फिर जो कहो, वह करूं?'

'मैं क्या कहूं?'

'मैं तुम्हीं पर छोड़ता हूं।'

'मैं तुम्हारे दोनों बैल खोल ले जाऊंगा।'

होरी ने उसकी ओर विस्मय-भरी आंखों से देखा, मानो अपने कानों पर विश्वास न आया हो। फिर हतबुद्धि-सा सिर झुकाकर रह गया। भोला क्या उसे भिखारी बनाकर छोड़ देना चाहते हैं? दोनों बैल चले गये, तब तो उसके दोनों हाथ ही कट जायेंगे।

दीन स्वर में बोला—दोनों बैल ले लोगे, तो मेरा सर्वनाश हो जायेगा। अगर तुम्हारा धरम यही कहता है, तो खोल ले जाओ।

'तुम्हारे बनने-बिगड़ने की मुझे परवा नहीं है। मुझे अपने रुपये चाहिए।'

'और जो मैं कह दूं, मैंने रुपये दे दिये?'

भोला सन्नाटे में आ गया। उसे अपने कानों पर विश्वास न आया। होरी इतनी बड़ी बेईमानी कर सकता है, यह सम्भव नहीं।

उग्र होकर बोला—अगर तुम हाथ में गंगाजली लेकर कह दो कि मैंने रुपये दे दिये, तो सबर कर लूं।

'कहने का मन तो चाहता है, मरता क्या न करता, लेकिन कहूंगा नहीं।'

'तुम कह ही नहीं सकते।'

'हां भैया, मैं नहीं कह सकता। हंसी कर रहा था।'

एक क्षण तक वह दुविधा में पड़ा रहा। फिर बोला—तुम मुझसे इतना बैर क्यों पाल रहे हो भोला भाई? झुनिया मेरे घर में आ गयी, तो मुझे कौन-सा सरग मिल गया? लड़का अलग हाथ से गया, दो सौ रुपया डांड़ अलग भरना पड़ा। मैं तो कहीं का न रहा। और अब तुम भी मेरी जड़ खोद रहे हो। भगवान् जानते हैं, मुझे बिलकुल न मालूम था कि लौंडा क्या कर रहा है। मैं तो समझता था, गाना सुनने जाता होगा। मुझे तो उस दिन पता चला, जब आधी रात को झुनिया घर में आ गयी। उस बखत मैं घर में न रखता, तो सोचो, कहां जाती? किसकी होकर रहती?

झुनिया बरौठे के द्वार पर छिपे खड़ी यह बातें सुन रही थी। बाप को अब वह बाप नहीं, शत्रु समझती थी। डरी, कहीं होरी बैलों को दे न दें। जाकर रूपा से बोली—अम्मां को जल्दी से बुला ला। कहना, बड़ा काम है, बिलम न करो।

धनिया खेत में गोबर फेंकने गयी थी, बहू का सन्देश सुना, तो आकर बोली—काहे बुलाया बहू,

मैं तो घवरा गयी।

'काका को तुमने देखा है न?'

'हां देखा, कसाई की तरह द्वार पर वैठा हुआ है। मैं तो वोली भी नहीं।'

'हमारे दोनों वैल मांग रहे हैं दादा से।'

धनिया के पेट की आंतें भीतर सिमट गयीं।

'दोनों वैल मांग रहे हैं?'

'हां, कहते हैं या तो हमारे रुपये दो या हम दोनों वैल खोल ले जायेंगे।'

'तेरे दादा ने क्या कहा?'

'उन्होंने कहा, तुम्हारा धरम कहता हो, तो खोल ले जाओ।'

'तो खोल ले जाये, लेकिन इसी द्वार पर आकर भीख न मांगे, तो मेरे नाम पर थूक देना। हमारे लहू से उसकी छाती जुड़ाती हो, तो जुड़ा ले।'

वह इसी तैश में वाहर आकर होरी से वोली—महतो दोनों वैल मांग रहे हैं, तो दे क्यों नहीं देते? उनका पेट भरे, हमारे भगवान् मालिक हैं। हमारे हाथ तो नहीं काट लेंगे! अव तक अपनी मजूरी करते थे, अव दूसरों की मजूरी करेंगे। भगवान् की मरजी होगी, तो फिर वैल-वधिये हो जायेंगे, और मजूरी ही करते रहे, तो कौन वुराई है। वूढ़े-सूखे और पोत-लगान का वोझ तो न रहेगा। मैं न जानती थी, यह हमारे वैरी हैं, नहीं गाय लेकर अपने सिर पर विपत्ति क्यों लेती? उस निगोड़ी का पौरा जिस दिन से आया, घर तहस-नहस हो गया।

भोला ने अव तक जिस शस्त्र को छिपा रखा था, अव उसे निकालने का अवसर आ गया। उसे विश्वास हो गया, वैलों के सिवा इन सवों के पास कोई अवलम्व नहीं है। वैलों को वचाने के लिए ये लोग सव कुछ करने को तैयार हो जायेंगे। अच्छे निशानेवाज़ की तरह मन को साधकर वोला—अगर तुम चाहते हो कि हमारी वेइज्जती हो और तुम चैन से वैठो, तो यह न होगा। तुम अपने दो सौ को रोते हो। यहां लाख रुपये की आवरू विगड़ गयी। तुम्हारी कुशल इसी में है कि जैसे झुनिया को घर में रखा था, वैसे ही घर से उसे निकाल दो, फिर न हम वैल मांगेंगे, न गाय का दाम मांगेंगे। उसने हमारी नाक कटवायी है, तो मैं भी उसे ठोकरें खाते देखना चाहता हूं। वह यहां रानी वनी वैठी रहे और हम मुंह में कालिख लगाये उसके नाम को रोते रहें, यह नहीं देख सकता। वह मेरी वेटी है, मैंने उसे गोद में खिलाया है, और भगवान् साखी है, मैंने उसे कभी वेटों से कम नहीं समझा, लेकिन आज उसे भीख मांगते और घूर पर दाने चुनते देखकर मेरी छाती सीतल हो जायेगी। जव वाप होकर मैंने अपना हिरदा इतना कठोर वना लिया है, तव सोचो, मेरे दिल पर कितनी वड़ी चोट लगी होगी? इस मुंहजली ने सात पुस्त का नाम डुवा दिया, और तुम उसे घर में रखे हुए हो, यह मेरी छाती पर मूंग दलना नहीं, तो और क्या है!

धनिया ने जैसे पत्थर की लकीर खींचते हुए कहा—तो महतो, मेरी भी सुन लो। जो वात तुम चाहते हो, वह न होगी। सौ जनम न होगी। झुनिया हमारी जान के साथ है। तुम वैल ही तो ले जाने को कहते हो, ले जाओ। अगर इससे तुम्हारी कटी हुई नाक जुड़ती हो, तो जोड़ लो, पुरखों की आवरू वचती हो, तो वचा लो। झुनिया से वुराई जरूर हुई। जिस दिन उसने मेरे घर में पांव रखा, मैं झाड़ू लेकर मारने उठी थी, लेकिन जव उसकी आंखों से झर-झर आंसू वहने लगे, तो मुझे उस पर दया आ गयी। तुम अव वूढ़े हो गये महतो। पर आज भी तुम्हें सगाई की धुन सवार है। फिर वह तो अभी वच्चा है।

भोला ने अपील-भरी आंखों से होरी को देखा—सुनते हो होरी इसकी वातें? अव मेरा दोष नहीं। मैं विना वैल लिये न जाऊंगा।

होरी ने दृढ़ता से कहा—ले जाओ।

'फिर रोना मत कि मेरे बैल खोल ले गये।'

'नहीं रोऊंगा।'

भोला बैलों की पगहिया खोल ही रहा था कि झुनिया चकतियोंदार साड़ी पहने, बच्चे को गोद में लिये, बाहर निकल आयी और कम्पित स्वर में बोली—काका, लो मैं इस घर से निकल जाती हूं और जैसी तुम्हारी मनोकामना है, उसी तरह भीख मांगकर अपना और बच्चे का पेट पालूंगी, और जब भीख भी न मिलेगी, तो कहीं डूब मरूंगी।

भोला खिसियाकर बोला—दूर हो मेरे सामने से। भगवान् न करे, मुझे तेरा मुंह देखना पड़े। कुलच्छिनी, कुल-कलंकिनी कहीं की। अब तेरे लिए डूब मरना ही उचित है।

झुनिया ने उसकी ओर ताका भी नहीं। उसमें वह क्रोध था, जो अपने को खा जाना चाहता है, जिसमें हिंसा नहीं, आत्मसमर्पण है। धरती इस वक्त मुंह खोलकर उसे निगल लेती, तो वह कितना धन्य मानती! उसने आगे क़दम उठाया।

लेकिन वह दो क़दम भी न गयी थी कि धनिया ने दौड़कर उसे पकड़ लिया और हिंसा से भरे स्नेह से बोली—तू कहां जाती है बहू, चल घर में। यह तेरा घर है, हमारे जीते भी और हमारे मरने के पीछे भी। डूब मरे वह, जिसे अपनी सन्तान से बैर हो। इस भले आदमी को मुंह से ऐसी बात कहते लाज नहीं आती। मुझ पर धौंस जमाता है नीच। ले जा, बैलों का रक्त पी......

झुनिया रोती हुई बोली—अम्मां, जब अपना बाप होके मुझे धिक्कार रहा है, तो मुझे डूब ही मरने दो। मुझ अभागिनी के कारन तो तुम्हें दुःख ही मिला। जब से आयी, तुम्हारा घर मिट्टी में मिल गया। तुमने इतने दिन मुझे जिस परेम से रखा, मां भी न रखती। भगवान् मुझे फिर जनम दें, तो तुम्हारी कोख से दें, यही मेरी अभिलाषा है।

धनिया उसको अपनी ओर खींचती हुई बोली—यह तेरा बाप नहीं है, तेरा बैरी है, हत्यारा। मां होती, तो अलबत्ते उसे कलक होती। ला सगाई, मेहरिया जूतों से न पीटे, तो कहना।

झुनिया सास के पीछे-पीछे घर में चली गयी। उधर भोला ने जाकर दोनों बैलों को खूंटों से खोला और हांकता हुआ घर चला, जैसे किसी नेवते में जाकर पूरियों के बदले जूते पड़े हों—अब करो खेती और बजाओ बंसी। मेरा अपमान करना चाहते हैं सब, न जाने कब का बैर निकाल रहे हैं, नहीं ऐसी लड़की को कौन भला आदमी अपने घर में रखेगा? सब-के-सब ये बेसरम हो गये हैं। लौंडे का क़हीं ब्याह न होता था इसी से। और इस रांड़ झुनिया की ढिठाई देखो कि आकर मेरे सामने खड़ी हो गयी। दूसरी लड़की होती, तो मुंह न दिखाती। आंखों का पानी मर गया है। सबके सब दुष्ट और मूरख भी हैं। समझते हैं, झुनिया अब हमारी हो गयी। यह नहीं समझते, जो अपने बाप के घर न रही, वह किसी के घर नहीं रहेगी। समय खराब है, नहीं बीच बाजार में इस चुड़ैल धनिया के झोंटे पकड़कर घसीटता। मुझे कितनी गालियां देती थी!

फिर उसने दोनों बैलों को देखा, कितने तैयार हैं। अच्छी जोड़ी है। जहां चाहूं, सौ रुपये में बेच सकता हूं। मेरे अस्सी रुपये खरे हो जायेंगे।

अभी वह गांव के बाहर भी न निकला था कि पीछे से दातादीन, पटेश्वरी, शोभा और दस-बीस आदमी और दौड़े आते दिखाई दिये। भोला का लहू सर्द हो गया। अब फ़ौजदारी हुई, बैल भी छिन जायेंगे, मार भी पड़ेगी। वह रुक गया कमर कसकर। मरना ही है, तो लड़कर मरेगा।

दातादीन ने समीप आकर कहा—यह तुमने क्या अनर्थ किया भोला ऐं? उसके बैल खोल लाये, वह कुछ बोला नहीं, इसी से सेर हो गये। सब लोग अपने-अपने काम में लगे थे, किसी को खबर भी न हुई। होरी ने ज़रा-सा इशारा क़र दिया होता, तो तुम्हारा एक-एक बाल नुच जाता। भला चाहते हो, तो ले चलो बैल, जरा भी भलमंसी नहीं है तुममें?

पटेश्वरी बोले—यह उसके सीधेपन का फल है। तुम्हारे उस पर आते हैं, तो जाकर दिवानी में

दावा करो, डिग्री कराओ। बैल खोल लाने का तुम्हें क्या अख्तियार है? अभी फ़ौजदारी में दावा कर दे, तो बंधे-बंधे फिरो।

भोला ने दबकर कहा—तो लाला साहब, हम कुछ जबरदस्ती थोड़े ही खोल लाये। होरी ने खुद दिये।

पटेश्वरी ने भोला से कहा—तुम बैलों को लौटा दो भोला! किसान अपने बैल खुशी से तो देता नहीं। इन्हें हल में जोतेगा।

भोला बैलों के सामने खड़ा हो गया। हमारे रुपये दिलवा दो, हमें बैलों को लेकर क्या करना है?

'हम बैल लिये जाते हैं, अपने रुपये के लिए दावा करो और नहीं तो मारकर गिरा दिये जाओगे। रुपये नगद दिये थे तुमने? एक कुलच्छिनी गाय बेचारे के सिर मढ़ दी और अब उसके बैल खोले लिये जाते हो।'

भोला बैलों के सामने से न हटा। खड़ा रहा गुमसुम, दृढ़, मानो मरकर ही हटेगा। पटवारी से दलील करके वह कैसे पेश पाता?

दातादीन ने एक क़दम आगे बढ़कर अपनी झुकी कमर को सीधा करके ललकारा—तुम सब खड़े ताकते क्या हो, मार के भगा दो इसको। हमारे गांव से बैल खोल ले जायेगा?

बंसी बलिष्ठ युवक था। उसने भोला को ज़ोर से धक्का दिया। भोला संभल न सका, गिर पड़ा। उठना चाहता था कि बंसी ने फिर एक घूंसा दिया।

होरी दौड़ता हुआ आ रहा था। भोला ने उसकी ओर दस क़दम बढ़कर पूछा—ईमान से कहना होरी महतो, मैंने बैल जबरदस्ती खोल लिये?

दातादीन ने इसका भावार्थ किया—यह कहते हैं कि होरी ने अपने खुशी से बैल मुझे दे दिये। हमीं को उल्लू बनाते हैं।

होरी ने सकुचाते हुए कहा—यह मुझसे कहने लगे या तो झुनिया को घर से निकाल दो, या मेरे रुपये दो, नहीं तो मैं बैल ले जाऊंगा। मैंने कहा, मैं बहू को तो न निकालूंगा, न मेरे पास रुपये हैं, अगर तुम्हारा धरम कहे, तो बैल खोल लो। बस, मैंने इनके धरम पर छोड़ दिया और इन्होंने बैल खोल लिये।

पटेश्वरी ने मुंह लटकाकर कहा—जब तुमने धरम पर छोड़ दिया, तब काहे की जबरदस्ती। उसके धरम ने कहा, लिये जाता है। जाओ भैया, बैल तुम्हारे हैं।

दातादीन ने समर्थन किया—हां, जब धरम की बात आ गयी, तो कोई क्या कहे। सब-के-सब होरी को तिरस्कार की आंखों से देखते परास्त होकर लौट पड़े और विजयी भोला शान से गर्दन उठाये बैलों को ले चला।

: 15 :

मालती बाहर से तितली है, भीतर से मधुमक्खी। उसके जीवन में हंसी ही हंसी नहीं है। केवल गुड़ खाकर कौन जी सकता है! और जिये भी, तो वह कोई सुखी जीवन न होगा। वह हंसती है, इसलिए कि उसे इसके भी दाम मिलते हैं, या उसने निजत्व को अपनी आंखों में इतना बढ़ा लिया है कि जो कुछ करे, अपने ही लिए करे। नहीं, वह इसलिए चहकती है और विनोद करती है कि इससे उसके कर्तव्य का भार कुछ हलका हो जाता है। उसके बाप उन विचित्र जीवों में थे, जो केवल ज़बान की मदद से लाखों के वारे-न्यारे करते थे। बड़े-बड़े ज़मींदारों और रईसों की जायदादें बिकवाना, उन्हें क़र्ज़ दिलाना या उनके मुआमलों को अफ़सरों से मिलकर तय करा देना, यही उनका व्यवसाय था। दूसरे शब्दों में दलाल थे। इस वर्ग के लोग बड़े प्रतिभावान् होते हैं। जिस काम से कुछ मिलने की

आशा हो, वह उठा लेंगे, किसी-न-किसी तरह उसे निभा भी देंगे। किसी राजा की शादी किसी राजकुमारी से ठीक करवा दी और दस-वीस हज़ार उसी में मार लिये। यही दलाल जब छोटे-छोटे सौदे करते हैं, तो टाउट कहे जाते हैं और हम उनसे घृणा करते हैं। बड़े-बड़े काम करके वही टाउट राजाओं के साथ शिकार खेलता है, और गवर्नरों की मेज़ पर चाय पीता है। मिस्टर कौल उन्हीं भाग्यवानों में थे। उनके तीन लड़कियां-ही-लड़कियां थीं। उनका विचार था कि तीनों को इंगलैण्ड भेजकर शिक्षा के शिखर पर पहुंचा दें। अन्य बहुत-से बड़े आदमियों की तरह उनका भी ख़याल था कि इंगलैण्ड में शिक्षा पाकर आदमी कुछ और हो जाता है। शायद वहां की जलवायु में बुद्धि को तेज़ कर देने की कोई शक्ति है, मगर उनकी यह कामना एक-तिहाई से ज़्यादा पूरी न हुई।

मालती इंगलैण्ड में ही थी कि उन पर फ़ालिज गिरा और बेकाम कर गया। अब बड़ी मुश्किल से दो आदमियों के सहारे उठते-बैठते थे। ज़बान तो बिलकुल बन्द ही हो गयी, और जब ज़बान ही बन्द हो गयी, तो आमदनी भी बन्द हो गयी। जो कुछ थी, ज़बान ही की कमाई थी। कुछ बचा रखने की उनकी आदत न थी। अनियमित आय थी, और अनियमित ख़र्च था, इसलिए इधर कई साल से बहुत तंगहाल हो रहे थे। सारा दायित्व मालती पर आ पड़ा। मालती के चार-पांच सौ रुपये में वह भोग-विलास और ठाठ-बाट तो क्या निभता, हां, इतना था कि दोनों लड़कियों की शिक्षा होती जाती थी और भलेमानसों की तरह ज़िन्दगी बसर होती थी। मालती सुबह से पहर रात तक दौड़ती रहती थी। चाहती थी कि पिता सात्त्विकता के साथ रहें, लेकिन पिताजी को शराब-कबाब का ऐसा चस्का पड़ा था कि किसी तरह गला न छोड़ता था। कहीं से कुछ न मिलता, तो एक महाजन से अपने बंगले पर प्रोनोट लिखकर हज़ार-दो हज़ार ले लेते थे। महाजन उनका पुराना मित्र था, जिसने उनकी बदौलत लेन-देन में लाखों कमाये थे, और मुरौवत के मारे कुछ बोलता न था। उसके पच्चीस हज़ार चढ़ चुके थे, और जब चाहता, कुर्की करा सकता था, मगर मित्रता की लाज निभाता जाता था। आत्मसेवियों में जो निर्लज्जता आ जाती है, वह कौल में भी थी। तक़ाज़े हुआ करें, उन्हें परवा न थी। मालती उनके अपव्यय पर झुंझलाती रहती थी, लेकिन उसकी माता, जो साक्षात् देवी थीं और इस युग में भी पति की सेवा को नारी-जीवन का मुख्य हेतु समझती थीं, उसे समझाती रहती थीं, इसलिए गृह-युद्ध न होने पाता था।

सन्ध्या हो गयी थी। हवा में अभी तक गरमी थी। आकाश में धुन्ध छाया हुआ था। मालती और उसकी दोनों बहिनें बंगले के सामने घास पर बैठी हुई थीं। पानी न पाने के कारण वहां की दूब जल गयी थी और भीतर की मिट्टी निकल आयी थी।

मालती ने पूछा—माली क्या बिलकुल पानी नहीं देता?

मंझली बहिन सरोज ने कहा—पड़ा-पड़ा सोया करता है सूअर! जब कहो, तो बीस बहाने निकालने लगता है।

सरोज बी.ए. में पढ़ती थी, दुबली-सी, लम्बी, पीली, रूखी, कटु। उसे किसी की कोई बात पसन्द न आती थी। हमेशा ऐब निकालती रहती थी। डॉक्टरों की सलाह थी कि वह कोई परिश्रम न करे और पहाड़ पर रहे, लेकिन घर की स्थिति ऐसी न थी कि उसे पहाड़ पर भेजा जा सकता।

सबसे छोटी वरदा को सरोज से इसलिए द्वेष था कि सारा घर सरोज को हाथों में लिये रहता था। वह चाहती थी जिस बीमारी में इतना स्वाद है, वह उसे ही क्यों नहीं हो जाती। गोरी-सी, गर्वशील, स्वस्थ, चञ्चल आंखों वाली बालिका थी, जिसके मुख पर प्रतिभा की झलक थी। सरोज के सिवा उसे सारे संसार से सहानुभूति थी। सरोज के कथन का विरोध करना उसका स्वभाव था। बोली—दिन भर दादाजी बाज़ार भेजते रहते हैं, फ़ुर्सत ही कहां पाता है? मरने को छुट्टी तो मिलती नहीं, पड़ा-पड़ा सोयेगा?

सरोज ने डांटा—दादाजी उसे कब बाज़ार भेजते हैं री, झूठी कहीं की।

'रोज़ भेजते हैं, रोज़। अभी तो आज ही भेजा था। कहो तो वुलाकर पुछवा दूं।'

'पुछवायेगी, वुलाऊं?'

मालती डरी। दोनों गुथ जायेंगी, तो वैठना मुश्किल कर देंगी। वात वदलकर वोली—अच्छा ख़ैर, होगा। आज डॉक्टर मेहता का तुम्हारे यहां भाषण हुआ था सरोज?

सरोज ने नाक सिकोड़कर कहा—हां, हुआ तो था, लेकिन किसी ने पसन्द नहीं किया। आप फ़र्माने लगे—संसार में स्त्रियों का क्षेत्र पुरुषों से विलकुल अलग है। स्त्रियों का पुरुषों के क्षेत्र में आना इस युग का कलंक है। सव लड़कियों ने तालियां और सीटियां वजानी शुरू कीं। वेचारे लज्जित होकर वैठ गये। कुछ अजीव-से आदमी मालूम होते हैं। आपने यहां तक कह डाला कि प्रेम केवल कवियों की कल्पना है। वास्तविक जीवन में इसका कहीं निशान नहीं। लेडी हुक्कू ने उनका खूव मज़ाक़ उड़ाया।

मालती ने कटाक्ष किया—लेडी हुक्कू ने? इस विषय में वह भी कुछ वोलने का साहस रखती है? तुम्हें डॉक्टर साहव का भाषण आदि से अन्त तक सुनना चाहिए था। उन्होंने दिल में लड़कियों को क्या समझा होगा?

'पूरा भाषण सुनने का सव्र किसे था? वह तो जैसे घाव पर नमक छिड़कते थे।'

'फिर उन्हें वुलाया ही क्यों? आख़िर उन्हें औरतों से कोई वैर तो है नहीं। जिस वात को हम सत्य समझते हैं, उसी का तो प्रचार करते हैं। औरतों को खुश करने के लिए वह उनकी-सी कहने वालों में नहीं हैं और फिर अभी यह कौन जानता है कि स्त्रियां जिस रास्ते पर चलना चाहती हैं, वही सत्य है। वहुत सम्भव है, आगे चलकर हमें अपनी धारणा वदलनी पड़े।'

उसने फ्रांस, जर्मनी और इटली की महिलाओं के जीवन आदर्श वतलाये और कहा—शीघ्र ही वीमेन्स लीग की ओर से मेहता का भाषण होने वाला है।

सरोज को कुतूहल हुआ।

'मगर आप भी तो कहती हैं कि स्त्रियों और पुरुषों के अधिकार समान होने चाहिए।'

'अव भी कहती हूं, लेकिन दूसरे पक्षवाले क्या कहते हैं, यह भी तो सुनना चाहिए। सम्भव है, हम ही ग़लती पर हों।'

यह लीग इस नगर की नयी संस्था है और मालती के उद्योग से खुली है। नगर की सभी शिक्षित महिलाएं उसमें शरीक हैं। मेहता के पहले भाषण ने महिलाओं में वड़ी हलचल मचा दी थी और लीग ने निश्चय किया था कि उनका खूव दन्दाशिकन जवाव दिया जाये। मालती ही पर यह भार डाला गया। मालती कई दिन तक अपने पक्ष के समर्थन में युक्तियां और प्रमाण खोजती रही। और भी कई देवियां अपने भाषण लिख रही थीं। उस दिन जव मेहता शाम को लीग के हाल में पहुंचे, तो जान पड़ता था, हाल फट जायेगा। उन्हें गर्व हुआ। उनका भाषण सुनने के लिए इतना उत्साह! और वह उत्साह केवल मुख पर और आंखों में न था। आज सभी देवियां सोने और रेशम से लदी हुई थीं, मानो किसी वरात में आयी हों। मेहता को परास्त करने के लिए शक्ति से काम लिया था और यह कौन कह सकता है कि जगमगाहट शक्ति का अंग नहीं है। मालती ने तो आज के लिए नये फ़ैशन की साड़ी निकाली थी, नये काट के जम्पर वनवाये थे और रंग-रोग़न और फूलों से खूव सजी हुई थी, मानो उसका विवाह हो रहा हो। वीमेन्स लीग में इतना समारोह और कभी न हुआ था। डॉक्टर मेहता अकेले थे, फिर भी देवियों के दिल कांप रहे थे। सत्य की एक चिनगारी असत्य के एक पहाड़ को भस्म कर सकती है।

सवसे पीछे की सफ़ में मिर्ज़ा और खन्ना और सम्पादकजी भी विराज रहे थे। रायसाहव भाषण शुरू होने के वाद आये और पीछे खड़े हो गये।

मिर्ज़ा ने कहा—आ जाइये आप भी, खड़े कव तक रहियेगा?

रायसाहव वोले—नहीं भाई, यहां मेरा दम घुटने लगेगा।

'तो मैं खड़ा होता हूं। आप वैठिये।'

रायसाहब ने उनके कन्धे दबाये—तकल्लुफ़ नहीं, बैठे रहिये। मैं थक जाऊंगा, तो आपको उठा दूंगा और बैठ जाऊंगा। अच्छा, मिस मालती सभानेत्री हुई। खन्ना साहब कुछ इनाम दिलवाइये।

खन्ना ने रोनी सूरत बनाकर कहा—अब मिस्टर मेहता पर ही निगाह है। मैं तो गिर गया।

मिस्टर मेहता का भाषण शुरू हुआ—

'देवियो! जब मैं इस तरह आपको सम्बोधित करता हूं, तो आपको कोई बात खटकती नहीं। आप इस सम्मान को अपना अधिकार समझती हैं, लेकिन आपने किसी महिला को पुरुषों के प्रति 'देवता' का व्यवहार करते सुना है? उसे आप देवता कहें, तो वह समझेगा, आप उसे बना रही हैं। आपके पास दान देने के लिए दया है, श्रद्धा है, त्याग है। पुरुष के पास दान के लिए क्या है? वह देवता नहीं, लेवता है। वह अधिकार के लिए हिंसा करता है, संग्राम करता है, कलह करता है।

तालियां बजीं। रायसाहब ने कहा—औरतों को खुश करने का इसने कितना अच्छा ढंग निकाला?

'बिजली' सम्पादक को बुरा लगा—कोई नयी बात नहीं। मैं कितनी ही बार यह भाव व्यक्त कर चुका हूं।

मेहता आगे बढ़े—इसलिए जब मैं देखता हूं, हमारी उन्नत विचारोंवाली देवियां उस दया और श्रद्धा और त्याग के जीवन से असन्तुष्ट होकर संग्राम और हिंसा के जीवन की ओर दौड़ रही हैं और समझ रही हैं कि यही सुख का स्वर्ग है, तो मैं उन्हें बधाई नहीं दे सकता।

मिसेज़ खन्ना ने मालती की ओर सगर्व नेत्रों से देखा। मालती ने गर्दन झुका ली।

खुर्शेद बोले—अब कहिये। मेहता दिलेर आदमी है। सच्ची बात कहता है और मुंह पर।

'बिजली' सम्पादक ने नाक सिकोड़ी—अब वह दिन लद गये, जब देवियां इन चकमों में आ जाती थीं। उनके अधिकार हड़पते जाओ और कहते जाओ, आप तो देवी हैं, लक्ष्मी हैं, माता हैं।

मेहता आगे बढ़े—स्त्री को पुरुष के रूप में पुरुष के कर्म में रत देखकर मुझे उसी तरह वेदना होती है, जैसे पुरुष को स्त्री के रूप में स्त्री के कर्म करते देखकर। मुझे विश्वास है, ऐसे पुरुषों को आप अपने विश्वास और प्रेम का पात्र नहीं समझतीं और मैं आपको विश्वास दिलाता हूं, ऐसी स्त्री भी पुरुष के प्रेम और श्रद्धा का पात्र नहीं बन सकती।

खन्ना के चेहरे पर दिल की खुशी चमक उठी।

रायसाहब ने चुटकी ली—आप बहुत खुश हैं खन्ना जी?

खन्ना बोले—मालती मिले, तो पूछूं, अब कहिये।

मेहता आगे बढ़े—मैं प्राणियों के विकास में स्त्री के पद को पुरुषों के पद से श्रेष्ठ समझता हूं। उसी तरह, जैसे प्रेम और त्याग और श्रद्धा को हिंसा और संग्राम और कलह से श्रेष्ठ समझता हूं। अगर हमारी देवियां सृष्टि और पालन के देव-मन्दिर से हिंसा और कलह के दानव क्षेत्र में आना चाहती हैं, तो उससे समाज का कल्याण न होगा। मैं इस विषय में दृढ़ हूं। पुरुष ने अपने अभिमान में अपनी कीर्ति को अधिक महत्त्व दिया। वह अपने भाई का स्वत्व छीनकर और उसका रक्त बहाकर समझने लगा, उसने बहुत बड़ी विजय पायी। जिन शिशुओं को देवियों ने अपने रक्त से सिरजा और पाला, उन्हें बम और मशीनगन और सहस्रों टैंकों का शिकार बनाकर वह अपने को विजेता समझता है। और जब हमारी ही माताएं उसके माथे पर केसर का तिलक लगाकर और उसे अपनी असीसों का कवच पहनाकर हिंसा-क्षेत्र में भेजती हैं, तो आश्चर्य है कि पुरुष ने विनाश को ही संसार के कल्याण की वस्तु समझा और उसकी हिंसा-प्रवृत्ति दिन-दिन बढ़ती गयी और आज हम देख रहे हैं कि यह दानवता प्रचण्ड होकर समस्त संसार को रौंदती, प्राणियों को कुचलती, हरी-भरी खेतियों को जलाती और गुलज़ार बस्तियों को वीरान करती चली जाती है। देवियो, मैं आपसे पूछता हूं, क्या आप इस दानवलीला में सहयोग देकर, इस संग्रामक्षेत्र में उतरकर संसार का कल्याण करेंगी? मैं आपसे

विनती करता हूं, नाश करने वालों को अपना काम करने दीजिये, आप अपने धर्म का पालन किये जाइये।

खन्ना वोले—मालती की तो गर्दन नहीं उठती।

रायसाहव ने इस विचारों का समर्थन किया—मेहता कहते तो यथार्थ ही हैं।

'विजली' सम्पादक विगड़े—मगर कोई वात तो नहीं कही। नारी-आन्दोलन के विरोधी इन्हीं ऊटपटांग वातों की शरण लिया करते हैं। मैं इसे मानता ही नहीं कि त्याग और प्रेम से संसार ने उन्नति की। संसार ने उन्नति की पौरुष से, पराक्रम से, वुद्धि-वल से, तेज से।

ख़ुर्शेद ने कहा—अच्छा, सुनने दीजियेगा या अपनी गाये जाइयेगा?

मेहता का भाषण जारी था—देवियो, मैं उन लोगों में नहीं हूं, जो कहते हैं कि स्त्री और पुरुष में समान शक्तियां हैं, समान प्रवृत्तियां हैं, और उनमें कोई विभिन्नता नहीं है। इससे भयंकर असत्य की मैं कल्पना नहीं कर सकता। यह वह असत्य है, जो युग-युगान्तरों से सञ्चित अनुभव को उसी तरह ढंक लेना चाहता है, जैसे वादल का एक टुकड़ा सूर्य को ढंक लेता है। मैं आपको सचेत किये देता हूं कि आप इस जाल में न फंसें। स्त्री पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ है, जितना प्रकाश अंधरे से। मनुष्य के लिए क्षमा और त्याग और अहिंसा जीवन के उच्चतम आदर्श हैं। नारी इस आदर्श को प्राप्त कर चुकी है। पुरुष धर्म और अध्यात्म और ऋषियों का आश्रय लेकर उस लक्ष्य पर पहुंचने के लिए सदियों से ज़ोर मार रहा है, पर सफल नहीं हो सका। मैं कहता हूं, उसका सारा अध्यात्म और योग एक तरफ़ और नारियों का त्याग एक तरफ़।

तालियां वर्जी। हाल हिल उठा। रायसाहव ने गद्‌गद होकर कहा— मेहता वही कहते हैं, जो इनके दिल में है।

ओंकारनाथ ने टीका की—लेकिन वातें सभी पुरानी हैं, सड़ी हुई।

'पुरानी वात भी आत्मवल के साथ कही जाती है, तो नयी हो जाती है।'

'जो एक हज़ार रुपये हर महीने फटकारकर विलास में उड़ाता हो, उसमें आत्मबल जैसी वस्तु नहीं रह सकती। यह केवल पुराने विचार की नारियों और पुरुषों को प्रसन्न करने के ढंग हैं।'

खन्ना ने मालती की ओर देखा—यह क्यों फूली जा रही हैं? इन्हें तो शर्माना चाहिए।

ख़ुर्शेद ने खन्ना को उकसाया—अव तुम भी एक तक़रीर कर डालो खन्ना, नहीं मेहता तुम्हें उखाड़ फेंकेगा। आधा मैदान तो उसने अभी मार लिया है।

खन्ना खिसियाकर वोले—मेरी न कहिये, मैंने कितनी चिड़ियां फंसाकर छोड़ दी हैं।

रायसाहव ने ख़ुर्शेद की तरफ़ आंख मारकर कहा—आजकल आप महिला समाज की तरफ़ आते-जाते हैं। सच कहना, कितना चन्दा दिया?

खन्ना पर झेंप छा गयी—मैं ऐसे समाजों को चन्दे नहीं दिया करता, जो कला का ढोंग रचकर दुराचार फैलाते हैं।

मेहता का भाषण जारी था—

'पुरुष कहता है, जितने दार्शनिक, वैज्ञानिक और आविष्कारक हुए हैं, वह सव पुरुष थे। जितने वड़े-वड़े महात्मा हुए हैं, वह सव पुरुष थे। सभी योद्धा, सभी राजनीति के आचार्य, वड़े-वड़े नाविक, वड़े-वड़े सव कुछ पुरुष थे, लेकिन इन वड़ों-वड़ों के समूहों ने मिलकर किया क्या? महात्माओं और धर्म-प्रवर्तकों ने संसार में रक्त की नदियां वहाने और वैमनस्य की आग भड़काने के सिवा और क्या किया, योद्धाओं ने भाइयों की गर्दनें काटने के सिवा और क्या यादगार छोड़ी, राजनीतिज्ञों की निशानी अव केवल लुप्त साम्राज्यों के खण्डहर रह गये हैं, और आविष्कारकों ने मनुष्य को मशीन का ग़ुलाम वना देने के सिवा और क्या समस्या हल कर दी? पुरुषों की रची हुई इस संस्कृति में शान्ति कहां है? सहयोग कहां है?'

ओंकारनाथ उठकर जाने को हुए—विलासियों के मुंह से बड़ी-बड़ी बातें सुनकर मेरी देह भस्म हो जाती है।

ख़ुर्शेद ने उनका हाथ पकड़कर बैठाया—आप भी सम्पादकजी निरे पोंगा ही रहे। अजी यह दुनिया है, जिसके जी में जो आता है, बकता है। कुछ लोग सुनते हैं और तालियां बजाते हैं। चलिये, क़िस्सा ख़त्म। ऐसे-ऐसे बेशुमार मेहते आयेंगे और चले जायेंगे और दुनिया अपनी रफ़्तार से चलती रहेगी। बिगड़ने की कौन-सी बात है?

'असत्य सुनकर मुझसे सहा नहीं जाता।'

रायसाहब ने इन्हें और चढ़ाया—कुलटा के मुंह से सतियों की-सी बात सुनकर किसका जी न जलेगा।

ओंकारनाथ फिर बैठ गये। मेहता का भाषण जारी था—

'मैं आपसे पूछता हूं, क्या बाज़ को चिड़ियों का शिकार करते देखकर हंस को यह शोभा देगा कि वह मानसरोवर की आनन्दमयी शान्ति को छोड़कर चिड़ियों का शिकार करने लगे? और अगर वह शिकारी बन जाये, तो आप उसे बधाई देंगी? हंस के पास उतनी तेज़ चोंच नहीं है, उतने तेज़ चंगुल नहीं हैं, उतनी तेज़ आंखें नहीं हैं, उतने तेज़ पंख नहीं हैं और उतनी तेज़ रक्त की प्यास नहीं है। उन अस्त्रों का सञ्चय करने में उसे सदियां लग जायेंगी, फिर भी वह बाज़ बन सकेगा या नहीं, इसमें सन्देह है। मगर बाज़ बने या न बने, वह हंस न रहेगा, वह हंस जो मोती चुगता है।

ख़ुर्शेद ने टीका की—यह तो शाइरों की-सी दलीलें हैं। मादा बाज़ भी उसी तरह शिकार करती है, जैसे नर बाज़।

ओंकारनाथ प्रसन्न हो गये—उस पर आप फ़िलासफ़र बनते हैं, इसी तर्क के बल पर।

खन्ना ने दिल का गुबार निकाला—फ़िलासफ़र की दुम हैं। फ़िलासफ़र वह है जो...

ओंकारनाथ ने बात पूरी की—जो सत्य से जौ-भर भी न टले।

खन्ना को यह समस्या-पूर्ति नहीं रुची—मैं सत्य-वत्य नहीं जानता। मैं तो फ़िलासफ़र उसे कहता हूं, जो फ़िलासफ़र हो सच्चा।

ख़ुर्शेद ने दाद दी—फ़िलासफ़र की आपने कितनी सच्ची तारीफ़ की है। वाह सुभानल्ला! फ़िलासफ़र वह, जो फ़िलासफ़र हो। क्यों न हो?

मेहता आगे चले—मैं नहीं कहता, देवियों को विद्या की ज़रूरत नहीं है। है और पुरुषों से अधिक। मैं नहीं कहता, देवियों को शक्ति की ज़रूरत नहीं है। है और पुरुषों से अधिक। लेकिन वह विद्या और वह शक्ति नहीं, जिससे पुरुष ने संसार को हिंसाक्षेत्र बना डाला है। अगर वही विद्या और वही शक्ति आप भी ले लेंगी, तो संसार मरुस्थल हो जायेगा। आपकी विद्या और आपका अधिकार हिंसा और विध्वंस में नहीं, सृष्टि और पालन में है। क्या आप समझती हैं, वोटों से मानव-जाति का उद्धार होगा, दफ़्तरों में और अदालतों में ज़बान और क़लम चलाने से? इन नक़ली, अप्राकृतिक, विनाशकारी अधिकारों के लिए आप वह अधिकार छोड़ देना चाहती हैं, जो आपको प्रकृति ने दिये हैं?

सरोज अब तक बड़ी बहन के अदब से ज़ब्त किये बैठी थी। अब न रहा गया। फुफकार उठी—हमें वोट चाहिए, पुरुषों के बराबर।

और कई युवतियों ने हांक लगायी—वोट। वोट।

ओंकारनाथ ने खड़े होकर ऊंचे स्वर से कहा—नारी-जाति के विरोधियों की पगड़ी नीची हो।

मालती ने मेज़ पर हाथ पटककर कहा—शान्त रहो, जो लोग पक्ष या विपक्ष में कुछ कहना चाहेंगे, उन्हें पूरा अवसर दिया जायेगा।

मेहता बोले—वोट नये युग का मायाजाल है, मरीचिका है, कलंक है, धोखा है, उसके चक्कर में

पड़कर आप न इधर की होंगी, न उधर की। कौन कहता है कि आपका क्षेत्र सकुंचित है और उसमें आपको अभिव्यक्ति का अवकाश नहीं मिलता? हम सभी पहले मनुष्य हैं, पीछे और कुछ। हमारा जीवन हमारा घर है। वहीं हमारी सृष्टि होती है, वहीं हमारा पालन होता है, वहीं जीवन के सारे व्यापार होते हैं। अगर वह क्षेत्र परिमित है, तो अपरिमित कौन-सा क्षेत्र है? क्या वह संघर्ष, जहां संगठित अपहरण है? जिस कारख़ाने में मनुष्य और उसका भाग्य बनता है, उसे छोड़कर आप उन कारख़ानों में जाना चाहती हैं, जहां मनुष्य पीसा जाता है, जहां उसका रक्त निकाला जाता है?

मिर्ज़ा ने टोका—पुरुषों के ज़ुल्म ने ही तो उनमें बग़ावत की यह स्पिरिट पैदा की है।

मेहता बोले—बेशक, पुरुषों ने अन्याय किया है, लेकिन उसका यह जवाब नहीं है। अन्याय को मिटाइये, लेकिन अपने को मिटाकर नहीं।

मालती बोली—नारियां इसलिए अधिकार चाहती हैं कि उनका सदुपयोग करें और पुरुषों को उनका सदुपयोग करने से रोकें।

मेहता ने उत्तर दिया—संसार में सबसे बड़े अधिकार सेवा और त्याग से मिलते हैं, और वह आपको मिले हुए हैं। उन अधिकारों के सामने वोट कोई चीज़ नहीं। मुझे खेद है, हमारी बहिनें पश्चिम का आदर्श ले रही हैं, जहां नारी ने अपना पद खो दिया है, और स्वामिनी से गिरकर विलास की वस्तु बन गयी है। पश्चिम की स्त्री स्वच्छन्द होना चाहती है, इसलिए कि वह अधिक-से-अधिक विलास कर सके। हमारी माताओं का आदर्श कभी विलास नहीं रहा। उन्होंने केवल सेवा के अधिकार से सदैव गृहस्थी का सञ्चालन किया है। पश्चिम में जो चीज़ें अच्छी हैं, वह उनसे लीजिये। संस्कृति में सदैव आदान-प्रदान होता आया है, लेकिन अन्धी नक़ल तो मानसिक दुर्बलता का ही लक्षण है। पश्चिम की स्त्री आज गृह-स्वामिनी नहीं रहना चाहती। भोग की विदग्ध लालसा ने उसे उच्छृंखल बना दिया है। वह अपनी लज्जा और गरिमा को, जो उसकी सबसे बड़ी विभूति थी, चञ्चलता और आमोद-प्रमोद पर होम कर रही है। जब मैं वहां की शिक्षित बालिकाओं को अपने रूप का या भरी हुई गोल बांहों या अपनी नग्नता का प्रदर्शन करते देखता हूं, तो मुझे उन पर दया आती है। उनकी लालसाओं ने उन्हें इतना पराभूत कर दिया है कि वे अपनी लज्जा की भी रक्षा नहीं कर सकतीं। नारी की इससे अधिक और क्या अधोगति हो सकती है?

रायसाहब ने तालियां बजायीं। हाल तालियों से गूंज उठा, जैसे पटाखों की टट्टियां छूट रही हों।

मिर्ज़ा साहब ने सम्पादकजी से कहा—जवाब तो आपके पास भी न होगा?

सम्पादकजी ने विरक्त मन से कहा—सारे व्याख्यान में इन्होंने यही एक बात सत्य कही है।

'तब तो आप भी मेहता के मुरीद हुए।'

'जी नहीं, अपने लोग किसी के मुरीद नहीं होते। मैं इसका जवाब ढूंढ़ निकालूंगा, 'बिजली' में देखियेगा।'

'इसके माने यह हैं कि आप हक़ की तलाश नहीं करते, सिर्फ़ अपने पक्ष के लिए लड़ना चाहते हैं।'

रायसाहब ने आड़े हाथों लिया—इसी पर आपको अपने सत्य-प्रेम का अभिमान है?

सम्पादकजी अविचल रहे—वकील का काम अपने मुवक्किल का हित देखना है, सत्य या असत्य का निराकरण नहीं।

'तो यों कहिये कि आप औरतों के वकील हैं?'

'मैं उन सभी लोगों का वकील हूं, जो निर्बल हैं, निस्सहाय हैं, पीड़ित हैं।'

'बड़े बेहया हो यार।'

मेहताजी कह रहे थे—और यह पुरुषों का षड्यन्त्र है। देवियों को ऊंचे शिखर से खींचकर अपने बराबर बनाने के लिए, उन पुरुषों का, जो कायर हैं, जिनमें वैवाहिक जीवन का दायित्व

संभालने की क्षमता नहीं है, जो स्वच्छन्द काम-क्रीड़ा की तरंगों में सांडों की भांति दूसरों की हरी-भरी खेती में मुंह डालकर अपनी कुत्सित लालसाओं को तृप्त करना चाहते हैं। पश्चिम में इनका षड्यन्त्र सफल हो गया और देवियां तितलियां बन गयीं। मुझे यह कहते हुए शर्म आती है कि इस त्याग और तपस्या की भूमि भारत में भी कुछ वही हवा चलने लगी है। विशेषकर हमारी शिक्षित बहिनों पर वह जादू बड़ी तेज़ी से चढ़ रहा है। वह गृहिणी का आदर्श त्यागकर तितलियों का रंग पकड़ रही हैं।

सरोज उत्तेजित होकर बोली—हम पुरुषों से सलाह नहीं मांगतीं। अगर वह अपने बारे में स्वतन्त्र हैं, तो स्त्रियां भी अपने विषय में स्वतन्त्र हैं। युवतियां अब विवाह को पेशा नहीं बनाना चाहतीं। वह केवल प्रेम के आधार पर विवाह करेंगी।

ज़ोर से तालियां बजीं, विशेषकर अगली पंक्तियों में, जहां महिलाएं थीं।

मेहता ने जवाब दिया—जिसे तुम प्रेम कहती हो, वह धोखा है, उद्दीप्त लालसा का विकृत रूप, उसी तरह, जैसे संन्यास केवल भीख मांगने का संस्कृत रूप है। वह प्रेम अगर वैवाहिक जीवन में कम है, तो मुक्त विलास में बिलकुल नहीं है। सच्चा आनन्द, सच्ची शान्ति केवल सेवा-व्रत में है। वही अधिकार का स्रोत है, वही शक्ति का उद्गम है। सेवा ही वह सीमेण्ट है, जो दम्पति को जीवनपर्यन्त स्नेह और साहचर्य में जोड़े रख सकता है, जिस पर बड़े-बड़े आघातों का कोई असर नहीं होता। जहां सेवा का अभाव है, वहीं विवाह-विच्छेद है, परित्याग है, अविश्वास है, और आपके ऊपर, पुरुष-जीवन की नौका की कर्णधार होने के कारण ज़िम्मेदारी ज़्यादा है। आप चाहें, तो नौका को आंधी और तूफ़ानों में पार लगा सकती हैं, और आपने असावधानी की, तो नौका डूब जायेगी और उसके साथ आप भी डूब जायेंगी।

भाषण समाप्त हो गया। विषय विवाद-ग्रस्त था और कई महिलाओं ने जवाब देने की अनुमति मांगी, मगर देर बहुत हो गयी थी। इसलिए मालती ने मेहता को धन्यवाद देकर सभा भंग कर दी। हां, यह सूचना दे दी गयी कि अगले रविवार को इसी विषय पर कई देवियां अपने विचार प्रकट करेंगी।

रायसाहब ने मेहता को बधाई दी—आपने मन की बातें कहीं मिस्टर मेहता! मैं आपके एक-एक शब्द से सहमत हूं।

मालती हंसी—आप क्यों न बधाई देंगे, चोर-चोर मौसेरे भाई जो होते हैं, मगर यह सारा उपदेश ग़रीब नारियों ही के सिर क्यों थोपा जाता है? उन्हीं के सिर क्यों आदर्श और मर्यादा और त्याग सब कुछ पालन करने का भार पटका जाता है?

मेहता बोले—इसलिए कि वह बात समझती हैं।

खन्ना ने मालती की ओर अपनी बड़ी-बड़ी आंखों से देखकर मानो उसके मन की बात समझने की चेष्टा करते हुए कहा—डॉक्टर साहब के ये विचार मुझे तो कोई सौ साल पिछड़े हुए मालूम होते हैं।

मालती ने कटु होकर पूछा—कौन से विचार?

'यही सेवा और कर्तव्य आदि।'

'तो आपको ये विचार सौ साल पिछड़े हुए मालूम होते हैं, तो कृपा करके अपने ताज़े विचार बतलाइये। दम्पति कैसे सुखी रह सकते हैं, इसका ताज़ा नुस्ख़ा आपके पास है?'

खन्ना खिसिया गये। बात कही मालती को खुश करने के लिए, वह तिनक उठी। बोले—यह नुस्ख़ा तो मेहता साहब को मालूम होगा।

'डॉक्टर साहब ने तो बतला दिया और आपके ख़याल में वह सौ साल पुराना है, तो नया नुस्ख़ा आपको बतलाना चाहिए। आपको ज्ञात नहीं कि दुनिया में ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जो कभी पुरानी हो ही नहीं सकतीं। समाज में इस तरह की समस्याएं हमेशा उठती रही हैं और हमेशा उठती रहेंगी।

मिसेज़ खन्ना बरामदे में चली गयी थीं। मेहता ने उनके पास जाकर प्रणाम करते हुए पूछा—मेरे

भाषण के विषय में आपकी क्या राय है?

मिसेज़ खन्ना ने आंखें झुकाकर कहा—अच्छा था, वहुत अच्छा, मगर अभी आप अविवाहित हैं, जभी नारियां देवियां हैं, श्रेष्ठ हैं, कर्णधार हैं। विवाह कर लीजिये, तो पूछूंगी, अव नारियां क्या हैं? और विवाह आपको करना पड़ेगा, क्योंकि आप विवाह से मुंह चुराने वाले मर्दों को कायर कह चुके हैं।

मेहता हंसे—उसी के लिए तो ज़मीन तैयार कर रहा हूं।

'मिस मालती से जोड़ा भी अच्छा है।'

'शर्त यही है कि कुछ दिन आपके चरणों में वैठकर आपसे नारी-धर्म सीखें।'

'वही स्वार्थी पुरुषों की वात! आपने पुरुष-कर्तव्य सीख लिया है?'

'यही सोच रहा हूं, किससे सीखूं?'

'मिस्टर खन्ना आपको वहुत अच्छी तरह सिखा सकते हैं।'

मेहता ने क़हक़हा मारा—नहीं, मैं पुरुष-कर्तव्य भी आप ही से सीखूंगा।

'अच्छी वात है, मुझी से सीखिये। पहली वात यही है कि भूल जाइये कि नारी श्रेष्ठ है और सारी ज़िम्मेदारी उसी पर है। श्रेष्ठ पुरुष है और उसी पर गृहस्थी का सारा भार है। नारी में सेवा और संयम और कर्तव्य सव कुछ वही पैदा कर सकता है। अगर उसमें इन वातों का अभाव है, तो नारी में भी अभाव रहेगा। नारियों में आज जो यह विद्रोह है, इसका कारण पुरुष का इन गुणों से शून्य हो जाना है।'

मिर्ज़ा साहव ने आकर मेहता को गोद में उठा लिया और वोले—मुवारक़।

मेहता ने प्रश्न की आंखों से देखा—आपको मेरी तक़रीर पसन्द आयी?

'तक़रीर तो ख़ैर जैसी थी, मगर कामयाव खूव रही। आपने परी को शीशे में उतार लिया। अपनी तक़दीर सराहिये कि जिसने आज तक किसी को मुंह नहीं लगाया, वह आपका कलमा पढ़ रही है।'

मिसेज़ खन्ना दवी ज़वान से वोलीं—जव नशा ठहर जाये, तो कहिये।

मेहता ने विरक्त भाव से कहा—मेरे जैसे किताव के कीड़ों को कौन औरत पसन्द करेगी देवीजी? मैं तो पक्का आदर्शवादी हूं।

मिसेज़ खन्ना ने अपने पति को कार की तरफ़ जाते देखा, तो उधर चली गयीं। मिर्ज़ा भी वाहर निकल गये। मेहता ने मञ्च पर से अपनी छड़ी उठायी और वाहर जाना चाहते थे कि मालती ने आकर उनका हाथ पकड़ लिया और आग्रह-भरी आंखों से वोली—आप अभी नहीं जा सकते। चलिये, पापा से आपकी मुलाक़ात कराऊं, और आज वहीं खाना खाइये।

मेहता ने कान पर हाथ रखकर कहा—नहीं, मुझे क्षमा कीजिये। वहां सरोज मेरी जान खायेगी। मैं इन लड़कियों से वहुत घवराता हूं।

'नहीं-नहीं, मैं ज़िम्मा लेती हूं, जो वह मुंह भी खोले।'

'अच्छा, आप चलिये, मैं थोड़ी देर में आऊंगा।'

'जी नहीं, यह न होगा। मेरी कार सरोज को लेकर चल दी। आप मुझे पहुंचाने तो चलेंगे ही।'

दोनों मेहता की कार में वैठे। कार चली।

एक क्षण वाद मेहता ने पूछा—मैंने सुना है, खन्ना साहव अपनी वीवी को मारा करते हैं। तव से मुझे इनकी सूरत से नफ़रत हो गयी। जो आदमी इतना निर्दयी हो, उसे मैं आदमी नहीं समझता। उस पर नारी-जाति के वड़े हितैषी वनते हैं। तुमने उन्हें कभी समझाया नहीं?

मालती उद्विग्न होकर वोली—ताली हमेशा दो हथेलियों से वजती है, यह आप भूल जाते हैं।

'मैं तो ऐसे किसी कारण की कल्पना ही नहीं कर सकता कि कोई पुरुष अपनी स्त्री को मारे।'

'चाहे स्त्री कितनी ही बदज़बान हो?'

'हां, कितनी ही।'

'तो आप एक नये क़िस्म के आदमी हैं।'

'अगर मर्द बदमिज़ाज है, तो तुम्हारी राय में उस मर्द पर हण्टरों की बौछार करनी चाहिए, क्यों?'

'स्त्री जितनी क्षमाशील हो सकती है, पुरुष नहीं हो सकता। आपने खुद आज यह बात स्वीकर की है।'

'तो औरत की क्षमाशीलता का यही पुरस्कार है? मैं समझता हूं, तुम खन्ना को मुंह लगाकर उसे और भी शह देती हो। तुम्हारा वह जितना आदर करता है, तुमसे उसे जितनी भक्ति है, उसके बल पर तुम बड़ी आसानी से उसे सीधा कर सकती हो, मगर तुम उसकी सफ़ाई देकर स्वयं उस अपराध में शरीक हो जाती हो।'

मालती उत्तेजित होकर बोली—तुमने इस समय यह प्रसंग व्यर्थ ही छेड़ दिया। मैं किसी की बुराई नहीं करना चाहती, मगर अभी आपने गोविन्दी देवी को पहचाना नहीं। आपने उनकी भोली-भाली शान्त मुद्रा देखकर समझ लिया, वह देवी हैं। मैं उन्हें इतना ऊंचा स्थान नहीं देना चाहती। उन्होंने मुझे बदनाम करने का जितना प्रयत्न किया है, मुझ पर जैसे-जैसे आघात किये हैं, वह बयान करूं, तो आप दंग रह जायेंगे और तब आपको मानना पड़ेगा कि ऐसी औरत के साथ यही व्यवहार होना चाहिए।

'आख़िर उन्हें आपसे इतना द्वेष है, इसका कोई कारण तो होगा?'

'कारण उनसे पूछिये। मुझे किसी के दिल का हाल क्या मालूम?'

'उनसे बिना पूछे भी अनुमान किया जा सकता है और वह यह है—अगर कोई पुरुष मेरे और मेरी स्त्री के बीच में आने का साहस करे, तो मैं उसे गोली मार दूंगा, और उसे न मार सकूंगा, तो अपनी छाती में मार लूंगा। इसी तरह अगर मैं किसी स्त्री को अपने और अपनी स्त्री के बीच में लाना चाहूं, तो मेरी पत्नी को भी अधिकार है कि वह जो चाहे, करे। इस विषय में मैं कोई समझौता नहीं कर सकता। यह अवैज्ञानिक मनोवृत्ति है, जो हमने अपने बनैले पूर्वजों से पायी है और आजकल कुछ लोग इसे असभ्य और असामाजिक व्यवहार कहेंगे, लेकिन मैं अभी तक उस मनोवृत्ति पर विजय नहीं पा सका और न पाना चाहता हूं। इस विषय में मैं क़ानून की परवाह नहीं करता। मेरे घर में मेरा क़ानून है।'

मालती ने तीव्र स्वर में पूछा—लेकिन आपने यह अनुमान कैसे कर लिया कि मैं आपके शब्दों में खन्ना और गोविन्दी के बीच आना चाहती हूं? आप ऐसा अनुमान करके मेरा अपमान कर रहे हैं। मैं खन्ना को अपनी जूतियों की नोक के बराबर भी नहीं समझती।

मेहता ने अविश्वास-भरे स्वर में कहा—यह आप दिल से नहीं कह रही हैं मिस मालती! क्या आप सारी दुनिया को बेवकूफ़ समझती हैं? जो बात सभी समझ रहे हैं, अगर वही बात मिसेज़ खन्ना भी समझें, तो मैं उन्हें दोष नहीं दे सकता।

मालती ने तिनककर कहा—दुनिया को दूसरों को बदनाम करने में मज़ा आता है। यह उसका स्वभाव है। मैं उसका स्वभाव कैसे बदल दूं, लेकिन यह व्यर्थ का कलंक है। हां, मैं इतनी बेमुरौवत नहीं हूं कि खन्ना को अपने पास आते देखकर दुत्कार देती। मेरा काम ही ऐसा है कि मुझे सभी का स्वागत और सत्कार करना पड़ता है। अगर कोई इसका कुछ और अर्थ निकालता है, तो वह... वह...

मालती का गला भर्रा गया और उसने मुंह फेरकर रुमाल से आंसू पोंछे। फिर एक मिनट बाद बोली—औरों के साथ तुम भी मुझे.....मुझे.....इसका दुःख है.... मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी।

फिर कदाचित् उसे अपनी दुर्बलता पर खेद हुआ। वह प्रचण्ड होकर वोली--आपको मुझ पर आक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। अगर आप भी उन्हीं मर्दों में हैं, जो किसी स्त्री-पुरुष को साथ देखकर उंगली उठाये विना नहीं रह सकते, तो शौक़ से उठाइये। मुझे रत्ती-भर परवा नहीं। अगर कोई स्त्री आपके पास वार-वार किसी-न-किसी वहाने से आये, आपको अपना देवता समझे, हर एक वात में आपसे सलाह ले, आपके चरणों के नीचे आंखें विछाये, आपका इशारा पाते ही आग में कूदने को तैयार हो, तो मैं दावे से कह सकती हूं, आप उसकी उपेक्षा न करेंगे। अगर आप उसे ठुकरा सकते हैं, तो आप मनुष्य नहीं हैं। उसके विरुद्ध आप कितने ही तर्क और प्रमाण लाकर रख दें, लेकिन मैं मानूंगी नहीं। मैं तो कहती हूं, उपेक्षा तो दूर रही, ठुकराने की वात ही क्या, आप उस नारी के चरण धो-धोकर पियेंगे, और वहुत दिन गुज़रने के पहले वह आपकी हृदयेश्वरी होगी। मैं आपसे हाथ जोड़कर कहती हूं, मेरे सामने खन्ना का कभी नाम न लीजियेगा।

मेहता ने इस ज्वाला में मानो हाथ सेंकते हुए कहा—शर्त यही है कि मैं खन्ना को आपके साथ न देखूं।

'मैं मानवता की हत्या नहीं कर सकती। वह आयेंगे, तो मैं उन्हें दुरदुराऊंगी नहीं।'

'उनसे कहिये, अपनी स्त्री के साथ सज्जनता से पेश आयें।'

'मैं किसी के निजी मुआमले में दख़ल देना उचित नहीं समझती। न मुझे इसका अधिकार है।'

'तो आप किसी की ज़बान नहीं वन्द कर सकतीं।'

मालती का वंगला आ गया। कार रुक गयी। मालती उतर पड़ी और विना हाथ मिलाये चली गयी। वह यह भी भूल गयी कि उसने मेहता को भोजन की दावत दी है। वह एकान्त में जाकर खूव रोना चाहती है। गोविन्दी ने पहले भी आघात किये हैं, पर आज उसने जो आघात किया है, वह वहुत गहरा, बड़ा चौड़ा और बड़ा मर्मभेदी है।

:16:

रायसाहव को ख़वर मिली कि इलाक़े में एक वारदात हो गयी है और होरी के गांव के पंचों ने जुर्माना वसूल कर लिया है, तो फ़ौरन नोखेराम को बुलाकार जवाव-तलव किया—क्यों उन्हें इसकी इत्तला नहीं दी गयी? ऐसे नमकहराम दग़ाबाज़ आदमी के लिए उनके दरबार में जगह नहीं है।

नोखेराम ने इतनी गालियां खायीं, तो ज़रा गरम होकर बोले—मैं अकेला थोड़ा ही था। गांव के और पञ्च भी तो थे। मैं अकेला क्या कर लेता?

रायसाहव ने उनकी तोंद की तरफ़ भाले जैसी नुकीली दृष्टि से देखा—मत वको जी! तुम्हें उसी वक्त कहना चाहिए था। जब तक सरकार को इत्तला न हो जाये, मैं पञ्चों को जुर्माना न वसूल करने दूंगा। पञ्चों को मेरे और मेरी रिआया के बीच में दख़ल देने का हक़ क्या है? इस डांड़-वांध के सिवा इलाक़े में और कौन-सी आमदनी है? वसूली सरकार के घर गयी। वक़ाया असामियों ने दवा लिया। तव मैं कहां जाऊं? क्या खाऊं, तुम्हारा सिर? यह लाखों रुपये साल का ख़र्च कहां से आये? खेद है कि दो पुश्तों से कारिन्दगीरी करने पर मुझे आज तुम्हें यह वात वतलानी पड़ती है। कितने रुपये वसूल हुए थे होरी से?

नोखेराम ने सिटपिटाकर कहा—अस्सी रुपये।

'नक़द?'

'नक़द उसके पास कहां थे हुज़ूर? कुछ अनाज दिया, वाक़ी में अपना घर लिख दिया।'

रायसाहव ने स्वार्थ का पक्ष छोड़कर होरी का पक्ष लिया—अच्छा, तो आपने और बगुलाभगत पञ्चों ने मिलकर मेरे एक मातवर असामी को तवाह कर दिया। मैं पूछता हूं, तुम लोगों को क्या हक़ था कि मेरे इलाक़े में मुझे इत्तिला दिये वग़ैर मेरे असामी से जुर्माना वसूल करते? इसी वात पर अगर

मैं चाहूं, तो आपको, उस ज़ालिम पटवारी और उस धूर्त पण्डित को सात-सात साल के लिए जेल भिजवा सकता हूं। आपने समझ लिया कि आप ही इलाक़े के बादशाह हैं? मैं कहे देता हूं, आज शाम तक जुर्माने की पूरी रक़म मेरे पास पहुंच जाये, वरना बुरा होगा। मैं एक-एक से चक्की पिसवाकर छोड़ूंगा। जाइये, हां, होरी को और उसके लड़के को मेरे पास भेज दीजियेगा।

नोखेराम ने दबी ज़बान से कहा—उसका लड़का तो गांव छोड़कर भाग गया। जिस रात को यह वारदात हुई, उसी रात को भागा।

रायसाहब ने रोष से कहा—झूठ मत बोलो। तुम्हें मालूम है, झूठ से मेरे बदन में आग लग जाती है। मैंने आज तक कभी नहीं सुना कि कोई युवक अपनी प्रेमिका को उसके घर से लाकर फिर ख़ुद भाग जाये। अगर उसे भागना ही होता, तो वह उस लड़की को लाता क्यों? तुम लोगों की इसमें भी ज़रूर कोई शरारत है। तुम गंगा में डूबकर भी अपनी सफ़ाई दो, तो मानने का नहीं। तुम लोगों ने अपने समाज की प्यारी मर्यादा की रक्षा के लिए उसे धमकाया होगा। बेचारा भाग न जाता, तो क्या करता?

नोखेराम इसका प्रतिवाद न कर सके। मालिक जो कुछ कहें, वह ठीक है। वह यह भी न कह सके कि आप ख़ुद चलकर झूठ-सच की जांच कर लें। बड़े आदमियों का क्रोध पूरा समर्पण चाहता है। अपने ख़िलाफ़ एक शब्द भी नहीं सुन सकता।

पञ्चों ने रायसाहब का यह फ़ैसला सुना, तो नशा हिरन हो गया। अनाज तो अभी तक ज्यों-का-त्यों पड़ा था, पर रुपये तो कब के ग़ायब हो गये। होरी का मकान रेहन लिखा गया था, पर उस मकान को देहात में कौन पूछता था? जैसे हिन्दू स्त्री पति के साथ घर की स्वामिनी है, और पति त्याग दे, तो कहीं की नहीं रहती, उसी तरह यह घर होरी के लिए लाख रुपये का है, पर उसकी असली क़ीमत कुछ भी नहीं। और इधर रायसाहब बिना रुपये लिये मानने के नहीं। यही होरी जाकर रो आया होगा। पटेश्वरी लाल सबसे ज़्यादा भयभीत थे। उनकी तो नौकरी ही चली जायेगी। चारों सज्जन इस गहन समस्या पर विचार कर रहे थे, पर किसी की अक़्ल काम न करती थी। एक-दूसरे पर दोष रखता था। फिर ख़ूब झगड़ा हुआ।

पटेश्वरी ने अपनी लम्बी शंकाशील गर्दन हिलाकर कहा—मैं मना करता था कि होरी के विषय में हमें चुप्पी साधकर रह जाना चाहिए। गाय के मामले में सबको तावान देना पड़ा। इस मामले में तावान ही से गला न छूटेगा, नौकरी से हाथ धोना पड़ेगा, मगर तुम लोगों को रुपये की पड़ी थी। निकालो बीस-बीस रुपये। अब भी कुशल है। कहीं रायसाहब ने रपट कर दी, तो सब जने बंध जाओगे।

दातादीन ने ब्रह्मतेज दिखाकर कहा—मेरे पास बीस रुपये की जगह बीस पैसे भी नहीं हैं। ब्राह्मणों को भोज दिया गया, होम हुआ। क्या इसमें कुछ खरच ही नहीं हुआ? रायसाहब की हिम्मत है कि मुझे जेल ले जायें? ब्रह्म बनकर घर-का-घर मिटा दूंगा। अभी उन्हें किसी ब्राह्मण से पाला नहीं पड़ा।

झिंगुरीसिंह ने भी कुछ इसी आशय के शब्द कहे। वह रायसाहब के नौकर नहीं हैं। उन्होंने होरी को मारा नहीं, पीटा नहीं, कोई दबाव नहीं डाला। होरी अगर प्रायश्चित्त करना चाहता था, तो उन्होंने इसका अवसर दिया। इसके लिए कोई उन पर अपराध नहीं लगा सकता, मगर नोखेराम की गर्दन इतनी आसानी से न छूट सकती थी। यहां मज़े से बैठे राज करते थे। वेतन तो दस रुपये से ज़्यादा न था, पर एक हज़ार साल की ऊपर की आमदनी थी, सैकड़ों आदमियों पर हुकूमत, चार-चार प्यादे हाज़िर। बेगार में सारा काम हो जाता था। थानेदार तक कुरसी देते थे, यह चैन उन्हें और कहां था? और पटेश्वरी तो नौकरी के बदौलत महाजन बने हुए थे। कहां जा सकते थे? दो-तीन दिन इसी चिन्ता में पड़े रहे कि कैसे इस विपत्ति से निकलें। आख़िर उन्हें एक मार्ग सूझ ही गया। कभी-कभी

कचहरी में उन्हें दैनिक 'विजली' देखने को मिल जाती थी। यदि एक गुमनाम पत्र उसके सम्पादक की सेवा में भेज दिया जाये कि रायसाहब किस तरह असामियों से जुर्माना वसूल करते हैं, तो वच्चा को लेने के देने पड़ जायें। नोखेराम भी सहमत हो गये। दोनों ने मिलकर किसी तरह एक पत्र लिखा और रजिस्ट्री से भेज दिया।

सम्पादक ओंकारनाथ तो ऐसे पत्रों की ताक में रहते थे। पत्र पाते ही तुरन्त रायसाहव को सूचना दी। उन्हें एक ऐसा समाचार मिला है, जिस पर विश्वास करने की उनकी इच्छा नहीं होती, पर संवाददाता ने ऐसे प्रमाण दिये हैं कि सहसा अविश्वास भी नहीं किया जा सकता। क्या यह सच है कि रायसाहव ने अपने इलाक़े के एक असामी से अस्सी रुपये तावान इसलिए वसूल किये कि उसके पुत्र ने एक विधवा को घर में डाल लिया था? सम्पादक का कर्तव्य उन्हें मजबूर करता है कि वह मुआमले की जांच करें और जनता के हितार्थ उसे प्रकाशित कर दें। रायसाहव इस विषय में जो कुछ कहना चाहें, सम्पादकजी उसे भी प्रकाशित कर देंगे। सम्पादकजी दिल से चाहते हैं कि वह ख़वर ग़लत हो, लेकिन उसमें कुछ भी सत्य हुआ, तो वह उसे प्रकाश में लाने के लिए विवश हो जायेंगे। मैत्री उन्हें कर्तव्य-पथ से नहीं हटा सकती।

रायसाहब ने यह सूचना पायी, तो सिर पीट लिया। पहले तो उनको ऐसी उत्तेजना हुई कि जाकर ओंकारनाथ को गिनकर पचास हण्टर जमायें और कह दें जहां पर पत्र छापना, वहां यह समाचार भी छाप देना, लेकिन इसका परिणाम सोचकर मन को शान्त किया और तुरन्त उनसे मिलने चले। अगर देर की और ओंकारनाथ ने वह संवाद छाप दिया, तो उनके सारे यश में कालिमा पुत जायेगी।

ओंकारनाथ सैर करके लौटे थे और आज के पत्र के लिए सम्पादकीय लेख लिखने की चिन्ता में बैठे हुए थे, पर मन पक्षी की भांति अभी उड़ा-उड़ा फिरता था। उनकी धर्मपत्नी ने रात में उन्हें कुछ ऐसी वातें कह डाली थीं, जो अभी तक कांटों की तरह चुभ रही थीं। उन्हें कोई दरिद्र कह ले, अभागा कह ले, वुद्धू कह ले, वह ज़रा भी बुरा न मानते थे, लेकिन यह कहना कि उनमें पुरुषत्व नहीं है, यह उनके लिए असह्य था। और फिर अपनी पत्नी को यह कहने का क्या हक़ है? उससे तो यह आशा की जाती है कि कोई इस तरह का आक्षेप करे, तो उसका मुंह बन्द कर दे। बेशक वह ऐसी ख़बरें नहीं छापते, ऐसी टिप्पणियां नहीं करते कि सिर पर कोई आफ़त आ जाये। फूंक-फूंककर क़दम रखते हैं। इन काले क़ानूनों के युग में वह और कर ही क्या सकते हैं, मगर वह क्यों सांप के बिल में हाथ नहीं डालते? इसलिए तो कि उनके घरवालों को कष्ट न उठाने पड़ें। और उनकी सहिष्णुता का उन्हें यह पुरस्कार मिल रहा है? अन्धेर है। उनके पास रुपये नहीं हैं, तो बनारसी साड़ी कैसे मंगा दें? डॉक्टर, सेठ और प्रोफ़ेसर भाटिया और न जाने किस-किस की स्त्रियां बनारसी साड़ी पहनती हैं, तो क्या करें? क्यों उनकी पत्नी इन साड़ीवालियों को अपनी खद्दर की साड़ी से लज्जित नहीं करती? उनकी खुद तो यह आदत है कि किसी बड़े आदमी से मिलने जाते हैं, तो मोटे कपड़े पहन लेते हैं और कोई कुछ आलोचना करे, तो उसका मुंहतोड़ जवाब देने को तैयार रहते हैं। उनकी पत्नी में क्यों वही आत्माभिमान नहीं है? वह क्यों दूसरों का ठाठ-बाट देखकर विचलित हो जाती है? उसे समझना चाहिए कि वह एक देश-भक्त पुरुष की पत्नी है। देश-भक्त के पास अपनी भक्ति के सिवा और क्या सम्पत्ति है? इसी विषय को आज के अग्रलेख का विषय बनाने की कल्पना करते-करते उनका ध्यान रायसाहव के मुआमले की ओर जा पहुंचा। रायसाहब सूचना का क्या उत्तर देते हैं, यह देखना है। अगर वह अपनी सफ़ाई देने में सफल हो जाते हैं, तव तो कोई बात नहीं, लेकिन अगर वह यह समझें कि ओंकारनाथ दबाव, भय या मुलाहजे में आकर अपने कर्तव्य से मुंह फेर लेंगे, तो यह उनका भ्रम हैं। इस सारे तप और साधना का पुरस्कार उन्हें इसके सिवा और क्या मिलता है कि अवसर पड़ने पर वह इन क़ानूनी डकैतों का भण्डाफोड़ करें। उन्हें खूब मालूम है कि रायसाहब बड़े प्रभावशाली जीव हैं। कौंसिल के मेम्बर तो हैं ही। अधिकारियों में भी उनका काफ़ी रुसूख है। वह चाहें, तो उन पर झूठे

चलवा सकते हैं, अपने गुण्डों से राह चलते पिटवा सकते हैं, लेकिन ओंकार इन बातों से नहीं ।जब तक उसकी देह में प्राण हैं, वह आततायियों की ख़बर लेता रहेगा।

सहसा मोटरकार की आवाज़ सुनकर वह चौंके। तुरन्त काग़ज़ लेकर अपना लेख आरम्भ कर ।।और एक ही क्षण में रायसाहब ने उनके कमरे में क़दम रक्खा।

ओंकारनाथ ने न उनका स्वागत किया, न कुशल-क्षेम पूछा, न कुरसी दी। उन्हें इस तरह देखा, नो कोई मुलज़िम उनकी अदालत में आया हो और रोब से मिले हुए स्वर में पूछा—आपको मेरा रज़ा मिल गया था? मैं वह पत्र लिखने के लिए बाध्य नहीं था, मेरा कर्तव्य यह था कि स्वयं उसकी हक़ीक़ात करता, लेकिन मुरौवत में सिद्धान्तों की कुछ-न-कुछ हत्या करनी ही पड़ती है। क्या उस संवाद में कुछ सत्य है?

रायसाहब उसका सत्य होना अस्वीकार न कर सके। हालांकि अभी तक उन्हें जुर्माने के रुपये नहीं मिले थे और वह उनके पाने से साफ़ इनकार कर सकते थे, लेकिन वह देखना चाहते थे कि यह महाशय किस पहलू पर चलते हैं।

ओंकारनाथ ने खेद प्रकट करते हुए कहा—तब तो मेरे लिए उस संवाद को प्रकाशित करने के सिवा और कोई मार्ग नहीं है। मुझे इसका दुःख है कि मुझे अपने एक परम हितैषी मित्र की आलोचना करनी पड़ रही है, लेकिन कर्तव्य के आगे व्यक्ति कोई चीज़ नहीं। सम्पादक अगर अपना कर्तव्य न पूरा कर सके, तो उसे इस आसन पर बैठने का कोई हक़ नहीं है।

रायसाहब कुरसी पर डट गये और पान की गिलौरियां मुंह में भरकर बोले—लेकिन यह आपके हक़ में अच्छा न होगा। मुझे जो कुछ होना है, पीछे होगा, आपको तत्काल दण्ड मिल जायेगा। अगर आप मित्रों की परवा नहीं करते, तो मैं भी उसी कैंड़े का आदमी हूं।

ओंकारनाथ ने शहीद का गौरव धारण करके कहा—इसका तो मुझे कभी भय नहीं हुआ। जिस दिन मैंने पत्र-सम्पादक का भार लिया, उसी दिन प्राणों का मोह छोड़ दिया, और मेरे समीप एक सम्पादक की सबसे शानदार मौत यही है कि वह न्याय और सत्य की रक्षा करता हुआ अपना बलिदान कर दे।

'अच्छी बात है। मैं आपकी चुनौती स्वीकार करता हूं। मैं अब तक आपको मित्र समझता आय ।मगर अब आप लड़ने ही पर तैयार हैं, तो लड़ाई ही सही। आख़िर मैं आपके पत्र का पञ्चगु न्दा क्यों देता हूं? केवल इसलिए कि वह मेरा ग़ुलाम बना रहे। मुझे परमात्मा ने रईस बनाया है चहत्तर रुपया देता हूं, इसलिए कि आपका मुंह बन्द रहे। जब आप घाटे का रोना रोते हैं अ सहायता की अपील करते हैं, और ऐसी शायद ही कोई तिमाही जाती हो, जब आपकी अपील निकलती हो, तो मैं ऐसे मौक़े पर आपकी कुछ-न-कुछ मदद कर देता हूं। किसलिए? दीपाव दशहरा, होली में आपके यहां बैना भेजता हूं, और साल में पच्चीस बार आपकी दावत करत किसलिए? आप रिश्वत और कर्तव्य दोनों साथ-साथ नहीं निभा सकते।'

ओंकारनाथ उत्तेजित होकर बोले—मैंने कभी रिश्वत नहीं ली।

रायसाहब ने फटकारा—अगर यह व्यवहार रिश्वत नहीं है, तो रिश्वत क्या है, ज़रा मुझे दीजिये? क्या आप समझते हैं, आपको छोड़कर और सभी गधे हैं, जो निःस्वार्थ-भाव से घाटा पूरा करते हैं? निकालिये अपनी बही और बतलाइये, अब तक आपको मेरी रियासत से मिल चुका है? मुझे विश्वास है, हज़ारों की रक़म निकलेगी। अगर आपको स्वदेशी चिल्लाकर विदेशी दवाओं और वस्तुओं का विज्ञापन छापने में शरम नहीं आती, तो असामियों से डांड़, तावान और जुर्माना लेते क्यों शरमाऊं? यह न समझिये कि आप ही हित का बीड़ा उठाये हुए हैं। मुझे किसानों के साथ जलना-मरना है, मुझसे बढ़कर दू हितेच्छु नहीं हो सकता, लेकिन मेरी गुज़र कैसे हो? अफ़सरों को दावतें कहां से दूं, स

कहां से दूं, ख़ानदान के सैकड़ों आदमियों की ज़रूरतें कैसे पूरी करूं? मेरे घर का क्या ख़र्च है, यह शायद आप जानते हैं। तो क्या मेरे घर में रुपये फलते हैं? आयेगा, तो असामियों ही के घर से। आप समझते होंगे, ज़मींदार और ताल्लुक़ेदार सारे संसार का सुख भोग रहे हैं। उनकी असली हालत का आपको ज्ञान नहीं। अगर वह धर्मात्मा वनकर रहें, तो उनका ज़िन्दा रहना मुश्किल हो जाये। अफ़सरों को डालियां न दें, तो जेलख़ाना घर हो जाये। हम विच्छू नहीं है कि अनायास ही सवको डंक मारते फिरें। न ग़रीवों का गला दवाना कोई वड़े आनन्द का काम है, लेकिन मर्यादाओं का पालन तो करना ही पड़ता है। जिस तरह आप मेरी रईसी का फ़ायदा उठाना चाहते हैं, उसी तरह और सभी हमें सोने की मुर्ग़ी समझते हैं। आइये मेरे वंगले पर, तो दिखाऊं कि सुवह से शाम तक कितने निशाने मुझ पर पड़ते हैं। कोई काश्मीर से शाल-दुशाला लिये चला आ रहा है, कोई इत्र और तम्वाकू का एजेंट है, कोई पुस्तकों और पत्रिकाओं का, कोई जीवन-वीमा का, कोई ग्रामोफ़ोन लिये सिर पर सवार है, कोई कुछ। चन्देवाले तो अनगिनती। क्या सवके सामने अपना दुखड़ा लेकर वैठ जाऊं? ये लोग मेरे द्वार पर दुखड़ा सुनाने आते हैं। आते हैं मुझे उल्लू वनाकर मुझसे कुछ ऐंठने के लिए। आज मर्यादा का विचार छोड़ दूं, तो तालियां पिटने लगें। हुक्काम को डालियां न दूं, तो वाग़ी समझा जाऊं। तव आप अपने लेखों से मेरी रक्षा न करेंगे। कांग्रेस में शरीक़ हुआ, उसका तावान अभी तक देता जाता हूं। काली किताव में नाम दर्ज हो गया। मेरे सिर पर कितना क़र्ज़ है, यह भी कभी आपने पूछा है? अगर सभी महाजन डिग्रियां करा लें, तो मेरे हाथ की यह अंगूठी तक विक जायेगी। आप कहेंगे, क्यों यह आडम्वर पालते हो? कहिये, सात पुश्तों से जिस वातावरण में पला हूं, उससे अव निकल नहीं सकता। घास छीलना मेरे लिए असम्भव है। आपके पास ज़मीन नहीं, जायदाद नहीं, मर्यादा का झमेला नहीं, आप निर्भीक हो सकते हैं, लेकिन आप भी दुम दवाये वैठे रहते हैं। आपको कुछ ख़वर है, अदालतों में कितनी रिश्वतें चल रही हैं, कितने ग़रीवों का खून हो रहा है, कितनी देवियां भ्रष्ट हो रही हैं? है वूता लिखने का? सामग्री मैं देता हूं, प्रमाणसहित।

ओंकारनाथ कुछ नरम होकर वोले—जव कभी अवसर आया है, मैंने क़दम पीछे नहीं हटाया।

रायसाहव भी कुछ नरम हुए—हां, मैं स्वीकार करता हूं कि दो-एक मौक़ों पर आपने जवांमर्दी दिखायी है, लेकिन आपकी निगाह हमेशा अपने लाभ की ओर रही है, प्रजाहित की ओर नहीं। आंखें न निकालिये और न मुंह लाल कीजिये। जव कभी आप मैदान में आये हैं, उसका शुभ परिणाम यही हुआ कि आपके सम्मान और प्रभाव और आमदनी में इज़ाफ़ा हुआ है। अगर मेरे साथ भी आप वही चाल चल रहे हों, तो आपकी ख़ातिर करने को तैयार हूं। रुपये न दूंगा, क्योंकि वह रिश्वत है। आपकी पत्नीजी के लिए कोई आभूषण वनवा दूंगा। है मंजूर? अव मैं आपसे सत्य कहता हूं कि आपको जो संवाद मिला, वह ग़लत है, मगर यह भी कह देना चाहता हूं कि अपने और सभी भाइयों की तरह मैं भी असामियों से जुर्माना लेता हूं, और साल में दस-पांच हज़ार रुपये मेरे हाथ लग जाते हैं, और अगर आप मेरे मुंह से यह कौर छीनना चाहेंगे, तो आप घाटे में रहेंगे। आप भी संसार में सुख से रहना चाहते हैं, मैं भी चाहता हूं। इससे क्या फ़ायदा कि आप न्याय और कर्तव्य का ढोंग रचकर मुझे भी ज़ेरवार करें, ख़ुद भी ज़ेरवार हों। दिल की वात कहिये। मैं आपका वैरी नहीं हूं। आपके साथ कितनी ही वार एक चौके में, एक मेज़ पर खा चुका हूं। मैं यह भी जानता हूं कि आप तकलीफ़ में हैं। आपकी हालत शायद मेरी हालत से भी ख़राव है। हां, अगर आपने हरिश्चन्द्र वनने की क़सम खा ली है, तो आपकी ख़ुशी। मैं चलता हूं।

रायसाहव कुरसी से उठ खड़े हुए। ओंकारनाथ ने उनका हाथ पकड़कर सन्धिभाव से कहा—नहीं-नहीं, अभी आपको वैठना पड़ेगा। मैं अपनी पोज़ीशन साफ़ कर देना चाहता हूं। आपने मेरे साथ जो सलूक़ किये हैं, उनके लिए मैं आपका आभारी हूं, लेकिन यहां सिद्धान्त की वात आ गयी है और आप जानते हैं, सिद्धान्त प्राणों से भी प्यारे होते हैं।

रायसाहब कुर्सी पर बैठकर ज़रा मीठे स्वर में बोले—अच्छा भाई, जो चाहे लिखो। मैं तुम्हारे सिद्धान्त को तोड़ना नहीं चाहता। और तो क्या होगा, बदनामी होगी। हां, कहां तक नाम के पीछे-पीछे मरूं? कौन ऐसा ताल्लुकेदार है, जो असामियों को थोड़ा-बहुत नहीं सताता? कुत्ता हड्डी की रखवाली करे, तो खाये क्या? मैं इतना ही कर सकता हूं कि आगे आपको इस तरह की कोई शिकायत न मिलेगी। अगर आपको मुझ पर कुछ विश्वास है, तो इस बार क्षमा कीजिये। किसी दूसरे सम्पादक से मैं इस तरह की खुशामद न करता। उसे सरे बाज़ार पिटवाता, लेकिन मुझसे आपकी दोस्ती है, इसलिए दबना ही पड़ेगा। यह समाचार-पत्रों का युग है। सरकार तक उनसे डरती है, मेरी हस्ती क्या? आप जिसे चाहें, बना दें। खैर, यह झगड़ा ख़त्म कीजिये। कहिये, आजकल पत्र की क्या दशा है? कुछ ग्राहक बढ़े?

ओंकारनाथ ने अनिच्छा के भाव से कहा—किसी-न-किसी तरह काम चल जाता है और वर्तमान परिस्थिति में मैं इससे अधिक आशा नहीं रखता। मैं इस तरफ़ धन और भोग की लालसा लेकर नहीं आया था, इसलिए मुझे शिकायत नहीं है। मैं जनता की सेवा करने आया था और वह यथाशक्ति किये जाता हूं। राष्ट्र का कल्याण हो, यही मेरी कामना है। एक व्यक्ति के सुख-दुःख का कोई मूल्य नहीं।

रायसाहब ने ज़रा और सहृदय होकर कहा—यह सब ठीक है भाई साहब, लेकिन सेवा करने के लिए भी जीना ज़रूरी है। आर्थिक चिन्ताओं में आप एकाग्रचित्त होकर सेवा भी तो नहीं कर सकते। क्या ग्राहक-संख्या बिलकुल नहीं बढ़ रही है?

'बात यह है कि मैं अपने पत्र का आदर्श गिराना नहीं चाहता, अगर मैं आज सिनेमा-स्टारों के चित्र और चरित्र छापने लगूं, तो मेरे ग्राहक बढ़ सकते हैं, लेकिन अपनी तो वह नीति नहीं और भी कितने ही ऐसे हथकण्डे हैं, जिनसे पत्रों द्वारा धन कमाया जा सकता है, लेकिन मैं उन्हें गर्हित समझता हूं।'

'इसी का यह फल है कि आज आपका इतना सम्मान है। मैं एक प्रस्ताव करना चाहता हूं। मालूम नहीं, आप उसे स्वीकार करेंगे या नहीं। आप मेरी ओर से सौ आदमियों के नाम फ्री जारी कर दीजिये। चन्दा मैं दे दूंगा।'

ओंकारनाथ ने कृतज्ञता से सिर झुकाकर कहा—मैं धन्यवाद के साथ आपका दान स्वीकार करता हूं। खेद है कि पत्रों की ओर से जनता कितनी उदासीन है! स्कूल और कालिजों और मन्दिरों के लिए धन की कमी नहीं है, पर आज तक एक भी ऐसा दानी न निकला, जो पत्रों के प्रचार के लिए दान देता, हालांकि जन-शिक्षा का उद्देश्य जितने कम ख़र्च में पत्रों से पूरा हो सकता है, और किसी तरह नहीं हो सकता। जैसे शिक्षालयों को संस्थाओं द्वारा सहायता मिला करती है, ऐसे ही अगर पत्रकारों को मिलने लगे, तो इन बेचारों को अपना जितना समय और स्थान विज्ञापनों की भेंट करना पड़ता है, वह क्यों करना पड़े? मैं आपका बड़ा अनुगृहीत हूं।

रायसाहब विदा हो गये। ओंकारनाथ के मुख पर प्रसन्नता की झलक न थी। रायसाहब ने किसी तरह की शर्त न की थी, कोई बन्धन न लगाया था, पर ओंकारनाथ आज इतनी करारी फटकार पाकर भी इस दान को अस्वीकार न कर सके। परिस्थिति ऐसी आ पड़ी थी कि उन्हें उबरने का कोई उपाय ही न सूझ रहा था। प्रेस के कर्मचारियों का तीन महीने का वेतन बाक़ी पड़ा हुआ था। काग़ज़वाले के एक हज़ार से ऊपर आ रहे थे। यही क्या कम था कि उन्हें हाथ नहीं फैलाना पड़ा।

उनकी स्त्री गोमती ने आकर विद्रोह के स्वर में कहा—क्या अभी भोजन का समय नहीं आया या यह भी कोई नियम है कि जब तक एक न बज जाये, जगह से न उठो? कब तक कोई चूल्हा अगोरता रहे?

ओंकारनाथ ने दुखी आंखों से पत्नी की ओर देखा। गोमती का विद्रोह उड़ गया। वह उनकी

कठिनाइयों को समझती थी। दूसरी महिलाओं के वस्त्राभूषण देखकर कभी-कभी उसके मन में विद्रोह के भाव जाग उठते थे और वह पति को दो-चार जली-कटी सुना जाती थी, पर वास्तव में यह क्रोध उनके प्रति नहीं, अपने दुर्भाग्य के प्रति था, और इसकी थोड़ी-सी आंच अनायास ही ओंकारनाथ तक पहुंच जाती थी। वह उनका तपस्वी जीवन देखकर मन में कुढ़ती थी और उनसे सहानुभूति भी रखती थी। बस, उन्हें थोड़ा-सा सनकी समझती थी। उनका उदास मुंह देखकर पूछा—क्यों उदास हो, पेट में कुछ गड़वड़ है क्या?

ओंकारनाथ को मुस्कराना पड़ा—कौन उदास है, मैं? मुझे तो आज जितनी खुशी है, उतनी अपने विवाह के दिन भी न हुई थी। आज सबेरे पन्द्रह सौ की बोहनी हुई। किसी भाग्यवान् का मुंह देखा था।

गोमती को विश्वास न आया, बोली—झूठे हो। तुम्हें पन्द्रह सौ कहां मिल जाते हैं? हां, पन्द्रह रुपये कहो, मान लेती हूं।

'नहीं-नहीं, तुम्हारे सिर की क़सम, पन्द्रह सौ मारे। अभी रायसाहब आये थे। ग्राहकों का चन्दा अपनी तरफ़ से देने का वचन दे गये हैं।'

गोमती का चेहरा उतर गया—तो मिल चुके।

'नहीं, रायसाहब वादे के पक्के हैं।'

'मैंने किसी ताल्लुक़ेदार को वादे का पक्का देखा ही नहीं। दादा एक ताल्लुक़ेदार के नौकर थे। साल-साल भर तलव नहीं मिलती थी। उसे छोड़कर दूसरे की नौकरी की। उसने दो साल तक एक पाई न दी। एक बार दादा गरम पड़े, तो मारकर भगा दिया। इनके वादों का कोई करार नहीं।'

'मैं आज ही विल भेजता हूं।'

'भेजा करो। कह देंगे, कल आना। कल अपने इलाक़े पर चले जायेंगे, तीन महीने में लौटेंगे।'

ओंकारनाथ संशय में पड़ गये। ठीक तो है, कहीं रायसाहब पीछे से मुकर गये, तो वह क्या कर लेंगे? फिर भी दिल मज़बूत करके कहा—ऐसा नहीं हो सकता। कम-से-कम रायसाहब को मैं इतना धोखेवाज़ नहीं समझता। मेरा उनके यहां कुछ बाक़ी नहीं है।

गोमती ने उसी सन्देह के भाव से कहा—इसी से तो मैं तुम्हें बुद्धू कहती हूं। ज़रा किसी ने सहानुभूति दिखायी और तुम फूल उठे। मोटे रईस हैं। इनके पेट में ऐसे कितने वादे हज़म हो सकते हैं। जितने वादे करते हैं, अगर सब पूरा करने लगें, तो भीख मांगने की नौवत आ जाये। मेरे गांव के ठाकुर साहब तो दो-दो तीन-तीन साल तक बनियों का हिसाब न करते थे। नौकरों का हिसाब तो नाम के लिए देते थे। साल-भर काम लिया, जब नौकर ने वेतन मांगा, मारकर निकाल दिया। कई वार इसी नादिहेन्दी में स्कूल से उनके लड़कों के नाम कट गये। आख़िर उन्होंने लड़कों को घर बुला लिया। एक बार रेल का टिकट उधार मांगा था। यह रायसहब भी तो उन्हीं के भाईवन्द हैं। चलो, भोजन करो और चक्की पीसो, जो तुम्हारे भाग्य में लिखा है। यह समझ लो कि ये बड़े आदमी तुम्हें फटकारते रहें, वही अच्छा है। यह तुम्हें एक पैसा देंगे, तो उसका चौगुना अपने असामियों से वसूल कर लेंगे। अभी उनके विषय में जो कुछ चाहते हो, लिखते हो। तव तो ठकुरसोहाती ही करनी पड़ेगी।

पण्डितजी भोजन कर रहे थे, पर कौर मुंह में फंसा हुआ जान पड़ता था। आख़िर विना दिल का वोझ हलका किये, भोजन करना कठिन हो गया। बोले—अगर रुपये न दिये, तो ऐसी ख़वर लूंगा कि याद करेंगे। उनकी चोटी मेरे हाथ में है। गांव के लोग झूठी खवर नहीं दे सकते। सच्ची ख़वर देते, तो उनकी जान निकलती है, झूठी ख़वर क्या देंगे? रायसाहब के खिलाफ़ एक रिपोर्ट मेरे पास आयी है। छाप दूं, तो वचा को घर से निकलना मुश्किल हो जाये। मुझे यह ख़ैरात नहीं दे रहे हैं, वड़े दवसट में पड़कर इस राह पर आये हैं। पहले धमकियां दिखा रहे थे। जव देखा, इससे काम न चलेगा, तो यह चारा फेंका। मैंने भी सोचा, एक इनके ठीक हो जाने से तो देश से अन्याय मिटा जाता

नहीं, फिर क्यों न इस दान को स्वीकार कर लूं? मैं अपने आदर्श से गिर गया हूं ज़रूर, लेकिन इतने पर भी रायसाहब ने दग़ा की, तो मैं भी शठता पर उतर जाऊंगा। जो ग़रीबों को लूटता है, उसको लूटने के लिए अपनी आत्मा को बहुत समझाना न पड़ेगा।

:17:

गांव में ख़बर फैल गयी कि रायसाहब ने पञ्चों को बुलाकर खूब डांटा और इन लोगों ने जितने रुपये वसूल किये थे, वह सब इनके पेट से निकाल लिये। वह तो इन लोगों को जेहल भेजवा रहे थे, लेकिन इन लोगों ने हाथ-पांव जोड़े, थूककर चाटा, तब जाके उन्होंने छोड़ा। धनिया का कलेजा शीतल हो गया, गांव में घूम-घूमकर पञ्चों को लज्जित करती फिरती—आदमी न सुने गरीबों की पुकार, भगवान् तो सुनते हैं। लोगों ने सोचा था, इनसे डांड़ लेकर मजे से फुलौड़ियां खायें। भगवान् ने ऐसा तमाचा लगाया कि फुलौड़ियां मुंह से निकल पड़ीं। एक-एक के दो-दो भरने पड़े। अब चाटो मेरा मकान लेकर।

मगर बैलों के बिना खेती कैसे हो? गांवों में बोआई शुरू हो गयी। कार्तिक के महीने में किसान के बैल मर जायें, तो उसके दोनों हाथ कट जाते हैं। होरी के दोनों हाथ कट गये थे। और सब लोगों के खेतों में हल चल रहे थे। बीज डाले जा रहे थे। कहीं-कहीं गीत की तानें सुनाई देती थीं। होरी के खेत किसी अनाथ अबला के घर की भांति सूने पड़े थे। पुनिया के पास भी गोई थी, शोभा के पास भी गोई थी, मगर उन्हें अपने खेतों की बुआई से कहां फुर्सत कि होरी की बुआई करें। होरी दिन-भर इधर-उधर मारा-मारा फिरता था। कहीं इसके खेत में जा बैठता, कहीं उसकी बोआई करा देता। इस तरह कुछ अनाज मिल जाता। धनिया, रूपा, सोना सभी दूसरों की बोआई में लगी रहती थीं। जब तक बुआई रही, पेट की रोटियां मिलती गयीं, विशेष कष्ट न हुआ। मानसिक वेदना तो अवश्य होती थी, पर खाने-भर को मिल जाता था। रात को नित्य स्त्री-पुरुष में थोड़ी-सी लड़ाई हो जाती थी।

यहां तक कि कार्तिक का महीना बीत गया और गांव में मज़दूरी मिलनी भी कठिन हो गयी। अब सारा दारमदार ऊख पर था, जो खेतों में खड़ी थी।

रात का समय था। सर्दी खूब पड़ रही थी। होरी के घर में आज कुछ खाने को न था। दिन को तो थोड़ा-सा भुना हुआ मटर मिल गया था, पर इस वक्त चूल्हा जलाने का कोई डौल न था और रूपा भूख के मारे व्याकुल थी और द्वार पर कौड़े के सामने बैठी रो रही थी। घर में जब अनाज का एक दाना भी नहीं है, तो क्या मांगे, क्या कहे?

जब भूख न सही गयी, तो वह आग मांगने के बहाने पुनिया के घर गयी। पुनिया बाजरे की रोटियां और बथुए का साग पका रही थी। सुगन्ध से रूपा के मुंह में पानी भर आया।

पुनिया ने पूछा—क्या अभी तेरे घर आग नहीं जली, क्या री?

रूपा ने दीनता से कहा—आज तो घर में कुछ था ही नहीं, आग कहां से जलती?

'तो फिर आग काहे को मांगने आयी है?'

'दादा तमाखू पियेंगे।'

पुनिया ने उपले की आग उसकी ओर फेंक दी, मगर रूपा ने आग उठायी नहीं और समीप जाकर बोली—तुम्हारी रोटियां महक रही हैं काकी! मुझे बाजरे की रोटियां बड़ी अच्छी लगती हैं।

पुनिया ने मुस्कराकर पूछा—खायेगी?

'अम्मां डांटेंगी।'

'अम्मां से कौन कहने जायेगा?'

रूपा ने पेट-भर रोटियां खायीं और जूठे मुंह भागी हुई घर चली गयी।

होरी मन-मारे वैठा था कि पण्डित दातादीन ने जाकर पुकारा। होरी की छाती धड़कने लगी। क्या कोई नयी विपत्ति आने वाली है? आकर उनके चरण छुए और कौड़े के सामने उनके लिए मांची रख दी।

दातादीन ने वैठते हुए अनुग्रह भाव से कहा—अवकी तो तुम्हारे खेत परती पड़ गये होरी! तुमने गांव में किसी से कुछ कहा नहीं, नहीं भोला की मजाल थी कि तुम्हारे द्वार से वैल खोल ले जाता। यहीं लहास गिर जाती। मैं तुमसे जनेऊ हाथ में लेकर कहता हूं होरी, मैंने तुम्हारे ऊपर डांड़ न लगाया था। धनिया मुझे नाहक वदनाम करती-फिरती है। यह लाला पटेश्वरी और झिंगुरीसिंह की कारस्तानी है। मैं तो लोगों के कहने से पञ्चायत में वैठ भर गया था। वह लोग तो और कड़ा दण्ड लगा रहे थे। मैंने कह-सुनके कम कराया, मगर अव सव जने सिर पर हाथ धरे रो रहे हैं। समझे थे, यहां उन्हीं का राज है। यह न जानते थे कि गांव का राजा कोई और है। तो अव अपने खेतों की वोआई का क्या इन्तजाम कर रहे हो?

होरी ने करुण-कण्ठ से कहा—क्या वताऊं महाराज, परती रहेंगे।

'परती रहेंगे? यह तो वड़ा अनर्थ होगा!'

'भगवान् की यही इच्छा है, तो अपना क्या वस?'

'मेरे देखते तुम्हारे खेत कैसे परती रहेंगे? कल मैं तुम्हारी वोआई करा दूंगा। अभी खेत में कुछ तरी है। उपज दस दिन पीछे होगी, इसके सिवा और कोई वात नहीं। हमारा-तुम्हारा आधा साझा रहेगा। इसमें न तुम्हें कोई टोटा है, न मुझे। मैंने आज वैठे-वैठे सोचा, तो चित्त वड़ा दुखी हुआ कि जुते-जुताये खेत परती रहे जाते हैं।'

होरी सोच में पड़ गया। चौमासे-भर इन खेतों में खाद डाली, जोता और आज केवल वोआई के लिए आधी फ़सल देनी पड़ रही है। उस पर एहसान कैसा जता रहे हैं, लेकिन इससे तो अच्छा यही है कि खेत परती पड़ जायें। और कुछ न मिलेगा, लगान तो निकल ही आयेगा। नहीं, अवकी वेवाक़ी न हुई, तो वेदख़ली आयी धरी है।

उसने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

दातादीन प्रसन्न होकर वोले—तो चलो, मैं अभी वीज तौल दूं, जिसमें सवेरे का झञ्झट न रहे, रोटी तो खा ली है न?

होरी ने लजाते हुए आज घर में चूल्हा न जलने की कथा कही।

दातादीन ने मीठे उलाहने के भाव से कहा—अरे! तुम्हारे घर में चूल्हा नहीं जला और तुमने मुझसे कहा भी नहीं! हम तुम्हारे वैरी तो नहीं थे। इसी वात पर तुमसे जी कुढ़ता है। अरे भले आदमी, इसमें लाज-सरम की कौन वात है? हम सव एक ही तो हैं। तुम सूद्र हुए तो क्या, हम व्राह्मन हुए तो क्या, हैं तो सव एक ही घर के। दिन सवके वरावर नहीं जाते। कौन जाने, कल मेरे ही ऊपर कोई संकट आ पड़े, तो मैं तुमसे अपना दुःख न कहूंगा, तो किससे कहूंगा? अच्छा, जो हुआ, चलो, वेंग ही के साथ तुम्हें मन-दो मन अनाज खाने को भी तौल दूंगा।

आध घण्टे में होरी मन-भर जौ का टोकरा सिर पर रखे आया और घर की चक्की चलने लगी। धनिया रोती थी और साहस के साथ जौ पीसती थी। भगवान् उसे किस कुकर्म का यह दण्ड दे रहे हैं!

दूसरे दिन से वोआई शुरू हुई। होरी का सारा परिवार इस तरह काम में जुटा हुआ था, मानो सव कुछ अपना ही है। कई दिन के वाद सिंचाई भी इसी तरह हुई। दातादीन को सेंत-मेंत के मजूर मिल गये। अव कभी-कभी उनका लड़का मातादीन भी घर में आने लगा। जवान आदमी था, वड़ा रसिक और वातचीत का मीठा। दातादीन जो कुछ छीन-झपटकर लाते थे, वह उसे भांग-वूटी में उड़ाता था। एक चमारिन से उसकी आशनाई हो गयी थी, इसलिए अभी तक व्याह न हुआ था। वह रहती थी, पर सारा गांव यह रहस्य जानते हुए भी कुछ न वोल सकता था। हमारा धर्म है हमारा

नहीं, फिर क्यों न इस दान को स्वीकार कर लूं? मैं अपने आदर्श से गिर गया हूं ज़रूर, लेकिन इतने पर भी रायसाहब ने दग़ा की, तो मैं भी शठता पर उतर जाऊंगा। जो ग़रीबों को लूटता है, उसको लूटने के लिए अपनी आत्मा को बहुत समझाना न पड़ेगा।

:17:

गांव में ख़बर फैल गयी कि रायसाहब ने पञ्चों को बुलाकर खूब डांटा और इन लोगों ने जितने रुपये वसूल किये थे, वह सब इनके पेट से निकाल लिये। वह तो इन लोगों को जेहल भेजवा रहे थे, लेकिन इन लोगों ने हाथ-पांव जोड़े, थूककर चाटा, तब जाके उन्होंने छोड़ा। धनिया का कलेजा शीतल हो गया, गांव में घूम-घूमकर पञ्चों को लज्जित करती फिरती—आदमी न सुने गरीबों की पुकार, भगवान् तो सुनते हैं। लोगों ने सोचा था, इनसे डांड़ लेकर मजे से फुलौड़ियां खायें। भगवान् ने ऐसा तमाचा लगाया कि फुलौड़ियां मुंह से निकल पड़ीं। एक-एक के दो-दो भरने पड़े। अब चाटो मेरा मकान लेकर।

मगर बैलों के बिना खेती कैसे हो? गांवों में बोआई शुरू हो गयी। कार्तिक के महीने में किसान के बैल मर जायें, तो उसके दोनों हाथ कट जाते हैं। होरी के दोनों हाथ कट गये थे। और सब लोगों के खेतों में हल चल रहे थे। बीज डाले जा रहे थे। कहीं-कहीं गीत की तानें सुनाई देती थीं। होरी के खेत किसी अनाथ अबला के घर की भांति सूने पड़े थे। पुनिया के पास भी गोई थी, शोभा के पास भी गोई थी, मगर उन्हें अपने खेतों की बुआई से कहां फ़ुर्सत कि होरी की बुआई करें। होरी दिन-भर इधर-उधर मारा-मारा फिरता था। कहीं इसके खेत में जा बैठता, कहीं उसकी बोआई करा देता। इस तरह कुछ अनाज मिल जाता। धनिया, रूपा, सोना सभी दूसरों की बोआई में लगी रहती थीं। जब तक बुआई रही, पेट की रोटियां मिलती गयीं, विशेष कष्ट न हुआ। मानसिक वेदना तो अवश्य होती थी, पर खाने-भर को मिल जाता था। रात को नित्य स्त्री-पुरुष में थोड़ी-सी लड़ाई हो जाती थी।

यहां तक कि कार्तिक का महीना बीत गया और गांव में मज़दूरी मिलनी भी कठिन हो गयी। अब सारा दारमदार ऊख पर था, जो खेतों में खड़ी थी।

रात का समय था। सर्दी खूब पड़ रही थी। होरी के घर में आज कुछ खाने को न था। दिन को तो थोड़ा-सा भुना हुआ मटर मिल गया था, पर इस वक्त चूल्हा जलाने का कोई डौल न था और रूपा भूख के मारे व्याकुल थी और द्वार पर कौड़े के सामने बैठी रो रही थी। घर में जब अनाज का एक दाना भी नहीं है, तो क्या मांगे, क्या कहे?

जब भूख न सही गयी, तो वह आग मांगने के बहाने पुनिया के घर गयी। पुनिया बाजरे की रोटियां और बथुए का साग पका रही थी। सुगन्ध से रूपा के मुंह में पानी भर आया।

पुनिया ने पूछा—क्या अभी तेरे घर आग नहीं जली, क्या री?

रूपा ने दीनता से कहा—आज तो घर में कुछ था ही नहीं, आग कहां से जलती?

'तो फिर आग काहे को मांगने आयी है?'

'दादा तमाखू पियेंगे।'

पुनिया ने उपले की आग उसकी ओर फेंक दी, मगर रूपा ने आग उठायी नहीं और समीप जाकर बोली—तुम्हारी रोटियां महक रही हैं काकी! मुझे बाजरे की रोटियां बड़ी अच्छी लगती हैं।

पुनिया ने मुस्कराकर पूछा—खायेगी?

'अम्मां डांटेंगी।'

'अम्मां से कौन कहने जायेगा?'

रूपा ने पेट-भर रोटियां खायीं और जूठे मुंह भागी हुई घर चली गयी।

होरी मन-मारे बैठा था कि पण्डित दातादीन ने जाकर पुकारा। होरी की छाती धड़कने लगी। क्या कोई नयी विपत्ति आने वाली है? आकर उनके चरण छुए और कौड़े के सामने उनके लिए मांची रख दी।

दातादीन ने बैठते हुए अनुग्रह भाव से कहा—अबकी तो तुम्हारे खेत परती पड़ गये होरी! तुमने गांव में किसी से कुछ कहा नहीं, नहीं भोला की मजाल थी कि तुम्हारे द्वार से बैल खोल ले जाता। यहीं लहास गिर जाती। मैं तुमसे जनेऊ हाथ में लेकर कहता हूं होरी, मैंने तुम्हारे ऊपर डांड़ न लगाया था। धनिया मुझे नाहक बदनाम करती-फिरती है। यह लाला पटेश्वरी और झिंगुरीसिंह की कारस्तानी है। मैं तो लोगों के कहने से पञ्चायत में बैठ भर गया था। वह लोग तो और कड़ा दण्ड लगा रहे थे। मैंने कह-सुनके कम कराया, मगर अब सब जने सिर पर हाथ धरे रो रहे हैं। समझे थे, यहां उन्हीं का राज है। यह न जानते थे कि गांव का राजा कोई और है। तो अब अपने खेतों की बोआई का क्या इन्तजाम कर रहे हो?

होरी ने करुण-कण्ठ से कहा—क्या बताऊं महाराज, परती रहेंगे।

'परती रहेंगे? यह तो बड़ा अनर्थ होगा!'

'भगवान् की यही इच्छा है, तो अपना क्या बस?'

'मेरे देखते तुम्हारे खेत कैसे परती रहेंगे? कल मैं तुम्हारी बोआई करा दूंगा। अभी खेत में कुछ तरी है। उपज दस दिन पीछे होगी, इसके सिवा और कोई बात नहीं। हमारा-तुम्हारा आधा साझा रहेगा। इसमें न तुम्हें कोई टोटा है, न मुझे। मैंने आज बैठे-बैठे सोचा, तो चित्त बड़ा दुखी हुआ कि जुते-जुताये खेत परती रहे जाते हैं।'

होरी सोच में पड़ गया। चौमासे-भर इन खेतों में खाद डाली, जोता और आज केवल बोआई के लिए आधी फ़सल देनी पड़ रही है। उस पर एहसान कैसा जता रहे हैं, लेकिन इससे तो अच्छा यही है कि खेत परती पड़ जायें। और कुछ न मिलेगा, लगान तो निकल ही आयेगा। नहीं, अबकी बेबाक़ी न हुई, तो बेदख़ली आयी धरी है।

उसने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

दातादीन प्रसन्न होकर बोले—तो चलो, मैं अभी बीज तौल दूं, जिसमें सबेरे का झञ्झट न रहे, रोटी तो खा ली है न?

होरी ने लजाते हुए आज घर में चूल्हा न जलने की कथा कही।

दातादीन ने मीठे उलाहने के भाव से कहा—अरे! तुम्हारे घर में चूल्हा नहीं जला और तुमने मुझसे कहा भी नहीं! हम तुम्हारे बैरी तो नहीं थे। इसी बात पर तुमसे जी कुढ़ता है। अरे भले आदमी, इसमें लाज-सरम की कौन बात है? हम सब एक ही तो हैं। तुम सूद्र हुए तो क्या, हम ब्राह्मन हुए तो क्या, हैं तो सब एक ही घर के। दिन सबके बराबर नहीं जाते। कौन जाने, कल मेरे ही ऊपर कोई संकट आ पड़े, तो मैं तुमसे अपना दुःख न कहूंगा, तो किससे कहूंगा? अच्छा, जो हुआ, चलो, बेंग ही के साथ तुम्हें मन-दो मन अनाज खाने को भी तौल दूंगा।

आध घण्टे में होरी मन-भर जौ का टोकरा सिर पर रखे आया और घर की चक्की चलने लगी। धनिया रोती थी और साहस के साथ जौ पीसती थी। भगवान् उसे किस कुकर्म का यह दण्ड दे रहे हैं!

दूसरे दिन से बोआई शुरू हुई। होरी का सारा परिवार इस तरह काम में जुटा हुआ था, मानो सब कुछ अपना ही है। कई दिन के बाद सिंचाई भी इसी तरह हुई। दातादीन को सेंत-मेंत के मजूर मिल गये। अब कभी-कभी उनका लड़का मातादीन भी घर में आने लगा। जवान आदमी था, बड़ा रसिक और बातचीत का मीठा। दातादीन जो कुछ छीन-झपटकर लाते थे, वह उसे भांग-बूटी में उड़ाता था। एक चमारिन से उसकी आशनाई हो गयी थी, इसलिए अभी तक ब्याह न हुआ था। वह रहती थी, पर सारा गांव यह रहस्य जानते हुए भी कुछ न बोल सकता था। हमारा धर्म है हमारा

भोजन। भोजन पवित्र रहे, फिर हमारे धर्म पर आंच नहीं आ सकती। रोटियां ढाल बनकर अधर्म से हमारी रक्षा करती हैं।

अब साझे की खेती होने से मातादीन को झुनिया से बातचीत करने का अवसर मिलने लगा। वह ऐसे दांव से आता, जब घर में झुनिया के सिवा और कोई न होता, कभी किसी बहाने से, कभी किसी बहाने से। झुनिया रूपवती न थी, लेकिन जवान थी और उसकी चमारिन प्रेमिका से अच्छी थी। कुछ दिन शहर में रह चुकी थी, पहनना-ओढ़ना, बोलना-चालना जानती थी और लज्जाशील भी थी, जो स्त्री का सबसे बड़ा आकर्षण है। मातादीन कभी-कभी उसके बच्चे को गोद में उठा लेता और प्यार करता। झुनिया निहाल हो जाती थी।

एक दिन उसने झुनिया से कहा—तुम क्या देखकर गोबर के साथ आयीं झूना?

झुनिया ने लजाते हुए कहा—भाग खींच लाया महाराज, और क्या कहूं।

मातादीन दुखी मन से बोला—बड़ा बेवफ़ा आदमी है। तुम जैसी लच्छमी को छोड़कर न जाने कहां मारा-मारा फिर रहा है? चञ्चल सुभाव का आदमी है, इसी से मुझे शंका होती है कि कहीं और न फंस गया हो। ऐसे आदमियों को गोली मार देनी चाहिए। आदमी का धरम है, जिसकी बांह पकड़े उसे निभाये। यह क्या कि एक आदमी की ज़िन्दगी खराब कर दी और दूसरा घर ताकने लगे।

युवती रोने लगी। मातादीन ने इधर-उधर ताककर उसका हाथ पकड़ लिया और समझाने लगा—तुम उसकी क्यों परवा करती हो झूना, चला गया, चला जाने दो। तुम्हारे लिए किस बात की कमी है? रुपये-पैसे, गहना-कपड़ा, जो चाहे मुझसे लो।

झुनिया ने धीरे से हाथ छुड़ा लिया और पीछे हटकर बोली—सब तुम्हारी दया है महाराज! मैं तो कहीं की न रही। घर से भी गयी, यहां से भी गयी। न माया मिली, न राम ही हाथ आये। दुनिया का रंग-ढंग न जानती थी। इसकी मीठी-मीठी बातें सुनकर जाल में फंस गयी।

मातादीन ने गोबर की बुराई करनी शुरू की—वह तो निरा लफंगा है, घर का, न घाट का। जब देखो मां-बाप से लड़ाई। कहीं पैसा पा जाये, चट जुआ खेल डालेगा, चरस और गांजे में उसकी जान बसती थी, सोहदों के साथ घूमना, बहू-बेटियों को छेड़ना, यही उसका काम था। थानेदार साहब बदमाशी में उसका चालान करनेवाले थे, हम लोगों ने बहुत खुशामद की, तब जाकर छोड़ा। दूसरों के खेत-खलिहान से अनाज उड़ा लिया करता। कई बार तो खुद उसी ने पकड़ा था, पर गांव-घर समझकर छोड़ दिया।

सोना ने बाहर आकर कहा—भाभी, अम्मां ने कहा है, आज अनाज निकालकर धूप में डाल दो, नहीं तो चोकर बहुत निकलेगा। पण्डित ने जैसे बखार में पानी डाल दिया हो।

मातादीन ने अपनी सफ़ाई दी—मालूम होता है, तेरे घर बरसात नहीं हुई। चौमासे में लकड़ी तक गीली हो जाती है, अनाज तो अनाज ही है।

यह कहता हुआ वह बाहर चला गया। सोना ने आकर उसका खेल बिगाड़ दिया।

सोना ने झुनिया से पूछा—मातादीन क्या करने आये थे?

झुनिया ने माथा सिकोड़कर कहा—पगहिया मांग रहे थे। मैंने कह दिया, यहां पगहिया नहीं है।

'यह सब बहाना है। बड़ा खराब आदमी है।'

'मुझे तो बड़ा भला आदमी लगता है। क्या खराबी है उसमें?'

'तुम नहीं जानती? सिलिया चमारिन को रखे हुए है।'

'तो इसी से खराब आदमी हो गया?'

'और काहे से आदमी खराब कहा जाता है?'

'तुम्हारे भैया भी तो मुझे लाये हैं। वह भी खराब आदमी हैं?'

सोना ने इसका जवाब न देकर कहा—मेरे घर में फिर कभी आयेगा, तो दुत्कार दूंगी।

'और जो उससे तुम्हारा व्याह हो जाये?'

सोना लजा गयी—तुम तो भाभी, गाली देती हो।

'क्यों, इसमें गाली की क्या बात?'

'मुझसे बोले, तो मुंह झुलस दूं।'

'तो क्या तुम्हारा व्याह किसी देवता से होगा? गांव में ऐसा सुन्दर सजीला जवान दूसरा कौन है?'

'तो तुम चली जाओ उसके साथ, सिलिया से लाख दर्जे अच्छी हो।'

'मैं क्यों चली जाऊं? मैं तो एक के साथ चली आयी। अच्छा है या बुरा!'

'तो मैं भी जिसके साथ व्याह होगा, उसके साथ चली जाऊंगी, अच्छा हो या बुरा।'

'और जो किसी बूढ़े के साथ व्याह हो गया?'

सोना हंसी—मैं उसके लिए नरम-नरम रोटियां पकाऊंगी, उसकी दवाइयां कूटूं-छानूंगी, उसे हाथ पकड़कर उठाऊंगी, जब मर जायेगा, तो मुंह ढांपकर रोऊंगी।

'और जो किसी जवान के साथ हुआ?'

'तब तुम्हारा सिर, हां, नहीं तो।'

'अच्छा बताओ, तुम्हें बूढ़ा अच्छा लगता है कि जवान?'

'जो अपने को चाहे, वही जवान है, न चाहे वही बूढ़ा है।'

'दैव करे, तुम्हारा व्याह किसी बूढ़े से हो जाये, तो देखूं, तुम उसे कैसे चाहती हो। तब मनाओगी, किसी तरह यह निगोड़ा मर जाये, तो किसी जवान को लेकर बैठ जाऊं।'

'मुझे तो उस बूढ़े पर दया आये।'

इस साल इधर एक शक्कर का मिल खुल गया था। उसके कारिन्दे और दलाल गांव-गांव घूमकर किसानों की खड़ी ऊख मोल ले लेते थे। वही मिल था, जो मिस्टर खन्ना ने खोला था। एक दिन उसका कारिन्दा इस गांव में भी आया। किसानों ने जो उससे भाव-ताव किया, तो मालूम हुआ, गुड़ बनाने में कोई बचत नहीं है, जब घर में ऊख पेरकर भी यही दाम मिलता है, तो पेरने की मेहनत क्यों उठायी जाये? सारा गांव ऊख बेचने को तैयार हो गया, अगर कुछ कम भी मिले, तो परवा नहीं। तत्काल तो मिलेगा। किसी को बैल लेना था, किसी को बाक़ी चुकाना था, कोई महाजन से [illegible] छुड़ाना चाहता था। होरी को बैलों की गोई लेनी थी। अबकी ऊख की पैदावार अच्छी न थी, इसलिए यह डर भी था कि माल न पड़ेगा। और जब गुड़ के भाव मिल की चीनी मिलेगी, तो गुड़ [illegible] कौन? सभी ने बयाने ले लिये। होरी को कम-से-कम सौ रुपये की आशा थी। इससे एक [illegible] आ जायेगी, लेकिन महाजनों को क्या करे? दातादीन, मंगरू, दुलारी, झिंगुरीसिंह [illegible] रहे थे। अगर महाजनों को देने लगेगा, तो सौ रुपये सूद-भर को भी न होंगे। कोई [illegible] सूझती थी कि ऊख के रुपये हाथ आ जायें और किसी को ख़बर न हो। जब [illegible] कोई क्या कर लेगा? गाड़ी लदेगी, तो सारा गांव देखेगा ही, तौल पर जो [illegible] मालूम हो जायेंगे। सम्भव है, मंगरू और दातादीन हमारे साथ-साथ रहें। [illegible] उन्होंने गर्दन पकड़ी।

शाम को गिरधर ने पूछा—तुम्हारी ऊख कब तक जायेगी होरी काका?

होरी ने भी झांसा दिया—अभी तो कुछ ठीक नहीं है भाई, तुम [illegible]

गिरधर ने भी झांसा दिया—अभी तो मेरी भी कुछ ठीक नहीं है काका।

और लोग भी इसी तरह की उड़नझाइयां बताते थे, और [illegible] झिंगुरीसिंह के सभी रिनियां थे, और सबकी यही इच्छा थी कि झिंगुरीसिंह के [illegible] पायें, नहीं वह सबका सब हज़म कर जायेगा। और जब दूसरे दिन [illegible]

तो नया कागज़, नया नज़राना, नयी तहरीर। दूसरे दिन शोभा आकर बोला—दादा, कोई ऐसा उपाय करो कि झिंगुरी को हैजा हो जाये। ऐसा गिरे की फिर न उठे।

होरी ने मुस्कराकर कहा—क्यों, उसके बाल-बच्चे नहीं हैं?

'उसके बाल-बच्चों को देखें कि अपने बाल-बच्चों को? वह तो दो-दो मेहरियों को आराम से रखता है, यहां तो एक को रूखी रोटी भी मयस्सर नहीं, सारी जमा ले लेगा। एक पैसा भी घर न लाने देगा।'

'मेरी तो हालत और भी खराब है भाई, अगर रुपये हाथ से निकल गये, तो तबाह हो जाऊंगा। गोई के बिना तो काम न चलेगा।'

'अभी तो दो-तीन दिन ऊख ढोते लगेंगे। ज्यों ही सारी ऊख पहुंच जाये, जमादार से कहें कि भैया कुछ ले ले, मगर ऊख चटपट तौल दे, दाम पीछे देना। इधर झिंगुरी से कह देंगे, अभी रुपये नहीं मिले।'

होरी ने विचार करके कहा—झिंगुरीसिंह हमसे-तुमसे कई गुना चतुर है शोभा! जाकर मुनीम से मिलेगा और उसी से रुपये ले लेगा। हम-तुम ताकते रह जायेंगे। जिस खन्ना बाबू का मिल है, उन्हीं खन्ना बाबू की महाजनी कोठी भी है। दोनों एक हैं।

शोभा निराश होकर बोला—न जाने इन महाजनों से भी कभी गला छूटेगा कि नहीं?

होरी बोला—इस जनम में तो कोई आशा नहीं है भाई! हम राज नहीं चाहते, भोग-विलास नहीं चाहते, खाली मोटा-झोटा पहनना, और मोटा-झोटा खाना और मरजाद के साथ रहना चाहते हैं। वह भी नहीं सधता।

शोभा ने धूर्तता के साथ कहा—मैं तो दादा, इन सबों को अबकी चकमा दूंगा। जमादार को कुछ दे-दिलाकर इस बात पर राजी कर लूंगा कि रुपये के लिए हमें खूब दौड़ायें। झिंगुरी कहां तक दौड़ेंगे?

होरी ने हंसकर कहा—यह सब कुछ न होगा भैया! कुशल इसी में है कि झिंगुरीसिंह के हाथ-पांव जोड़ो। हम जाल में फंसे हुए हैं। जितना ही फड़फड़ाओगे, उतना ही और जकड़ते जाओगे।

'तुम तो दादा, बूढ़ों की-सी बातें कर रहे हो। कठघरे में फंसे बैठे रहना, तो कायरता है। फन्दा और जकड़ जाये, बला से, पर गला छुड़ाने के लिए जोर तो लगाना ही पड़ेगा। यही तो होगा झिंगुरी घर-द्वार नीलाम करा लेंगे, करा लें नीलाम। मैं तो चाहता हूं कि हमें कोई रुपये न दे, हमें भूखों मरने दे, लातें खाने दे, एक पैसा भी उधार न दे, लेकिन पैसा वाले उधार न दें, तो सूद कहां से पायें? एक हमारे ऊपर दावा करता है, तो दूसरा हमें कुछ कम सूद पर रुपये उधार देकर अपने जाल में फंसा लेता है। मैं तो उसी दिन रुपये लेने जाऊंगा, जिस दिन झिंगुरी कहीं चला गया होगा।

होरी का मन भी विचलित हुआ—हां, यह ठीक है।

'ऊख तुलवा देंगे। रुपये दांव-घात देखकर ले आयेंगे।'

'बस-बस, यही चाल चलो।'

दूसरे दिन प्रातःकाल गांव के कई आदमियों ने ऊख काटनी शुरू की। होरी भी अपने खेत में गंड़ासा लेकर पहुंचा। उधर से शोभा भी उसकी मदद को आ गया। पुनिया, झुनिया, धनिया, सोना सभी खेत में जा पहुंचीं। कोई ऊख काटता था, कोई छीलता था, कोई पूले बांधता था। महाजनों ने जो ऊख कटते देखी, तो पेट में चूहे दौड़े। एक तरफ़ से दुलारी दौड़ी, दूसरी तरफ़ से मंगरू साह, तीसरी ओर से मातादीन और पटेश्वरी और झिंगुरी के पियादे। दुलारी हाथ-पांव में मोटे-मोटे चांदी के कड़े पहने, कानों में सोने के झुमके, आंखों में काजल लगाये, बूढ़े यौवन को रंगे-रंगाये आकर बोली—पहले मेरे रुपये दे दो, तब ऊख काटने दूंगी। मैं जितनी ही गम खाती हूं, उतना ही तुम शेर होते हो। दो साल से एक धेला सूद नहीं दिया, पचास तो मेरे सूद के होते हैं।

होरी ने घिघियाकर कहा—भाभी, ऊख काट लेने दो, इनके रुपये मिलते हैं, तो जितना हो

सकेगा, तुमको भी दूंगा। न गांव छोड़कर भागा जाता हूं, न इतनी जल्द मौत ही आयी जाती है। खेत में खड़ी ऊख तो रुपये न देगी?

दुलारी ने उसके हाथ से गंड़ासा छीनकर कहा—नीयत इतनी खराव हो गयी है तुम लोगों की, तभी तो वरक्कत नहीं होती।

आज पांच साल हुए, होरी ने दुलारी से तीस रुपये लिये थे। तीन साल में उसके सौ रुपये हो गये, तव स्टाम्प लिखा गया। दो साल में उस पर पचास रुपये सूद चढ़ गया था।

होरी वोला—सहुआइन, नीयत तो कभी खराव नहीं की, और भगवान् चाहेंगे, तो पाई-पाई चुका दूंगा। हां, आजकल तंग हो गया हूं, जो चाहे कह लो।

सहुआइन को जाते देर नहीं हुई कि मंगरू साह आ पहुंचे। काला रंग, तोंद कमर के नीचे लटकती हुई, दो वड़े-वड़े दांत सामने, जैसे काट खाने को निकले हुए, सिर पर टोपी, गले में चादर, उम्र अभी पचास से ज्यादा नहीं, पर लाठी के सहारे चलते थे। गठिया का मरज़ हो गया था। खांसी भी आती थी। लाठी टेककर खड़े हो गये, और होरी को डांट वतायी—पहले हमारे रुपये दे दो होरी, तव ऊख काटो। हमने रुपये उधार दिये थे, खैरात नहीं थे। तीन-तीन साल हो गये, न सूद, न व्याज, मगर यह न समझना कि तुम मेरे रुपये हजम कर जाओगे। मैं तुम्हारे मुर्दे से भी वसूल कर लूंगा।

शोभा मसखरा था। वोला—तव काहे को घवराते हो साहजी, इनके मुर्दे ही से वसूल कर लेना। नहीं, एक-दो साल के आगे पीछे दोनों ही सरग में पहुंचोगे। वहीं भगवान् के सामने अपना हिसाव चुका लेना।

मंगरू ने शोभा को वहुत वुरा-भला कहा—जमामार, वेईमान इत्यादि। लेने की वेर तो दुम हिलाते हो, जव देने की वारी आती है, तो गुर्राते हो। घर विकवा लूंगा, वैल-वछिये नीलाम करा लूंगा।

शोभा ने फिर छेड़ा—अच्छा, ईमान से वताओ साह, कितने रुपये दिये थे, जिसके अव तीन सौ रुपये हो गये हैं?

'जव तुम साल के साल सूद न दोगे, तो आप ही वढ़ेंगे।'

'पहले-पहल कितने रुपये दिये थे तुमने? पचास ही तो।'

'कितने दिन हुए, यह भी तो देख।'

'पांच-छः साल हुए होंगे।'

'दस साल हो गये पूरे, ग्यारहवां जा रहा है।'

'पचास रुपये के तीन सौ रुपये लेते तुम्हें जरा भी सरम नहीं आती?'

'सरम कैसी, रुपये दिये हैं कि खैरात मांगते हैं।'

होरी ने इन्हें भी चिरौरी-विनती करके विदा किया। दातादीन ने होरी के साझे में खेती की थी। वीज देकर आधी फसल ले लेंगे। इस वक्त कुछ छेड़छाड़ करना नीति विरुद्ध था। झिंगुरीसिंह ने मिल के मैनेजर से पहले ही सव कुछ कह-सुन रखा था। उनके प्यादे गाड़ियों पर ऊख लदवाकर नाव पर पहुंचा रहे थे। नदी गांव से आध मील पर थी। एक गाड़ी दिन-भर में सात-आठ चक्कर कर लेती थी। और नाव एक खेवे में पचास गाड़ियों का वोझ लाद लेता था। इस तरह किफ़ायत पड़ती थी। इस सुविधा का इन्तज़ाम करके झिंगुरीसिंह ने सारे इलाक़े को एहसान से दवा दिया था।

तौल शुरू होते ही झिंगुरीसिंह ने मिल के फाटक पर आसन जमा लिया। हरएक की ऊख तौलाते थे। दाम का पुरजा लेते थे, खजांची से रुपये वसूल करते थे और अपना पावना काटकर असामी को दे देते थे। असामी कितना ही रोये-चीखे, किसी की न सुनते थे। मालिक का यही हुक्म था। उनका क्या वस?

होरी को एक सौ वीस रुपये मिले। उसमें से झिंगुरीसिंह ने अपने पूरे रुपये सूद समेत काटकर कोई पच्चीस रुपये होरी के हवाले किये।

होरी ने रुपये की ओर उदासीन भाव से देखकर कहा—यह लेकर मैं क्या करूंगा ठाकुर? यह भी तुम्हीं ले लो। मेरे लिए मजूरी बहुत मिलेगी।

झिंगुरी ने पच्चीसों रुपये जमीन पर फेंककर कहा—लो या फेंक दो, तुम्हारी खुशी। तुम्हारे कारन मालिक की घुड़कियां खायीं और अभी रायसाहब सिर पर सवार हैं कि डांड़ के रुपये अदा करो। तुम्हारी ग़रीबी पर दया करके इतने रुपये दिये देता हूं, नहीं एक धेला भी न देता। अगर रायसाहब ने सख़्ती की, तो उलटे और घर से देने पड़ेंगे।

होरी ने धीरे से रुपये उठा लिये और बाहर निकला कि नोखेराम ने ललकारा। होरी ने जाकर पच्चीस रुपये उनके हाथ पर रख दिये, और बिना कुछ कहे जल्दी से भाग गया। उसका सिर चक्कर खा रहा था। शोभा को इतने ही रुपये मिले थे। वह बाहर निकला, तो पटेश्वरी ने घेरा।

शोभा बदल पड़ा। बोला—मेरे पास रुपये नहीं हैं, तुम्हें जो कुछ करना हो, कर लो।

पटेश्वरी ने गरम होकर कहा—ऊख बेची है कि नहीं?

'हां, बेची है।'

'तुम्हारा यही वादा तो था कि ऊख बेचकर रुपया दूंगा?'

'हां, था तो।'

'फिर क्यों नहीं देते? और सब लोगों को दिये हैं कि नहीं?'

'हां, दिये हैं।'

'तो मुझे क्यों नहीं देते?'

'मेरे पास अब जो कुछ बचा है, वह बाल-बच्चों के लिए है।'

पटेश्वरी ने बिगड़कर कहा—तुम रुपये दोगे शोभा, और हाथ जोड़कर, और आज ही। हां, अभी जितना चाहे, वह लो। एक रपट में जाओगे छः महीने को, पूरे छः महीने को, न एक दिन बेस, न एक दिन कम। यह जो नित्य जुआ खेलते हो, वह एक रपट में निकल जायेगा। मैं ज़मींदार या महाजन का नौकर नहीं हूं, सरकार बहादुर का नौकर हूं, जिसका दुनिया-भर में राज है और जो तुम्हारे महाजन और ज़मींदार दोनों का मालिक है।

पटेश्वरी लाला आगे बढ़ गये। शोभा और होरी कुछ दूर चुपचाप चले, मानो इस धिक्कार ने उन्हें संज्ञाहीन कर दिया हो। तब होरी ने कहा—शोभा, इसके रुपये दे दो। समझ लो, ऊख में आग लग गयी थी। मैंने भी यही सोचकर मन को समझाया है।

शोभा ने आहत कण्ठ से कहा—हां, दे दूंगा दादा! न दूंगा, तो जाऊंगा कहां?

सामने से गिरधर ताड़ी पिये झूमता चला आ रहा था। दोनों को देखकर बोला—झिंगुरिया ने सारे का सारा ले लिया होरी काका! चबेना को भी एक पैसा न छोड़ा। हत्यारा कहीं का! रोया, गिड़गिड़ाया, पर इस पापी को दया न आयी।

शोभा ने कहा—ताड़ी तो पिये हुए हो, उस पर कहते हो, एक पैसा भी न छोड़ा।

गिरधर ने पेट दिखाकर कहा—सांझ हो गयी, जो पानी की बूंद भी कण्ठ तले गयी हो, तो गोमांस बराबर। एक इकन्नी मुंह में दबा ली थी। उसकी ताड़ी पी ली। सोचा, साल-भर पसीना गारा है, तो एक दिन ताड़ी तो पी लूं, मगर सच कहता हूं, नसा नहीं है। एक आने में क्या नसा होगा? हां, झूम रहा हूं, जिसमें लोग समझें, खूब पिये हुए है। बड़ा अच्छा हुआ काका, बेबाकी हो गयी। बीस लिये, उसके एक सौ साठ भरे, कुछ हद है!

होरी घर पहुंचा, तो रूपा पानी लेकर दौड़ी। सोना चिलम भर लायी, धनिया ने चबेना और नमक लाकर रख दिया और सभी आशा-भरी आंखों से उसकी ओर ताकने लगीं। झुनिया भी चौखट पर आ खड़ी हुई थी। होरी उदास बैठा था। कैसे मुंह-हाथ धोये, कैसे चबेना खाये? ऐसा लज्जित और ग्लानित था, मानो हत्या करके आया हो।

धनिया ने पूछा—कितने की तौल हुई?

'एक सौ बीस मिले, पर सब वहीं लुट गये, धेला भी न बचा।'

धनिया सिर से पांव तक भस्म हो उठी। मन में ऐसा उद्वेग उठा कि अपना मुंह नोच ले। बोली—तुम जैसा घामड़ आदमी भगवान् ने क्यों रचा, कहीं मिलते तो उनसे पूछती। तुम्हारे साथ सारी जिन्दगी तलख हो गयी, भगवान् मौत भी नहीं देते कि जञ्जाल से जान छूटे। उठा के सारे रुपये बहनोइयों को दे दिये। अब और कौन आमदनी है, जिससे गोई आयेगी? हल में क्या मुझे जोतोगे या आप जुतोगे? मैं कहती हूं तुम बूढ़े हुए, तुम्हें इतनी अक्ल भी नहीं आयी कि गोई-भर के रुपये तो निकाल लेते! कोई तुम्हारे हाथ से छीन थोड़े लेता। पूस की यह ठण्ड और किसी की देह पर लत्ता नहीं। ले जाओ सबको, नदी में डुबा दो। सिसक-सिसककर मरने से तो एक दिन मर जाना फिर भी अच्छा है। कब तक पुआल में घुसकर रात काटेंगे और पुआल में घुस भी लें, तो पुआल खाकर रहा तो न जायेगा। तुम्हारी इच्छा हो, घास ही खाओ, हमसे तो घास न खायी जायेगी।

यह कहते-कहते वह मुसकरा पड़ी। इतनी देर में उसकी समझ में यह बात आने लगी थी कि महाजन जब सिर पर सवार हो जाये, और अपने हाथ में रुपये हों और महाजन जानता हो कि इसके पास रुपये हैं, तो असामी कैसे अपनी जान बचा सकता है!

होरी सिर नीचा किये अपने भाग्य को रो रहा था। धनिया का मुसकराना उसे न दिखाई दिया। बोला—मजूरी तो मिलेगी। मजूरी करके खायेंगे।

धनिया ने पूछा—कहां है इस गांव में मजूरी? और कौन मुंह लेकर मजूरी करोगे? महतो नहीं कहलाते!

होरी ने चिलम के कई कश लगाकर कहा—मजूरी करना कोई पाप नहीं है। मजूर बन जाये, तो किसान हो जाता है। किसान बिगड़ जाये, तो मजूर हो जाता है। मजूरी करना भाग्य में न होता, तो यह सब विपत क्यों आती? क्यों गाय मरती? क्यों लड़का नालायक निकल जाता?

धनिया ने बहू और बेटियों की ओर देखकर कहा—तुम सब-की-सब क्यों घेरे खड़ी हो, जाकर अपना-अपना काम देखो। वह और हैं जो हाट-बाजार से आते हैं, तो बाल-बच्चों के लिए दो-चार पैसे की कोई चीज लिये आते हैं। यहां तो यह लोभ लग रहा होगा कि रुपये तुड़ायें कैसे? एक कम न हो जायेगा? इसी से इनकी कमाई में बरक्कत नहीं होती। जो खरच करते हैं, उन्हें मिलता है। जो न खा सकें, न पहन सकें, उन्हें रुपये मिलें ही क्यों? जमीन में गाड़ने के लिए?

होरी ने खिलखिलाकर पूछा—कहां है वह गाड़ी हुई थाती?

'जहां रखी है, वहीं होगी। रोना तो यही है कि यह जानते हुए भी पैसे के लिए मरते हो। चार पैसे की कोई चीज लाकर बच्चों के हाथ पर रख देते, तो पानी में न पड़ जाते। झिंगुरी से तुम कह देते कि एक रुपया मुझे दे दो, नहीं मैं तुम्हें एक पैसा न दूंगा, जाकर अदालत में लेना, तो वह जरूर दे देता।'

होरी लज्जित हो गया। अगर वह झल्लाकर पच्चीसों रुपये नोखेराम को न दे देता, तो नोखे क्या कर लेते? बहुत होता, बकाया पर दो-चार आना सूद ले लेता, मगर अब तो चूक हो गयी।

झुनिया ने भीतर जाकर सोना से कहा—मुझे दादा पर बड़ी दया आती है। बेचारे दिन-भर के थके-मांदे घर आये, तो अम्मां कोसने लगीं। महाजन गला दबाये था, तो क्या करते बेचारे?

'तो बैल कहां से आयेंगे?'

'महाजन अपने रुपये चाहता है। उसे तुम्हारे घर के दुखड़ों से क्या मतलब?'

'अम्मां वहां होती, तो महाजन को मजा चखा देती। अभागा रोकर रह जाता।'

झुनिया ने दिल्लगी की—तो यहां रुपये की कौन कमी है? तुम महाजन से जरा हंसकर बोल दो, देखो सारे रुपये छोड़ देता है कि नहीं। सच कहती हूं, दादा का सारा दुख-दलिद्दर दूर हो जाये।

सोना ने दोनों हाथों से उसका मुंह दबाकर कहा—बस, चुप ही रहना, नहीं कहे देती हूं। अभी

जाकर अम्मां से मातादीन की सारी कलई खोल दूं, तो रोने लगो।

झुनिया ने पूछा—क्या कह दोगी अम्मां से? कहने को कोई बात भी हो। जब वह किसी बहाने से घर में आ जाते हैं, तो क्या कह दूं कि निकल जाओ, फिर मुझसे कुछ ले तो नहीं जाते? कुछ अपना ही दे जाते हैं। सिवाय मीठी-मीठी बातों के वह झुनिया से कुछ नहीं पा सकते। और अपनी मीठी बातों को महंगे दामों बेचना भी मुझे आता है। मैं ऐसी अनाड़ी नहीं हूं कि किसी के झांसे में आ जाऊं। हां, जब जान जाऊंगी कि तुम्हारे भैया ने वहां किसी को रख लिया है, तब की नहीं चलाती। तब मेरे ऊपर किसी का कोई बन्धन न रहेगा। अभी तो मुझे विश्वास है कि वह मेरे हैं और मेरे कारन उन्हें गली-गली ठोकर खाना पड़ रहा है। हंसने-बोलने की बात न्यारी है, पर मैं उनसे विश्वासघात न करूंगी। जो एक से दो का हुआ, वह किसी का नहीं रहता।

शोभा ने आकर होरी को पुकारा और पटेश्वरी के रुपये उसके हाथ में रखकर बोला—भैया, तुम जाकर ये रुपये लाला को दे दो। मुझे उस घड़ी न जाने क्या हो गया था।

होरी रुपये लेकर उठा ही था कि शंख की ध्वनि कानों में आयी। गांव के उस सिरे पर ध्यानसिंह नाम के एक ठाकुर रहते थे। पलटन में नौकर थे और कई दिन हुए, दस साल के बाद रजा लेकर आये थे। बगदाद, अदन, सिंगापुर, बर्मा—चारों तरफ घूम चुके थे। अब ब्याह करने की धुन में थे। इसीलिए पूजा-पाठ करके ब्राह्मणों को प्रसन्न रखना चाहते थे।

होरी ने कहा—जान पड़ता है, सातों अध्याय पूरे हो गये। आरती हो रही है।

शोभा बोला—हां, जान तो पड़ता है, चलो, आरती ले लो।

होरी ने चिन्तित भाव से कहा—तुम जाओ, मैं थोड़ी देर में आता हूं।

ध्यानसिंह जिस दिन आये थे, सब के घर सेर-सेर भर मिठाई बैना भेजी थी। होरी से जब कभी रास्ते में मिल जाते, कुशल पूछते। उनकी कथा में जाकर आरती में कुछ न देना अपमान की बात थी।

आरती का थाल उन्हीं के हाथ में होगा। उनके सामने होरी कैसे खाली हाथ आरती ले लेगा। इससे तो कहीं अच्छा है कि वह कथा में जाये ही नहीं। इतने आदमियों में उन्हें क्या याद आयेगी कि होरी नहीं आया। कोई रजिस्टर लिये तो बैठा नहीं है कि कौन आया, कौन नहीं आया। वह जाकर खाट पर लेट रहा।

मगर उसका हृदय मसोस-मसोसकर रह जाता था। उसके पास एक पैसा भी नहीं है। तांबे का एक पैसा! आरती के पुण्य और माहात्म्य का उसे बिलकुल ध्यान न था। बात थी केवल व्यवहार की। ठाकुरजी की आरती तो वह केवल श्रद्धा की भेंट देकर ले सकता था, लेकिन मर्यादा कैसे तोड़े, सबकी आंखों में हेठा कैसे बने?

सहसा वह उठ बैठा। क्यों मर्यादा की गुलामी करे? मर्यादा के पीछे आरती का पुण्य क्यों छोड़े? लोग हंसेंगे, हंस लें। उसे परवा नहीं है। भगवान् उसे कुकर्म से बचाये रखें और वह कुछ नहीं चाहता।

वह ठाकुर के घर की ओर चल पड़ा।

:18:

खन्ना और गोविन्दी में नहीं पटती। क्यों नहीं पटती, यह बताना कठिन है। ज्योतिष के हिसाब से उनके ग्रहों में कोई विरोध है, हालांकि विवाह के समय ग्रह और नक्षत्र खूब मिला लिये गये थे। काम-शास्त्र के हिसाब से इस अनबन का और कोई रहस्य हो सकता है, और मनोविज्ञान वाले कुछ और ही कारण खोज सकते हैं। हम तो इतना ही जानते हैं कि उनमें नहीं पटती। खन्ना धनवान् हैं, रसिक हैं, मिलनसार हैं, रूपवान् हैं, अच्छे-ख़ासे पढ़े-लिखे हैं और नगर के विशिष्टि पुरुषों में हैं। गोविन्दी अप्सरा न हो, पर रूपवती अवश्य है। गेहुंआ रंग, लज्जाशील आंखें, जो एक बार सामने उठकर फिर झुक जाती हैं, कपोलों पर लाली न हो, पर चिकनापन है, गात कोमल, अंग-विन्यास

सुडौल, गोल वांहें, मुख पर एक प्रकार की अरुचि, जिसमें कुछ गर्व की झलक भी है, मानो संसार के व्यवहार और व्यापार को हेय समझती है।

खन्ना के पास विलास के ऊपरी साधनों की कमी नहीं, अव्वल दर्जे का वंगला है, अव्वल दर्जे का फ़र्नीचर, अव्वल दर्जे की कार और अपार धन, पर गोविन्दी की दृष्टि में जैसे इन चीज़ों का कोई मूल्य नहीं। इस खारे सागर में वह प्यासी पड़ी रहती है। वच्चों का लालन-पालन और गृहस्थी के छोटे-मोटे काम ही उसके लिए सव कुछ हैं। वह इनमें इतनी व्यस्त रहती है कि भोग की ओर उसका ध्यान नहीं जाता। आकर्षण क्या वस्तु है और कैसे उत्पन्न हो सकता है, इसकी ओर उसने कभी विचार नहीं किया। वह पुरुप का खिलौना नहीं है, न उसके भोग की वस्तु, फिर क्यों आकर्षक वनने की चेष्टा करे? अगर पुरुप उसका असली सौन्दर्य देखने के लिए आंखें नहीं रखता, कामिनियों के पीछे मारा-मारा फिरता है, तो वह उसका दुर्भाग्य है। वह उसी प्रेम और निष्ठा से पति की सेवा किये जाती है, जैसे द्वेप और मोह जैसी भावनाओं को उसने जीत लिया है। और यह अपार सम्पत्ति तो जैसे उसकी आत्मा को कुचलती रहती है। इन आडम्वरों और पाखण्डों से मुक्त होने के लिए उसका मन सदैव ललचाया करता है। अपने सरल और स्वाभाविक जीवन में वह कितनी सुखी रह सकती थी, इसका वह नित्य स्वप्न देखती रहती है। तव क्यों मालती उसके मार्ग में आकर वाधक हो जाती? क्यों वेश्याओं के मुजरे होते, क्यों यह सन्देह और वनावट और अशान्ति उसके जीवन-पथ में कांटा वनती? वहुत पहले जव वह वालिका विद्यालय में पढ़ती थी, उसे कविता का रोग लग गया था, जहां दुःख और वेदना ही जीवन का तत्त्व है, सम्पत्ति और विलास तो केवल इसलिए है कि उसकी होली जलायी जाये, जो मनुष्य को असत्य और अशान्ति की ओर ले जाता है। वह अव कभी-कभी कविता रचती थी, लेकिन सुनाये किसे? उसकी कविता केवल मन की तरंग या भावना की उड़ान न थी, उसके एक-एक शव्द में उसके जीवन की व्यथा और उसके आंसुओं की ठण्डी जलन भरी होती थी। किसी ऐसे प्रदेश में जा वसने की लालसा, जहां वह पाखण्डों और वासनाओं से दूर, अपनी शान्त कुटिया में सरल आनन्द का उपभोग करे। खन्ना कविताएं देखते, तो उनका मज़ाक उड़ाते और कभी-कभी फाड़कर फेंक देते।

और सम्पत्ति की यह दीवार दिन-दिन ऊंची होती जाती थी और दम्पति को एक-दूसरे से दूर और पृथक् करती जाती थी। खन्ना अपने ग्राहकों के साथ जितना ही मीठा और नम्र था, घर में उतना ही कटु और उद्दण्ड। अक्सर क्रोध में गोविन्दी को अपशव्द कह वैठता, शिष्टता उसके लिए दुनिया को ठगने का एक साधन थी, मन का संस्कार नहीं। ऐसे अवसरों पर गोविन्दी अपने एकान्त कमरे में जा वैठती और रात की रात रोया करती, और खन्ना दीवानख़ाने में मुजरे सुनता या क्लव में जाकर शरावें उड़ाता। लेकिन यह सव कुछ होने पर भी खन्ना उसका सर्वस्व था। वह दलित और अपमानित होकर भी खन्ना की लौंडी थी। उनसे लड़ेगी, जलेगी, रोयेगी, पर रहेगी उन्हीं की। उनसे पृथक् जीवन की वह कोई कल्पना ही न कर सकती थी।

आज मिस्टर खन्ना किसी वुरे आदमी का मुंह देखकर उठे थे। सवेरे ही पत्र खोला, तो उनके कई स्टाकों का दर गिर गया था, जिसमें उन्हें कई हज़ार की हानि होती थी। शक्कर मिल के मज़दूरों ने हड़ताल कर दी थी और दंगा-फ़साद करने पर आमादा थे। नफ़े की आशा से चांदी ख़रीदी थी, मगर उसका दर आज और भी ज़्यादा गिर गया था। रायसाहव से जो सौदा हो रहा था और जिसमें उन्हें खासे नफ़े की आशा थी, वह कुछ दिनों के लिए टलता हुआ जान पड़ता था। फिर रात को वहुत पी जाने के कारण इस वक्त सिर भारी था और देह टूट रही थी। इधर शोफ़र ने कार के इंजन में कुछ ख़रावी पैदा हो जाने की वात कही थी और लाहौर में उनके वैंक पर एक दीवानी मुक़दमा दायर हो जाने का समाचार भी मिला था। वैठे मन में झुंझला रहे थे कि उसी वक्त गोविन्दी ने आकर कहा—भीष्म का ज्वर आज भी नहीं उतरा, किसी डॉक्टर को वुला दो।

भीष्म उनका सवसे छोटा पुत्र था, और जन्म से ही दुर्वल होने के कारण उसे रोज़ एक-न-एक शिकायत वनी रहती थी। आज खांसी है, तो कल वुख़ार, कभी पसली चल रही है, कभी हरे-पीले दस्त आ रहे हैं। दस महीने का हो गया था, पर लगता था, पांच-छः महीने का। खन्ना की धारणा हो गयी थी कि यह लड़का बचेगा नहीं, इसलिए उसकी ओर से उदासीन रहते थे, पर गोविन्दी इसी कारण उसे और सब बच्चों से ज़्यादा चाहती थी।

खन्ना ने पिता के स्नेह का भाव दिखाते हुए कहा—बच्चों को दवाओं का आदी वना देना ठीक नहीं, और तुम्हें दवा पिलाने का मरज़ है। ज़रा कुछ हुआ और डॉक्टर वुलाओ। एक रोज़ और देखो, आज तीसरा ही दिन तो है। शायद आज आप-ही-आप उतर जाये।

गोविन्दी ने आग्रह किया—तीन दिन से नहीं उतरा। घरेलू दवाएं करके हार गयी।

खन्ना ने पूछा—अच्छी वात है, वुला देता हूं, किसे वुलाऊं?

'वुला लो डॉक्टर नाग को।'

'अच्छी वात है, उन्हीं को वुलाता हूं, मगर यह समझ लो कि नाम हो जाने से ही कोई अच्छा डॉक्टर नहीं हो जाता। नाग फ़ीस चाहे जितनी ले लें, उनकी दवा से किसी को अच्छा होते नहीं देखा। वह तो मरीज़ों को स्वर्ग भेजने के लिए मशहूर हैं।'

'तो जिसे चाहो वुला लो, मैंने तो नाग को इसलिए कहा था कि वह कई बार आ चुके हैं।'

'मिस मालती को क्यों न वुला लूं? फ़ीस भी कम और बच्चों का हाल लेडी डॉक्टर जैसा समझेगी, कोई मर्द डॉक्टर नहीं समझ सकता।'

गोविन्दी ने जलकर कहा—मैं मिस मालती को डॉक्टर नहीं समझती।

खन्ना ने भी तेज़ आंखों से देखकर कहा—तो वह इंग्लैण्ड घास खोदने गयी थी, और हज़ारों आदमियों को आज जीवन-दान दे रही है, यह सव कुछ नहीं है?

'होगा, मुझे उन पर भरोसा नहीं है। वह मरदों के दिल का इलाज कर लें। और किसी की दवा उनके पास नहीं है।'

बस, ठन गयी। खन्ना गरजने लगे। गोविन्दी वरसने लगी। उनके बीच में मालती का नाम आ जाना, मानो लड़ाई का अल्टिमेटम था।

खन्ना ने सारे कागज़ों को ज़मीन पर फेंककर कहा—तुम्हारे साथ ज़िन्दगी तल्ख़ हो गयी।

गोविन्दी ने नुकीले स्वर में कहा—तो मालती से ब्याह कर लो न! अभी क्या विगड़ा है, अगर वहां दाल गले।

'तुम मुझे क्या समझती हो?'

'यही कि मालती तुम-जैसों को अपना ग़ुलाम बनाकर रखना चाहती है, पति बनाकर नहीं।'

'तुम्हारी निगाह में मैं इतना ज़लील हूं?'

और उन्होंने इसके विरुद्ध प्रमाण देना शुरू किया। मालती जितना उनका आदर करती है, उतना शायद ही किसी का करती हो। रायसाहव और राजा साहब को मुंह तक नहीं लगाती, लेकिन उनसे एक दिन भी मुलाकात न हो, तो शिकायत करती है...

गोविन्दी ने इन प्रमाणों को एक फूंक में उड़ा दिया—इसलिए कि वह तुम्हें सवसे बड़ा आंखों का अन्धा समझती है, दूसरों को इतनी आसानी से वेवुकूफ़ नहीं बना सकती।

खन्ना ने डींग मारी—वह चाहें, तो आज मालती से विवाह कर सकते हैं। आज, अभी...

मगर गोविन्दी को बिलकुल विश्वास नहीं—तुम सात जन्म नाक रगड़ो, तो भी वह तुमसे विवाह न करेगी। तुम उसके टट्टू हो, तुम्हें घास खिलायेगी, कभी-कभी तुम्हारा मुंह सहलायेगी, तुम्हारे पुट्ठों पर हाथ फेरेगी, लेकिन इसलिए कि तुम्हारे ऊपर सवारी गांठे। तुम्हारे जैसे एक हज़ार बुद्धू उसकी जेव में हैं।

गोविन्दी आज बहुत बढ़ी जाती थी। मालूम होता है, आज वह उनसे लड़ने पर तैयार होकर आयी है। डॉक्टर के बुलाने का तो केवल बहाना था। खन्ना अपनी योग्यता और दक्षता और पुरुषत्व पर इतना बड़ा आक्षेप कैसे सह सकते थे?

'तुम्हारे खयाल से मैं बुद्धू और मूर्ख हूं, तो ये हज़ारों क्यों मेरे द्वार पर नाक रगड़ते हैं? कौन राजा या ताल्लुक़ेदार है, जो मुझे दण्डवत् नहीं करता? सैकड़ों को उल्लू बनाकर छोड़ दिया।'

'यही तो मालती की विशेषता है कि जो औरों को सीधे उस्तरे से मूंड़ता है, उसे वह उलटे छुरे से मूंड़ती है।'

'तुम मालती की चाहे जितनी बुराई करो, तुम उसकी पांव की धूल भी नहीं हो।'

'मेरी दृष्टि में वह वेश्याओं से भी गयी-बीती है, क्योंकि वह परदे की आड़ से शिकार खेलती है।'

दोनों ने अपने-अपने अग्निबाण छोड़ दिये। खन्ना ने गोविन्दी को चाहे दूसरी कठोर-से-कठोर बात कही होती, उसे इतनी बुरी न लगती, पर मालती से उसकी यह घृणित तुलना उसकी सहिष्णुता के लिए भी असह्य थी। गोविन्दी ने भी खन्ना को चाहे जो कुछ कहा होता, वह इतने गरम न होते, लेकिन मालती का यह अपमान वह नहीं सह सकते। दोनों एक-दूसरे के कोमल स्थलों से परिचित थे। दोनों के निशाने ठीक बैठे और दोनों तिलमिला उठे। खन्ना की आंखें लाल हो गयीं। गोविन्दी का मुंह लाल हो गया। खन्ना आवेश में उठे और उसके दोनों कान पकड़कर जोर से ऐंठे और तीन तमाचे लगा दिये। गोविन्दी रोती हुई अन्दर चली गयी।

ज़रा देर में डॉक्टर नाग आये और सिविल सर्जन मिस्टर टॉड आये और भिषगाचार्य नीलकण्ठ शास्त्री आये, पर गोविन्दी बच्चे को लिये अपने कमरे में बैठी रही। किसने क्या कहा, क्या तशख़ीश की, उसे कुछ मालूम नहीं। जिस विपत्ति की कल्पना वह कर रही थी, वह आज उसके सिर पर आ गयी। खन्ना ने आज जैसे उससे नाता तोड़ लिया, जैसे उसे घर से खदेड़कर द्वार बन्द कर लिया। जो रूप का बाज़ार लगाकर बैठती है, जिसकी परछाईं भी वह अपने ऊपर पड़ने नहीं देना चहती है.... वह उस पर परोक्ष रूप से शासन करे! यह न होगा। खन्ना उसके पति हैं, उन्हें उसको समझाने-बुझाने का अधिकार है, उनकी मार को भी वह शिरोधार्य कर सकती है, पर मालती का शासन? असम्भव! मगर बच्चे का ज्वर जब तक शान्त न हो जाये, वह हिल नहीं सकती। आत्माभिमान को भी कर्तव्य के सामने सिर झुकाना पड़ेगा।

दूसरे दिन बच्चे का ज्वर उतर गया था। गोविन्दी ने एक तांगा मंगवाया और घर से निकली। जहां उसका इतना अनादर है, वहां अब वह नहीं रह सकती। आघात इतना कठोर था कि बच्चों का मोह भी टूट गया था। उनके प्रति उसका जो धर्म था, उसे वह पूरा कर चुकी है। शेष जो कुछ है, वह खन्ना का धर्म है। हां, गोद के बालक को वह किसी तरह नहीं छोड़ सकती। वह उसकी जान के साथ है। और इस घर से वह केवल अपने प्राण लेकर निकलेगी। और कोई चीज़ उसकी नहीं है। इन्हें यह दावा है कि वह उसका पालन करते हैं। गोविन्दी दिखा देगी कि वह उनके आश्रय से निकलकर भी ज़िन्दा रह सकती है। तीनों बच्चे उस समय खेलने गये थे। गोविन्दी का मन हुआ, एक बार उन्हें प्यार कर ले, मगर वह कहीं भागी तो नहीं जाती। बच्चों का उससे प्रेम होगा, तो उसके पास आयेंगे, उसके घर में खेलेंगे। वह जब ज़रूरत समझेगी, ख़ुद बच्चों को देख आया करेगी। केवल खन्ना का आश्रय नहीं लेना चाहती।

सांझ हो गयी थी। पार्क में रौनक़ थी। लोग हरी घास पर लेटे हवा का आनन्द लूट रहे थे। गोविन्दी हज़रतगंज होती हुई चिड़ियाघर की तरफ मुड़ी ही थी कि कार पर मालती और खन्ना सामने से आते हुए दिखाई दिये। उसे मालूम हुआ, खन्ना ने उसकी तरफ़ इशारा करके कुछ कहा और मालती मुस्करायी। नहीं, शायद यह उसका भ्रम हो। खन्ना मालती से उसकी निन्दा न करेंगे, मगर

कितनी बेशर्म है। सुना है, इसकी अच्छी प्रैक्टिस है, घर की भी सम्पन्न है, फिर भी यों अपने को वेचती फिरती है! न जाने क्यों ब्याह नहीं कर लेती, लेकिन उससे ब्याह करेगा ही कौन? नहीं, यह बात नहीं, पुरुषों में भी ऐसे बहुत हो गये हैं, जो उसे पाकर अपने को धन्य मानेंगे, लेकिन मालती खुद तो किसी को पसन्द करे? और ब्याह में कौन-सा सुख रखा हुआ है? बहुत अच्छा करती है, जो ब्याह नहीं करती। अभी सब उसके गुलाम हैं। तब वह एक की लौंडी होकर रह जायेगी। बहुत अच्छा कर रही है। अभी तो यह महाशय भी उसके तलवे चाटते हैं। कहीं इनसे ब्याह कर ले, तो उस पर शासन करने लगें, मगर इनसे वह क्यों ब्याह करेगी? और समाज में दो-चार ऐसी स्त्रियां बनी रहें, तो अच्छा, पुरुषों के कान तो गरम करती रहें।

आज गोविन्दी के मन में मालती के प्रति बड़ी सहानुभूति उत्पन्न हुई। वह मालती पर आक्षेप करके उसके साथ अन्याय कर रही है। क्या मेरी दशा को देखकर उसकी आंखें न खुलती होंगी? विवाहित जीवन की दुर्दशा आंखों देखकर अगर वह इस जाल में नहीं फंसती, तो क्या बुरा करती है?

चिड़ियाघर में चारों तरफ़ सन्नाटा छाया हुआ था। गोविन्दी ने तांगा रोक दिया और बच्चे को लिये हरी दूब की तरफ़ चली, मगर दो ही तीन क़दम चली थी कि चप्पल पानी में डूब गये। तभी थोड़ी देर पहले लॉन सींचा गया था और घास के नीचे पानी बह रहा था। उस उतावली में उसने पीछे न फिरकर एक क़दम और आगे रखा तो पांव कीचड़ में सन गये। उसने पांव की ओर देखा। अब यहां पांव धोने के लिए पानी कहां मिलेगा? उसकी सारी मनोव्यथा लुप्त हो गयी। पांव धोकर साफ़ करने की नयी चिन्ता हुई। उसकी विचारधारा रुक गयी। जब तक पांव न साफ़ हो जाये, वह कुछ नहीं सोच सकती।

सहसा उसे एक लम्बा पाइप घास में छिपा नज़र आया, जिसमें पानी बह रहा था। उसने जाकर पांव धोये, चप्पल धोये, हाथ-मुंह धोया, थोड़ा-सा पानी चुल्लू में लेकर पिया और पाइप के उस पार सूखी ज़मीन पर जा बैठी। उदासी से मौत की याद तुरन्त आ जाती है। कहीं वह बैठे-बैठे मर जाये, तो क्या हो? तांगेवाला तुरन्त जाकर खन्ना को ख़बर देगा। खन्ना सुनते ही खिल उठेंगे, लेकिन दुनिया को दिखाने के लिए आंखों पर रुमाल रख लेंगे। बच्चों के लिए खिलौने और तमाशे मां से प्यारे हैं। यह है उसका जीवन, जिसके लिए कोई चार बूंद आंसू बहानेवाला भी नहीं। तब उसे वह दिन याद आया, जब उसकी सास जीती थी और खन्ना उड़न्छू न हुए थे, तब सास का बात-बात पर बिगड़ना बुरा लगता था। आज उसे सास के उस क्रोध में स्नेह का रस घुला जान पड़ रहा था। तब वह सास से रूठ जाती थी और सास उसे दुलारकर मनाती थी। आज वह महीनों रूठी पड़ी रहे, किसे परवा है?

एकाएक उसका मन उड़कर माता के चरणों में जा पहुंचा। हाय! आज अम्मां होती, तो क्यों उसकी यह दुर्दशा होती? उसके पास और कुछ न था, स्नेह-भरी गोद तो थी, प्रेम-भरा अञ्चल तो था, जिसमें मुंह डालकर वह रो लेती, लेकिन नहीं, वह रोयेगी नहीं, उस देवी को स्वर्ग में दुखी न बनायेगी। मेरे लिए वह जो कुछ ज़्यादा-से-ज़्यादा कर सकती थी, वह कर गयी। मेरे कर्मों की साथिन होना तो उनके वश की बात न थी। और वह क्यों रोये? वह अब किसी के अधीन नहीं है। वह अपने गुज़र-भर को कमा सकती है। वह कल ही गांधी आश्रम से चीज़ें लेकर बेचना शुरू कर देगी। शर्म किस बात की? यही तो होगा, लोग उंगली दिखाकर कहेंगे—वह जा रही है खन्ना की बीवी, लेकिन इस शहर में रहूं क्यों? किसी दूसरे शहर में क्यों न चली जाऊं, जहां मुझे कोई जानता ही न हो। दस-बीस रुपये कमा लेना ऐसा क्या मुश्किल है। अपने पसीने की कमाई तो खाऊंगी, फिर तो कोई मुझ पर रोब न जमायेगा। यह महाशय इसलिए तो इतना मिज़ाज़ करते हैं कि वह मेरा पालन करते हैं। मैं अब खुद अपना पालन करूंगी।

सहसा उसने मेहता को अपनी तरफ़ आते देखा। उसे उलझन हुई। इस वक्त वह सम्पूर्ण एकान्त चाहती थी। किसी से बोलने की इच्छा न थी, मगर यहां भी एक महाशय आ ही गये। उस पर बच्चा

भी रोने लगा था।

मेहता ने समीप आकर विस्मय के साथ पूछा—आप इस वक्त यहां कैसे आ गयीं?

गोविन्दी ने वालक को चुप कराते हुए कहा—उसी तरह, जैसे आप आ गये।

मेहता ने मुस्कराकर कहा—मेरी बात न चलाइये। धोवी का कुत्ता, न घर का, न घाट का। लाइये, मैं वच्चे को चुप करा दूं।

'आपने यह कला कव सीखी?'

'अभ्यास करना चाहता हूं। इसकी परीक्षा जो होगी।'

'अच्छा! परीक्षा के दिन करीव आ गये?'

'यह तो मेरी तैयारी पर है। जव तैयार हो जाऊंगा, वैठ जाऊंगा। छोटी-छोटी उपाधियों के लिए हम पढ़-पढ़कर आंखें फोड़ लिया करते हैं। यह तो जीवन-व्यापार की परीक्षा है।'

'अच्छी वात है, मैं भी देखूं, आप किस ग्रेड में पास होते हैं।'

यह कहते हुए उसने वच्चे को उनकी गोद में दे दिया। उन्होंने वच्चे को कई वार उछाला, तो वह चुप हो गया। वालकों की तरह डींग मारकर वोले—देखा आपने, कैसा मन्तर के ज़ोर से चुप कर दिया। अव मैं भी कहीं से वच्चा लाऊंगा।

गोविन्दी ने विनोद किया—वच्चा ही लाइयेगा या उसकी मां भी?

मेहता ने विनोद-भरी निराशा से सिर हिलाकर कहा—ऐसी औरत तो कहीं मिलती ही नहीं।

'क्यों, मिस मालती नहीं है? सुन्दरी, शिक्षिता, गुणवती, मनोहारिणी, और आप क्या चाहते हैं?'

'मिस मालती में वह एक बात भी नहीं है, जो मैं अपनी स्त्री में देखना चाहता हूं।'

गोविन्दी ने इस कुत्सा का आनन्द लेते हुए कहा—उसमें क्या वुराई है, सुनूं। भौंरे तो हमेशा घेरे रहते हैं। मैंने सुना है, आजकल पुरुषों को ऐसी ही औरतें पसन्द आती हैं।

मेहता ने वच्चे के हाथ से अपनी मूंछों की रक्षा करते हुए कहा—मेरी स्त्री कुछ और ही ढंग की होगी। वह ऐसी होगी, जिसकी मैं पूजा कर सकूंगा।

गोविन्दी अपनी हंसी न रोक सकी—तो आप स्त्री नहीं, कोई प्रतिमा चाहते हैं। स्त्री तो ऐसी शायद ही कहीं मिले।

'जी नहीं, ऐसी एक देवी इसी शहर में है।'

'सच! मैं भी उसके दर्शन करती, और उसी तरह वनने की चेष्टा करती।'

'आप उसे खूव जानती हैं। एक लखपती की पत्नी है, पर विलास को तुच्छ समझती है। जो उपेक्षा और अनादर सहकर भी अपने कर्तव्य से विचलित नहीं होती, जो मातृत्व की वेदी पर अपने को वलिदान करती है, जिसके लिए त्याग ही सबसे बड़ा अधिकार है, और जो इस योग्य है कि उसकी प्रतिमा वनाकर पूजी जाये।'

गोविन्दी के हृदय में आनन्द का कम्पन्न हुआ। समझकर भी न समझने का अभिनय करती हुई वोली—ऐसी स्त्री की आप तारीफ करते हैं! मगर मेरी समझ में तो वह दया की पात्र है। वह आदर्श नारी है और जो आदर्श नारी हो सकती है, वही आदर्श पत्नी भी हो सकती है।

मेहता ने आश्चर्य से कहा—आप उसका अपमान करती हैं।

'लेकिन वह आदर्श इस युग के लिए नहीं है।'

'वह आदर्श सनातन है और अमर है। मनुष्य उसे विकृत करके अपना सर्वनाश कर रहा है।'

गोविन्दी का अन्तःकरण खिला जा रहा था। ऐसी फुरेरियां, वहां कभी न उठी थीं। जितने आदमियों से उसका परिचय था, उनमें मेहता का स्थान सवसे ऊंचा था। उनके मुख से यह प्रोत्साहन पाकर वह मतवाली हुई जा रही थी।

उसी नशे में वोली—तो चलिये, मुझे उनके दर्शन करा दीजिये।

मेहता ने बालक के कपोलों में मुंह छिपाकर कहा—वह तो यहीं बैठी हुई है।

'कहां, मैं तो नहीं देख रही हूं।'

'उसी देवी से बोल रहा हूं।'

गोविन्दी ने ज़ोर से क़हक़हा भरा—आपने मुझे बनाने की ठान ली, क्यों?

मेहता ने श्रद्धावनत होकर कहा—देवीजी, आप मेरे साथ अन्याय कर रही हैं, और मुझसे ज़्यादा अपने साथ। संसार में ऐसे बहुत कम प्राणी हैं, जिनके प्रति मेरे मन में श्रद्धा हो। उन्हीं में एक आप हैं। आपका धैर्य और त्याग और शील और प्रेम अनुपम है! मैं अपने जीवन में सबसे बड़े सुख की जो कल्पना कर सकता हूं, वह आप जैसी किसी देवी के चरणों की सेवा है। जिस नारीत्व को मैं आदर्श मानता हूं, आप उसकी सजीव प्रतिमा हैं।

गोविन्दी की आंखों से आनन्द के आंसू निकल पड़े। इस श्रद्धा-कवच को धारण करके वह किस विपत्ति का सामना न करेगी? उसके रोम-रोम से जैसे मृदु संगीत की ध्वनि निकल पड़ी। उसने अपने रमणीत्व का उल्लास मन में दबाकर कहा—आप दार्शनिक क्यों हुए मेहताजी? आपको तो कवि होना चाहिए था।

मेहता सरलता से हंसकर बोले—क्या आप समझती हैं, बिना दार्शनिक हुए ही कोई कवि हो सकता है? दर्शन तो केवल बीच की मंज़िल है।

'तो अभी आप कवित्व के रास्ते में हैं, लेकिन आप यह भी जानते हैं कि कवि को संसार में कभी सुख नहीं मिलता।'

'जिसे संसार दुःख कहता है, वही कवि के लिए सुख है। धन और ऐश्वर्य, रूप और बल, विद्या और बुद्धि, ये विभूतियां संसार को चाहे कितना ही मोहित कर लें, कवि के लिए यहां ज़रा भी आकर्षण नहीं है, उसके मोद और आकर्षण की वस्तु तो बुझी हुई आशाएं और मिटी हुई स्मृतियां और टूटे हुए हृदय के आंसू हैं। जिस दिन इन विभूतियों में उसका प्रेम न रहेगा, उस दिन वह कवि न रहेगा। दर्शन जीवन के इन रहस्यों से केवल विनोद करता है, कवि उनमें लय हो जाता है। मैंने आपकी दो-चार कविताएं पढ़ी हैं और उनमें जितनी पुलक, जितना कम्पन, जितनी मधुर व्यथा, जितना रुलानेवाला उन्माद पाया है, वह मैं ही जानता हूं। प्रकृति ने हमारे साथ कितना बड़ा अन्याय किया है कि आप जैसी कोई दूसरी देवी नहीं बनायी।

गोविन्दी ने हसरत-भरे स्वर में कहा—नहीं मेहताजी, यह आपका भ्रम है। ऐसी नारियां यहां आपको गली-गली में मिलेंगी और मैं तो उन सबसे गयी-बीती हूं। जो स्त्री अपने पुरुष को प्रसन्न न रख सके, अपने को उसके मन की न बना सके, वह भी कोई स्त्री है? मैं तो कभी-कभी सोचती हूं कि मालती से यह कला सीखूं। जहां मैं असफल हूं, वहां वह सफल है। मैं अपने को भी अपना नहीं बना सकती, वह दूसरों को भी अपना बना लेती है। क्या यह उसके लिए श्रेय की बात नहीं?

मेहता ने मुंह बनाकर कहा—शराब अगर लोगों को पागल कर देती है, तो इसलिए उसे क्या पानी से अच्छा समझा जाये, जो प्यास बुझाता है, जिलाता है, और शान्त करता है?

गोविन्दी ने विनोद की शरण लेकर कहा—कुछ भी हो, मैं तो यह देखती हूं कि पानी मारा-मारा फिरता है और शराब के लिए घर-द्वार बिक जाते हैं, और शराब जितनी ही तेज़ और नशीली हो, उतनी ही अच्छी। मैं तो सुनती हूं, आप भी शराब के उपासक हैं?

गोविन्दी निराशा की उस दशा को पहुंच गयी थी, जब आदमी को सत्य और धर्म में भी सन्देह होने लगता है, लेकिन मेहता का ध्यान उधर न गया। उनका ध्यान तो वाक्य के अन्तिम भाग पर ही चिमटकर रह गया। अपने मसलेहत पर उन्हें जितनी लज्जा और क्षोभ आज हुआ, उतना बड़े-बड़े उपदेश सुनकर भी न हुआ था। तर्कों का उनके पास जवाब था और मुंह-तोड़, लेकिन इस मीठी चुटकी का उन्हें कोई जवाब न सूझा। वह पछताये कि कहां उन्हें शराब की युक्ति सूझी। उन्होंने खुद

मालती की शराव से उपमा दी थी। उनका वार अपने ही सिर पर पड़ा। लज्जित होकर बोले—देवीजी, मैं स्वीकार करता हूं कि मुझमें यह आसक्ति है। मैं अपने लिए उसकी ज़रूरत वतलाकर और उसके विचारोत्तेजक गुणों के प्रमाण देकर गुनाह का उज्र न करूंगा, जो गुनाह से भी वदतर है। आज आपके सामने प्रतिज्ञा करता हूं कि शराव की एक वूंद भी कण्ठ के नीचे न जाने दूंगा।

गोविन्दी ने सन्नाटे में आकर कहा—यह आपने क्या किया मेहताजी? मैं ईश्वर से कहती हूं, मेरा यह आशय न था। मुझे इसका दुःख है।

'नहीं, आपको प्रसन्न होना चाहिए कि आपने एक व्यक्ति का उद्धार कर दिया।'

'मैंने आपका उद्धार कर दिया? मैं तो खुद अपने उद्धार की याचना करने जा रही हूं।'

'मुझसे? धन्य भाग।'

गोविन्दी ने करुण स्वर में कहा—हां, आपके सिवा मुझे कोई ऐसा नहीं नज़र आता, जिसे मैं अपनी कथा सुनाऊं। देखिये, यह वात अपने ही तक रखियेगा, हालांकि आपको यह याद दिलाने की ज़रूरत नहीं। मुझे अव अपना जीवन असह्य हो गया है। मुझसे अव तक जितनी तपस्या हो सकी, मैंने की, लेकिन अव नहीं सहा जाता। मालती मेरा सर्वनाश किये डालती है। मैं अपने किसी शस्त्र से उस पर विजय नहीं पा सकती। आपका उस पर प्रभाव है। वह जितना आपका आदर करती है, शायद और किसी मर्द का नहीं करती। अगर आप किसी तरह मुझे उसके पंजे से छुड़ा दें, तो मैं जन्म-भर आपकी ऋणी रहूंगी। उसके हाथों मेरा सौभाग्य लुटा जा रहा है। आप अगर मेरी रक्षा कर सकते हैं, तो कीजिये। मैं आज घर से यह इरादा करके चली थी कि फिर लौटकर न आऊंगी। मैंने वड़ा ज़ोर मारा कि मोह के सारे वन्धनों को तोड़कर फेंक दूं, लेकिन औरत का हृदय वड़ा दुर्वल है मेहताजी! मोह उसका प्राण है। जीवन रहते मोह तोड़ना उसके लिए असम्भव है। मैंने आज तक अपनी व्यथा अपने मन में रखी, लेकिन आज मैं आपसे आंचल फैलाकर भिक्षा मांगती हूं। मालती से मेरा उद्धार कीजिये। मैं इस मायाविनी के हाथों मिटी जा रही हूं।

उसका स्वर आंसुओं में डूव गया। वह फूट-फूटकर रोने लगी।

मेहता अपनी नज़रों में कभी इतने ऊंचे न उठे थे, उस वक्त भी नहीं, जव उनकी रचना को फ्रांस की एकाडमी ने शताव्दी की सवसे उत्तम कृति कहकर उन्हें वधाई दी थी। जिस प्रतिमा की वह सच्चे दिल से पूजा करते थे, जिसे मन में वह अपनी इष्ट देवी समझते थे और जीवन के असूझ प्रसंगों में जिससे आदेश पाने की आशा रखते थे, वह आज उनसे भिक्षा मांग रही थी। उन्हें अपने अन्दर ऐसी शक्ति का अनुभव हुआ कि वह पर्वत को भी फाड़ सकते हैं, समुद्र को तैरकर पार कर सकते हैं। उन पर नशा-सा छा गया, जैसे वालक काठ के घोड़े पर सवार होकर समझ रहा हो, वह हवा में उड़ रहा है। काम कितना असाध्य है, इसकी सुधि न रही। अपने सिद्धान्तों की कितनी हत्या करनी पड़ेगी, विलकुल ख़याल न रहा। आश्वासन के स्वर में वोले—मुझे न मालूम था कि आप उससे इतनी दुखी हैं। मेरी वुद्धि का दोष, आंखों का दोष, कल्पना का दोष, और क्या कहूं, वरना आपको इतनी वेदना क्यों सहनी पड़ती?

गोविन्दी को शंका हुई। वोली—लेकिन सिंहनी से उसका शिकार छीनना आसान नहीं है, यह समझ लीजिये।

मेहता ने दृढ़ता से कहा—नारी-हृदय धरती के समान है, जिससे मिठास भी मिल सकती है, कड़वापन भी। उसके अन्दर पड़नेवाले वीज में जैसी शक्ति हो।

'आप पछता रहे होंगे, कहां से आज इससे मुलाक़ात हो गयी।'

'मैं अगर कहूं कि मुझे आज ही जीवन का वास्तविक आनन्द मिला है, तो शायद आपको विश्वास न आये।'

'मैंने आपके सिर पर इतना वड़ा भार रख दिया।'

मेहता ने श्रद्धा-मधुर स्वर में कहा—आप मुझे लज्जित कर रही हैं देवीजी! मैं कह चुका, मैं आपका सेवक हूं। आपके हित में मेरे प्राण भी निकल जायें, तो मैं अपना सौभाग्य समझूंगा। इसे कवियों का भावावेश न समझिये, यह मेरे जीवन का सत्य है। मेरे जीवन का क्या आदर्श है, आपको यह वतला देने का मोह मुझसे नहीं रुक सकता। मैं प्रकृति का पुजारी हूं और मनुष्य को उसके प्राकृतिक रूप में देखना चाहता हूं, जो प्रसन्न होकर हंसता है, दुखी होकर रोता है, और क्रोध में आकर मार डालता है। जो दुःख और सुख दोनों का दमन करते हैं, जो रोने को कमज़ोरी और हंसने को हलकापन समझते हैं, उनसे मेरा कोई मेल नहीं। जीवन मेरे लिए आनन्दमय क्रीड़ा है, सरल, स्वच्छन्द, जहां कुत्सा, ईर्ष्या और जलन के लिए कोई स्थान नहीं। मैं भूत की चिन्ता नहीं करता, भविष्य की परवा नहीं करता। मेरे लिए वर्तमान ही सव कुछ है। भविष्य की चिन्ता हमें कायर बना देती है, भूत का भार हमारी कमर तोड़ देता है। हममें जीवन की शक्ति इतनी कम है कि भूत और भविष्य में फैला देने से वह और भी क्षीण हो जाती है। हम व्यर्थ का भार अपने ऊपर लादकर रूढ़ियों और विश्वासों और इतिहासों के मलबे के नीचे दबे पड़े हैं, उठने का नाम नहीं लेते, वह सामर्थ्य ही नहीं रही। जो शक्ति, जो स्फूर्ति मानव-धर्म को पूरा करने में लगनी चाहिए थी, सहयोग में, भाई-चारे में, वह पुरानी अदावतों का वदला लेने और वाप-दादों का ऋण चुकाने की भेंट हो जाती है। और जो यह ईश्वर और मोक्ष का चक्कर है, इस पर तो मुझे हंसी आती है। यह मोक्ष और उपासना अहंकार की पराकाष्ठा है, जो हमारी मानवता को नष्ट किये डालती है। जहां जीवन है, क्रीड़ा है, चहक है, प्रेम है, वहीं ईश्वर है, और जीवन को सुखी बनाना ही उपासना है, और मोक्ष है। ज्ञानी कहता है, ओठों पर मुसकराहट न आये, आंखों में आंसू न आयें। मैं कहता हूं, अगर तुम हंस नहीं सकते और रो नहीं सकते, तो तुम मनुष्य नहीं हो, पत्थर हो। वह ज्ञान, जो मानवता को पीस डाले, ज्ञान नहीं है, कोल्हू है। मगर क्षमा कीजिये, मैं तो एक पूरी स्पीच ही दे गया। अब देर हो रही है, चलिये, मैं आपको पहुंचा दूं। बच्चा भी मेरी गोद में सो गया।

गोविन्दी ने कहा—मैं तो तांगा लायी हूं।

'तांगे को यहीं से विदा कर देता हूं।'

मेहता तांगे के पैसे चुकाकर लौटे, तो गोविन्दी ने कहा—लेकिन आप मुझे कहां ले जायेंगे?

मेहता ने चौंककर पूछा—क्यों, आपके घर पहुंचा दूंगा।

'वह मेरा घर नहीं है मेहताजी!'

'और क्या मिस्टर खन्ना का घर है?'

'यह भी क्या पूछने की बात है? अब वह घर मेरा नहीं रहा। जहां अपमान और धिक्कार मिले, उसे मैं अपना घर नहीं कह सकती, न समझ सकती हूं।'

मेहता ने दर्द-भरे स्वर में, जिसका एक-एक अक्षर उनके अन्तःकरण से निकल रहा था, कहा—नहीं देवीजी, वह घर आपका है, और सदैव रहेगा। उस घर की आपने सृष्टि की है, उसके प्राणियों की सृष्टि की है। और प्राण जैसे देह का सञ्चालन करता है, प्राण निकल जाये, तो देह की क्या गति होगी? मातृत्व महान् गौरव का पद है देवीजी! और गौरव के पद में कहां अपमान और धिक्कार और तिरस्कार नहीं मिला? माता का काम जीवन-दान देना है। जिसके हाथों में इतनी अतुल शक्ति है, उसे इसकी क्या परवाह कि कौन उससे रूठता है, कौन बिगड़ता है। प्राण के विना जैसे देह नहीं रह सकता, उसी तरह प्राण का भी देह ही सबसे उपयुक्त स्थान है। मैं आपको धर्म और त्याग का क्या उपदेश दूं? आप तो उसकी सजीव प्रतिमा हैं। मैं तो यही कहूंगा कि...

गोविन्दी ने अधीर होकर कहा—लेकिन मैं केवल माता ही तो नहीं हूं, नारी भी तो हूं?

मेहता ने एक मिनट तक मौन रहने के वाद कहा—हां, हैं, लेकिन मैं समझता हूं कि नारी केवल माता है, और इसके उपरान्त वह जो कुछ है, वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र। मातृत्व संसार की

सवसे वड़ी साधना, सवसे वड़ी तपस्या, सवसे वड़ा त्याग और सवसे महान् विजय है। एक शब्द में उसे लय कहूंगा—जीवन का, व्यक्तित्व का और नारीत्व का भी। आप मिस्टर खन्ना के विषय में इतना ही समझ लें कि वह अपने होश में नहीं हैं। वह जो कुछ कहते हैं या करते हैं, वह उन्माद की दशा में करते हैं, मगर यह उन्माद शान्त होने में वहुत दिन न लगेंगे, और वह समय वहुत जल्द आयेगा, जव वह आपको अपनी इष्टदेवी समझेंगे।

गोविन्दी ने इसका कुछ जवाव न दिया। धीरे-धीरे कार की ओर चली। मेहता ने वढ़कर कार का द्वार खोल दिया। गोविन्दी अन्दर जा वैठी। कार चली, मगर दोनों मौन थे।

गोविन्दी जव अपने द्वार पर पहुंचकर कार से उतरी, तो विजली के प्रकाश में मेहता ने देखा, उसकी आंखें सजल हैं।

वच्चे घर में से निकल आये और अम्मां-अम्मां कहते हुए माता से लिपट गये। गोविन्दी के मुख पर मातृत्व की उज्ज्वल गौरवमयी ज्योति चमक उठी।

उसने मेहता से कहा—इस कष्ट के लिए आपको वहुत धन्यवाद। और सिर नीचा कर लिया। आंसू की एक वूंद उसके कपोल पर आ गिरी थी।

मेहता की आंखें भी सजल हो गयीं—इस ऐश्वर्य और विलास के वीच में भी यह नारी-हृदय कितना दुखी है!

:19:

मिर्ज़ा खुर्शेद का हाता क्लव भी है, कचहरी भी, अखाड़ा भी। दिन-भर जमघट लगा रहता है। मुहल्ले में अखाड़े के लिए कहीं जगह नहीं मिलती थी। मिर्ज़ा ने एक छप्पर डलवाकर अखाड़ा वनवा दिया है। वहां नित्य सौ-पचास लड़न्तिए आ जुटते हैं। मिर्ज़ाजी भी उनके साथ ज़ोर करते हैं। मुहल्ले की पंचायतें भी यहीं होती हैं। मियां-वीवी और सास-वहू और भाई-भाई के झगड़े-टण्टे यहीं चुकाये जाते हैं। मुहल्ले के सामाजिक जीवन का यही केन्द्र है और राजनीतिक आन्दोलन का भी। आये दिन सभाएं होती रहती हैं। यहीं स्वयंसेवक टिकते हैं, यहीं उनके प्रोग्राम वनते हैं, यहीं से नगर का राजनीतिक सञ्चालन होता है। पिछले जलसे में मालती नगर कांग्रेस कमेटी की सभानेत्री चुन ली गयी है। तव से इस स्थान की रौनक़ और भी वढ़ गयी है।

गोवर को यहां रहते साल-भर हो गया। अव वह सीधा-सादा ग्रामीण युवक नहीं है। उसने वहुत कुछ दुनिया देख ली, और संसार का रंग-ढंग भी कुछ-कुछ समझने लगा है। मूल में वह अव भी देहाती है, पैसे को दांत से पकड़ता है, स्वार्थ को कभी नहीं छोड़ता, और परिश्रम से जी नहीं चुराता, न कभी हिम्मत हारता है, लेकिन शहर की हवा उसे भी लग गयी है। उसने पहले महीने तो केवल मजूरी की और आधा पेट खाकर थोड़े रुपये वचा लिये। फिर वह कचालू और मटर और दही-वड़े के खोंचे लगाने लगा। इधर ज़्यादा लाभ देखा, तो नौकरी छोड़ दी। गरमियों में शर्वत और वरफ़ की दुकान उठा दी और गरम चाय पिलाने लगा। अव उसकी रोज़ाना आमदनी ढाई-तीन रुपये से कम नहीं। उसने अंग्रेज़ी फैशन के वाल कटवा लिये हैं, महीन धोती और पम्प शू पहनता है। एक लाल ऊनी चादर खरीद ली और पान-सिगरेट का शौक़ीन हो गया है। सभाओं में आने-जाने से उसे कुछ-कुछ राजनीतिक ज्ञान भी हो चला है। राष्ट्र और वर्ग का अर्थ समझने लगा है। सामाजिक रूढ़ियों की प्रतिष्ठा और लोक-निन्दा का भय अव उसमें वहुत कम रह गया है। आये दिन पंचायतों ने उसे निस्संकोच वना दिया है। जिस वात के पीछे वह यहां घर से दूर, मुंह छिपाये पड़ा हुआ है, उसी तरह की, वल्कि उससे भी कहीं निन्दास्पद वातें यहां नित्य हुआ करती हैं, और कोई भागता नहीं। फिर वही क्यों इतना डरे और मुंह चुराये?

इतने दिनों में उसने एक पैसा भी घर नहीं भेजा। वह माता-पिता को रुपये-पैसे के मामले में

इतना चतुर नहीं समझता। वे लोग तो रुपये पाते ही आकाश में उड़ने लगेंगे। दादा को तुरन्त गया करने की और अम्मां को गहने वनवाने की धुन सवार हो जायेगी। ऐसे व्यर्थ के कामों के लिए उसके पास रुपये नहीं हैं। अव वह छोटा-मोटा महाजन है। पड़ोस के एक्केवालों और धोबियों को सूद पर रुपये उधार देता है। इस दस-ग्यारह महीने में ही उसने अपनी मेहनत और किफ़ायत और पुरुषार्थ से अपना स्थान वना लिया है और अव झुनिया को यहीं लाकर रखने की वात सोच रहा है।

तीसरे पहर का समय है। वह सड़क के नल पर नहाकर आया है और शाम के लिए आलू उवाल रहा है कि मिर्ज़ा खुर्शेद आकर द्वार पर खड़े हो गये। गोवर अव उनका नौकर नहीं है, पर अदव उसी तरह करता है और उनके लिए जान देने को तैयार रहता है। द्वार पर जाकर पूछा—क्या हुक्म है सरकार?

मिर्ज़ा ने खड़े-खड़े कहा—तुम्हारे पास कुछ रुपये हों, तो दे दो। आज तीन दिन से वोतल खाली पड़ी हुई है, जी वहुत वेचैन हो रहा है।

गोवर ने इसके पहले भी दो-तीन वार मिर्ज़ाजी को रुपये दिये थे, पर अव तक वसूल न कर सका था। तक़ाज़ा करते डरता था और मिर्ज़ाजी रुपये लेकर देना न जानते थे। उनके हाथ में रुपये टिकते ही न थे। इधर आये, उधर ग़ायव। यह तो न कह सका, मैं रुपये न दूंगा या मेरे पास रुपये नहीं हैं, शराव की निन्दा करने लगा—आप इसे छोड़ क्यों नहीं देते सरकार? क्या इसके पीने से कुछ फ़ायदा होता है?

मिर्ज़ा ने कोठरी के अन्दर खाट पर वैठते हुए कहा—तुम समझते हो, मैं छोड़ना नहीं चाहता और शौक़ से पीता हूं। मैं इसके वग़ैर ज़िन्दा नहीं रह सकता। तुम अपने रुपये के लिए न डरो, मैं एक-एक कौड़ी अदा कर दूंगा।

गोवर अविचलित रहा—मैं सच कहता हूं मालिक, मेरे पास इस समय रुपये होते, तो आपसे इनकार करता?

'दो रुपये भी नहीं दे सकते?'

'इस समय तो नहीं हैं।'

'मेरी अंगूठी गिरो रख लो।'

गोवर का मन ललचा उठा, मगर वात कैसे वदले?

वोला—यह आप क्या कहते हैं मालिक, रुपये होते, तो आपको दे देता, अंगूठी की कौन वात थी?

मिर्ज़ा ने अपने स्वर में वड़ा दीन आग्रह भरकर कहा—मैं फिर तुमसे कभी न मांगूंगा गोवर! मुझसे खड़ा नहीं हुआ जा रहा है। इस शराव की वदौलत मैंने लाखों की हैसियत विगाड़ दी और भिखारी हो गया। अव मुझे भी ज़िद पड़ गयी है कि चाहे भीख मांगनी पड़े, इसे छोडूंगा नहीं।

जव गोवर ने अवकी वार इनकार किया, तो मिर्ज़ा साहव निराश होकर चले गये। शहर में उनके हज़ारों मिलनेवाले थे। कितने ही उनकी वदौलत वन गये थे। कितनों ही की गाढ़े समय पर मदद की थी, पर ऐसे से वह मिलना भी न पसन्द करते थे। उन्हें ऐसे हज़ारों लटके मालूम थे, जिससे वह समय-समय पर रुपयों के ढेर लगा देते थे, पर पैसे की उनकी निगाह में कोई क़द्र न थी। उनके हाथ में रुपये जैसे काटते थे। किसी-न-किसी वहाने उड़ाकर ही उनका चित्त शान्त होता था।

गोवर आलू छीलने लगा। साल-भर के अन्दर ही वह इतना काइयां हो गया था और पैसा जोड़ने में इतना कुशल कि अचरज होता था। जिस कोठरी में वह रहता है, वह मिर्ज़ा साहव ने दी है। इस कोठरी और वरामदे का किराया वड़ी आसानी से पांच रुपया मिल सकता है। गोवर लगभग साल-भर से उसमें रहता है, लेकिन मिर्ज़ा ने न कभी किराया मांगा, न उसने दिया। उन्हें शायद ख़याल भी न था कि इस कोठरी का कुछ किराया भी मिल सकता है।

थोड़ी देर में एक एक्केवाला रुपये मांगने आया। अलादीन नाम था, सिर घुटा हुआ, खिचड़ी दाढ़ी और काना। उसकी लड़की विदा हो रही थी। पांच रुपये की उसे ज़रूरत थी। गोबर ने एक आना रुपया सूद पर दे दिये।

अलादीन ने धन्यवाद देते हुए कहा—भैया, अब बाल-बच्चों को बुला लो। कब तक हाथ से ठोंकते रहोगे?

गोवर ने शहर के ख़र्च का रोना रोया—थोड़ी आमदनी में गृहस्थी कैसे चलेगी?

अलादीन वीड़ी जलाता हुआ बोला—खरच अल्लाह देगा भैया! सोचो, कितना आराम मिलेगा! मैं कहता हूं, जितना तुम अकेले खरच करते हो, उसी में गृहस्थी चल जायेगी। औरत के हाथ में बड़ी वरक्कत होती है। खुदा क़सम जब मैं अकेला यहां रहता था, तो चाहे कितना ही कमाऊं, खा-पी सब वरावर। वीड़ी-तमाखू को भी पैसा न रहता। उस पर हैरानी। थके-मांदे आओ, तो घोड़े को खिलाओ और टहलाओ। फिर नानबाई की दुकान पर दौड़ो। नाक में दम आ गया। जब से घरवाली आ गयी, उसी कमाई में उसकी रोटियां भी निकल आती हैं और आराम भी मिलता है। आख़िर आदमी आराम के लिए ही तो कमाता है। जब जान खपाकर भी आराम न मिला, तो ज़िन्दगी ही गारत हो गयी। मैं तो कहता हूं, तुम्हारी कमाई बढ़ जायेगी भैया! जितनी देर में आलू और मटर उबालते हो, उतनी देर में दो-चार प्याले चाय बेच लोगे। अब चाय बारहों मास चलती है। रात को लेटोगे, तो घरवाली पांव दबायेगी। सारी थकान मिट जायेगी।

यह बात गोवर के मन में बैठ गयी। जी उचाट हो गया। अब तो वह झुनिया को लेकर ही रहेगा। आलू चूल्हे पर चढ़े रह गये, और उसने घर चलने की तैयारी कर दी, मगर याद आया कि होली आ रही है, इसलिए होली का सामान भी लेता चले। कृपण लोगों में उत्सवों पर दिल खोलकर ख़र्च करने की जो प्रवृत्ति होती है, वह उसमें भी सजग हो गयी। आख़िर इसी दिन के लिए तो कौड़ी-कौड़ी जोड़ रहा था। वह मां, बहिनों और झुनिया के लिए एक-एक जोड़ा साड़ी ले जायेगा। होरी के लिए एक धोती और एक चादर। सोना के लिए तेल की शीशी ले जायेगा, और एक जोड़ा चप्पल। रूपा के लिए जापानी चूड़ियां और झुनिया के लिए एक पिटारी, जिसमें तेल, सिन्दूर और आईना होगा। बच्चे के लिए टोप और फ्राक, जो वाज़ार में वना-वनाया मिलता है। उसने रुपये निकाले और बाज़ार चला। दोपहर तक सारी चीज़ें आ गयीं। बिस्तर भी बंध गया, मुहल्लेवालों को ख़बर हो गयी, गोबर घर जा रहा है। कई मर्द-औरत उसे विदा करने आये। गोबर ने उन्हें अपना घर सौंपते हुए कहा—तुम्हीं लोगों पर छोड़े जाता हूं। भगवान् ने चाहा, तो होली के दूसरे दिन लौटूंगा।

एक युवती ने मुसकराकर कहा—मेहरिया को विना लिये न आना, नहीं घर में न घुसने पाओगे।

दूसरी प्रौढ़ा ने शिक्षा दी—हां, और क्या, वहुत दिनों तक चूल्हा फूंक चुके। ठिकाने से रोटी तो मिलेगी।

गोवर ने सवको राम-राम किया। हिन्दू भी थे, मुसलमान भी थे, सभी से मित्रभाव था, सब एक-दूसरे के दुःख-दर्द के साथी। रोज़ा रखनेवाले रोज़ा रखते थे, एकादशी रखनेवाले एकादशी। कभी-कभी विनोद-भाव से एक-दूसरे पर छींटे भी उड़ा लेते थे। गोवर अलादीन की नमाज़ को उठा-वैठी कहता, अलादीन पीपल के नीचे स्थापित सैकड़ों छोटे-वड़े शिवलिंगों को वटखरे वताता, लेकिन साम्प्रदायिक द्वेष का नाम भी न था। गोवर घर जा रहा है। सब उसे हंसी-खुशी विदा करना चाहते हैं।

इतने में भूरे एक्का लेकर आ गया। अभी दिन-भर का धावा मारकर आया था। ख़बर मिली, गोवर जा रहा है। वैसे ही एक्का उधर फेर दिया। घोड़े ने आपत्ति की। उसे कई चाबुक लगाये। गोबर ने एक्के पर सामान रखा, एक्का बढ़ा, पहुंचानेवाले गली के मोड़ तक पहुंचाने आये, तब गोबर ने

सबको राम-राम किया और एक्के पर बैठ गया।

सड़क पर एक्का सरपट दौड़ा जा रहा था। गोबर घर जाने की खुशी में मस्त था। भूरे उसे घर पहुंचाने की खुशी में मस्त था, और घोड़ा था पानीदार। घोड़ा चला जा रहा था। बात की बात में स्टेशन आ गया।

गोबर ने प्रसन्न होकर एक रुपया कमर से निकालकर भूरे की तरफ़ बढ़ाकर कहा—लो, घरवालों के लिए मिठाई लेते जाना।

भूरे ने कृतज्ञता-भरे तिरस्कार से उसकी ओर देखा—तुम मुझे ग़ैर समझते हो भैया? एक दिन ज़रा एक्के पर बैठ गये, तो मैं तुमसे इनाम लूंगा? जहां तुम्हारा पसीना गिरे, वहां खून गिराने को तैयार हूं। इतना छोटा दिल नहीं पाया है, और ले भी लूं, तो घरवाली मुझे जीता छोड़ेगी?

गोबर ने फिर कुछ न कहा। लज्जित होकर अपना असबाब उतारा और टिकट लेने चल दिया।

:20:

फागुन अपनी झोली में नवजीवन की विभूति लेकर आ पहुंचा था। आम के पेड़ दोनों हाथों से बौर की सुगन्ध बांट रहे थे, और कोयल आम की डालियों में छिपी हुई संगीत का गुप्त दान कर रही थी।

गांवों में ऊख की बोआई लग गयी थी। अभी धूप नहीं निकली, पर होरी खेत में पहुंच गया है। धनिया, सोना, रूपा तीनों तलैया से ऊख के भीगे हुए गट्ठे निकाल-निकालकर खेत में ला रही हैं, और होरी गंड़ासे से ऊख के टुकड़े कर रहा है। अब वह दातादीन की मज़दूरी करने लगा है। किसान नहीं, मजूर है। दातादीन से अब उसका पुरोहित-जजमान का नाता नहीं, मालिक-मज़दूर का नाता है।

दातादीन ने आकर डांटा—हाथ और फुरती से चलाओ होरी! इस तरह तो तुम दिन-भर में न काट सकोगे।

होरी ने आहत अभिमान के साथ कहा—चला ही तो रहा हूं महाराज, बैठा तो नहीं हूं।

दातादीन मजूरों से रगड़कर काम लेते थे, इसलिए उनके यहां कोई मजूर टिकता न था। होरी उनका स्वभाव जानता था, पर जाता कहां?

पण्डित उसके सामने खड़े होकर बोले—चलाने-चलाने में भेद है। एक चलाना वह है कि घड़ी-भर में काम तमाम, दूसरा चलाना वह है कि दिन-भर में भी एक बोझ ऊख न कटे।

होरी ने विष का घूंट पीकर और ज़ोर से हाथ चलाना शुरू किया। इधर महीनों से उसे पेट-भर भोजन न मिलता था। प्रायः एक जून तो चबैने पर ही कटता था। दूसरे जून भी कभी आधा पेट भोजन मिला, कभी कड़ाका हो गया। कितना चाहता था कि हाथ और जल्दी उठे, मगर हाथ जवाब दे रहा था। इस पर दातादीन सिर पर सवार थे। क्षण-भर दम ले लेने पाता, तो ताज़ा हो जाता, लेकिन दम कैसे ले? घुड़कियां पड़ने का भय था।

धनिया और दोनों लड़कियां, ऊख के गट्ठे लिये गीली-साड़ियों से लथपथ, कीचड़ में सनी हुई आयीं, और गट्ठे पटककर दम मारने लगीं कि दातादीन ने डांट बतायी—यहां तमाशा क्या देखती है धनिया? जा, अपना काम कर। पैसे सेंत में नहीं आते। पहर-भर में तू एक खेप लायी है। इस हिसाब से दिन-भर में भी ऊख न ढुल पायेगी।

धनिया ने त्योरी बदलकर कहा—क्या जरा भी दम न लेने दोगे महाराज? हम भी तो आदमी हैं। तुम्हारी मजूरी करने से बैल नहीं हो गये। जरा मूड़ पर एक गट्ठा लादकर लाओ, तो हाल मालूम हो।

दातादीन बिगड़ उठे—पैसे देते हैं काम करने के लिए, दम मारने के लिए नहीं। दम मार लेना है,

तो घर जाकर दम लो।

धनिया कुछ कहने ही जा रही थी कि होरी ने फटकार बतायी—तू जाती क्यों नहीं धनिया? क्यों हुज्जत कर रही है?

धनिया ने बीड़ा उठाते हुए कहा—जा तो रही हूं, लेकिन चलते हुए बैल को आंगी न देना चाहिए।

दातादीन ने लाल आंखें निकाल लीं—जान पड़ता है, अभी मिज़ाज ठण्डा नहीं हुआ, जभी दाने-दाने को मोहताज हो।

धनिया भला क्यों चुप रहने लगी थी—तुम्हारे द्वार पर भीख मांगने नहीं जाती।

दातादीन ने पैने स्वर में कहा—अगर यही हाल है, तो भीख भी मांगोगी।

धनिया के पास जवाब तैयार था, पर सोना उसे खींचकर तलैया की ओर ले गयी, नहीं बात बढ़ जाती। लेकिन आवाज़ की पहुंच के बाहर दिल की जलन निकाली—भीख मांगो तुम, जो भिखमंगे की जात हो। हम तो मजूर ठहरे, जहां काम करेंगे, वहीं चार पैसे पायेंगे।

सोना ने उसका तिरस्कार किया—अम्मां, जाने भी दो। तुम तो समय नहीं देखतीं, बात-बात पर लड़ने बैठ जाती हो।

होरी उन्मत्त की भांति सिर से ऊपर गंड़ासा उठा-उठाकर ऊख के टुकड़ों के ढेर करता जाता था। उसके भीतर जैसे आग लगी हुई थी। उसमें अलौकिक शक्ति आ गयी थी। उसमें जो पीढ़ियों का सञ्चित पानी था, वह इस समय जैसे भाप बनकर उसे यन्त्र की-सी अन्ध-शक्ति प्रदान कर रहा था। उसकी आंखों में अंधेरा छाने लगा। सिर में फिरकी-सी चल रही थी। फिर भी उसके हाथ यन्त्र की गति से, बिना थके, बिना रुके, उठ रहे थे। उसकी देह से पसीने की धारा निकल रही थी, मुंह से फिचकुर छूट रहा था, सिर में धम-धम शब्द हो रहा था, पर उस पर जैसे कोई भूत सवार हो गया हो!

सहसा उसकी आंखों में निविड़ अन्धकार छा गया। मालूम हुआ, वह ज़मीन में धंसा जा रहा है। उसने संभलने की चेष्टा से शून्य में हाथ फैला दिये और अचेत हो गया। गंड़ासा हाथ से छूट गया और वह औंधे मुंह ज़मीन पर पड़ गया।

उसी वक्त धनिया ऊख का गट्ठा लिये आयी। देखा, तो कई आदमी होरी को घेरे खड़े हैं। एक हलवाहा दातादीन से कह रहा था—मालिक, तुम्हें ऐसी बात न कहनी चाहिए, जो आदमी को लग जाये। पानी मरते ही मरते तो मरेगा।

धनिया ऊख का गट्ठा पटककर पागलों की तरह दौड़ी हुई होरी के पास गयी, और उसका सिर अपनी जांघ पर रखकर विलाप करने लगी—तुम मुझे छोड़कर कहां जाते हो? अरी सोना, दौड़कर पानी ला और जाकर सोभा से कह दे, दादा बेहाल हैं। हाय भगवान्! अब, मैं कहां जाऊं? अब किसकी होकर रहूंगी? कौन मुझे धनिया कहकर पुकारेगा...।

लाला पटेश्वरी भागे हुए आये, स्नेह-भरी कठोरता से बोले—क्या करती है धनिया, होश संभाल। होरी को कुछ नहीं हुआ। गरमी से अचेत हो गये हैं। अभी होश आया जाता है। दिल इतना कच्चा कर लेगी, तो कैसे काम चलेगा?

धनिया ने पटेश्वरी के पांव पकड़ लिये और रोती हुई बोली—क्या करूं लालाजी, जी नहीं मानता। भगवान् ने सब कुछ हर लिया। मैं सबर कर गयी। अब सबर नहीं होता। हाय रे, मेरा हीरा!

सोना पानी लायी। पटेश्वरी ने होरी के मुंह पर पानी के छींटे दिये। कई आदमी अपनी-अपनी अंगोछियों से हवा कर रहे थे। होरी की देह ठण्डी पड़ गयी थी। पटेश्वरी को भी चिन्ता हुई, पर धनिया को बराबर साहस देते जाते थे।

धनिया अधीर होकर बोली—ऐसा कभी नहीं हुआ था लाला, कभी नहीं।

पटेश्वरी ने पूछा—रात कुछ खाया?

धनिया बोली—हां, रोटियां पकायी थीं, लेकिन आजकल हमारे ऊपर जो बीत रही है, वह क्या तुमसे छिपा है? महीनों से भरपेट रोटी नसीब नहीं हुई। कितना समझाती हूं, जान रखकर काम करो, लेकिन आराम तो हमारे भाग्य में लिखा ही नहीं।

सहसा होरी ने आंखें खोल दीं और उड़ती हुई नज़रों से इधर-उधर ताका।

धनिया जैसे जी उठी। विह्वल होकर उसके गले से लिपटकर बोली—अब कैसा जी है तुम्हारा? मेरे तो परान नहों में समा गये थे।

होरी ने कातर स्वर में कहा—अच्छा हूं। न जाने कैसा जी हो गया था।

धनिया ने स्नेह में डूबी भर्त्सना से कहा—देह में दम तो है नहीं, काम करते हो जान देकर। लड़कियों का भाग था, नहीं तुम तो ले ही डूबे थे।

पटेश्वरी ने हंसकर कहा—धनिया तो रो-पीट रही थी।

होरी ने आतुरता से पूछा—सचमुच तू रोती थी धनिया?

धनिया ने पटेश्वरी को पीछे ढकेलकर कहा—इन्हें बकने दो तुम। पूछो, वह क्यों कागद छोड़कर घर से दौड़े आये थे?

पटेश्वरी ने चिढ़ाया—तुम्हीं हीरा-हीरा कहकर रोती थीं। अब लाज के मारे मुकरती है। छाती पीट रही थी।

होरी ने धनिया को सजल नेत्रों से देखा—पगली है, और क्या? अब न जाने कौन-सा सुख देखने के लिए मुझे जिलाये रखना चाहती है।

दो आदमी होरी को टिकाकर घर लाये और चारपाई पर लिटा दिया। दातादीन तो कुढ़ रहे थे कि बोआई में देर हुई जाती है, पर मातादीन इतना निर्दयी न था। दौड़कर घर से गरम दूध लाया, और एक शीशी में गुलाबजल भी लेता आया। और दूध पीकर होरी में जैसे जान आ गयी।

उसी वक्त गोबर एक मज़दूर के सिर पर अपना सामान लादे आता दिखाई दिया।

गांव के कुत्ते पहले तो भूंकते हुए उसकी तरफ़ दौड़े, फिर दुम हिलाने लगे। रूपा ने कहा—'भैया आये' और तालियां बजाती हुई दौड़ी। सोना भी दो-तीन क़दम आगे बढ़ी, पर अपने उछाह को भीतर ही दबा गयी। एक साल में उसका यौवन कुछ और संकोचशील हो गया था। झुनिया भी घूंघट निकाले द्वार पर खड़ी हो गयी।

गोबर ने मां-बाप के चरण छुए और रूपा को गोद में उठाकर प्यार किया। धनिया ने उसे आशीर्वाद दिया और उसका सिर अपनी छाती से लगाकर, मानो अपने मातृत्व का पुरस्कार पा गयी। उसका हृदय गर्व से उमड़ा पड़ता था। आज वह रानी है। इस फटे-हाल में भी रानी है। कोई उसकी आंखें देखे, उसका मुख देखे, उसका हृदय देखे, उसकी चाल देखे। रानी भी लजा जायेगी। गोबर कितना बड़ा हो गया है और पहन-ओढ़कर कैसा भलामानस लगता है। धनिया के मन में कभी अमंगल की शंका न हुई थी। उसका मन कहता था, गोबर कुशल से है, और प्रसन्न है। आज उसे आंखों देखकर मानो उसके जीवन के धूल-धक्कड़ में गुम हुआ रत्न मिल गया है, मगर होरी ने मुंह फेर लिया था।

गोबर ने पूछा—दादा को क्या हुआ है, अम्मां?

धनिया घर का हाल कहकर उसे दुखी न करना चाहती थी। बोली—कुछ नहीं बेटा, जरा सिर में दर्द है। चलो, कपड़े उतारो, हाथ-मुंह धोओ? कहां थे तुम इतने दिन? भला, इस तरह कोई घर से भागता है? और कभी एक चिट्ठी तक न भेजी? आज साल-भर के बाद जाके सुधि ली है। तुम्हारी राह देखते-देखते आंखें फूट गयीं। यही आसा बंधी रहती थी कि कब वह दिन आयेगा और कब तुम्हें देखूंगी। कोई कहता था, मिरच भाग गया, कोई डमरा टापू बताता था। सुन-सुनकर जान सूख जाती थी। कहां रहे इतने दिन?

गोबर ने शरमाते हुए कहा—कहीं दूर नहीं गया था अम्मां, यहीं लखनऊ में तो था।

'और इतने नियरे रहकर भी एक चिट्ठी न लिखी?'

उधर सोना और रूपा भीतर गोबर का सामान खोलकर चीज़ों का बांट-बखरा करने में लगी हुई थीं, लेकिन झुनिया दूर खड़ी थी। उसके मुख पर आज मान का शोख रंग झलक रहा है। गोबर ने उसके साथ जो व्यवहार किया है, आज वह उसका बदला लेगी। असामी को देखकर महाजन उससे वह रुपये वसूल करने को भी व्याकुल हो रहा है, जो उसने बट्टेखाते में डाल दिये थे।

बच्चा उन चीज़ों को लपक रहा था और चाहता था, सब-का-सब मुंह में डाल ले, पर झुनिया उसे गोद से उतरने न देती थी।

सोना बोली—भैया तुम्हारे लिए ऐना-कंघी लाये हैं भाभी!

झुनिया ने उपेक्षा भाव से कहा—मुझे ऐना-कंघी न चाहिए। अपने पास रखे रहें।

रूपा ने बच्चे की चमकीली टोपी निकाली—ओ हो! यह तो चुन्नू की टोपी है। और उसे बच्चे के सिर पर रख दिया।

झुनिया ने टोपी उतारकर फेंक दी और सहसा गोबर को अन्दर आते देखकर वह बालक को लिये कोठरी में चली गयी। गोबर ने देखा, सारा सामान खुला पड़ा है। उसका जी तो चाहता है, पहले झुनिया से मिलकर अपना अपराध क्षमा कराये, लेकिन अन्दर जाने का साहस नहीं होता। वहीं बैठ गया और चीज़ें निकाल-निकालकर रूपा को देने लगा, मगर रूपा इसलिए फूल गयी कि उसके लिए चप्पल क्यों नहीं आये, और सोना उसे चिढ़ाने लगी, तू क्या करेगी चप्पल लेकर, अपनी गुड़िया से खेल। हम तो तेरी गुड़िया देखकर नहीं रोते, तू मेरी चप्पल देखकर क्यों रोती है? मिठाई बांटने की ज़िम्मेदारी धनिया ने अपने ऊपर ली। इतने दिनों के बाद लड़का कुशल से घर आया है। वह गांव-भर में बैना बंटवायेगी। एक गुलाबजामुन रूपा के लिए ऊंट के मुंह में जीरे के समान था। वह चाहती थी, हांडी उसके सामने रख दी जाये, वह कूद-कूद खाये।

अब सन्दूक खुला और उसमें से साड़ियां निकलने लगीं। सभी किनारदार थीं, जैसी पटेश्वरी लाला के घर में पहनी जाती हैं, मगर हैं बड़ी हलकी। ऐसी महीन साड़ियां भला कै दिन चलेंगी? बड़े आदमी जितनी महीन साड़ियां चाहें, पहनें। उनकी मेहरियों को बैठने और सोने के सिवा और कौन काम है। यहां तो खेत-खलिहान सभी कुछ है। अच्छा! होरी के लिए धोती के अतिरिक्त एक दुपट्टा भी है।

धनिया प्रसन्न होकर बोली—यह तुमने बड़ा अच्छा किया बेटा! इनका दुपट्टा बिलकुल तार-तार हो गया था।

गोबर को उतनी देर में घर की परिस्थिति का अन्दाज़ हो गया था। धनिया की साड़ी में कई पैवन्द लगे हुए थे। सोना की साड़ी सिर पर फटी हुई थी और उसमें से उसके बाल दिखाई दे रहे थे। रूपा की धोती में चारों तरफ़ झालरें-सी लटक रही थीं। सभी के चेहरे रूखे, किसी की देह पर चिकनाहट नहीं। जिधर देखो, विपन्नता का साम्राज्य था।

लड़कियां तो साड़ियों में मगन थीं। धनिया को लड़के के लिए भोजन की चिन्ता हुई। घर में थोड़ा-सा जौ का आटा सांझ के लिए सञ्चकर रखा हुआ था। इस वक्त तो चबैने पर कटती थी, मगर गोबर अब वह गोबर थोड़े ही है। उससे जौ का आटा खाया भी जायेगा? परदेस में न जाने क्या-क्या खाता-पीता रहा होगा? जाकर दुलारी की दुकान से गेहूं का आटा, चावल, घी उधार लायी। इधर महीने से सहुआइन एक पैसे की चीज़ भी उधार न देती थी, पर आज उसने एक बार भी न पूछा, पैसे कब दोगी।

उसने पूछा—गोबर तो खूब कमा के आया है न?

धनिया बोली—अभी तो कुछ नहीं खुला दीदी! अभी मैंने भी कुछ कहना उचित न समझा। हां,

सबके लिए किनारदार साड़ियां लाया है। तुम्हारे आसिरवाद से कुशल से लौट आया, मेरे लिए तो यही बहुत है।

दुलारी ने असीस दिया—भगवान् करे, जहां रहे, कुशल से रहे। मां-बाप को और क्या चाहिए? लड़का समझदार है और छोकरों की तरह उड़ाऊ नहीं है। हमारे रुपये अभी न मिलें, तो ब्याज तो दे दो। दिन-दिन बोझ बढ़ ही तो रहा है।

इधर सोना चुन्नू को उसका फ्राक और टोप और जूता पहनाकर राजा बना रही थी। बालक इन चीज़ों को पहनने से ज़्यादा हाथ में लेकर खेलना पसन्द करता था। अन्दर गोबर और झुनिया में मान-मनौवल का अभिनय हो रहा था।

झुनिया ने तिरस्कार-भरी आंखों से देखकर कहा—मुझे लाकर यहां बैठा दिया, आप परेदस की राह ली। फिर न खोज, न ख़बर कि मरती है या जीती है। साल-भर के बाद अब जाकर तुम्हारी नींद टूटी है। कितने बड़े कपटी हो तुम? मैं तो सोचती हूं कि तुम मेरे पीछे-पीछे आ रहे हो और आप उड़े, तो साल-भर के बाद लौटे। मरदों का विश्वास ही क्या, कहीं कोई ताक ली होगी। सोचा होगा, एक घर के लिए है ही, एक बाहर के लिए भी हो जाये।

गोबर ने सफ़ाई दी—झुनिया, मैं भगवान् की साक्षी देकर कहता हूं, जो मैंने कभी किसी की ओर ताका भी हो। लाज और डर के मारे घर से भागा जरूर, मगर तेरी याद एक छन के लिए भी मन से न उतरती थी। अब तो मैंने तय कर लिया है कि तुझे भी लेता जाऊंगा, इसीलिए आया हूं। तेरे घरवाले तो बहुत बिगड़े होंगे?

'दादा तो मेरी जान लेने पर ही उतारू थे।'

'सच?'

'तीनों जने यहां चढ़ आये थे। अम्मां ने ऐसा डांटा कि मुंह लेकर रह गये। हां, हमारे दोनों बैल खोल ले गये।'

'इतनी बड़ी जबरदस्ती, और दादा कुछ बोले नहीं?'

'दादा अकेले किस-किससे लड़ते? गांववाले तो नहीं ले जाने देते थे, लेकिन दादा ही भलमनसी में आ गये, तो और लोग क्या करते?'

'तो आजकल खेती-बारी कैसे हो रही है?'

'खेती-बारी सब टूट गयी। थोड़ी-सी पण्डित महाराज के साझे में है। ऊख बोयी ही नहीं गयी।'

गोबर की कमर में इस समय दो सौ रुपये थे। उसकी गरमी यों भी कम न थी। यह हाल सुनकर तो उसके बदन में आग ही लग गयी।

बोला—तो फिर पहले मैं उन्हीं से जाकर समझता हूं। उनकी यह मजाल कि मेरे द्वार से बैल खोल ले जायें? यह डाका है, खुला हुआ डाका। तीन-तीन साल को चले जायेंगे तीनों। यों न देंगे, तो अदालत से लूंगा। सारा घमण्ड तोड़ दूंगा।

वह उसी आवेश में चला था कि झुनिया ने पकड़ लिया और बोली—तो चले जाना, अभी ऐसी क्या जल्दी? कुछ आराम कर लो, कुछ खा-पी लो। सारा दिन तो पड़ा है। यहां बड़ी-बड़ी पञ्चायत हुई। पञ्चायत ने अस्सी रुपये डांड़ के लगाये। तीस मन अनाज ऊपर। उसी में तो और तबाही आ गयी।

सोना बालक को कपड़े-जूते पहनाकर लायी। कपड़े पहनकर वह जैसे सचमुच राजा हो गया था। गोबर ने उसे गोद में ले लिया, पर इस समय बालक के प्यार में उसे आनन्द न आया। उसका रक्त खौल रहा था और कमर के रुपये आंच और तेज़ कर रहे थे। वह एक-एक से समझेगा। पञ्चों को उस पर डांड़ लगाने का अधिकार क्या है? कौन होता है कोई उसके बीच में बोलनेवाला? उसने एक औरत रख ली, तो पञ्चों के बाप का क्या बिगाड़ा? अगर इसी बात पर वह फ़ौजदारी में दावा

कर दे, तो लोगों के हाथों में हथकड़ियां पड़ जायें। सारी गृहस्थी तहस-नहस हो गयी। क्या समझ लिया है उसे इन लोगों ने?

बच्चा उसकी गोद में ज़रा-सा मुस्कराया, फिर ज़ोर से चीख़ उठा, जैसे कोई डरावनी चीज़ देख ली हो।

झुनिया ने बच्चे को उसकी गोद से ले लिया और बोली—अब जाकर नहा-धो लो। किस सोच में पड़ गये? यहां सबसे लड़ने लगो, तो एक दिन निबाह न हो। जिसके पास पैसे हैं, वही बड़ा आदमी है, वही भला आदमी। पैसे न हों, तो उस पर सभी रोब जमाते हैं।

'मेरा गधापन था कि घर से भागा, नहीं देखता, कैसे कोई एक धेला डांड़ लेता।'

'सहर की हवा खा आये हो, तभी ये बातें सूझने लगी हैं, नहीं घर से भागते क्यों?'

'यही जी चाहता है कि लाठी उठाऊं और पटेश्वरी, दातादीन, झिंगुरी सब सालों को पीटकर गिरा दूं और उनके पेट से रुपये निकाल लूं।'

'रुपये की बहुत गरमी चढ़ी है साइत। लाओ निकालो, देखें, इतने दिन में क्या कमा लाये हो?'

उसने गोबर की कमर में हाथ लगाया। गोबर खड़ा होकर बोला—अभी क्या कमाया? हां, अब तुम चलोगी, तो कमाऊंगा। साल-भर तो सहर का रंग-ढंग पहचानने ही में ही लग गया।

'अम्मां जाने देंगी, तब तो?'

'अम्मां क्यों न जाने देंगी? उनसे मतलब?'

'वाह! मैं उनकी राजी बिना न जाऊंगी। तुम तो छोड़कर चलते बने, और मेरा कौन था यहां? वह अगर घर में न घुसने देतीं, तो मैं कहां जाती? जब तक जीऊंगी, उनका जस गाऊंगी और तुम भी क्या परदेस ही करते रहोगे?'

'और यहां बैठकर क्या करूंगा? कमाओ और मरो, इसके सिवा यहां और क्या रखा है? थोड़ी-सी अकल हो और आदमी काम करने से न डरे, तो वहां भूखों नहीं मर सकता। यहां तो अकल कुछ काम ही नहीं करती। दादा क्यों मुंह फुलाये हुए हैं?'

'अपने भाग बखानो कि मुंह फुलाकर छोड़ देते हैं। तुमने उपद्रव तो इतना बड़ा किया था कि उस क्रोध में पा जाते, तो मुंह लाल कर देते।'

'तो तुम्हें भी खूब गालियां देते होंगे?'

'कभी नहीं, भूलकर भी नहीं। अम्मां तो पहले बिगड़ी थीं, लेकिन दादा ने तो कभी कुछ नहीं कहा। जब बुलाते हैं, बड़े प्यार से। मेरा सिर भी दुखता है, तो बेचैन हो जाते हैं। अपने बाप को देखते तो मैं इन्हें देवता समझती हूं। अम्मां को समझाया करते हैं, बहू को कुछ न कहना। तुम्हारे ऊपर सैकड़ों बार बिगड़ चुके हैं कि इसे घर में बैठाकर आप न जाने कहां निकल गया। आजकल पैसे-पैसे की तंगी है। ऊख के रुपये बाहर-ही-बाहर उड़ गये। अब तो मजूरी करनी पड़ती है। आज बेचारे खेत में बेहोश हो गये। रोना-पीटना मच गया। तब से पड़े हैं।'

मुंह-हाथ धोकर और खूब बाल बनाकर गोबर गांव की दिग्विजय करने निकला। दोनों चाचाओं के घर जाकर राम-राम कर आया। फिर मित्रों से मिला। गांव में कोई विशेष परिवर्तन न था। हां, पटेश्वरी की नयी बैठक बन गयी थी और झिंगुरीसिंह ने दरवाज़े पर नया कुआं खुदवा लिया था। गोबर के मन में विद्रोह और भी ताल ठोंकने लगा। जिससे मिला, उसने उसका आदर किया, और युवकों ने तो उसे अपना हीरो बना लिया और उसके साथ लखनऊ जाने को तैयार हो गये। साल ही भर में वह क्या से क्या हो गया था?

सहसा झिंगुरीसिंह अपने कुएं पर नहाते हुए मिल गये। गोबर निकला, मगर न सलाम किया, न बोला। वह ठाकुर को दिखा देना चाहता था, मैं तुम्हें कुछ नहीं समझता।

झिंगुरीसिंह ने खुद ही पूछा—कब आये गोबर, मजे में तो रहे? कहीं नौकर थे लखनऊ में?

गोवर ने हेकड़ी के साथ कहा—लखनऊ गुलामी करने नहीं गया था। नौकरी है तो गुलामी। मैं व्यापार करता था।

ठाकुर ने कुतूहल-भरी आंखों से उसे सिर से पांव तक देखा—कितना रोज पैदा करते थे?

गोवर ने छुरी को भाला वनाकर उनके ऊपर चलाया—यही कोई ढाई-तीन रुपये मिल जाते थे। कभी चटक गयी, तो चार भी मिल गये। इससे वेसी नहीं।

झिंगुरी वहुत नोच-खसोट करके भी पच्चीस-तीस से ज्यादा न कमा पाते थे। और यह गंवार लौंडा सौ रुपये कमाने लगा। उनका मस्तक नीचा हो गया। अव किस दावे से उस पर रोव जमा सकते हैं? वर्ण में वह ज़रूर ऊंचे हैं, लेकिन वर्ण कौन देखता है? उससे स्पर्द्धा करने का यह अवसर नहीं, अव तो उसकी चिरौरी करके उससे कुछ काम निकाला जा सकता है। बोले—इतनी कमाई कम नहीं है बेटा, जो खरच करते वने। गांव में तीन आने भी नहीं मिलते। भवनिया (उनके जेठे पुत्र का नाम था) को भी कहीं कोई काम दिला दो, तो भेज दूं। न पढ़े, न लिखे, एक-न-एक उपद्रव करता रहता है। कहीं मुनीमी खाली हो, तो कहना, नहीं साथ ही लेते जाना। तुम्हारा तो मित्र है। तलव थोड़ी हो, कुछ गम नहीं। हां, चार पैसे की ऊपर गुंजाइस हो।

गोबर ने अभिमान-भरी हंसी के साथ कहा—यह ऊपरी आमदनी की चाट आदमी को खराब कर देती है ठाकुर, लेकिन हम लोगों की आदत कुछ ऐसी बिगड़ गयी है कि जब तक बेईमानी न करें, पेट ही नहीं भरता। लखनऊ में मुनीमी मिल सकती है, लेकिन हर एक महाजन ईमानदार चौकस आदमी चाहता है। मैं भवानी को किसी के गले बांध तो दूं, लेकिन पीछे इन्होंने कहीं हाथ लपकाया, तो वह तो मेरी गर्दन पकड़ेगा। संसार में इलम की कदर नहीं है, ईमान की कदर है।

यह तमाचा लगाकर गोबर आगे निकल गया। झिंगुरी मन में ऐंठकर रह गये। लौंडा कितने घमण्ड की बातें करता है, मानो धर्म का अवतार ही तो है।

इसी तरह गोबर ने दातादीन को भी रगड़ा। भोजन करने जा रहे थे। गोबर को देखकर प्रसन्न होकर बोले—मजे में तो रहे गोबर? सुना, वहां कोई अच्छी जगह पा गये हो। मातादीन को भी किसी हीले से लगा दो न? भंग पीकर पड़े रहने के सिवा यहां और कौन काम है?

गोबर ने बनाया—तुम्हारे घर में किस बात की कमी है महाराज, जिस जजमान के द्वार पर जाकर खड़े हो जाओ, कुछ-न-कुछ मार ही लाओगे। जनम में लो, मरन में लो, सादी में लो, गमी में लो, खेती करते हो, लेन-देन करते हो, दलाली करते हो, किसी से कुछ भूल-चूक हो जाये, तो डांड़ लगाकर उसका घर लूट लेते हो। इतनी कमाई से पेट नहीं भरता? क्या करोगे बहुत-सा धन बटोरकर कि साथ ले जाने की कोई जुगत निकाल ली है?

दातादीन ने देखा, गोवर कितनी ढिठाई से बोल रहा है, अदब और लिहाज़ जैसे भूल गया। अभी शायद नहीं जानता कि बाप मेरी गुलामी कर रहा है। सच है, छोटी नदी को उमड़ते देर नहीं लगती, मगर चेहरे पर मैल नहीं आने दिया। जैसे वड़े लोग बालकों से मूंछें उखड़वाकर भी हंसते हैं, उन्होंने भी इस फटकार को हंसी में लिया और विनोद-भाव से बोले—लखनऊ की हवा खा के तू वड़ा चण्ट हो गया है गोबर! ला, क्या कमा के लाया है, कुछ निकाल। सच कहता हूं गोवर, तुम्हारी वहुत याद आती थी। अव तो रहोगे कुछ दिन?

'हां, अभी तो रहूंगा कुछ दिन। उन पञ्चों पर दावा करना है, जिन्होंने डांड़ के वहाने मेरे डेढ़ सौ रुपये हजम किये हैं। देखें, कौन मेरा हुक्का-पानी बन्द करता है और कैसे बिरादरी मुझे जात से बाहर करती है?'

यह धमकी देकर वह आगे वढ़ा। उसकी हेकड़ी ने उसके युवक भक्तों को रोव में डाल दिया था।

एक ने कहा—कर दो नालिस गोबर भैया! वुड्ढा काला सांप है, जिसके काटे मन्तर नहीं। तुमने अच्छी डांट वतायी। पटवारी के कान भी जरा गरमा दो। वड़ा मुतफन्नी है दादा। बाप-वेटे में आग

लगा दे, भाई-भाई में आग लगा दे। कारिन्दे से मिलकर असामियों का गला काटता है। अपने खेत पीछे जोतो, पहले उसके खेत जोत दो। अपनी सिंचाई पीछे करो, पहले उसकी सिंचाई कर दो।

गोवर ने मूंछों पर ताव देकर कहा—मुझसे क्या कहते हो भाई, साल-भर में भूल थोड़े ही गया? यहां मुझे रहना ही नहीं है, नहीं एक-एक को नचाकर छोड़ता। अबकी होली धूम-धाम से मनाओ और होली का स्वांग वनाकर इन सवों को खूव भिगो-भिगोकर लगाओ।

होली का प्रोग्राम वनने लगा। खूव भंग घुटे, दूधिया भी, नमकीन भी, और रंगों के साथ कालिख भी वने और मुखियों के मुंह पर कालिख ही पोती जाये। होली में कोई वोल ही क्या सकता है? फिर स्वांग निकले और पञ्चों की भद्द उड़ायी जाये। रुपये-पैसे की कोई चिन्ता नहीं। गोवर भाई कमाकर आये हैं।

भोजन करके गोवर भोला से मिलने चला। जव तक अपनी जोड़ी लाकर अपने द्वार पर वांध न दे, उसे चैन नहीं। वह लड़ने-मरने को तैयार था।

होरी ने कातर स्वर में कहा—रार मत वढ़ाओ वेटा! भोला गोई ले गये, भगवान् उनका भला करे, लेकिन उनके रुपये तो आते ही थे।

गोवर ने उत्तेजित होकर कहा—दादा, तुम वीच में न वोलो। उनकी गाय पचास की थी। हमारी गोई डेढ़ सौ में आयी थी। तीन साल हमने जोती। फिर भी सौ की थी ही। वह अपने रुपये के लिए दावा करते, डिग्री कराते या जो चाहते करते, हमारे द्वार से जोड़ी क्यों खोल ले गये? और तुम्हें क्या कहूं? इधर गोई खो वैठे, उधर डेढ़ सौ रुपये डांड़ के भरे। यह है गऊ होने का फल। मेरे सामने जोड़ी खोल ले जाते, तो देखता। तीनों को यहां जमीन पर सुला देता, और पञ्चों से तो वात तक न करता। देखता, कौन विरादरी से अलग करता है, लेकिन तुम वैठे ताकते रहे।

होरी ने अपराधी की भांति सिर झुका लिया, लेकिन धनिया यह अनीत कैसे देख सकती थी? वोली—वेटा, तुम भी अन्धेर करते हो। हुक्का-पानी वन्द हो जाता, तो गांव में निर्वाह होता? जवान लड़की वैठी है, उसका कहीं ठिकाना लगाना है कि नहीं? मरने-जीने में आदमी विरादरी...

गोवर ने वात काटी—हुक्का-पानी सव तो था, विरादरी में आदर भी था, फिर मेरा व्याह क्यों नहीं हुआ? वोलो? इसलिए कि घर में रोटी न थी। रुपये हों, तो न हुक्का-पानी का काम है, न जात-विरादरी का। दुनिया पैसे की है, हुक्का-पानी कोई नहीं पूछता।

धनिया तो वच्चे का रोना सुनकर भीतर चली गयी और गोवर भी घर से निकला। होरी वैठा सोच रहा था। लड़के की अकल जैसे खुल गयी है। कैसी वेलाग बात कहता है। उसकी वक्र वुद्धि ने होरी के धर्म और नीति को परास्त कर दिया था।

सहसा होरी ने उससे पूछा—मैं भी चला चलूं?

'मैं लड़ाई करने नहीं जा रहा हूं दादा, डरो मत। मेरी ओर तो कानून है, मैं क्यों लड़ाई करने लगा?'

'मैं भी चलूं, तो कोई हरज है?'

'हां, वड़ा हरज है। तुम वनी वात विगाड़ दोगे।'

होरी चुप हो गया और गोवर चल दिया।

पांच मिनट भी न हुए होंगे कि धनिया वच्चे को लिये वाहर निकली और वोली—क्या गोवर चला गया, अकेले? मैं कहती हूं, तुम्हें भगवान् कभी वुद्धि देंगे या नहीं। भोला क्या सहज में गोई देगा? तीनों उस पर टूट पड़ेंगे वाज की तरह। भगवान् ही कुशल करें। अव किससे कहूं, दौड़कर गोवर को पकड़ ले। तुमसे तो मैं हार गयी।

होरी ने कोने से डण्डा उठाया और गोवर के पीछे दौड़ा। गांव के वाहर [illegible] निगाह [illegible] दौड़ायी। एक क्षीण-सी रेखा क्षितिज से मिली हुई दिखाई दी। इतनी ही देर [illegible]

निकल गया। होरी की आत्मा उसे धिक्कारने लगी। उसने क्यों गोबर को रोका नहीं? अगर वह डांटकर कह देता, भोला के घर मत जाओ, तो गोबर कभी न जाता। और अब उससे दौड़ा भी तो नहीं जाता। वह हारकर वहीं बैठ गया और बोला—उसकी रच्छा करो महावीर स्वामी।

गोबर उस गांव में पहुंचा, तो देखा, कुछ लोग बरगद के नीचे बैठे जुआ खेल रहे हैं। उसे देखकर लोगों ने समझा, पुलिस का सिपाही है। कौड़ियां समेटकर भागे कि सहसा जंगी ने उसे पहचानकर कहा—अरे, यह तो गोबरधन है।

गोबर ने देखा, जंगी पेड़ की आड़ में खड़ा झांक रहा है। बोला—डरो मत जंगी भैया, मैं हूं। राम-राम! आज ही आया हूं। सोचा, चलूं सबसे मिलता आऊं, फिर न जाने कब आना हो। मैं तो भैया, तुम्हारे आसिरबाद से बड़े मजे में निकल गया। जिस राजा की नौकरी में हूं, उन्होंने मुझसे कहा है कि एक-दो आदमी मिल जायें, तो लेते आना। चौकीदारी के लिए चाहिए। मैंने कहा, सरकार ऐसे आदमी दूंगा कि चाहे जान चली जाये, मैदान से हटनेवाले नहीं, इच्छा हो, तो मेरे साथ चलो। अच्छी जगह है।

जंगी उसका ठाट-बाट देखकर रोब में आ गया। उसे कभी चमरौधे जूते भी मयस्सर न हुए थे, और गोबर चमाचम बूट पहने हुए था। साफ़-सुथरी धारीदार कमीज़, संवारे हुए बाल, पूरा बाबूसाहब बना हुआ। फटेहाल गोबर और इस परिष्कृत गोबर में बड़ा अन्तर था। हिंसा-भाव कुछ तो यों ही समय के प्रभाव से शान्त हो गया था और बचा-खुचा अब शान्त हो गया। जुआड़ी था ही, उस पर गांजे की लत। और घर में बड़ी मुश्किल से पैसे मिलते थे। मुंह में पानी भर आया। बोला—चलूंगा क्यों नहीं, यहां पड़ा-पड़ा मक्खी ही तो मार रहा हूं। कै रुपये मिलेंगे?

गोबर ने बड़े आत्मविश्वास से कहा—इसकी कुछ चिन्ता न करो। सब कुछ अपने ही हाथ में है। जो चाहोगे, वह हो जायेगा। हमने सोचा, जब घर में ही आदमी है, तो बाहर क्यों जायें।

जंगी ने उत्सुकता से पूछा—काम क्या करना पड़ेगा?

'काम चाहे चौकीदारी करो, चाहे तगादे पर जाओ। तगादे का काम सबसे अच्छा। असामी से गठ गये। आकर मालिक से कह दिया, घर पर है नहीं, चाहो तो रुपये-आठ आने रोज बना सकते हो।'

'रहने की जगह भी मिलती है?'

'जगह की कौन कमी? पूरा महल पड़ा है। पानी का नल, बिजली, किसी बात की कमी नहीं है। कामता हैं कि कहीं गये हैं?'

'दूध लेकर गये हैं। मुझे कोई बाजार नहीं जाने देता। कहते हैं, तुम तो गांजा पी जाते हो। मैं अब बहुत कम पीता हूं भैया, लेकिन दो पैसे रोज तो चाहिए ही। तुम कामता से कुछ न कहना। मैं तुम्हारे साथ चलूंगा।'

'हां-हां, बेखटके चलो। होली के बाद।'

'तो पक्की रही।'

दोनों आदमी बातें करते भोला के द्वार पर आ पहुंचे। भोला बैठे सुतली कात रहे थे। गोबर ने लपककर उनके चरण छुए और इस वक्त उसका गला सचमुच भर आया। बोला—काका, मुझसे जो कुछ भूल-चूक हुई, उसे क्षमा करो।

भोला ने सुतली कातना बन्द कर दिया और पथरीले स्वर में बोला—काम तो तुमने ऐसा ही किया था गोबर कि तुम्हारा सिर काट लूं, तो भी पाप न लगे, लेकिन अपने द्वार आये हो, अब क्या कहूं? जैसा मेरे साथ किया, उसकी सजा भगवान् देंगे। कब आये?

गोबर ने खूब नमक-मिर्च लगाकर अपने भाग्योदय का वृत्तान्त कहा और जंगी को अपने साथ ले जाने की अनुमति मांगी। भोला को जैसे बेमांगे वरदान मिल गया। जंगी घर पर एक-न-एक उपद्रव

करता रहता था। वाहर चला जायेगा, तो चार पैसे पैदा तो करेगा। न किसी को कुछ दे, अपना वोझ तो उठा लेगा।

गोवर ने कहा—नहीं काका, भगवान् ने चाहा और इनसे रहते वना, तो साल-दो साल में आदमी हो जायेंगे।

'हां, जव इनसे रहते वने।'

'सिर पर आ पड़ती है, तो आदमी आप संभल जाता है।'

'तो कव तक जाने का विचार है?'

'होली करके चला जाऊंगा। यहां खेती-वारी का सिलसिला फिर जमा दूं, तो निश्चिन्त हो जाऊं।'

'होरी से कहो, अव वैठके राम-राम करें।'

'कहता तो हूं, लेकिन जव उनसे वैठा जाये।'

'वहां किसी वैद से तो तुम्हारी जान-पहचान होगी। खांसी वहुत दिक कर रही है। हो सके, तो कोई दवाई भेज देना।'

'एक नामी वैद तो मेरे पड़ोस में रहते हैं। उनसे हाल कहके दवा वनवाकर भेज दूंगा। खांसी रात को जोर करती है कि दिन को?'

'नहीं वेटा, रात को। आंख नहीं लगती। नहीं वहां कोई डौल हो, तो मैं भी वहीं चलकर रहूं। यहां तो कुछ परता नहीं पड़ता।'

'रोजगार का जो मजा वहां है काका, यहां क्या होगा? यहां रुपये का दस सेर दूध भी कोई नहीं पूछता। हलवाइयों के गले लगाना पड़ता है। वहां पांच-छः सेर के भाव से चाहो, तो एक घड़ी में मनों दूध वेच लो।'

जंगी गोवर के लिए दूधिया शर्वत वनाने चला गया था। भोला ने एकान्त देखकर कहा—और भैया! अव इस जन्जाल से जी ऊव गया है। जंगी का हाल देखते ही हो। कामता दूध लेकर जाता है। सानी-पानी, खोलना-बांधना, सव मुझे करना पड़ता है। अव तो यही जी चाहता है कि सुख से कहीं एक रोटी खाऊं और पड़ा रहूं। कहां तक हाय-हाय करूं? रोज लड़ाई-झगड़ा। किस-किसके पांव सहलाऊं। खांसी आती है, रात को उठा नहीं जाता, पर कोई एक लोटा पानी को भी नहीं पूछता। पगहिया टूट गयी है, मुदा किसी को इसकी सुधि नहीं है। जव मैं वनाऊंगा तभी वनेगी।

गोवर ने आत्मीयता के साथ कहा—तुम चलो लखनऊ काका। पांच सेर का दूध वेचो, नगद। कितने ही वड़े-वड़े अमीरों से मेरी जान-पहचान है। मन-भर दूध की निकासी का जिम्मा मैं लेता हूं। मेरी चाय की दुकान भी है। दस सेर दूध तो मैं ही नित लेता हूं। तुम्हें किसी तरह का कष्ट न होगा?

जंगी दूधिया शर्वत ले आया। गोबर ने एक गिलास शर्वत पीकर कहा—तुम तो खाली सांझ-सवेरे चाय की दुकान पर वैठ जाओ काका, तो एक रुपया कहीं नहीं गया है।

भोला ने एक मिनट के वाद संकोच-भरे भाव से कहा—क्रोध में वेटा आदमी अन्धा हो जाता है। मैं तुम्हारी गोई खोल लाया था। उसे लेते जाना। यहां कौन खेती-वारी होती है?

'मैंने तो एक नयी गोई ठीक कर ली है काका!'

'नहीं-नहीं, नयी गोई लेकर क्या करोगे? इसे लेते जाओ।'

'तो मैं तुम्हारे रुपये भिजवा दूंगा।'

'रुपये कहीं वाहर थोड़े ही हैं वेटा, घर में ही तो हैं। विरादरी का ढकोसला है, नहीं तुममें और हममें कौन भेद है? सच पूछो, तो मुझे खुश होना चाहिए था कि झुनिया भले घर में है, आराम से है। और मैं उसके खून का प्यासा वन गया था।'

सन्ध्या के समय गोवर वहां से चला, तो गोई उसके साथ थी और दही की दो हां[illegible]

पीछे-पीछे आ रहा था।

:21:

देहातों में साल के छः महीने किसी-न-किसी उत्सव में ढोल-मजीरा वजता रहता है। होली के एक महीना पहले से एक महीना बाद तक फाग उड़ती है, आषाढ़ लगते ही आल्हा शुरू हो जाता है और सावन-भादों में कजलियां होती हैं। कजलियों के वाद रामायण-गान होने लगता है। सेमरी भी अपवाद नहीं है। महाजन की धमकियां और कारिन्दे की बोलियां इस समारोह में वाधा नहीं डाल सकतीं। घर में अनाज नहीं है, देह पर कपड़े नहीं हैं, गांठ में पैसे नहीं है, कोई परवाह नहीं। जीवन की आनन्दवृत्ति तो दवायी नहीं जा सकती, हंसे विना तो जिया नहीं जा सकता।

यों होली में गाने-बजाने का मुख्य स्थान नोखेराम की चौपाल थी। वहीं भंग बनती थी, वहीं रंग उड़ता था, वहीं नाच होता था। इस उत्सव में कारिन्दा साहव के दस-पांच रुपये ख़र्च हो जाते थे। और किसमें यह सामर्थ्य थी कि अपने द्वार पर जलसा कराता?

लेकिन अबकी गोवर ने गांव के सारे नवयुवकों को अपने द्वार पर खींच लिया है और नोखेराम की चौपाल ख़ाली पड़ी हुई है। गोबर के द्वार पर भंग घुट रही है, पान के बीड़े लग रहे हैं, रंग घोला जा रहा है, फ़र्श विछा हुआ है, गाना हो रहा है, और चौपाल में सन्नाटा छाया हुआ है। भंग रखी हुई है, पीसे कौन? ढोल-मजीरा सब मौजूद है, पर गाये कौन? जिसे देखो, गोवर के द्वार की ओर दौड़ा चला जा रहा है। यहां भंग में गुलावजल और केसर और वादाम की वहार है। हां-हां, सेर-भर वादाम गोवर खुद लाया। पीते ही चोला तर हो जाता है, आंखें खुल जाती हैं। खमीरा तमाखू लाया है, खास विसवां की? रंग में भी केवड़ा छोड़ा है। रुपये कमाना भी जानता है और खरच करना भी जानता है। गाड़कर रख लो, तो कौन देखता है? धन की यही शोभा है। और केवल भंग ही नहीं है, जितने गानेवाले हैं, सबका नेवता भी है, और गांव में न नाचनेवालों की कमी है, न गानेवालों की, न अभिनय करने वालों की। शोभा ही लंगड़ों की ऐसी नकल करता है कि क्या कोई करेगा और बोली की नकल करने में तो उसका सानी नहीं है। जिसकी वोली कहो, उसकी वोले—आदमी की भी, जानवर की भी। गिरधर नकल करने में बेजोड़ है। वकील की नकल वह करे, पटवारी की नकल वह करे, थानेदार की, चपरासी की, सेट की—सभी की नकल कर सकता है। हां, बेचारे के पास वैसा सामान नहीं है, मगर अबकी गोबर ने उसके लिए सभी सामान मंगा दिया है, उसकी नकलें देखने जोग होंगी।

यह चर्चा इतनी फैली कि सांझ से ही तमाशा देखनेवाले जमा होने लगे। आसपास के गांवों से दर्शकों की टोलियां आने लगीं। दस वजते-वजते तीन-चार हज़ार जमा हो गये और जब गिरधर झिंगुरीसिंह का रूप धरे अपनी मण्डली के साथ खड़ा हुआ, तो लोगों को खड़े होने की जगह भी न मिलती थी। वही खल्वाट सिर, वही बड़ी-बड़ी मूंछें, और वही तोंद। बैठे भोजन कर रहे हैं और पहली ठकुराइन वैठी पंखा झल रही हैं।

ठाकुर ठकुराइन को रसिक नेत्रों से देखकर कहते हैं—अव भी तुम्हारे ऊपर वह जोवन है कि कोई जवान भी देख ले, तो तड़प जाये, और ठकुराइन फूलकर कहती हैं—जभी तो नयी नवेली लाये।

'उसे तो लाया हूं तुम्हारी सेवा करने के लिए। वह तुम्हारी क्या वरावरी करेगी?'

छोटी वीवी यह वाक्य सुन लेती है और मुंह फुलाकर चली जाती है।

दूसरे दृश्य में ठाकुर खाट पर लेटे हैं और छोटी वहू मुंह फेरे हुए ज़मीन पर वैठी है। ठाकुर वार-वार उसका मुंह अपनी ओर फेरने की विफल चेष्टा करके कहते हैं—मुझसे क्यों रूठी हो मेरी लाड़ली?

'तुम्हारी लाड़ली जहां हो, वहां जाओ। मैं तो लौंडी हूं, दूसरों की सेवा-टहल करने के लिए

आयी हूं।'

'तुम मेरी रानी हो। तुम्हारी सेवा-टहल करने के लिए वह बुढ़िया है।'

पहली ठकुराइन सुन लेती है, और झाड़ू लेकर घर में घुसती है और कई झाड़ू उन पर जमाती है। ठाकुर साहब जान बचाकर भागते हैं।

फिर दूसरी नकल हुई, जिसमें ठाकुर ने दस रुपये का दस्तावेज़ लिखकर पांच रुपये दिये, शेष नज़राने और तहरीर और दस्तूरी और ब्याज में काट लिये।

किसान आकर ठाकुर के चरण पकड़कर रोने लगता है। बड़ी मुश्किल से ठाकुर रुपये देने पर राज़ी होते हैं। जब काग़ज़ लिखा जाता है और असामी के हाथ में पांच रुपये रख दिये जाते हैं, तो वह चकराकर पूछता है—

'यह तो पांच हैं मालिक!'

'पांच नहीं, दस हैं। घर जाकर गिनना।'

'नहीं सरकार, पांच हैं।'

'एक रुपया नज़राने का हुआ कि नहीं?'

'हां, सरकार।'

'एक कागद का?'

'हां, सरकार।'

'एक दस्तूरी का?'

'हां, सरकार।'

'एक सूद का।'

'हां, सरकार।'

'पांच नगद, दस हुए कि नहीं?'

'हां, सरकार! अब यह पांचों भी मेरी ओर से रख लीजिये।'

'कैसा पागल है?'

'नहीं सरकार, एक रुपया छोटी ठकुराइन का नजराना है, एक रुपया बड़ी ठकुराइन का। एक रुपया छोटी ठकुराइन के पान खाने को, एक बड़ी ठकुराइन के पाने खाने को। बाकी बचा एक, वह आपकी क्रिया-करम के लिए।'

इस तरह नोखेराम और पटेश्वरी और दातादीन की—बारी-बारी से सबकी—ख़बर ली गयी। और फबतियों में चाहे कोई नयापन न हो और नक़लें पुरानी हों, लेकिन गिरधर का ढंग ऐसा हास्यजनक था, दर्शक इतने सरल हृदय थे कि बेबात की बात में भी हंसते रहते थे। रात-भर भंड़ैती होती रही और सताये हुए दिल, कल्पना में प्रतिशोध पाकर प्रसन्न होते रहे। आख़िरी नकल समाप्त हुई, तो कौवे बोल रहे थे।

सवेरा होते ही जिसे देखो, उसी की ज़बान पर वही रात के गाने, वही नक़ल, वही फ़िकरे। मुखिये तमाशा बन गये। जिधर निकलते हैं, उधर ही दो-चार लड़के पीछे लग जाते हैं और वही फ़िकरे कसते हैं। झिंगुरीसिंह तो दिल्लगीबाज़ आदमी थे, इसे दिल्लगी में लिया, मगर पटेश्वरी में चिढ़ने की बुरी आदत थी। और पण्डित दातादीन तो इतने तुनुकमिज़ाज थे कि लड़ने पर तैयार हो जाते थे, वह सबसे सम्मान पाने के आदी थे। कारिन्दा की तो बात ही क्या, रायसाहब तक उन्हें देखते ही सिर झुका देते थे। उनकी ऐसी हंसी उड़ायी जाये और अपने ही गांव में, यह उनके लिए असह्य था। अगर उनमें ब्रह्मतेज होता, तो इन दुष्टों को भस्म कर देते। ऐसा शाप देते कि सब-के-सब भस्म हो जाते, लेकिन इस कलियुग में शाप का असर ही जाता रहा। इसलिए उन्होंने कलियुग का हथियार निकाला। होरी के द्वार पर आये और आंखें निकालकर बोले—[illegible]

करने न चलोगे होरी? अव तो तुम अच्छे हो गये। मेरा कितना हरज हो गया, यह तुम नहीं सोचते।

गोबर देर में सोया था। अभी-अभी उठा था और आंखें मलता हुआ वाहर आ रहा था कि दातादीन की आवाज़ कान में पड़ी। पालागन करना तो दूर रहा, उलटे और हेकड़ी दिखाकर वोला—अव वह तुम्हारी मजूरी न करेंगे। हमें अपनी ऊख जो बोनी है।

दातादीन ने सुरती फांकते हुए कहा—काम कैसे नहीं करेंगे? साल के बीच में काम नहीं छोड़ सकते। जेठ में छोड़ना हो, तो छोड़ दें, करना हो करें। उसके पहले नहीं छोड़ सकते।

गोबर ने जम्हाई लेकर कहा—उन्होंने तुम्हारी गुलामी नहीं लिखी है। जव तक इच्छा थी, काम किया। अब नहीं इच्छा है, नहीं करेंगे। इसमें कोई जबरदस्ती नहीं कर सकता।

'तो होरी काम नहीं करेंगे?'

'ना।'

'तो हमारे रुपये सूद समेत दे दो। तीन साल का सूद होता है सौ रुपया। असल मिलाकर दो सौ होते हैं। हमने समझा था, तीन रुपये महीने सूद में कटते जायेंगे, लेकिन तुम्हारी इच्छा नहीं है, तो मत करो। मेरे रुपये दे दो। धन्ना सेठ बनते हो, तो धन्ना सेठ का काम करो।'

होरी ने दातादीन से कहा—तुम्हारी चाकरी से मैं कब इनकार करता हूं महाराज? लेकिन हमारी ऊख भी तो वोने को पड़ी है।

गोबर ने बाप को डांटा—कैसी चाकरी और किसकी चाकरी? यहां तो कोई किसी का चाकर नहीं। सभी बरावर हैं। अच्छी दिल्लगी है। किसी को सौ रुपये उधार दिये और उससे सूद में जिन्दगी-भर काम लेते रहे। मूल ज्यों-का-त्यों! यह महाजनी नहीं है, खून चूसना है।

'तो रुपये दे दो भैया, लड़ाई काहे की। मैं आने रुपये ब्याज लेता हूं। तुम्हें गांव-घर का समझकर आध आने रुपये पर दिया था।'

'हम तो एक रुपया सैकड़ा देंगे। एक कौड़ी बेसी नहीं। तुम्हें लेना हो, तो लो, नहीं अदालत से ले लेना। एक रुपया सैकड़े ब्याज कम नहीं होता।'

'मालूम होता है, रुपये की गरमी हो गयी है।'

'गरमी उन्हें होती है, जो एक के दस लेते हैं। हम तो मजूर हैं। हमारी गरमी पसीने के रास्ते वह जाती है। मुझे याद है, तुमने बैल के लिए तीस रुपये दिये थे। उसके सौ हुए। और अव सौ के दो सौ हो गये। इसी तरह तुम लोगों ने किसानों को लूट-लूटकर मजूर बना डाला और आप उनकी जमीन के मालिक वन बैठे। तीस के दो सौ! कुछ हद है? कितने दिन हुए होंगे दादा?'

होरी ने कातर कण्ठ से कहा—यही आठ-नौ साल हुए होंगे।

गोबर ने छाती पर हाथ रखकर कहा—नौ साल में तीस रुपये के दो सौ! एक रुपये के हिसाव से कितना होता है?

उसने ज़मीन पर एक ठीकरे से हिसाव लगाकर कहा—दस साल में छत्तीस रुपये होते हैं। असल मिलाकर छाछठ। उसके सत्तर रुपये ले लो। इससे वेसी मैं एक कौड़ी न दूंगा।

दातादीन ने होरी को वीच में डालकर कहा—सुनते हो होरी, गोवर का फैसला? मैं अपने दो सौ छोड़ के सत्तर रुपये ले लूं, नहीं अदालत करूं। इस तरह का व्यवहार हुआ, तो कै दिन संसार चलेगा? और तुम बैठे सुन रहे हो, मगर यह समझ लो, मैं ब्राह्मण हूं, मेरे रुपये हजम करके तुम चैन न पाओगे। मैंने ये सत्तर रुपये भी छोड़े, अदालत भी न जाऊंगा, जाओ। अगर मैं ब्राह्मण हूं, तो अपने पूरे दो सौ रुपये लेकर दिखा दूंगा। और तुम मेरे द्वार पर आओगे और हाथ बांधकर दोगे।

दातादीन झल्लाये हुए लौट पड़े, गोवर अपनी जगह बैठा रहा। मगर होरी के पेट में धर्म की क्रान्ति मची हुई थी। अगर ठाकुर या वनिये के रुपये होते, तो उसे ज्यादा चिन्ता न होती, लेकिन ब्राह्मण के रुपये! उसकी एक पाई भी दव गयी, तो हड्डी तोड़कर निकलेगी। भगवान् न करें कि

ब्राह्मण का कोप किसी पर गिरे। वंस में कोई चिल्लू-भर पानी देनेवाला, घर में दीया जलानेवाला भी नहीं रहता। उसका धर्मभीरु मन त्रस्त हो उठा। उसने दौड़कर पण्डितजी के चरण पकड़ लिये और आर्त स्वर में वोला—महाराज, जव तक मैं जीता हूं, तुम्हारी एक-एक पाई चुकाऊंगा। लड़कों की वातों पर मत जाओ। मामला तो हमारे-तुम्हारे वीच में हुआ है। वह कौन होता है?

दातादीन ज़रा नरम पड़े—जरा इसकी जवरदस्ती देखो, कहता है, दो सौ रुपये के सत्तर लो या अदालत जाओ। अभी अदालत की हवा नहीं खायी है, जभी। एक वार किसी के पाले पड़ जायेंगे, तो फिर यह ताव न रहेगा। चार दिन सहर में क्या रहे, तानासाह हो गये।

'मैं तो कहता हूं महाराज, मैं तुम्हारी एक-एक पाई चुकाऊंगा।'

'तो कल से हमारे यहां काम करने आना पड़ेगा।'

'अपनी ऊख वोना है महाराज, नहीं तुम्हारा ही काम करता।'

दातादीन चले गये, तो गोवर ने तिरस्कार की आंखों से देखकर कहा—गये थे देवता को मनाने। तुम्हीं लोगों ने तो इन सवों का मिजाज विगाड़ दिया है। तीस रुपये दिये, अव दो सौ रुपये लेगा, और डांट ऊपर से वतायेगा और तुमसे मजूरी करायेगा और काम कराते-कराते मार डालेगा।

होरी ने अपने विचार से सत्य का पक्ष लेकर कहा—नीति हाथ से न छोड़ना चाहिए वेटा, अपनी-अपनी करनी अपने साथ है। हमने जिस व्याज पर रुपये लिये, वह तो देने ही पड़ेंगे। फिर ब्राह्मण ठहरे। इनका पैसा हमें पचेगा? ऐसा माल तो इन्हीं लोगों को पचता है।

गोवर ने त्योरियां चढ़ायीं—नीति छोड़ने को कौन कह रहा है? और कौन कह रहा है कि ब्राह्मण का पैसा दवा लो? मैं तो यही कहता हूं कि इतना सूद नहीं देंगे। वंकवाले वारह आने सूद लेते हैं। तुम एक रुपये ले लो। और क्या किसी को लूट लोगे?

'उनका रोयां जो दुखी होगा?'

'हुआ करे। उनके दुखी होने के डर से हम विल क्यों खोदें?'

'वेटा, जव तक मैं जिन्दा हूं, मुझे अपने रास्ते चलने दो। जव मैं मर जाऊं, तो तुम्हारी जो इच्छा हो, वह करना।'

'तो फिर तुम्हीं देना। मैं तो अपने हाथों अपने पांव में कुल्हाड़ी न मारूंगा। मेरा गधापन था कि तुम्हारे वीच में वोला। तुमने खाया है, तुम भरो। मैं क्यों अपनी जान दूं?'

यह कहता हुआ गोवर भीतर चला गया। झुनिया ने पूछा—आज सवेरे-सवेरे दादा से क्यों उलझ पड़े?

गोवर ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया और अन्त में वोला—इनके ऊपर रिन का वोझ इसी तरह वढ़ता जायेगा। मैं कहां तक भरूंगा? उन्होंने कमा-कमा कर दूसरों का घर भरा है। मैं क्यों उनकी खोदी हुई खन्दक में गिरूं? इन्होंने मुझसे पूछ के करज नहीं लिया। न मेरे लिए लिया। मैं उसका देनदार नहीं हूं।

उधर मुखियों में गोवर को नीचा दिखाने के लिए षड्यन्त्र रचा जा रहा था। यह लौंडा शिकंजे में न कसा गया, तो गांव में ऊधम मचा देगा। प्यादे से फ़र्जी हो गया है न, टेढ़े तो चलेगा ही। जाने कहां से इतना क़ानून सीख आया है? कहता है, रुपये सैकड़े सूद से वेसी न दूंगा। लेना हो लो, नहीं अदालत जाओ। रात इसने सारे गांव के लौंडों को वटोरकर कितना अनर्थ किया। लेकिन मुखियों में भी ईर्ष्या की कमी न थी। सभी अपने वरावरवालों के परिहास पर प्रसन्न थे। पटेश्वरी और नोखेराम में वातें हो रही थीं। पटेश्वरी ने कहा—मगर सवों के घर-घर का रत्ती-रत्ती का हाल मालूम है। झिंगुरीसिंह को तो सवों ने ऐसा रगेदा कि कुछ न पूछो। दोनों ठकुराइनों की वातें सुन-सुनकर लोग हंसी के मारे लोट गये।

नोखेराम ने ठट्ठा मारकर कहा—मगर नकल सच्ची थी। मैंने कई वार उनकी छोटी वेगम को

द्वार पर खड़े लौंडों से हंसी करते देखा।

'और बड़ी रानी काजल और सेंदुर और महावर लगाकर जवान बनी रहती हैं।'

'दोनों में रात-दिन छिड़ी रहती है। झिंगुरी पक्का बेहया है। कोई दूसरा होता, तो पागल हो जाता।'

'सुना, तुम्हारी बड़ी भद्दी नकल की। चमरिया के घर में बन्द कराके पिटवाया।'

'मैं तो बचा, पर बकाया लगान का दावा करके ठीक कर दूंगा। वह भी क्या याद करेंगे कि किसी से पाला पड़ा था।'

'लगान तो उसने चुका दिया है न?'

'लेकिन रसीद तो मैंने नहीं दी। सबूत क्या कि लगान चुका दिया? और यहां कौन हिसाब-किताब देखता है? आज ही प्यादा भेजकर बुलाता हूं।'

होरी और गोबर दोनों ऊख बोने के लिए खेत सींच रहे थे। अबकी ऊख की खेती होने की आशा तो थी नहीं, इसलिए खेत परती पड़ा हुआ था। अब बैल आ गये हैं, तो ऊख क्यों न बोयी जाये?

मगर दोनों जैसे छत्तीस बने हुए थे। न बोलते थे, न ताकते थे। होरी बैलों को हांक रहा था और गोबर मोट ले रहा था। सोना और रूपा दोनों खेत में पानी दौड़ा रही थीं कि उनमें झगड़ा हो गया। विवाद का विषय यह था कि झिंगुरीसिंह की छोटी ठकुराइन पहले कुछ खाकर पति को खिलाती है या पति को खिलाकर तब खुद खाती है। सोना कहती थी, पहले वह खुद खाती है। रूपा का मत इसके प्रतिकूल था।

रूपा ने जिरह की—अगर वह पहले खाती है, तो क्यों मोटी नहीं है? ठाकुर क्यों मोटे हैं? अगर ठाकुर उन पर गिर पड़ें, तो ठकुराइन पिस जायें।

सोना ने प्रतिवाद किया—तू समझती है, अच्छा खाने से लोग मोटे हो जाते हैं। अच्छा खाने से लोग बलवान् होते हैं, मोटे नहीं होते। मोटे होते हैं घास-पात खाने से।

'तो ठकुराइन ठाकुर से बलवान् हैं?'

'और क्या? अभी उस दिन दोनों में लड़ाई हुई, तो ठकुराइन ने ठाकुर को ऐसा ढकेला कि उनके घुटने फूट गये।'

'तो तू भी पहले आप खाकर तब जीजा को खिलायेगी?'

'और क्या!'

'अम्मां तो पहले दादा को खिलाती है।'

'तभी तो जब देखो तब दादा डांट देते हैं। मैं बलवान् होकर अपने मरद को काबू में रखूंगी। तेरा मरद तुझे पीटेगा, तेरी हड्डी तोड़कर रख देगा।'

रूपा रुआंसी होकर बोली—क्यों पीटेगा, मैं मार खाने का काम ही न करूंगी।

'वह कुछ न सुनेगा। तूने जरा भी कुछ कहा और वह मार चलेगा। मारते-मारते तेरी खाल उधेड़ लेगा।'

रूपा ने बिगड़कर सोना की साड़ी दांतों से फाड़ने की चेष्टा की और असफल होने पर चुटकियां काटने लगी।

सोना ने और चिढ़ाया—वह तेरी नाक भी काट लेगा।

इस पर रूपा ने बहिन को दांत से काट खाया। सोना की बांह लहुआ गयी। उसने रूपा को ज़ोर से ढकेल दिया। वह गिर पड़ी और उठकर रोने लगी। सोना भी दांतों के निशान देखकर रो पड़ी।

उन दोनों का चिल्लाना सुनकर गोबर गुस्से में भरा हुआ आया और दोनों को दो-दो घूंसे जड़ दिये। दोनों रोती हुई खेत से निकलकर घर चल दीं। सिंचाई का काम रुक गया। इस पर पिता-पुत्र में

एक झड़प हो गयी।

होरी ने पूछा—पानी कौन चलायेगा? दौड़े-दौड़े गये, दोनों को भगा आ नहीं लाते?

'तुम्हीं ने सवों को विगाड़ रखा है।'

'इस तरह मारने से और निर्लज्ज हो जायेंगी।'

'दो जून खाना वन्द कर दो, आप ठीक हो जायें।'

'मैं उनका वाप हूं, कसाई नहीं हूं।'

पांव में एक वार ठोकर लग जाने के वाद किसी कारण से वार-वार ठोकर लगता ह कभी-कभी अंगूठा पक जाता है और महीनों कष्ट देता है। पिता और पुत्र के सद्भाव को आज उसी तरह चोट लग गयी थी और उस पर यह तीसरी चोट पड़ी।

गोवर ने घर जाकर झुनिया को खेत में पानी देने के लिए साथ लिया। झुनिया वच्चे को लेकर खेत में गयी।

धनिया और उसकी दोनों वेटियां ताकती रहीं। मां को भी गोवर की यह उद्दण्डता वुरी लगती थी। रूपा को मारता, तो वह वुरा न मानती, मगर जवान लड़की को मारना, यह उसके लिए असह्य था।

आज ही रात को गोवर ने लखनऊ लौट जाने का निश्चय कर लिया। यहां अव वह नहीं रह सकता। जव घर में उसकी कोई पूछ नहीं है, तो वह क्यों रहे? वह लेन-देन के मामले में वोल नहीं सकता। लड़कियों को ज़रा मार दिया, तो लोग ऐसे जामे के वाहर हो गये, मानो वह वाहर का आदमी है। तो इस सराय में वह न रहेगा।

दोनों भोजन करके वाहर आये थे कि नोखेराम के प्यादे ने आकर कहा—चलो, कारिन्दा साहव ने वुलाया है।

होरी ने गर्व से कहा—रात को क्यों वुलाते हैं, मैं तो वाकी दे चुका हूं।

प्यादा वोला—मुझे तो तुम्हें वुलाने का हुक्म मिला है। जो कुछ अरज करना हो, वहीं चलकर करना।

होरी की इच्छा न थी, मगर जाना पड़ा। गोवर विरक्त-सा वैठा रहा। आध घण्टे में होरी लौटा और चिलम भरकर पीने लगा। अव गोवर से न रहा गया। पूछा—किस मतलव से वुलाया था?

होरी ने भर्रायी हुई आवाज़ में कहा—मैंने पाई-पाई लगान चुका दिया। वह कहते हैं, तुम्हारे ऊपर दो साल की वाकी है। अभी उस दिन मैंने ऊख वेची, पचीस रुपये वहीं उनको दे दिये, और आज वह दो साल का वाकी निकालते हैं। मैंने कह दिया, मैं एक धेला न दूंगा।

गोवर ने पूछा—तुम्हारे पास रसीद तो होगी?

'रसीद कहां देते हैं?'

'तो तुम विना रसीद लिये रुपये देते ही क्यों हो?'

'मैं क्या जानता था, वह लोग वेईमानी करेंगे। यह सव तुम्हारी करनी का फल है। तुमने रात को उनकी हंसी उड़ायी, यह उसी का दण्ड है। पानी में रहकर मगर से वैर नहीं किया जाता। सूद लगाकर सत्तर रुपये वाकी निकाल दिये। ये किसके घर से आयेंगे?'

गोवर ने अपनी सफ़ाई देते हुए कहा—तुमने रसीद ले ली होती, तो मैं लाख उनकी हंसी उड़ाता, तुम्हारा वाल भी वांका न कर सकते। मेरी समझ में नहीं आता कि लेन-देन में तुम सावधानी से क्यों काम नहीं लेते। यों रसीद नहीं देते, तो डाक से रुपया भेजो। यही तो होगा, एकाध रुपया महसूल पड़ जायेगा। इस तरह की धांधली तो न होगी।

'तुमने यह आग न लगायी होती, तो कुछ न होता। अव तो सभी मुखिया विगड़े हुए हैं। वेदखली

की धमकी दे रहे हैं। देव जाने कैसे वेड़ा पार लगेगा?'

'मैं जाकर पूछता हूं।'

'तुम जाकर और आग लगा दोगे।'

'अगर आग लगानी पड़ेगी, तो आग भी लगा दूंगा। वह वेदखली करते हैं, करें। मैं उनके हाथ में गंगाजली रखकर अदालत में कसम खिलाऊंगा। तुम दुम दवाकर वैठे रहो। मैं इसके पीछे जान लड़ा दूंगा। मैं किसी का एक पैसा नहीं चाहता, न अपना एक पैसा खोना चाहता हूं।'

वह उसी वक्त उठा और नोखेराम की चौपाल में जा पहुंचा। देखा, तो सभी मुखिया लोगों का कैविनेट वैठा हुआ है। गोवर को देखकर सवके सब सतर्क हो गये। वातावरण में षड्यन्त्र की-सी कुण्ठा भरी हुई थी।

गोवर ने उत्तेजित कण्ठ से पूछा—यह क्या वात है कारिन्दा साहव कि आपको दादा ने हाल तक का लगान चुकता कर दिया और आप अभी दो साल की वाकी निकाल रहे हैं? यह कैसा गोलमाल है?

नोखेराम ने मसनद पर लेटकर रोव दिखाते हुए कहा—जब तक होरी है, मैं तुमसे लेन-देन की कोई बातचीत नहीं करना चाहता।

गोवर ने आहत भरे स्वर में कहा—तो मैं घर में कुछ नहीं हूं?

'तुम अपने घर में सव कुछ होगे। यहां तुम कुछ नहीं हो।'

'अच्छी वात है, आप वेदखली दायर कीजिये। मैं अदालत में तुमसे गंगाजली उठवाकर रुपये दूंगा। इसी गांव से एक सौ सहादतें दिलाकर सावित कर दूंगा कि तुम रसीद नहीं देते। सीधे-सादे किसान हैं, कुछ वोलते नहीं, तो तुमने समझ लिया कि सव काठ के उल्लू हैं। रायसाहव वहीं रहते हैं, जहां मैं रहता हूं। गांव के सव लोग उन्हें हौवा समझते होंगे, मैं नहीं समझता। रत्ती-रत्ती हाल कहूंगा और देखूंगा, तुम कैसे मुझसे दोवारा रुपये वसूल कर लेते हो।'

उसकी वाणी में सत्य का वल था। डरपोक प्राणियों में सत्य भी गूंगा हो जाता है। वही सीमेण्ट जो ईंट पर चढ़कर पत्थर हो जाता है, मिट्टी पर चढ़ा दिया जाये, तो मिट्टी हो जायेगा। गोवर की निर्भीक स्पष्टवादिता ने उस अनीति के वख़्तर को वेध डाला, जिससे सज्जित होकर नोखेराम की दुर्वल आत्मा अपने को शक्तिमान समझ रही थी।

नोखेराम ने जैसे कुछ याद करने का प्रयास करके कहा—तुम इतना गरम क्यों हो रहे हो, इसमें गरम होने की कौन वात है? अगर होरी ने रुपये दिये हैं, तो कहीं-न-कहीं तो टांके गये होंगे। मैं कल कागज निकाल कर देखूंगा। अव मुझे कुछ-कुछ याद आ रहा है कि शायद होरी ने रुपये दिये थे। तुम निसाखातिर रहो, अगर रुपये यहां आ गये हैं, तो कहीं जा नहीं सकते। तुम थोड़े-से रुपये के लिए झूठ थोड़े ही वोलोगे और न मैं ही इन रुपयों से धनी हो जाऊंगा।

गोवर ने चौपाल से आकर होरी को ऐसा लताड़ा कि वेचारा स्वार्थ-भीरु वूढ़ा रुआंसा हो गया—तुम तो वच्चों से भी गये-वीते हो, जो विल्ली की म्याऊं सुनकर चिल्ला उठते हैं। कहां-कहां तुम्हारी रच्छा करता फिरूंगा? मैं तुम्हें सत्तर रुपये दिये जाता हूं। दातादीन ले, तो देकर भरपाई लिखा देना। इसके ऊपर तुमने एक पैसा भी दिया, तो फिर मुझसे एक पैसा भी न पाओगे। मैं परदेस में इसलिए नहीं पड़ा हूं कि तुम अपने को लुटवाते रहो और मैं कमाकर भरता रहूं। मैं कल चला जाऊंगा, लेकिन इतना कहे देता हूं, किसी से एक पैसा उधार मत लेना और किसी को कुछ मत देना। मंगरू, दुलारी, दातादीन—सभी से एक रुपया सैकड़े सूद कराना होगा।

धनिया भी खाना खाकर वाहर निकल आयी। वोली—अभी क्यों जाते हो वेटा, दो-चार दिन और रहकर ऊख की वोनी करा लो और कुछ लेन-देन का हिसाव भी ठीक कर लो, तो जाना।

गोवर ने शान जमाते हुए कहा—मेरा दो-तीन रुपये रोज का घाटा हो रहा है, यह भी समझती हो? यहां मैं वहुत-वहुत तो चार आने की मजूरी ही तो करता हूं, और अवकी मैं झुनिया को भी लेता

जाऊंगा। वहां मुझे खाने-पीने की वड़ी तकलीफ होती है।

धनिया ने डरते-डरते कहा—जैसी तुम्हारी इच्छा, लेकिन वहां वह कैसे अकेले घर संभालेगी, कैसे वच्चे की देखभाल करेगी?

'अव वच्चे को देखूं कि अपना सुभीता देखूं, मुझसे चूल्हा नहीं फूंका जाता।'

'ले जाने को मैं नहीं रोकती, लेकिन परदेस में वाल-वच्चों के साथ रहना, न कोई आगे, न पीछे, सोचो कितना झञ्झट है।'

'परदेस में संगी-साथी निकल ही आते हैं अम्मां, और यह तो स्वारथ का संसार है, जिसके साथ चार पैसे गम खाओ, वही अपना। खाली हाथ तो मां-वाप भी नहीं पूछते।'

धनिया कटाक्ष समझ गयी। उसके सिर से पांव तक आग लग गयी। वोली—मां-वाप को भी तुमने उन्हीं पैसे के यारों में समझ लिया?

'आंखों देख रहा हूं।'

'नहीं देख रहे हो, मां-वाप का मन इतना निठुर नहीं होता। हां, लड़के अलवत्ता जहां चार पैसे कमाने लगे कि मां-बाप से आंखें फेर लीं। इसी गांव में एक-दो नहीं, दस-वीस परतोख दे दूं। मां-बाप करज-कवाज लेते हैं किसके लिए? लड़के-लड़कियों ही के लिए कि अपने भोग-विलास के लिए?'

'क्या जाने तुमने किसके लिए करज लिया? मैंने तो एक पैसा भी नहीं जाना।'

'विना पाले ही इतने वड़े हो गये?'

'पालने में तुम्हारा क्या लगा? जव तक वच्चा था, दूध पिला दिया। फिर लावारिस की तरह छोड़ दिया। जो सवने खाया, वही मैंने खाया। मेरे लिए दूध नहीं आता था, मक्खन नहीं वंधा था। और तुम भी चाहती हो, और दादा भी चाहते हैं कि मैं सारा करजा चुकाऊं, लगान दूं, लड़कियों का व्याह करूं। जैसे मेरी जिन्दगी तुम्हारा देना भरने ही के लिए है। मेरे भी तो वाल-वच्चे हैं?'

धनिया सन्नाटे में आ गयी। एक ही क्षण में उसके जीवन का मृदु स्वप्न जैसे टूट गया। अव तक वह मन में प्रसन्न थी कि अव उसका दुःख-दरिद्र सव दूर हो गया। जव से गोवर घर आया, उसके मुख पर हास की एक छटा खिली रहती थी। उसकी वाणी में मृदुता और व्यवहार में उदारता आ गयी थी। भगवान् ने उस पर दया की है, तो उसे सिर झुकाकर चलना चाहिए। भीतर की शान्ति वाहर सौजन्य वन गयी थी। ये शब्द तपते वालू की तरह हृदय पर पड़े और चने की भांति सारे अरमान झुलस गये। उसका सारा घमण्ड चूर-चूर हो गया। इतना सुन लेने के वाद अव जीवन में क्या रह गया? जिस नौका पर वैठकर इस जीवन-सागर को पार करना चाहती थी, वह टूट गयी, तो किस सुख के लिए जिये!

लेकिन नहीं। उसका गोवर इतना स्वार्थी नहीं है। उसने कभी मां की वात का [illegible] कभी किसी वात के लिए ज़िद नहीं की। जो कुछ रूखा-सूखा मिल गया, [illegible] भोला-भाला, शील-स्नेह का पुतला आज क्यों ऐसी दिल तोड़ने वाली वातें कर रहा है? [illegible] के विरुद्ध तो किसी ने कुछ नहीं कहा। मां-वाप दोनों ही उसका मुंह जोहते रहते हैं। [illegible] लेन-देन की वात चलायी, नहीं उससे कौन कहता है कि तू मां-वाप का देना चुका [illegible] यही क्या कम सुख है कि वह इज्जत-आवरू के साथ भलेमानसों की तरह [illegible] कुछ हो सके, तो मां-वाप की मदद कर दे। नहीं हो सकता, तो [illegible] झुनिया को ले जाना चाहता है, खुशी से ले जाये। धनिया ने तो [illegible] था कि झुनिया को वहां ले जाने में उसे जितना आराम मिलेगा, [illegible] उसने ऐसी कौन-सी लगने वाली वात कही थी कि वह इतना [illegible] ने लगायी हो। वहीं वैठे-वैठे उसे मन्तर पढ़ा रही है। [illegible]

कुछ न-कुछ काम भी करना ही पड़ता है। वहां रुपये-पैसे हाथ में आयेंगे, मजे से चिकना खायेगी, चिकना पहनेगी और टांग फैलाकर सोयेगी। दो आदमियों की रोटी पकाने में क्या लगता है, वहां तो पैसा चाहिए। सुना, बाजार में पकी-पकायी रोटियां मिल जाती हैं। यह सारा उपद्रव उसी ने खड़ा किया है, शहर में कुछ दिन रह भी चुकी है। वहां का दाना-पानी मुंह लगा हुआ है। यहां कोई पूछता न था। यह भोंदू मिल गया। इसे फांस लिया। जब यहां पांच महीने का पेट लेकर आयी थी, तब कैसी म्यांव-म्यांव करती थी? तब यहां सरन न मिली होती, तो आज कहीं भीख मांगती होती। यह उसी नेकी का बदला है! इसी चुड़ैल के पीछे डांड़ देना पड़ा, बिरादरी में बदनामी हुई, खेती टूट गयी, सारी दुर्गत हो गयी। और आज यह चुड़ैल जिस पत्तल में खाती है, उसी में छेद कर रही है। पैसे देखे, तो आंख हो गयी। तभी ऐंठी-ऐंठी फिरती है, मिजाज नहीं मिलता। आज लड़का चार पैसे कमाने लगा है न! इतने दिनों बात नहीं पूछी, तो सास का पांव दबाने के लिए तेल लिये दौड़ती थी। डाइन उसके जीवन की निधि को उसके हाथ से छीन लेना चाहती है।

दुखित स्वर में बोली—यह मन्तर तुम्हें कौन दे रहा है बेटा, तुम तो ऐसे न थे। मां-बाप तुम्हारे ही हैं, बहिनें तुम्हारी ही हैं, घर तुम्हारा ही है। यहां बाहर का कौन है? और हम क्या बहुत दिन बैठे रहेंगे? घर की मरजाद बनाये रहोगे, तो तुम्हीं को सुख होगा। आदमी घरवालों ही के लिए धन कमाता है कि और किसी के लिए? अपना पेट तो सुअर भी पाल लेता है। मैं न जानती थी, झुनिया नागिन बनकर हमीं को डसेगी।

गोबर ने तिनककर कहा—अम्मां, नादान नहीं हूं कि झुनिया मुझे मन्तर पढ़ायेगी। तुम उसे नाहक कोस रही हो। तुम्हारी गिरस्ती का सारा बोझ मैं नहीं उठा सकता। मुझसे जो कुछ हो सकेगा, तुम्हारी मदद कर दूंगा, लेकिन अपने पांवों में बेड़ियां नहीं डाल सकता।

झुनिया भी कोठरी से निकल बोली—अम्मां, जुलाहे का गुस्सा दाढ़ी पर न उतारो। कोई बच्चा नहीं हैं कि उन्हें फोड़ लूंगी। अपना-अपना भला-बुरा सब समझते हैं। आदमी इसीलिए नहीं जन्म लेता कि सारी उग्र तपस्या करता रहे और एक दिन खाली हाथ मर जाये। सब जिन्दगी का कुछ सुख चाहते हैं, सबकी लालसा होती है कि हाथ में चार पैसे हों।

धनिया ने दांत पीसकर कहा—अच्छा झुनिया, बहुत ज्ञान न बघार। अब तू भी अपना भला-बुरा सोचने जोग हो गयी है। जब यहां आकर मेरे पैरों पर सिर रक्खे रो रही थी, तब अपना भला-बुरा नहीं सूझा था? उस घड़ी हम भी अपना भला-बुरा सोचने लगते, तो आज तेरा कहीं पता न होता।

इसके बाद संग्राम छिड़ गया। ताने-मेहने, गाली-गलौज, थुक्का-फजीहत, कोई बात न बची। गोबर भी बीच-बीच में डंक मारता जाता था। होरी बरौठे में बैठा सब कुछ सुन रहा था। सोना और रूपा आंगन में सिर झुकाये खड़ी थीं, दुलारी, पुनिया और कई स्त्रियां बीच-बचाव करने आ पहुंची थीं। गरजन के बीच में कभी-कभी बूंदें भी गिर जाती थीं। दोनों ही अपने-अपने भाग्य को रो रही थीं। दोनों ही ईश्वर को कोस रही थीं, और दोनों अपनी-अपनी निर्दोषिता सिद्ध कर रही थीं। झुनिया गड़े मुर्दे उखाड़ रही थी। आज उसे हीरा और शोभा से विशेष सहानुभूति हो गयी थी, जिन्हें धनिया ने कहीं का न रखा था। धनिया की आज तक किसी से न पटी थी, तो झुनिया से कैसे पट सकती है? धनिया अपनी सफाई देने की चेष्टा कर रही थी, लेकिन न जाने क्या बात थी कि जनमत झुनिया की ओर था। शायद इसलिए कि झुनिया संयम हाथ से न जाने देती थी और धनिया आपे से बाहर थी। शायद इसलिए कि झुनिया अब कमाऊ पुरुष की स्त्री थी, उसे प्रसन्न रखने में ज्यादा मसलहत थी।

तब होरी ने आंगन में आकर कहा—मैं तेरे पैरों पड़ता हूं धनिया, चुप रह। मेरे मुंह में कालिख मत लगा। हां, अभी मन न भरा हो, तो और सुन।

धनिया फुंकार मारकर उधर दौड़ी—तुम भी मोटी डाल पकड़ने चले। मैं ही दोसी हूं। वह तो मेरे ऊपर फूल बरसा रही है?

संग्राम का क्षेत्र बदल गया।

'जो छोटों के मुंह लगे, वह छोटा।'

धनिया किस तर्क से झुनिया को छोटा मान ले?

होरी ने व्यथित कण्ठ से कहा—अच्छा, वह छोटी नहीं, बड़ी सही। जो आदमी नहीं रहना चाहता, क्या उसे बांधकर रखेगी? उनके हाथ-पांव हो गये। अब तू क्या चाहती है, वे दाना-चारा लाकर खिलायें। मां-बाप का धरम सोलहों आना लड़कों के साथ है। लड़कों का मां-बाप के साथ एक आना भी धरम नहीं है। जो जाता है, उसे असीस देकर विदा कर दे। हमारा भगवान् मालिक है। जो कुछ भोगना बदा है, भोगेंगे। चालीस सात सैंतालीस साल इसी तरह रोते-धोते कट गये। दस-पांच साल हैं, वह भी यों ही कट जायेंगे।

उधर गोबर जाने की तैयारी कर रहा था। इस घर का पानी भी उसके लिए हराम है। माता होकर जब उसे ऐसी-ऐसी बातें कहे, तो अब वह उसका मुंह भी न देखेगा।

देखते-ही-देखते उसका बिस्तर बंध गया। झुनिया ने भी चुंदरी पहन ली। मुन्नू भी टोप और फ्राक पहनकर राजा बन गया।

होरी ने आर्द्र कण्ठ से कहा—बेटा, तुमसे कुछ कहने का मुंह तो नहीं है, लेकिन कलेजा नहीं मानता। क्या जरा जाकर अपनी अभागिनी माता के पांव छू लोगे, तो कुछ बुरा होगा? जिस माता की कोख से जनम लिया और जिसका रक्त पीकर पले हो, उसके साथ इतना भी नहीं कर सकते?

गोबर ने मुंह फेरकर कहा—मैं उसे अपनी माता नहीं समझता।

होरी ने आंखों में आंसू लाकर कहा—जैसी तुम्हारी इच्छा। जहां रहो, सुखी रहो।

झुनिया ने सास के पास जाकर उसके चरणों को अञ्चल से छुआ। धनिया के मुंह से [illegible] एक शब्द भी न निकला। उसने आंखें उठाकर देखा भी नहीं। गोबर बालक को [illegible] आगे-आगे था। झुनिया बिस्तर बगल में दबाये पीछे। एक चमार का लड़का सन्दूक लिये [illegible] कई स्त्री-पुरुष गोबर को पहुंचाने गांव के बाहर तक आये।

धनिया बैठी रो रही थी, जैसे कोई उसके हृदय को आरे से चीर रहा हो। [illegible] के समान हो रहा था, जिसमें आग लग गयी हो और सब कुछ भस्म हो गया हो। [illegible] भी स्थान न बचा हो।

:22:

इधर कुछ दिनों से रायसाहब की कन्या के विवाह की [illegible] एलेक्शन भी सिर पर आ पहुंचा था, मगर इन सबों से [illegible] करना था, जिसकी कोर्ट-फ़ीस ही पचास हज़ार होती थी, [illegible] जो अपनी रियासत के एकमात्र स्वामी थे, ऐन जवानी में [illegible] और रायसाहब अपने कुमार पुत्र की ओर से उस [illegible] शरण लेना चाहते थे। उनके चचेरे सालों ने रियासत [illegible] उसमें से कोई हिस्सा देने पर तैयार न थे। रायसाहब ने [illegible] और उसके चचेरे साले माकूल गुज़ारा लेकर हट जायें। [illegible] आमदनी छोड़ने को तैयार थे, मगर सालों ने किसी [illegible] लाठी के ज़ोर से रियासत में तहसील-वसूल शुरू कर दी। [illegible] सिवा कोई मार्ग न रहा। मुकदमे में लाखों का खर्च था, [illegible]

जायदाद न थी। वकीलों ने निश्चित रूप से कह दिया कि आपकी शर्तिया डिग्री होगी। ऐसा मौक़ा कौन छोड़ सकता था? मुश्किल यही थी कि यह तीनों काम एक साथ आ पड़े थे और उन्हें किसी तरह टाला न जा सकता था। कन्या की अवस्था अठारह वर्ष की हो गयी थी और केवल हाथ में रुपये न रहने के कारण अब तक उसका विवाह टलता जाता था। ख़र्च का अनुमान एक लाख का था। जिसके पास जाते, वही बड़ा-सा मुंह खोलता, मगर हाल में एक बड़ा अच्छा अवसर हाथ आ गया था। कुंवर दिग्विजय सिंह की पत्नी यक्ष्मा की भेंट हो चुकी थी, और कुंवर साहब अपने उजड़े घर को जल्द-से-जल्द बसा लेना चाहते थे। सौदा भी बारे से तय हो गया और कहीं शिकार हाथ से निकल न जाये, इसलिए इसी लग्न में विवाह होना परमावश्यक था।

कुंवर साहब दुर्वासनाओं के भण्डार थे। शराब, गांजा, अफ़ीम, मदक, चरस ऐसा कोई नशा न था, जो वह न करते हों। और ऐयाशी तो रईस की शोभा है। वह रईस ही क्या, जो ऐयाश न हो। धन का उपयोग और किया ही कैसे जाये? मगर इन सब दुर्गुणों के होते हुए भी वह ऐसे प्रतिभावान् थे कि अच्छे-अच्छे विद्वान् उनका लोहा मानते थे। संगीत, नाट्यकला, हस्तरेखा, ज्योतिष, योग, लाठी, कुश्ती, निशानेबाज़ी आदि कलाओं में अपना जोड़ न रखते थे। इसके साथ ही बड़े दबंग और निर्भीक थे। राष्ट्रीय आन्दोलन में दिल खोलकर सहयोग देते थे, हां, गुप्त रूप से। अधिकारियों से यह बात छिपी न थी, फिर भी उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी और साल में एक-दो बार गवर्नर साहब भी उनके मेहमान हो जाते थे। और अभी अवस्था तीस-बत्तीस से अधिक न थी और स्वास्थ्य तो ऐसा था कि अकेले एक बकरा खाकर हज़म कर डालते थे।

रायसाहब ने समझा, बिल्ली के भागों छींका टूटा। अभी कुंवर साहब षोडशी से निवृत्त भी न हुए थे कि रायसाहब ने बातचीत शुरू कर दी। कुंवर साहब के लिए विवाह केवल अपना प्रभाव और शक्ति बढ़ाने का साधन था। रायसाहब कौंसिल के मेम्बर थे ही, यों भी प्रभावशाली थे। राष्ट्रीय संग्राम में अपने त्याग का परिचय देकर श्रद्धा के पात्र भी बन चुके थे। शादी तय होने में कोई बाधा न हो सकती थी, और वह तय हो गयी।

रहा एलेक्शन, यह सोने की हंसिया थी, जिसे न उगलते बनता था, न निगलते। अब तक वह दो बार निर्वाचित हो चुके थे और दोनों ही बार उन पर एक-एक लाख की चपत पड़ी थी, मगर अबकी एक राजा साहब उसी इलाक़े से खड़े हो गये थे और डंके की चोट ऐलान कर दिया था कि चाहे हरएक वोटर को एक-एक हज़ार ही क्यों न देना पड़े, चाहे पचास लाख की रियासत मिट्टी में मिल जाये, मगर राय अमरपाल सिंह को कौंसिल में न जाने दूंगा। और उन्हें अधिकारियों ने अपनी सहायता का आश्वासन भी दे दिया था। रायसाहब विचारशील थे, अपना नफ़ा-नुकसान समझते थे, मगर राजपूत थे, और पोतड़ों के रईस थे। वह चुनौती पाकर मैदान से कैसे हट जायें? यों उनसे राजा सूर्यप्रतापसिंह ने आकर कहा होता, भाई साहब, आप तो दो बार कौंसिल में जा चुके, अबकी मुझे जाने दीजिये, तो शायद रायसाहब ने उनका स्वागत किया होता। कौंसिल का मोह अब उन्हें न था, लेकिन इस चुनौती के सामने ताल ठोकने के सिवा और कोई राह ही न थी। एक मसलहत और भी था। मिस्टर तंखा ने उन्हें विश्वास दिलाया था कि आप खड़े हो जायें, पीछे राजा साहब से एक लाख की थैली लेकर बैठ जाइयेगा। उन्होंने यहां तक कहा था कि राजा साहब रायसाहब को परास्त करने का गौरव नहीं छोड़ना चाहते और इसका मुख्य कारण था, रायसाहब की लड़की की शादी कुंवर साहब से ठीक होना। दो प्रभावशाली घरानों का संयोग वह अपनी प्रतिष्ठा के लिए हानिकारक समझते थे। उधर रायसाहब को ससुराली जायदाद मिलने की भी आशा थी। राजा साहब के पहलू में यह कांटा भी बुरी तरह खटक रहा था। कहीं वह जायदाद उन्हें मिल गयी—और क़ानून रायसाहब के पक्ष में था ही—तब तो राजा साहब का एक प्रतिद्वन्द्वी खड़ा हो जायेगा, इसलिए उनका धर्म था कि रायसाहब को कुचल डालें और उनकी प्रतिष्ठा धूल में मिला दें।

बेचारे रायसाहब बड़े संकट में पड़ गये थे। उन्हें यह सन्देह होने लगा था कि केवल अपना मतलब निकालने के लिए मिस्टर तंखा ने उन्हें धोखा दिया। यह ख़बर मिली थी कि अब राजा साहब के पैरोकार हो गये हैं। यह रायसाहब के घाव पर नमक था। उन्होंने कई बार तंखा को बुलाया था, मगर वह या तो घर पर मिलते ही न थे, या आने का वादा करके भूल जाते थे। आख़िर ख़ुद उनसे मिलने का इरादा करके वह उनके पास जा पहुंचे। संयोग से मिस्टर तंखा घर पर मिल गये, मगर रायसाहब को पूरे घण्टे-भर उनकी प्रतीक्षा करनी पड़ी। यह वही मिस्टर तंखा हैं, जो रायसाहब के द्वार पर एक बार रोज़ हाज़िरी दिया करते थे। आज इतना मिज़ाज हो गया है। जले बैठे थे। ज्यों ही मिस्टर तंखा सजे-सजाये मुंह में सिगार दबाये कमरे में आये और हाथ बढ़ाया कि रायसाहब ने बमगोला छोड़ दिया—मैं घण्टे-भर से यहां बैठा हुआ हूं और आप निकलते-निकलते अब निकले हैं। मैं इसे अपनी तौहीन समझता हूं।

मिस्टर तंखा ने एक सोफ़े पर बैठकर निश्चिन्त भाव से धुआं उड़ाते हुए कहा—मुझे इसका खेद है। मैं एक ज़रूरी काम में लगा था। आपको फ़ोन करके मुझसे समय ठीक कर लेना चाहिए था।

आग में घी पड़ गया, मगर रायसाहब ने क्रोध को दबाया। वह लड़ने न आये थे। इस अपमान को पी जाने का ही अवसर था। बोले—हां, यह ग़लती हुई। आजकल आपको बहुत कम फ़ुर्सत रहती है शायद।

'जी हां, बहुत कम, वरना मैं अवश्य आता।'

'मैं उसी मुआमले के बारे में आपसे पूछने आया था। समझौते की तो कोई आशा नहीं मालूम होती। उधर तो जंग की तैयारियां बड़े ज़ोरों से हो रही हैं।'

'राजा साहब को तो आप जानते ही हैं, झक्कड़ आदमी हैं, पूरे सनकी। कोई-न-कोई धुन उन पर सवार रहती है। आजकल यही धुन है कि रायसाहब को नीचा दिखाकर रहेंगे। और उन्हें जब एक धुन सवार हो जाती है, तो फिर किसी की नहीं सुनते, चाहे कितना ही नुकसान उठाना पड़े। कोई चालीस लाख का बोझ सिर पर है, फिर भी वही दम-ख़म है, वही अलल्ले-तलल्ले ख़र्च हैं। पैसे को तो कुछ समझते ही नहीं। नौकरों का वेतन छह-छह महीने से बाक़ी पड़ा हुआ है, मगर हीरा महल बन रहा है। संगमरमर का तो फ़र्श है। पच्चीकारी ऐसी हो रही है कि आंखें नहीं ठहरतीं। अफ़सरों के पास रोज़ डालियां जाती रहती हैं। सुना है, कोई अंग्रेज़ मैनेजर रखनेवाले हैं।'

'फिर आपने कैसे कह दिया था कि आप कोई समझौता करा देंगे?'

'मुझसे जो कुछ हो सकता था, वह मैंने किया। इसके सिवा मैं और क्या कर सकता था? अगर कोई व्यक्ति अपने दो-चार लाख रुपये फूंकने ही पर तुला हुआ हो, तो मेरा क्या बस?'

रायसाहब अब क्रोध न संभाल सके—ख़ासकर जब उन दो-चार लाख रुपये में से दस-बीस हज़ार आपके हत्थे चढ़ने की भी आशा हो।

मिस्टर तंखा क्यों दबते? बोले—रायसाहब, सब साफ़-साफ़ न कहलवाइये। यहां न मैं संन्यासी हूं, न आप। हम सभी कुछ-न-कुछ कमाने ही निकले हैं। आंख के अन्धों और गांठ के पूरों की तलाश आपको भी उतनी ही है, जितनी मुझको। आपसे मैंने खड़े होने का प्रस्ताव किया। आप एक लाख के लोभ से खड़े हो गये। अगर गोटी लाल हो जाती, तो आज आप एक लाख के स्वामी होते और बिना एक पाई क़र्ज़ लिये कुंवर साहब से सम्बन्ध भी हो जाता और मुक़दमा भी दायर हो जाता, मगर आपके दुर्भाग्य से वह चाल पट पड़ गयी। जब आप ही ठाठ पर रह गये, तो मुझे क्या मिलता? आख़िर मैंने झख मारकर उनकी पूंछ पकड़ी। किसी-न-किसी तरह यह वैतरणी तो पार करनी है।

रायसाहब को ऐसा आवेश आ रहा था कि इस दुष्ट को गोली मार दें। इसी बदमाश ने सब्ज़बाग़ दिखाकर उन्हें खड़ा किया और अब अपनी सफ़ाई दे रहा है। पीठ में धूल भी नहीं लगने देता, लेकिन परिस्थिति ज़बान बन्द किये हुए थी।

'तो अब आपके किये कुछ नहीं हो सकता?'

'ऐसा ही समझिये।'

'मैं पचास हज़ार पर भी समझौता करने को तैयार हूं।'

'राजा साहब किसी तरह न मानेंगे?'

'पच्चीस हज़ार पर तो मान जायेंगे?'

'कोई आशा नहीं। वह साफ़ कह चुके हैं।'

'वह कह चुके हैं या आप कह रहे हैं?'

'आप मुझे झूठा समझते हैं?'

रायसाहब ने विनम्र स्वर में कहा—मैं आपको झूठा नहीं समझता, लेकिन इतना ज़रूर समझता हूं कि आप चाहते, तो मुआमला तय हो जाता।

'तो आपका ख़याल है, मैंने समझौता नहीं होने दिया?'

'नहीं, यह मेरा मतलब नहीं है। मैं इतना ही कहना चाहता हूं कि आप चाहते, तो काम हो जाता और मैं इस झमेले में न पड़ता।'

मिस्टर तंखा ने घड़ी की तरफ़ देखकर कहा—तो रायसाहब अगर आप साफ़ कहलाना चाहते हैं, तो सुनिये। अगर आपने दस हज़ार का चैक मेरे हाथ में रख दिया होता, तो आज निश्चय एक लाख के स्वामी होते। आप शायद चाहते होंगे, जब आपको राजा साहब से रुपये मिल जाते, तो आप मुझे हज़ार-दो हज़ार दे देते, तो मैं ऐसी कच्ची गोली नहीं खेलता। आप राजा साहब से रुपये लेकर तिजोरी में रखते और मुझे अंगूठा दिखा देते। फिर मैं आपका क्या बना लेता? बतलाइये? कहीं नालिश-फ़रियाद भी तो नहीं कर सकता था।

रायसाहब ने आहत नेत्रों से देखा—आप मुझे बेईमान समझते हैं?

तंखा ने कुरसी से उठते हुए कहा—इसे बेईमानी कौन समझता है? आजकल यह चतुराई है। कैसे दूसरों को उल्लू बनाया जा सके, यही सफल नीति है, और आप इसके आचार्य हैं।

रायसाहब ने मुट्ठी बांधकर कहा—मैं?

'जी हां, आप। पहले चुनाव में मैंने जी-जान से आपकी पैरवी की। आपने बड़ी मुश्किल से रो-धोकर पांच सौ रुपये दिये, दूसरे चुनाव में आपने एक सड़ी-सी टूटी-फूटी कार देकर अपना गला छुड़ाया। दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंककर पीता है।

वह कमरे से निकल गये और कार लाने का हुक्म दिया।

रायसाहब का खून खौल रहा था। इस अशिष्टता की भी कोई हद है! एक तो घण्टे-भर इन्तज़ार कराया और अब इतनी बेमुरौवती से पेश आकर उन्हें ज़बरदस्ती घर से निकाल रहा है। अगर उन्हें विश्वास होता कि वह मिस्टर तंखा को पटखनी दे सकते हैं, तो कभी न चूकते, मगर तंखा डील-डौल में उनसे सवाये थे। जब मिस्टर तंखा ने हार्न बजाया, तो वह भी आकर अपनी कार पर बैठे और सीधे मिस्टर खन्ना के पास पहुंचे।

नौ बज रहे थे, मगर खन्ना साहब अभी तक मीठी नींद का आनन्द ले रहे थे। वह दो बजे रात के पहले कभी न सोते थे और नौ बजे तक सोना स्वाभाविक ही था। यहां भी रायसाहब को आधा घण्टा बैठना पड़ा, इसलिए जब कोई साढ़े नौ बजे मिस्टर खन्ना मुसकराते हुए निकले, तो रायसाहब ने डांट बतायी— अच्छा! अब सरकार की नींद खुली है साढ़े नौ बजे! रुपये जमा कर लिये हैं न, जभी यह बेफ़िक्री है। मेरी तरह ताल्लुक़ेदार होते, तो अब तक आप भी किसी द्वार पर खड़े होते। बैठे-बैठे सिर में चक्कर आ जाता।

मिस्टर खन्ना ने सिगरेट-केस उनकी तरफ़ बढ़ाते हुए प्रसन्न-मुख से कहा—रात सोने में बड़ी देर हो गयी। इस वक़्त किधर से आ रहे हैं?

हैं। एक हलकी-सी ठोकर आपको पाताल में पहुंचा सकती है। आपको इस मौक़े पर बहुत संभलकर चलना चाहिए।

रायसाहब ने उनका हाथ अपनी तरफ़ खींचकर कहा--यह सब मैं खूब समझता हूं, मित्रवर! लेकिन जीवन की ट्रैजेडी और इसके सिवा क्या है कि आपकी आत्मा जो काम करना नहीं चाहती, वही आपको करना पड़े। आपको इस मौक़े पर मेरे लिए कम-से-कम दो लाख का इन्तज़ाम करना पड़ेगा।

खन्ना ने लम्बी सांस लेकर कहा—माई गाड! दो लाख, असम्भव, बिलकुल असम्भव!

'मैं तुम्हारे द्वार पर सर पटककर प्राण दे दूंगा खन्ना, इतना समझ लो। मैंने तुम्हारे ही भरोसे यह सारे प्रोग्राम बांधे हैं। अगर तुमने निराश कर दिया, तो शायद मुझे ज़हर खा लेना पड़े। मैं सूर्यप्रतापसिंह के सामने घुटने नहीं टेक सकता। कन्या का विवाह अभी दो-चार महीने टल सकता है। मुक़दमा दायर करने के लिए अभी काफ़ी वक्त है, लेकिन यह एलेक्शन सिर पर आ गया है, और मुझे सबसे बड़ी फ़िक्र यही है।'

खन्ना ने चकित होकर कहा—तो आप एलेक्शन में दो लाख लगा देंगे?

'एलेक्शन का सवाल नहीं है भाई, यह इज़्ज़त का सवाल है। क्या आपकी राय में मेरी इज़्ज़त दो लाख की भी नहीं है? मेरी सारी रियासत बिक जाये, ग़म नहीं, मगर सूर्यप्रतापसिंह को मैं आसानी से विजय न पाने दूंगा।'

खन्ना ने एक मिनट तक धुआं निकालने के बाद कहा—बैंक की जो स्थिति है, वह मैंने आपके सामने रख दी। बैंक ने एक तरह से लेन-देन का काम बन्द कर दिया है। मैं कोशिश करूंगा कि आपके साथ ख़ास रिआयत की जाये, लेकिन Business is Business यह आप जानते हैं। पर मेरा कमीशन क्या रहेगा? मुझे आपके लिए ख़ास तौर पर सिफ़ारिश करनी पड़ेगी। राजा साहब का अन्य डाइरेक्टरों पर कितना प्रभाव है, यह भी आप जानते हैं। मुझे उनके ख़िलाफ़ गुटबन्दी करनी पड़ेगी। यों समझ लीजिये कि मेरी ज़िम्मेदारी पर ही मुआमला होगा।

रायसाहब का मुंह गिर गया। खन्ना उनके अन्तरंग मित्रों में थे। साथ के पढ़े हुए, साथ के बैठनेवाले, और यह उनसे कमीशन की आशा रखते हैं, इतने बेमुरव्वती? आख़िर वह जो इतने दिनों से खन्ना की खुशामद करते हैं, वह किस दिन के लिए? बाग़ में फल निकले, शाक-भाजी पैदा हो, सबसे पहले खन्ना के पास डाली भेजते हैं। कोई उत्सव हो, कोई जलसा हो, सबसे पहले खन्ना को निमन्त्रण देते हैं। उसका यह जवाब हो? उदास मन से बोले—आपकी जो इच्छा हो, लेकिन मैं आपको अपना भाई समझता था।

खन्ना ने कृतज्ञता के भाव से कहा—यह आपकी कृपा है। मैंने भी सदैव आपको अपना बड़ा भाई समझा है और अब भी समझता हूं। कभी आपसे कोई परदा नहीं रखा, लेकिन व्यापार एक दूसरा क्षेत्र है। यहां कोई किसी का दोस्त नहीं, कोई किसी का भाई नहीं। जिस तरह मैं भाई के नाते आपसे यह नहीं कह सकता कि मुझे दूसरों से ज़्यादा कमीशन दीजिये, उसी तरह आपको भी मेरे कमीशन में रिआयत के लिए आग्रह न करना चाहिए। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मैं जितनी रिआयत आपके साथ कर सकता हूं, उतनी करूंगा। कल आप दफ़्तर के वक्त आयें और लिखा-पढ़ी कर लें। बस, बिज़नेस ख़त्म। आपने कुछ और सुना! मेहता साहब आजकल मालती पर बे-तरह रीझे हुए हैं। सारी फ़िलासफ़ी निकल गयी। दिन में एक-दो बार ज़रूर हाज़िरी दे आते हैं, और शाम को अक्सर दोनों साथ-साथ सैर करने निकलते हैं। यह तो मेरी ही शान थी कि कभी मालती के द्वार पर सलामी करने न गया। शायद अब उसी की क़सर निकाल रही है। कहां तो यह हाल था कि जो कुछ हैं, मिस्टर खन्ना हैं। कोई काम होता, तो खन्ना के पास दौड़ी आतीं। जब रुपयों की ज़रूरत पड़ती, तो खन्ना के नाम पुरज़ा आता। और कहां अब मुझे देखकर मुंह फेर लेती हैं। मैंने

ख़ास उन्हीं के लिए फ्रांस से एक घड़ी मंगवायी थी। बड़े शौक़ से लेकर गया, मगर नहीं ली। अभी कल मेवों की डाली भेजी थी, काश्मीर से मंगवाये थे, वापस कर दी। मुझे तो आश्चर्य होता है कि आदमी कैसे इतनी जल्द वदल जाता है!

रायसाहव मन में उसकी वेक़द्री पर ख़ुश हुए, पर सहानुभूति दिखाकर वोले—अगर यह भी मान लें कि मेहता से उसका प्रेम हो गया है, तो व्यवहार तोड़ने का कोई कारण नहीं है।

खन्ना व्यथित स्वर में वोले—यही तो रंज है भाई साहव! यह तो मैं शुरू से जानता था, वह मेरे हाथ नहीं आ सकती है। मैं आपसे सत्य कहता हूं, मैं कभी इस धोखे में नहीं पड़ा कि मालती को मुझसे प्रेम है। प्रेम जैसी चीज़ उससे मिल सकती है, इसकी मैंने कभी आशा ही नहीं की। मैं तो केवल उसके रूप का पुजारी था। सांप में विष है, यह जानते हुए भी हम उसे दूध पिलाते हैं। तोते से ज़्यादा निठुर जीव और कौन होगा, लेकिन केवल उसके रूप और वाणी पर मुग्ध होकर लोग उसे पालते हैं और सोने के पिंजरे में रखते हैं। मेरे लिए भी मालती उसी तोते के समान थी। अफ़सोस यही है कि मैं पहले क्यों न चेत गया? इसके पीछे मैंने अपने हज़ारों रुपये वरवाद कर दिये भाई साहव। जव उसका रुक्का पहुंचा, मैंने तुरन्त रुपये भेजे। मेरी कार आज भी उसकी सवारी में है। उसके पीछे मैंने अपना घर चौपट कर दिया भाई साहव। हृदय में जितना रस था, वह ऊसर की ओर इतने वेग से दौड़ा कि दूसरी तरफ़ का उद्यान विलकुल सूखा रह गया। वरसों हो गये, मैंने गोविन्दी से दिल खोलकर वात भी नहीं की। उसकी सेवा और स्नेह और त्याग से मुझे उसी तरह अरुचि हो गयी थी, जैसे अजीर्ण के रोगी को मोहनभोग से हो जाती है। मालती मुझे उसी तरह नचाती थी, जैसे मदारी वन्दर को नचाता है और मैं ख़ुशी से नाचता था। वह मेरा अपमान करती थी और मैं ख़ुशी से हंसता था। वह मुझ पर शासन करती थी, और मैं सिर झुकाता था। उसने मुझे कभी मुंह नहीं लगाया, यह मैं स्वीकार करता हूं। उसने मुझे कभी प्रोत्साहन नहीं दिया, यह भी सत्य है, फिर भी मैं पतंग की भांति उसके मुख-दीप पर प्राण देता था। और अव वह मुझसे शिष्टाचार का व्यवहार भी नहीं कर सकती। लेकिन भाई साहव! मैं कहे देता हूं कि खन्ना चुप वैठनेवाला आदमी नहीं है। उसके पुरज़े मेरे पास सुरक्षित हैं, मैं उससे एक-एक पाई वसूल कर लूंगा, और डॉक्टर मेहता को तो मैं लखनऊ से निकालकर दम लूंगा। उनका रहना यहां असम्भव कर दूंगा...

उसी वक्त हार्न की आवाज़ आयी और एक क्षण में मिस्टर मेहता आकर खड़े हो गये। गोरा-चिट्टा रंग, स्वास्थ्य की लालिमा, गालों पर चमकती हुई, नीची अचकन, चूड़ीदार पाजामा, सुनहली ऐनक। सौम्यता के देवता-से लगते थे।

खन्ना ने उठकर हाथ मिलाया—आइये मिस्टर मेहता, आप ही का ज़िक्र हो रहा था।

मेहता ने दोनों सज्जनों से हाथ मिलाकर कहा—बड़ी अच्छी साइत में घर से चला था कि आप दोनों साहवों से एक जगह भेंट हो गयी। आपने शायद पत्रों में देखा होगा, यहां महिलाओं के लिए एक व्यायामशाला का आयोजन हो रहा है। मिस मालती उस कमेटी की सभानेत्री हैं। अनुमान किया गया है कि शाला में दो लाख रुपये लगेंगे। नगर में उसकी कितनी ज़रूरत है, यह आप लोग मुझसे ज़्यादा जानते हैं। मैं चाहता हूं, आप दोनों साहवों का नाम सवसे ऊपर हो। मिस मालती खुद आनेवाली थीं, पर आज उनके फ़ादर की तवीयत अच्छी नहीं है, इसलिए न आ सकीं।

उन्होंने चन्दे की सूची रायसाहव के हाथ में रख दी। पहला नाम राजा सूर्यप्रतापसिंह का था, जिसके सामने पांच हज़ार रुपये की रक़म थी। उसके वाद कुंवर दिग्विजयसिंह के तीन हज़ार रुपये थे। इसके वाद और कई रक़में इतनी या इससे कुछ कम थीं। मालती ने पांच सौ रुपये दिये थे और डॉक्टर मेहता ने एक हज़ार रुपये।

रायसाहव ने अप्रतिभ होकर कहा—कोई चालीस हज़ार तो आप लोगों ने फटकार लिये।

मेहता ने गर्व से कहा—यह सव आप लोगों की दया है। और यह केवल ती[illegible]टों का परिश्रम

है। राजा सूर्यप्रतापसिंह ने शायद ही किसी सार्वजनिक कार्य में भाग लिया हो, पर आज तो उन्होंने बे-कहे-सुने चैक लिख दिया। देश में जागृति है। जनता किसी भी शुभ काम में सहयोग देने को तैयार है। केवल उसे विश्वास होना चाहिए कि उसके दान का सद्व्यय होगा। आपसे तो मुझे बड़ी आशा है, मिस्टर खन्ना!

खन्ना ने उपेक्षा-भाव से कहा -- मैं ऐसे फ़ुजूल कामों में नहीं पड़ता। न जाने आप लोग पच्छिम की गुलामी में कहां तक जायेंगे। यों ही महिलाओं को घर से अरुचि हो रही है। व्यायाम की धुन सवार हो गयी, तो वह कहीं की न रहेंगी। जो औरत घर का काम करती है, उसके लिए किसी व्यायाम की ज़रूरत नहीं। और जो घर का कोई काम नहीं करती और केवल भोग-विलास में रत है, उसके व्यायाम के लिए चन्दा देना मैं अधर्म समझता हूं।

मेहता ज़रा निरुत्साह न हुए--ऐसी दशा में मैं आपसे कुछ मांगूंगा भी नहीं। जिस आयोजन में हमें विश्वास न हो, उसमें किसी तरह की मदद देना वास्तव में अधर्म है। आप तो मिस्टर खन्ना से सहमत नहीं हैं रायसाहब?

रायसाहब गहरी चिन्ता में डूबे हुए थे। सूर्यप्रताप के पांच हज़ार उन्हें हतोत्साह किये डालते थे। चौंककर बोले—आपने मुझसे कुछ कहा?

'मैंने कहा, आप तो इस आयोजन में सहयोग देना अधर्म नहीं समझते?'

'जिस काम में आप शरीक हैं, वह धर्म है या अधर्म, इसकी मैं परवाह नहीं करता।'

'मैं चाहता हूं, आप खुद विचार करें और अगर आप इस आयोजन को समाज के लिए उपयोगी समझें, तो उसमें सहयोग दें। मिस्टर खन्ना की नीति मुझे बहुत पसन्द आयी।'

खन्ना बोले—मैं तो साफ़ कहता हूं और इसीलिए बदनाम हूं।

रायसाहब ने दुर्बल मुस्कान के साथ कहा—मुझमें तो विचार करने की शक्ति ही नहीं। सज्जनों के पीछे चलना ही मैं अपना धर्म समझता हूं। जो कहिये, वह लिख दूं।

'तो लिखिये कोई अच्छी रक़म।'

'जो आपकी इच्छा।'

'तो दो हज़ार से कम क्या लिखियेगा?'

रायसाहब ने आहत स्वर में कहा—आपकी निगाह में मेरी यही हैसियत है?

उन्होंने क़लम उठाया और अपना नाम लिखकर उसके सामने पांच हज़ार लिख दिये। मेहता ने सूची उनके हाथ से ले ली, मगर उन्हें इतनी ग्लानि हुई कि रायसाहब को धन्यवाद देना भी भूल गये। रायसाहब को चन्दे की सूची दिखाकर उन्होंने बड़ा अनर्थ किया, यह शूल उन्हें व्यथित करने लगा।

मिस्टर खन्ना ने रायसाहब को दया और उपहास की दृष्टि से देखा, मानो कह रहे हों, कितने बड़े गधे हो तुम!

सहसा मेहता रायसाहब के गले लिपट गये और उन्मुक्त कण्ठ से बोले—Three Cheers for Rai Sahib, Hip Hip Hurrah!

खन्ना ने खिसियाकर कहा—यह लोग राजे-महाराजे ठहरे, यह इन कामों में दान न दें, तो कौन दे?

मेहता बोले—मैं तो आपको राजाओं का राजा समझता हूं। आप उन पर शासन करते हैं। उनकी कोठी आपके हाथ में है।

रायसाहब प्रसन्न हो गये—यह आपने बड़ी मार्के की बात कही मेहताजी! हम नाम के राजा हैं। असली राजा तो हमारे बैंकर हैं।

मेहता ने खन्ना की खुशामद का पहलू अख़्तियार किया—मुझे आपसे कोई शिकायत नहीं है खन्नाजी! आप अभी इस काम में नहीं शरीक़ होना चाहते, न सही, लेकिन कभी-न-कभी ज़रूर

आयेंगे। लक्ष्मीपतियों की बदौलत ही हमारी बड़ी-बड़ी संस्थाएं चलती हैं। राष्ट्रीय आन्दोलन को दो-तीन साल तक किसने इतनी धूम-धाम से चलाया? इतनी धर्मशालाएं और पाठशालाएं कौन बनवा रहा है? आज संसार का शासन-सूत्र बैंकरों के हाथ में है। सरकार उनके हाथ का खिलौना है। मैं भी आपसे निराश नहीं हूं। जो व्यक्ति राष्ट्र के लिए जेल जा सकता है, उसके लिए दो-चार हज़ार ख़र्च कर देना कोई बड़ी बात नहीं है। हमने तय किया है, इस शाला का बुनियादी पत्थर गोविन्दी देवी के हाथों रखा जाये। हम दोनों शीघ्र ही गवर्नर साहब से भी मिलेंगे और मुझे विश्वास है, हमें उनकी सहायता मिल जायेगी। लेडी विलसन को महिला-आन्दोलन से कितना प्रेम है, आप जानते ही हैं। राजा साहब की और अन्य सज्जनों की भी राय थी कि लेडी विलसन से ही बुनियाद रखवायी जाये, लेकिन अन्त में यह निश्चय हुआ कि यह शुभ कार्य किसी अपनी बहिन के हाथों होना चाहिए। आप कम-से-कम इस अवसर पर आयेंगे तो ज़रूर?

खन्ना ने उपहास किया—हां, जब लार्ड विलसन आयेंगे, तो मेरा पहुंचना ज़रूरी है। इस तरह बहुत-से रईसों को फांस लेंगे। आप लोगों को लटके खूब सूझे हैं। और हमारे रईस हैं भी इस लायक। उन्हें उल्लू बनाकर ही मूंडा जा सकता है।

'जब धन ज़रूरत से ज़्यादा हो जाता है, तो अपने लिए निकास का मार्ग खोजता है। यों न निकल पायेगा, तो जुए में जायेगा, घुड़दौड़ में जायेगा, ईंट-पत्थर में जायेगा या ऐयाशी में जायेगा।'

ग्यारह का अमल था। खन्ना साहब के दफ़्तर का समय आ गया। मेहता चले गये। रायसाहब भी उठे कि खन्ना ने उनका हाथ पकड़कर बैठा लिया—नहीं, आप ज़रा बैठिये। आप देख रहे हैं, मेहता ने मुझे इस बुरी तरह फांसा है कि निकलने का कोई रास्ता ही नहीं रहा। गोविन्दी ने बुनियाद का पत्थर रखवायेंगे! ऐसी दशा में मेरा अलग रहना हास्यास्पद है या नहीं? गोविन्दी कैसे राज़ी हो गयी, मेरी समझ में नहीं आता और मालती ने कैसे उसे सहन कर लिया, यह समझना और भी कठिन है। आपका क्या ख़याल है, इसमें कोई रहस्य है या नहीं?

रायसाहब ने आत्मीयता जतायी—ऐसे मुआमले में स्त्री को हमेशा पुरुष से सलाह ले लेनी चाहिए।

खन्ना ने रायसाहब को धन्यवाद की आंखों से देखा—इन्हीं बातों पर गोविन्दी से मेरा जी जलता है, और उस पर मुझी को लोग बुरा कहते हैं। आप ही सोचिये, मुझे इन झगड़ों से क्या मतलब? इनमें तो वह पड़े, जिसके पास फ़ालतू रुपये हों, फ़ालतू समय हो और नाम की हवस हो। होना यही है कि दो-चार महाशय सेक्रेटरी और अण्डर सेक्रेटरी और प्रधान और उपप्रधान बनकर अफ़सरों को दावतें देंगे, उनके कृपापात्र बनेंगे और यूनिवर्सिटी की छोकरियों को जमा करके विहार करेंगे। व्यायाम तो केवल दिखाने के दांत हैं। ऐसी संस्था में हमेशा यही होता है और यही होगा। [illegible] बनेंगे हम और हमारे भाई, जो धनी कहलाते हैं और यह सब गोविन्दी के कारण।

वह एक बार कुरसी से उठे, फिर बैठ गये। गोविन्दी के प्रति उनका क्रोध प्रचण्ड होता जाता था। उन्होंने दोनों हाथ से सिर को संभालकर कहा—मैं नहीं समझता, मुझे क्या करना चाहिए।

रायसाहब ने ठकुरसुहाती की—कुछ नहीं, आप गोविन्दी देवी से साफ़ कह दें, तुम मेहता को इनकारी पत्र लिख दो, छुट्टी हुई। मैं तो आप [illegible] में फंस गया। आप कहें [illegible]

खन्ना ने एक क्षण इस प्रस्ताव पर विचार करके कहा—लेकिन मेरे कहने से, [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] है।

[illegible]

[illegible]

'आप शिलान्यास के एक दिन पहले वाहर चले जाइयेगा।'

'मुश्किल है रायसाहव! कहीं मुंह दिखाने की जगह न रहेगी। उस दिन तो मुझे हैज़ा हो जाये, भी वहां जाना पड़ेगा।'

रायसाहव आशा वांधे हुए, कल आने का वादा करके, ज्यों ही निकले कि खन्ना ने अन जाकर गोविन्दी को आड़े हाथों लिया—तुमने इस व्यायामशाला की नींव रखना क्यों स्वीकार किया

गोविन्दी कैसे कहे कि यह सम्मान पाकर वह मन में कितनी प्रसन्न हो रही थी, उस अवसर लिए कितने मनोयोग से अपना भाषण लिख रही थी और कितनी ओजभरी कविता रची थी। उस दिल में समझा था, यह प्रस्ताव स्वीकार करके वह खन्ना को प्रसन्न कर देगी। उसका सम्मान, उसके पति का ही सम्मान है। खन्ना को इसमें कोई आपत्ति हो सकती है, इसकी उसने कल्पना भी की थी। इधर कई दिन से पति को कुछ सदय देखकर उसका मन वढ़ने लगा था। वह अपने भाष से, और अपनी कविता से लोगों को मुग्ध कर देने का स्वप्न देख रही थी।

यह प्रश्न सुना और खन्ना की मुद्रा देखी, तो उसकी छाती धक्-धक् करने लगी। अपराधी भांति वोली—डॉक्टर मेहता ने आग्रह किया, तो मैंने स्वीकार कर लिया।

'डॉक्टर मेहता तुम्हें कुएं में गिरने को कहें, तो शायद इतनी खुशी से न तैयार होगी।'

गोविन्दी की ज़वान वन्द।

'तुम्हें जव ईश्वर ने वुद्धि नहीं दी, तो क्यों मुझसे नहीं पूछ लिया? मेहता और मालती दोनों चाल चलकर मुझसे दो-चार हज़ार ऐंठने की फ़िक्र में हैं, और मैंने ठान लिया है कि कौड़ी भी न दूं तुम आज ही मेहता को इनकारी ख़त लिख दो।'

गोविन्दी ने एक क्षण सोचकर कहा—तो तुम्हीं लिख दो न।

'मैं क्यों लिखूं? वात की तुमने, लिखूं मैं?'

'डॉक्टर साहव कारण पूछेंगे, तो क्या वताऊंगी?'

'वताना अपना सिर, और क्या? मैं इस व्यभिचारशाला को एक धेला भी नहीं देना चाहता।'

'तो तुम्हें देने को कौन कहता है?'

खन्ना ने होंठ चबाकर कहा—कैसी वेसमझी की-सी वातें करती हो? तुम वहां नींव रखो और कुछ दोगी नहीं, तो संसार क्या कहेगा?

गोविन्दी ने जैसे संगीन की नोक पर कहा—अच्छी वात है, लिख दूंगी।

'आज ही लिखना होगा।'

'कह तो दिया, लिखूंगी।'

खन्ना वाहर आये और डाक देखने लगे। उन्हें दफ्तर जाने में देर हो जाती थी, तो चपरासी घ पर ही डाक दे जाता था। शक्कर तेज़ हो गयी। खन्ना का चेहरा खिल उठा। दूसरी चिट्ठी खोली। ऊ की दर नियत करने के लिए जो कमेटी वैठी थी, उसने तय कर लिया कि ऐसा नियन्त्रण नहीं कि जा सकता। धत् तेरे की! वह पहले यही वात कर रहे थे, इस पर अग्निहोत्री ने गुल मचाव ज़वरदस्ती कमेटी वैठायी। आखिर वच्चा के मुंह पर थप्पड़ लगा। यह मिलवालों और किसानों वीच का मुआमला है। सरकार इसमें दख़ल देनेवाली कौन?

सहसा मिस मालती कार से उतरीं। कमल की भांति खिली, दीपक की भांति दमकती, स्फू और उल्लास की प्रतिमा-सी—निश्शंक, निर्द्वन्द्व, मानो उसे विश्वास है कि संसार में उसके लि आदर और सुख का द्वार खुला हुआ है। खन्ना ने वरामदे में आकर अभिवादन किया।

मालती ने पूछा—क्या मेहता यहां आये थे?

'हां, आये तो थे।'

'कुछ कहा, कहां जा रहे हैं?'

'यह तो कुछ नहीं कहा।'

'जाने कहां डुबकी लगा गये! मैं चारों तरफ़ घूम आयी। आपने व्यायामशाला के लिए कितना दिया?'

खन्ना ने अपराधी-स्वर में कहा—मैंने इस मुआमले को समझा ही नहीं।

मालती ने बड़ी-बड़ी आंखों से तरेरा, मानो सोच रही हो कि उन पर दया करे या रोष।

'इसमें समझने की क्या बात थी, और समझ लेते आगे-पीछे, इस वक़्त तो कुछ देने की बात थी। मैंने मेहता को ठेलकर यहां भेजा था। बेचारे डर रहे थे कि आप न जाने क्या जवाब दें। आपकी इस कन्जूसी का क्या फल होगा, आप जानते हैं? यहां के व्यापारी समाज से कुछ न मिलेगा। आपने शायद मुझे अपमानित करने का निश्चय कर लिया है। सबकी सलाह थी कि लेडी विलसन बुनियाद रखें। मैंने गोविन्दी देवी का पक्ष लिया और लड़कर सबको राज़ी किया और अब आप कहते हैं आपने इस मुआमले को समझा ही नहीं। आप बैंकिंग की गुत्थियां समझते हैं, पर इतनी मोटी बात आपकी समझ में न आयी! इसका अर्थ इसके सिवा कुछ नहीं कि तुम मुझे लज्जित करना चाहते हो। अच्छी बात है, यही सही!'

मालती का मुख लाल हो गया। खन्ना घबराये, हेकड़ी जाती रही, पर इसके साथ ही उन्हें यह भी मालूम हुआ कि अगर वह कांटों में फंस गये हैं, तो मालती दलदल में फंस गयी है, अगर उनकी थैलियों पर संकट आ पड़ा है, तो मालती की प्रतिष्ठा पर संकट आ पड़ा है, जो थैलियों से ज़्यादा मूल्यवान् है। तब उनका मन मालती की दुरवस्था का आनन्द क्यों न उठाये? उन्होंने मालती को अरदब में डाल दिया था और यद्यपि वह उसे रुष्ट कर देने का साहस खो चुके थे, पर दो-चार खरी-खरी बातें कह सुनाने का अवसर पाकर छोड़ना न चाहते थे। यह भी दिखा देना चाहते थे कि मैं निरा भोंदू नहीं हूं। उसका रास्ता रोककर बोले—तुम मुझ पर इतनी कृपालु हो गयी हो, इस पर मुझे आश्चर्य हो रहा है मालती!

मालती ने भवें सिकोड़कर कहा—मैं इसका आशय नहीं समझी।

'क्या अब मेरे साथ तुम्हारा वही वर्ताव है, जो कुछ दिन पहले था?'

'मैं तो उसमें कोई अन्तर नहीं देखती।'

'लेकिन मैं तो आकाश-पाताल का अन्तर देखता हूं।'

'अच्छा, मान लो तुम्हारा अनुमान ठीक है, तो फिर? मैं तुमसे एक शुभ कार्य में सहायता मांगने आयी हूं या अपने व्यवहार की परीक्षा देने आयी हूं। और अगर तुम समझते हो, कुछ चन्दा देकर मुझे यश और धन्यवाद के सिवा और कुछ पा सकते हो, तो तुम भ्रम में हो।'

खन्ना परास्त हो गये। वह ऐसे संकरे कोने में फंस गये थे, जहां इधर-उधर हिलने का भी स्थान न था। क्या वह उससे यह कहने का साहस रखते हैं कि मैंने अब तक तुम्हारे ऊपर [illegible] दिये, क्या उसका यही पुरस्कार है? लज्जा से उनका मुंह [illegible] हो? झेंपते हुए बोले—मेरा आशय यह न था मालती, तुम बिल्कुल उलटा समझ गयीं।

मालती ने परिहास के स्वर में कहा—[illegible] समझ लूंगी, तो तुम्हारे साये से भी भागूंगी। मैं [illegible] हो। वह मेरी कृपा थी कि जहां मैं औरों के उपहार [illegible] भी धन्यवाद के साथ स्वीकार कर लेती थी, और [illegible] अगर तुमने अपने धनोन्माद में इसका कोई दूसरा अर्थ निकाल लिया [illegible] यह पुरुष-प्रकृति का अपवाद नहीं, मगर [illegible] विजय नहीं पायी, और न कभी पायेगा।

खन्ना एक-एक शब्द पर मानो [illegible]

जीवट न था। लज्जित होकर बोले—मालती, तुम्हारे पैरों पड़ता हूं, अब और ज़लील न करो। और न सही, तो मित्र-भाव, तो बना रहने दो।

यह कहते हुए दराज़ से चैकबुक निकाली और एक हज़ार लिखकर डरते-डरते मालती की तरफ़ बढ़ाया।

मालती ने चैक लेकर निर्दय व्यंग्य किया—यह मेरे व्यवहार का मूल्य है या व्यायामशाला का चन्दा?

खन्ना सजल आंखों से बोले—अब मेरी जान बख़्शो मालती, क्यों मेरे मुंह में कालिख पोत रही हो?

मालती ने ज़ोर से क़हक़हा मारा—देखो, डांट बतायी और एक हज़ार रुपये भी वसूल किये। अब तो तुम कभी ऐसी शरारत न करोगे?

'कभी नहीं, जीते-जी कभी नहीं।'

'कान पकड़ो।'

'कान पकड़ता हूं, मगर अब दया करके जाओ और मुझे एकान्त में बैठकर सोचने और रोने दो। तुमने आज मेरे जीवन का सारा आनन्द... ।'

मालती और ज़ोर से हंसी—देखो खन्ना, तुम मेरा बहुत अपमान कर रहे हो और तुम जानते हो, रूप अपमान नहीं सह सकता। मैंने तो तुम्हारे साथ भलाई की और तुम उसे बुराई समझते हो।

खन्ना विद्रोह-भरी आंखों से देखकर बोले—तुमने मेरे साथ भलाई की है या उलटी छुरी से मेरा गला रेता है?

'क्यों, मैं तुम्हें लूट-लूटकर अपना घर भर रही थी। तुम उस लूट से बच गये।'

'क्यों घाव पर नमक छिड़क रही हो मालती? मैं भी आदमी हूं।'

मालती ने इस तरह खन्ना की ओर देखा, मानो निश्चय करना चाहती थी कि वह आदमी है या नहीं।

'अभी तो मुझे इसका कोई लक्षण नहीं दिखाई देता।'

'तुम बिलकुल पहेली हो, आज यह साबित हो गया।'

'हां, तुम्हारे लिए पहेली हूं और पहेली रहूंगी।'

यह कहती हुई वह पक्षी की भांति फुर्र से उड़ गयी और खन्ना सिर पर हाथ रखकर सोचने लगे, यह लीला है या इसका सच्चा रूप।

: 23 :

गोबर और झुनिया के जाने के बाद घर सुनसान रहने लगा। धनिया को बार-बार चुन्नू की याद आती रहती। बच्चे की मां तो झुनिया थी, पर उसका पालन धनिया ही करती थी। वही उसे उबटन मलती, काजल लगाती, सुलाती और जब काम-काज से अवकाश मिलता, उसे प्यार करती। वात्सल्य का यह नशा ही उसकी विपत्ति को भुलाता रहता था। उसका भोला-भाला, मक्खन-सा मुंह देखकर वह अपनी सारी चिन्ता भूल जाती, और स्नेहमय गर्व से उसका हृदय फूल उठता। वह जीवन का आधार अब न था। उसका सूना खटोला देखकर वह रो उठती। वह कवच, जो सारी चिन्ताओं और दुराशाओं से उसकी रक्षा करता था, उससे छिन गया था। डाइन ने आकर उसका सोना-सा घर मिट्टी में मिला दिया। गोबर ने कभी उसकी बात का जवाब भी न दिया था। इसी रांड़ ने उसे फोड़ा और वहां ले जाकर न जाने कौन-कौन-सा नाच नचायेगी। यहां ही वह बच्चे की कौन बहुत परवाह करती थी। उसे तो अपनी मिस्सी-काजल, मांग-चोटी से ही छुट्टी नहीं मिलती। बच्चे की देखभाल क्या करेगी? बेचारा अकेला ज़मीन पर पड़ा रोता होगा। बेचारा एक दिन भी तो सुख से रहने नहीं

पाता। कभी खांसी, कभी दस्त, कभी कुछ, कभी कुछ। यह सोच-सोचकर उसे झुनिया पर क्रोध आता। गोबर के लिए अब भी उसके मन में वही ममता थी। इसी चुड़ैल ने उसे कुछ खिला-पिलाकर अपने वश में कर लिया। ऐसी मायाविनी न होती, तो वह टोना ही कैसे करती? कोई बात न पूछता था। भौजाइयों की लातें खाती थी। यह भुग्गा मिल गया, तो आज रानी हो गयी।

होरी ने चिढ़कर कहा—जब देखो तब तू झुनिया ही को दोष देती है। यह नहीं समझती कि अपना सोना खोटा, तो सोनार का क्या दोष! गोबर उसे न ले जाता, तो क्या आप-से-आप चली जाती? सहर का दाना-पानी लगने से लौंडे की आंखें बदल गयीं, ऐसा क्यों नहीं समझ लेती।

धनिया गरज उठी—अच्छा, चुप रहो। तुम्हीं ने रांड़ को मूड़ पर चढ़ा रखा था, नहीं मैंने पहले ही दिन झाड़ू मारकर निकाल दिया होता।

खलिहान में डाठें जमा हो गयी थीं। होरी बैलों को जुखरकर अनाज मांड़ने जा रहा था। पीछे मुंह फेरकर बोला—मान ले, बहू ने गोबर को फोड़ ही लिया, तो तू इतनी कुढ़ती क्यों है? जो सारा जमाना करता है, वही गोबर ने भी किया। अब उसके बाल-बच्चे हुए। मेरे बाल-बच्चों के लिए क्यों अपनी सांसत कराये, क्यों हमारे सिर का बोझ अपने सिर पर रखे?

'तुम्हीं उपद्रव की जड़ हो।'

'तो मुझे भी निकाल दो। ले जा बैलों को, अनाज मांड़। मैं हुक्का पीता हूं।'

'तुम चलकर चक्की पीसो, मैं अनाज मांडूंगी।'

विनोद में दुःख उड़ गया। वही उसकी दवा है। धनिया प्रसन्न होकर रूपा के बाल गूंथने बैठ गयी, जो बिलकुल उलझकर रह गये थे, और होरी खलिहान चला। रसिक वसन्त सुगन्ध और प्रमोद और जीवन की विभूति लुटा रहा था, दोनों हाथों से दिल खोलकर। कोयल आम की डालियों में छिपी अपनी रसीली, मधुर, आत्मस्पर्श कूक से आशाओं को जगाती फिरती थी। महुए की डालियों पर मैनाओं की बरात-सी लगी बैठी थी। नीम और सिरस और करौंदे अपनी महक में नशा-सा घोल देते थे। होरी आमों के बाग में पहुंचा, तो वृक्षों के नीचे तारे से खिले थे। उसका व्यथित, निराश मन भी इस व्यापक शोभा और स्फूर्ति में आकर गाने लगा—

'हिया जरत रहत दिन-रैन।
आम की डरिया कोयल बोले
तनिक न आवत चैन।'

सामने से दुलारी सहुआइन, गुलाबी साड़ी पहने चली आ रही थी। पांव में मोटे चांदी के कड़े थे, गले में मोटी सोने की हंसली, चेहरा सूखा हुआ, पर दिल हरा। एक समय था, जब होरी खेत-खलिहान में उसे छेड़ा करता था। वह भाभी थी, होरी देवर था, इस नाते दोनों में विनोद होता रहता था। जब से साहजी मर गये, दुलारी ने घर से निकलना छोड़ दिया। सारे दिन दुकान पर बैठी रहती थी और वहीं से सारे गांव की खबर लगाती रहती थी। कहीं आपस में झगड़ा हो जाये, सहुआइन वहां बीच-बचाव करने के लिए अवश्य पहुंचेगी। आने रुपये सूद से कम पर रुपये उधार न देती थी। और यद्यपि सूद के लोभ में मूल भी हाथ न आता था—जो रुपये लेता, खाकर बैठ रहता—मगर उसके ब्याज का दर ज्यों-का-त्यों बना रहता था। बेचारी कैसे वसूल करे। नालिश-फ़रियाद करने से रही, थाना-पुलिस करने से रही, केवल जीभ का बल था। मगर ज्यों-ज्यों उम्र के साथ जीभ की तेज़ी बढ़ती जाती थी, उसकी काट घटती जाती थी। अब उसकी गालियों पर लोग हंस देते थे और मज़ाक़ में कहते—क्या करेगी रुपये लेकर काकी, साथ तो एक कौड़ी भी न ले जा सकेगी। ग़रीब को खिला-पिलाकर जितनी असीस मिल सके, ले-ले। यही परलोक में काम आयेगा। और दुलारी परलोक के नाम से जलती थी।

होरी ने छेड़ा—आज तो भाभी, तुम सचमुच जवान लगती हो।

सहुआइन मगन होकर बोली—आज मंगल का दिन है, नजर न लगा देना। इसी मारे मैं कुछ पहनती-ओढ़ती नहीं। घर से निकलो, तो सभी घूरने लगते हैं, जैसे कभी कोई मेहरिया देखी न हो। पटेश्वरी लाला की पुरानी बान अभी नहीं छूटी।

होरी ठिठक गया, बड़ा मनोरंजक प्रसंग छिड़ गया था। बैल आगे निकल गये।

'वह आजकल बड़े भगत हो गये हैं। देखती नहीं हो, हर पूरनमासी को सत्यनारायण की कथा सुनते हैं। और दोनों जून मन्दिर में दर्शन करने जाते हैं।'

'ऐसे लम्पट जितने होते हैं, सभी बूढ़े होकर भगत बन जाते हैं। कुकर्म का परासचित तो करना ही पड़ता है। पूछो, मैं अब बुढ़िया हुई, मुझसे क्या हंसी?'

'तुम अभी बुढ़िया कैसे हो गयीं भाभी? मुझे तो अब भी...'

'अच्छा, चुप ही रहना, नहीं डेढ़ सौ गाली दूंगी। लड़का परदेस कमाने लगा, एक दिन नेवता भी न खिलाया, सेंत-मेंत में भाभी बनाने को तैयार।'

'मुझसे कसम ले लो भाभी, जो मैंने उसकी कमाई का एक पैसा भी छुआ हो। न जाने क्या लाया, कहां खरच किया, मुझे कुछ भी पता नहीं। बस, एक जोड़ा धोती और एक पगड़ी मेरे हाथ लगी।'

'अच्छा, कमाने तो लगा, आज नहीं कल घर संभालेगा ही। भगवान् उसे खुशी रखे। हमारे रुपये भी थोड़ा-थोड़ा देते चलो। सूद ही तो बढ़ रहा है।'

'तुम्हारी एक-एक पाई दूंगा भाभी, हाथ में पैसे आने दो। और खा ही जायेंगे, तो कोई बाहर के तो नहीं हैं, हैं तो तुम्हारे ही।'

सहुआइन ऐसी विनोद-भरी चापलूसियों से निरस्त्र हो जाती थी। मुसकराती हुई अपनी राह चली गयी। होरी लपककर बैलों के पास पहुंच गया और उन्हें पौर में डालकर चक्कर देने लगा। सारे गांव का यही एक खलिहान था। कहीं मड़ाई हो रही थी, कोई अनाज ओसा रहा था, कोई गल्ला तौल रहा था। नाई-बारी, बढ़ई, लोहार, पुरोहित, भाट, भिखारी, सभी अपने-अपने जेवरे लेने के लिए जमा हो गये थे। एक पेड़ के नीचे झिंगुरीसिंह खाट पर बैठे अपनी सवाई उगाह रहे थे। कई बनिये खड़े गल्ले का भाव-ताव कर रहे थे। सारे खलिहान में मण्डी की-सी रौनक थी। एक खटकिन बेर और मकोय बेच रही थी और एक खोंचेवाला तेल के सेव और जलेबियां लिये फिर रहा था। पण्डित दातादीन भी होरी से अनाज बंटवाने के लिए आ पहुंचे थे और झिंगुरीसिंह के साथ खाट पर बैठे थे।

दातादीन ने सुरती मलते हुए कहा—कुछ सुना, सरकार भी महाजनों से कह रही है कि सूद का दर घटा दो, नहीं डिग्री न मिलेगी।

झिंगुरी तमाखू फांककर बोले—पण्डित, मैं तो एक बात जानता हूं। तुम्हें गरज पड़ेगी, तो सौ बार हमसे रुपये उधार लेने आओगे, और हम जो ब्याज चाहेंगे, लेंगे। सरकार अगर असामियों को रुपये उधार देने का कोई बन्दोबस्त न करेगी, तो हमें इस कानून से कुछ न होगा। हम दर कम लिखायेंगे, लेकिन एक सौ में पचीस पहले ही काट लेंगे। इसमें सरकार क्या कर सकती है?

'यह तो ठीक है, लेकिन सरकार भी इन बातों को खूब समझती है। इसकी भी कोई रोक निकालेगी, देख लेना।'

'इसकी कोई रोक हो ही नहीं सकती।'

'अच्छा, अगर वह शर्त कर दे, जब तक स्टाम्प पर गांव के मुखिया या कारिन्दा के दसखत न होंगे, वह पक्का न होगा, तब क्या करोगे?'

'असामी को सौ बार गरज होगी, मुखिया का हाथ-पांव जोड़ के लायेगा और दसखत करायेगा। हम तो एक-चौथाई काट ही लेंगे।'

'और जो फंस जाओ? जाली हिसाब लिखा और गये चौदह साल को।'

झिंगुरीसिंह ज़ोर से हंसा—तुम क्या कहते हो पण्डित, क्या तब संसार बदल जायेगा? कानून

और न्याय उसका है, जिसके पास पैसा है। कानून तो है कि महाजन किसी असामी के साथ कड़ाई न करे, कोई जमींदार किसी कास्तकार के साथ सख्ती न करे, मगर होता क्या है? रोज ही देखते हो। जमींदार मुसक बंधवा के पिटवाता है और महाजन लात और जूते से बात करता है। जो किसान पोढ़ा है, उससे न जमींदार बोलता है, न महाजन। ऐसे आदमियों से हम मिल जाते हैं और उनकी मदद से दूसरे आदमियों की गर्दन दबाते हैं। तुम्हारे ही ऊपर रायसाहब के पांच सौ रुपये निकलते हैं, लेकिन नोखेराम में है इतनी हिम्मत कि तुमसे कुछ बोले? वह जानते हैं, तुमसे मेल करने ही में उनका हित है। असामी में इतना बूता है कि रोज अदालत दौड़े? सारा कारबार इसी तरह चलता जायेगा, जैसे चल रहा है। कचहरी-अदालत उसी के साथ है, जिसके पास पैसा है। हम लोगों को घबराने की कोई बात नहीं।

यह कहकर उन्होंने खलिहान का एक चक्कर लगाया और फिर आकर खाट पर बैठते हुए बोले—हां, मतई के ब्याह का क्या हुआ? हमारी सलाह तो है कि उसका ब्याह कर डालो। वड़ी बदनामी हो रही है।

दातादीन को जैसे ततैया ने काट खाया। इस आलोचना का क्या आशय था, ... थे। गरम होकर बोले—पीठ पीछे आदमी जो चाहे बके, हमारे मुंह पर कोई कुछ कहे, तो ... उखाड़ दूं। कोई हमारी तरह नरम नेमी बन तो ले। कितनों को जानता हूं, जो ... करते, न उन्हें धरम से मतलब, न करम से, न कथा से मतलब, न पुरान से ... कहते हैं। हमारे ऊपर क्या हंसेगा कोई, जिसने अपने जीवन में एक ... बिना स्नान-पूजा किये मुंह में पानी नहीं डाला। नेम निभाना कठिन है ... बाजार की कोई चीज खायी हो या किसी दूसरे के हाथ का पानी पिया हो, ... निकाल जाऊं। सिलिया हमारी चौखट नहीं लांघने पाती, ... नहीं कहता कि मतई यह बहुत अच्छा काम कर रहा है, लेकिन ... यह पाजी का काम है कि औरत को छोड़ दे। मैं तो खुल्लमखुल्ला कहता हूं ... बात नहीं। स्त्री-जाति पवित्र है।

दातादीन अपनी जवानी में स्वयं बड़े रसिया रह चुके थे, ... मातादीन भी सुयोग्य पुत्र की भांति उन्हीं के पद-चिन्हों पर ... पूजा-पाठ, कथा-व्रत और चौका-चूल्हा। जब ... किसकी मजाल है कि उन्हें पथ-भ्रष्ट कह सके?

झिंगुरीसिंह ने क़ाइल होकर कहा—मैंने तो ...

दातादीन ने महाभारत और पुरानों से ... जाने की एक लम्बी सूची पेश की और ... कहलायी और आजकल के जो ब्राह्मण हैं, ... है और इसमें कोई लज्जा की बात नहीं।

झिंगुरीसिंह उनके पाण्डित्य ... सुकुल बने फिरते हैं?

'समय-समय की बात है ... चाहिए। वह सतजुग की ... मिलकर रहने में है। ... कहा, कोई नहीं सुनता ...

झिंगुरीसिंह ने ... तुम मुंह फैलाने ...

मांगते हो तुम? दस बीघे खेत और भीख के सिवा तुम्हारे पास और क्या है?

दातादीन के अभिमान को चोट लगी। दाढ़ी पर हाथ फेरकर बोले—पास कुछ न सही, मैं भीख ही मांगता हूं, लेकिन मैंने अपनी लड़कियों के ब्याह में पांच-पांच सौ दिये हैं, फिर लड़के के लिए पांच सौ क्यों न मांगूं? किसी ने सेंत-मेंत में मेरी लड़की ब्याह ली होती, तो मैं भी सेंत में लड़का ब्याह लेता। रही हैसियत की बात। तुम जजमानी को भीख समझो, मैं तो उसे जमींदारी समझता हूं, बंकघर। जमींदारी मिट जाये, बंकघर टूट जाये, लेकिन जजमानी अन्त तक बनी रहेगी। जब तक हिन्दू जाति रहेगी, तब तक ब्राह्मण भी रहेंगे और जजमानी भी रहेगी। सहालग में मजे से घर बैठे सौ-दो सौ फटकार लेते हैं। कभी भाग लड़ गया, तो चार-पांच सौ मार लिया। कपड़े, बरतन, भोजन अलग। कहीं-न-कहीं नित ही कार-परोजन पड़ा ही रहता है। कुछ न मिले तब भी एक-दो थाल और दो-चार आने दक्षिणा मिल ही जाते हैं। ऐसा चैन न जमींदारी में है, न साहूकारी में। और फिर मेरा तो सिलिया से जितना उबार होता है, उतना ब्राह्मण की कन्या से क्या होगा? वह तो बहुरिया बनी बैठी रहेगी। बहुत होगा रोटियां पका देगी। यहां सिलिया अकेली तीन आदमियों का काम करती है। और मैं उसे रोटी के सिवा और क्या देता हूं? बहुत हुआ, तो साल में एक धोती दे दी।

दूसरे पेड़ के नीचे दातादीन का निजी पैरा था। चार बैलों से मड़ाई हो रही थी। धन्ना चमार बैलों को हांक रहा था, सिलिया पैर से अनाज निकाल-निकालकर ओसा रही थी और मातादीन दूसरी ओर बैठा लाठी में तेल मल रहा था।

सिलिया सांवली, सलोनी, छरहरी बालिका थी, जो रूपवती न होकर भी आकर्षक थी। उसके हास में, चितवन में, अंगों के विलास में हर्ष का उन्माद था, जिससे उसकी बोटी-बोटी नाचती रहती थी, सिर से पांव तक भूसे के अणुओं में सनी, पसीने से तर, सिर के बाल आधे खुले। वह दौड़-दौड़कर अनाज ओसा रही थी, मानो तन-मन से कोई खेल खेल रही हो।

मातादीन ने कहा—आज सांझ तक अनाज बाकी न रहे सिलिया! तू थक गयी हो, तो मैं आऊं।

सिलिया प्रसन्न मुख बोली—तुम काहे को आओगे पण्डित! मैं संझा तक सब ओसा दूंगी।

'अच्छा, तो मैं अनाज ढो-ढोकर रख आऊं। तू अकेली क्या-क्या कर लेगी?'

'तुम घबराते क्यों हो, मैं ओसा दूंगी, ढोकर रख भी आऊंगी। पहर रात तक यहां एक दाना भी न रहेगा।'

दुलारी सहुआइन आज अपना लेहना वसूल करती फिरती थी। सिलिया उसकी दुकान से होली के दिन दो पैसे का गुलाबी रंग लायी थी। अभी तक पैसे न दिये थे। सिलिया के पास आकर बोली—क्यों री सिलिया, महीना-भर रंग लाये हो गया, अभी तक पैसे न दिये? मांगती हूं, तो मटककर चली जाती है। आज मैं बिना पैसा लिये न जाऊंगी।

मातादीन चुपके-से सरक गया। सिलिया का तन और मन दोनों लेकर भी बदले में कुछ न देना चाहता था। सिलिया अब उसकी निगाह में केवल काम करने की मशीन थी, और कुछ नहीं। उसकी ममता को वह बड़े कौशल से नचाता रहता था। सिलिया ने आंख उठाकर देखा, तो मातादीन वहां न था। बोली—चिल्लाओ मत सहुआइन, यह ले लो, दो की जगह चार पैसे का अनाज अब क्या जान लेगी? मैं मरी थोड़े ही जाती थी।

उसने अन्दाज़ से कोई सेर-भर अनाज ढेर में से निकालकर सहुआइन के फैले हुए आंचल में डाल दिया। उसी वक्त मातादीन पेड़ की आड़ से झल्लाया हुआ निकला और सहुआइन का आंचल पकड़कर बोला—अनाज सीधे से रख दो सहुआइन, लूट नहीं है।

फिर उसने लाल-लाल आंखों से सिलिया को देखकर डांटा—तूने अनाज क्यों दे दिया? किससे पूछकर दिया? तू कौन होती है मेरा अनाज देने वाली?

सहुआइन ने अनाज ढेर में डाल दिया और सिलिया हक्का-बक्का होकर मातादीन का मुंह

देखने लगी। ऐसा जान पड़ा, जिस डाल पर वह निश्चिन्त बैठी हुई थी, वह टूट गयी और अब वह निराधार नीचे गिरी जा रही है। खिसियाये हुए मुंह से आंखों में आंसू भरकर सहुआइन से बोली—तुम्हारे पैसे मैं फिर दे दूंगी सहुआइन! आज मुझ पर दया करो।

सहुआइन ने उसे दयार्द्र नेत्रों से देखा और मातादीन को धिक्कार-भरी आंखों से देखती हुई चली गयी।

तब सिलिया ने अनाज ओसाते हुए आहत गर्व से पूछा—तुम्हारी चीज में मेरा कुछ अख्तियार नहीं है?

मातादीन आंखें निकालकर बोला—नहीं, तुझे कोई अख्तियार नहीं है। काम करती है, खाती है। जो तू चाहे खा भी, लुटा भी, तो यह यहां न होगा। अगर तुझे यहां न परता पड़ता हो, कहीं और जाकर काम कर। मजूरों की कमी नहीं हैं। सेंत में नहीं लेते, खाना-कपड़ा देते हैं।

सिलिया ने उस पक्षी की भांति, जिसे मालिक ने पर काटकर पिंजरे से निकाल दिया हो, मातादीन की ओर देखा। उस चितवन में वेदना अधिक थी या भर्त्सना, यह कहना कठिन है, पर उसी पक्षी की भांति उसका मन फड़फड़ा रहा था और ऊंची डाल पर उन्मुक्त वायु-मण्डल में उड़ने की शक्ति न पाकर उसी पिंजरे में जा बैठना चाहता था, चाहे उसे वेदाना, वेपानी, पिंजरे की [illegible] सिर टकराकर मर ही क्यों न जाना पड़े। सिलिया सोच रही थी, अब उसके लिए दूसरा [illegible] है। वह व्याहता न होकर भी संस्कार में और व्यवहार में और मनोभावना में व्याहता [illegible] मातादीन चाहे उसे मारे या काटे, उसे दूसरा आश्रय नहीं है, दूसरा अवलम्ब नहीं है। [illegible] याद आये—और अभी दो साल भी तो नहीं हुए—जब यही मातादीन उसके [illegible] उसने जनेऊ हाथ में लेकर कहा था—सिलिया, जब तक दम में दम है, तुझे [illegible] जब वह प्रेमातुर होकर हार में और बाग़ में और नदी के तट पर उसके पीछे-पीछे [illegible] फिरा करता था। और आज उसका यह निष्ठुर व्यवहार! मुट्ठी-भर अनाज के [illegible] उतार लिया।

उसने कोई जवाब न दिया। कण्ठ में नमक के एक डले का-सा [illegible] और शिथिल हाथों से फिर काम करने लगी।

उसी वक्त उसकी मां, बाप, दोनों भाई और कई [illegible] मातादीन को घेर लिया। सिलिया की मां ने आते ही उसके हाथ से [illegible] और गाली देकर बोली—रांड़, जब तुझे मजूरी ही करनी [illegible] करने आयी? जब ब्राह्मन के साथ रहती है, तो ब्राह्मन की तरह [illegible] चमारिन ही बनना था, तो यहां क्या घी का लोंदा लेने [illegible]

झिंगुरीसिंह और दातादीन दोनों दौड़े और [illegible] की चेष्टा करने लगे। झिंगुरीसिंह ने सिलिया के [illegible] झगड़ा है?

सिलिया का बाप हरखू साठ साल का [illegible] हुआ, पर उतना ही तीक्ष्ण। बोला—झगड़ा कुछ नहीं है [illegible] बना के छोड़ेंगे या उनका और [illegible] घर जायेगी ही। इस पर हमें कुछ नहीं कहना है, [illegible] हमें ब्राह्मन नहीं बना सकते, [illegible] बिरादरी बनने को तैयार हैं। [illegible] खाओ-पिओ, हमारे साथ उठो-बैठो। [illegible]

दातादीन ने लाठी फटकारकर कहा—[illegible]

है, ले जा जहां चाहे। हमने उसे बांध नहीं रक्खा है। काम करती थी, मजूरी लेती थी। यहां मजूरों की कमी नहीं है।

सिलिया की मां उंगली चमकाकर बोली—वाह-वाह पण्डित! खूब नियाव करते हो। तुम्हारी लड़की किसी चमार के साथ निकल गयी होती और तुम इसी तरह की बातें करते, तो देखती। हम चमार हैं, इसलिए हमारी कोई इज्जत नहीं? हम सिलिया को अकेले न ले जायेंगे, उसके साथ मातादीन को भी ले जायेंगे, जिसने उसकी इज्जत बिगाड़ी है। तुम बड़े नेमी-धरमी हो। उसके साथ सोओगे, लेकिन उसके हाथ का पानी न पियोगे। यही चुड़ैल है कि यह सब सहती है। मैं तो ऐसे आदमी को माहुर दे देती।

हरखू ने अपने साथियों को ललकारा—सुन ली इन लोगों की बात कि नहीं? अब क्या खड़े मुंह ताकते हो?

इतना सुनना था कि दो चमारों ने लपककर मातादीन के हाथ पकड़ लिये, तीसरे ने झपटकर उसका जनेऊ तोड़ डाला और इसके पहले कि दातादीन और झिंगुरीसिंह अपनी-अपनी लाठी संभाल सकें, दो चमारों ने मातादीन के मुंह में एक बड़ी-सी हड्डी का टुकड़ा डाल दिया। मातादीन ने दांत जकड़ लिये, फिर भी वह घिनौनी वस्तु उनके होंठों में तो लग ही गयी। उन्हें मतली हुई और मुंह आप-से-आप खुल गया और हड्डी कण्ठ तक जा पहुंची। इतने में खलिहान के सारे आदमी जमा हो गये, पर आश्चर्य यह कि कोई इन धर्म के लुटेरों से मुजाहिम न हुआ। मातादीन का व्यवहार सभी को नापसन्द था। वह गांव की बहू-बेटियों को घूरा करता था, इसलिए मन में सभी उसकी दुर्गति से प्रसन्न थे। हां, ऊपरी मन से चमारों पर रोब जमा रहे थे।

होरी ने कहा—अच्छा, अब बहुत हुआ हरखू। भला चाहते हो, तो यहां से चले जाओ।

हरखू ने निडरता से उत्तर दिया—तुम्हारे घर में भी लड़कियां हैं होरी महतो, इतना समझ लो। इसी तरह गांव की मरजाद बिगड़ने लगी, तो किसी की आबरू न बचेगी।

एक क्षण में शत्रु पर पूरी विजय पाकर आक्रमणकारियों ने वहां से टल जाना ही उचित समझा। जनमत बदलते देर नहीं लगती। उससे बचे रहना ही अच्छा।

मातादीन कै कर रहा था। दातादीन ने उसकी पीठ सहलाते हुए कहा—एक-एक को पांच-पांच साल के लिए न भेजवाया, तो कहना। पांच-पांच साल तक चक्की पिसवाऊंगा।

हरखू ने हेकड़ी के साथ जवाब दिया—इसका यहां कोई गम नहीं। कौन तुम्हारी तरह बैठे मौज करते हैं? जहां काम करेंगे, वहीं आधा पेट दाना मिल जायेगा।

मातादीन कै कर चुकने के बाद निर्जीव-सा ज़मीन पर लेट गया, मानो कमर टूट गयी हो, मानो डूब मरने के लिए चुल्लू-भर पानी खोज रहा हो। जिस मर्यादा के बल पर उसकी रसिकता और घमण्ड और पुरुषार्थ अकड़ता फिरता था, वह मिट चुकी थी। उस हड्डी के टुकड़े ने उसके मुंह को ही नहीं, उसकी आत्मा को भी अपवित्र कर दिया था। उसका धर्म इसी खान-पान, छूत-विचार पर टिका हुआ था। आज उस धर्म की जड़ कट गयी। अब वह लाख प्रायश्चित्त करे, लाख गोबर खाये और गंगाजल पिये, लाख दान-पुण्य और तीर्थ-व्रत करे, उसका मरा हुआ धर्म जी नहीं सकता। अगर अकेले की बात होती, तो छिपा ली जाती, यहां तो सबके सामने उसका धर्म लुटा। अब उसका सिर हमेशा के लिए नीचा हो गया। आज से वह अपने ही घर में अछूत समझा जायेगा। उसकी स्नेहमयी माता भी उससे घृणा करेगी, और संसार से धर्म का ऐसा लोप हो गया कि इतने आदमी केवल खड़े तमाशा देखते रहे। किसी ने चूं तक न की। एक क्षण पहले जो लोग उसे देखते ही पालागन करते थे, अब उसे देखकर मुंह फेर लेंगे। वह किसी मन्दिर में भी न जा सकेगा, न किसी के बरतन-भांड़े छू सकेगा। और यह सब हुआ इस अभागिन सिलिया के कारण।

सिलिया जहां अनाज ओसा रही थी, वहीं सिर झुकाये खड़ी थी, मानो यह उसी की दुर्गति हो

रही है। सहसा उसकी मां ने आकर डांटा—खड़ी ताकती क्या है? चल सीधे घर, नहीं वोटी-वोटी काट डालूंगी। वाप-दादा का नाम तो खूब उजागर कर चुकी, अव क्या करने लगी है?

सिलिया मूर्तिवत् खड़ी ताकती रही। माता-पिता और भाइयों पर उसे क्रोध आ रहा था। यह लोग क्यों उसके वीच में वोलते हैं? वह जैसे चाहती है, रहती है, दूसरों से क्या मतलव? कहते हैं, यहां तेरा अपमान होता है, तव क्या कोई व्राह्मण उसका पकाया खा लेगा? उसके हाथ का पानी पी लेगा? अभी ज़रा देर पहले उसका मन मातादीन के निठुर व्यवहार से खिन्न हो रहा था, पर अपने घरवालों और विरादरी के इस अत्याचार ने उस विराग को प्रचण्ड अनुराग का रूप दे दिया।

विद्रोह-भरे मन से वोली—मैं कहीं न जाऊंगी। तू क्या यहां भी मुझे जीने न देगी?

वुढ़िया कर्कश स्वर में वोली—तू न चलेगी?

'नहीं।'

'चल सीधे से।'

'नहीं जाती।'

तुरन्त दोनों भाइयों ने उसके हाथ पकड़ लिये और उसे घसीटते हुए ले चले। सिलिया ज़मीन पर वैठ गयी। भाइयों ने इस पर भी न छोड़ा। घसीटते ही रहे। उसकी साड़ी फट गयी, पीठ और कमर की खाल छिल गयी, पर वह जाने पर राज़ी न हुई।

तव हरखू ने लड़कों से कहा—अच्छा, अव इसे छोड़ दो। समझ लेंगे मर गयी। मगर अव जो कभी मेरे द्वार पर आयी, तो लहू पी जाऊंगा।

सिलिया जान पर खेलकर वोली—हां, जव तुम्हारे द्वार पर जाऊं, तो पी लेना।

वुढ़िया ने क्रोध के उन्माद में सिलिया को कई लातें जमायीं और हरखू ने उसे हटा न दिया होता, तो शायद प्राण ही लेकर छोड़ती।

वुढ़िया फिर झपटी, तो हरखू ने उसे धक्के देकर पीछे हटाते हुए कहा—तू भी हत्यारिन है कलिया। क्या उसे मार ही डालेगी?

सिलिया वाप के पैरों से लिपटकर वोली—मार डालो दादा, सव जने मिलकर मार डालो। हाय अम्मां, तुम इतनी निर्दयी हो? इसीलिए दूध पिलाकर पाला था? सौर में ही क्यों न गला घोंट दिया? हाय! मेरे पीछे पण्डित को भी तुमने भिरस्ट कर दिया। उसका धरम लेकर तुम्हें क्या मिला? अव तो वह भी मुझे न पूछेगा। लेकिन पूछे-न-पूछे, रहूंगी तो उसी के साथ। वह मुझे चाहे भूखों रखे, चाहे मार डाले, पर उसका साथ न छोडूंगी। उनकी सांसत कराके छोड़ दूं? मर जाऊंगी, पर हरजाई न वनूंगी। एक वार जिसने वांह पकड़ ली, उसी की रहूंगी।

कलिया ने ओठ चवाकर कहा—जाने दो रांड़ को। समझती है, वह इसका निवाह करेगा। मगर आज ही मारकर भगा न दे, तो मुंह न दिखाऊं।

भाइयों को भी दया आ गयी। सिलिया को वहीं छोड़कर सव-के-सव चले गये। तव वह धीरे से उठकर लंगड़ाती, कराहती, खलिहान में आकर वैठ गयी और अञ्चल में मुंह ढांपकर रोने लगी।

दातादीन ने जुलाहे का गुस्सा दाढ़ी पर उतारा—उनके साथ चली क्यों नहीं गयी सिलिया! अव क्या करवाने लगी हुई है? मेरा सत्यानाश कराके भी पेट नहीं भरा?

सिलिया ने आंसू-भरी आंखें ऊपर उठायी। उनमें तेज की झलक थी।

'उनके साथ क्यों जाऊं? जिसने वांह पकड़ी है, उसके साथ रहूंगी।'

पण्डितजी ने धमकी दी—मेरे घर में पांव रखा, तो लातों से वात करूंगा।

सिलिया ने भी उद्दण्डता से कहा—मुझे जहां वह रखेंगे, वहां रहूंगी। पेड़ तले रखें, चाहे महल में रखें।

मातादीन संज्ञाहीन-सा वैठा था। दोपहर होने आ रही थी। धूप पत्तियों से छन-छनकर उसके

चेहरे पर पड़ रही थी। माथे से पसीना टपक रहा था। पर वह मौन, निस्पन्द बैठा हुआ था।

सहसा जैसे उसने होश में आकर कहा—मेरे लिए अब क्या कहते हो दादा?

दातादीन ने उसके सिर पर हाथ रखकर ढाढ़स देते हुए कहा—तुम्हारे लिए अभी मैं क्या कहूं बेटा? चलकर नहाओ, खाओ, फिर पण्डितों की जैसी व्यवस्था होगी, वैसा किया जायेगा। हां, एक बात है, सिलिया को त्यागना पड़ेगा।

मातादीन ने सिलिया की ओर रक्त-भरे नेत्रों से देखा—मैं अब इसका कभी मुंह न देखूंगा, लेकिन परासचित हो जाने पर फिर तो कोई दोष न रहेगा?

'परासचित हो जाने पर कोई दोष-पाप नहीं रहता।'

'तो आज ही पण्डितों के पास जाओ।'

'आज ही जाऊंगा बेटा!'

'लेकिन पण्डित लोग कहें कि उसका परासचित नहीं हो सकता, तब?'

'उनकी जैसी इच्छा।'

'तो तुम मुझे घर से निकाल दोगे?'

दातादीन ने पुत्र-स्नेह से विह्वल होकर कहा—ऐसा कहीं हो सकता है, बेटा? धन जाये, धरम जाये, लोक-मरजाद जाये, पर तुम्हें छोड़ नहीं सकता।

मातादीन ने लकड़ी उठायी और बाप के पीछे-पीछे घर चला। सिलिया भी उठी और लंगड़ाती हुई उसके पीछे हो ली।

मातादीन ने पीछे फिरकर निर्मम स्वर में कहा—मेरे साथ मत आ। मेरा तुझसे कोई वास्ता नहीं। इतनी सांसत करवा करके भी तेरा पेट नहीं भरता?

सिलिया ने धृष्टता के साथ उसका हाथ पकड़कर कहा—वास्ता कैसे नहीं है? इसी गांव में तुमसे धनी, तुमसे सुन्दर, तुमसे इज्जतदार लोग हैं। मैं उनका हाथ क्यों नहीं पकड़ती? तुम्हारी यह दुर्दशा ही आज क्यों हुई? जो रस्सी तुम्हारे गले में पड़ गयी है, उसे तुम लाख चाहो, नहीं छोड़ सकते। और न मैं तुम्हें छोड़कर कहीं जाऊंगी। मजूरी करूंगी, भीख मांगूंगी? लेकिन तुम्हें न छोडूंगी।

यह कहते हुए उसने मातादीन का हाथ छोड़ दिया और फिर खलिहान में जाकर अनाज ओसाने लगी। होरी अभी तक वहां अनाज मांड़ रहा था। धनिया उसे भोजन करने के लिए बुलाने आयी थी। होरी ने बैलों को पैर से बाहर निकालकर एक पेड़ में बांध दिया और सिलिया से बोला—तू भी जा, खा-पी-आ सिलिया। धनिया यहां बैठी है। तेरी पीठ पर की साड़ी तो लहू से रंग गयी है री! कहीं घाव पक न जाये। तेरे घरवाले बड़े निर्दयी हैं।

सिलिया ने उसकी ओर करुण नेत्रों से देखा—यहां निर्दयी कौन नहीं है दादा? मैंने तो किसी को दयावान् नहीं पाया।

'क्या कहा पण्डित ने?'

'कहते हैं, मेरा तुमसे कोई वास्ता नहीं।'

'अच्छा! ऐसा कहते हैं?'

'समझते होंगे, इस तरह अपने मुंह की लाली रख लेंगे, लेकिन जिस बात को दुनिया जानती है, उसे कैसे छिपा लेंगे? मेरी रोटियां भारी हैं, न दें। मेरे लिए क्या? मजूरी अब भी करती हूं, तब भी करूंगी। सोने की हाथ-भर जगह तुम्हीं से मांगूंगी, तो क्या तुम न दोगे?'

धनिया दयार्द्र होकर बोली—जगह की कौन कमी है बेटी? तू चल, मेरे घर रह।

होरी ने कातर स्वर में कहा—बुलाती तो है, लेकिन पण्डित को जानती नहीं?

धनिया ने निर्भीक स्वर में कहा—बिगड़ेंगे, तो एक रोटी बेसी खा लेंगे, और क्या करेंगे? कोई उनकी दबैल हूं? उसकी इज्जत ली, बिरादरी से निकलवाया, अब कहते हैं मेरा तुमसे कोई वास्ता

नहीं। आदमी है कि कसाई? यह उसी नीयत का आज फल मिला है। पहले नहीं सोच लिया था, तव तो विहार करते रहे। अव कहते हैं, मुझसे कौन वास्ता!

होरी के विचार में धनिया ग़लत कर रही थी। सिलिया के घरवालों ने मतई को कितना वेधरम कर दिया, यह कोई अच्छा काम नहीं किया। सिलिया को चाहे मारकर ले जाते, चाहे दुलारकर ले जाते, वह उनकी लड़की है। मतई को क्यों वेधरम किया?

धनिया ने फटकार वतायी—अच्छा रहने दो, वड़े न्यायी वने हो। मरद-मरद सव एक होते हैं। इसको मतई ने वेधरम किया, तव तो किसी को वुरा न लगा। अव जो मतई वेधरम हो गये, तो क्यों वुरा लगता है? क्या सिलिया का धरम, धरम ही नहीं? रखी तो चमारिन, उस पर नेमी-धर्मी वनते हैं। वड़ा अच्छा किया हरखू चौधरी ने। ऐसे गुण्डों की यही सज़ा है। तू चल सिलिया मेरे घर, न जाने कैसे वेदरद मां-वाप हैं कि वेचारी की सारी पीठ लहूलुहान कर दी। तुम जाके सोना को भेज दो। मैं इसे लेकर आती हूं।

होरी चला गया और सिलिया धनिया के पैरों पर गिरकर रोने लगी।

:24:

सोना सत्रहवें साल में थी और इस साल उसका विवाह करना आवश्यक था। होरी तो दो साल से इसी फ़िक्र में था, पर हाथ खाली होने से कोई क़ावू न चलता था। मगर इस साल जैसे भी हो, उसका विवाह कर ही देना चाहिए, चाहे क़र्ज़ लेना पड़े, चाहे खेत गिरों रखने पड़ें। और अकेले होरी की वात चलती, तो दो साल पहले ही विवाह हो गया होता। वह किफ़ायत से काम करना चाहता था। पर धनिया कहती थी, कितना ही हाथ वांधकर खर्च करो, दो-ढाई सौ लग ही जायेंगे। झुनिया के आ जाने से विरादरी में इन लोगों का स्थान कुछ हेठा हो गया था और विना सौ-दो सौ दिये कोई कुलीन वर न मिल सकता था। पिछले साल चैती में कुछ न मिला। था तो पण्डित दातादीन का आधा साझा, मगर पण्डितजी ने वीज और मजूरी का कुछ ऐसा व्यौरा वताया कि होरी के हाथ एक-चौथाई से ज़्यादा अनाज न लगा। और लगान देना पड़ गया पूरा। ऊख और सन की फ़सल नष्ट हो गयी। सन तो वर्षा अधिक होने और ऊख दीमक लग जाने के कारण। हां, इस साल की चैती अच्छी थी और ऊख भी खूव लगी हुई थी। विवाह के लिए गल्ला तो मौजूद था, दो सौ रुपये भी हाथ आ जायें, तो कन्या-ऋण से उसका उद्धार हो जाये। अगर गोवर सौ रुपये की मदद कर दे, तो वाक़ी सौ रुपये होरी को आसानी से मिल जायेंगे। झिंगुरीसिंह और मंगरू साह दोनों ही अव कुछ नरम पड़ गये थे। जव गोवर परदेस में कमा रहा है, तो उनके रुपये मारे न पड़ सकते थे।

एक दिन होरी ने गोवर के पास दो-तीन दिन के लिए जाने का प्रस्ताव किया।

मगर धनिया अभी तक गोवर के वह कठोर शब्द न भूली थी। वह गोवर से एक पैसा भी न लेना चाहती थी, किसी तरह नहीं।

होरी ने झुंझलाकर कहा—लेकिन काम कैसे चलेगा, यह वता?

धनिया सिर हिलाकर वोली—मान लो, गोवर परदेस न गया होता, तव तुम क्या करते? वही अव करो।

होरी की ज़वान वन्द हो गयी। एक क्षण वाद वोला—मैं तो तुझसे पूछता हूं।

धनिया ने जान वचायी—यह सोचना मरदों का काम है।

होरी के पास जवाव तैयार था—मान ले, मैं न होता, तू ही अकेली रहती, तव तू क्या करती? वह कर।

धनिया ने तिरस्कार-भरी आंखों से देखा—तव मैं कुश-कन्या भी दे देती, तो कोई हंसनेवाला न

था। कुश-कन्या होरी भी दे सकता था। इसी में उसका मंगल था, लेकिन कुल-मर्यादा कैसे छोड़ दे? उसकी बहिनों के विवाह में तीन-तीन सौ बराती द्वार पर आये थे। दहेज भी अच्छा ही दिया गया था। नाच-तमाशा, बाजा-गाजा, हाथी-घोड़े, सभी आये थे। आज भी बिरादरी में उसका नाम है। दस गांव के आदमियों से उसका हेल-मेल है। कुश-कन्या देकर वह किसे मुंह दिखायेगा? इससे तो मर जाना अच्छा है। और वह क्यों कुश-कन्या दे? पेड़-पालो हैं, ज़मीन है और थोड़ी-सी साख भी है। अगर वह एक बीघा भी बेच दे, तो सौ मिल जायें, लेकिन किसान के लिए ज़मीन जान से प्यारी है, और कुल तीन ही बीघे तो उसके पास हैं। अगर एक बीघा बेच दे, तो फिर खेती कैसे करेगा?

कई दिन इसी हैस-बैस में गुज़रे। होरी कुछ फैसला न कर सका।

दशहरे की छुट्टियों के दिन थे। झिंगुरी, पटेश्वरी और नोखेराम तीनों ही सज्जनों के लड़के छुट्टियों में घर आये थे। तीनों अंग्रेज़ी पढ़ते थे और यद्यपि तीनों बीस-बीस साल के हो गये थे, पर अभी तक यूनिवर्सिटी में जाने का नाम न लेते थे। एक-एक क्लास में दो-दो, तीन-तीन साल पड़े रहते। तीनों की शादियां हो चुकी थीं। पटेश्वरी के सपूत बिन्देश्वरी तो एक पुत्र के पिता भी हो चुके थे। तीनों दिन-भर ताश खेलते, भंग पीते और छैला बने घूमते। वे दिन में कई-कई बार होरी के द्वार की ओर ताकते हुए निकलते और कुछ ऐसा संयोग था कि जिस वक्त वे निकलते, उसी वक्त सोना भी किसी-न-किसी काम से द्वार पर आ खड़ी होती। देख-देख होरी का खून सूखता जाता था, मानो उसकी खेती चौपट करने के लिए आकाश में ओलेवाले पीले बादल उठे चले आते हों।

एक दिन तीनों उसी कुएं पर नहाने पहुंचे, जहां होरी सींचने के लिए पुर चला रहा था। सोना मोट ले रही थी। होरी का खून आज खौल उठा। उसी सांझ को वह दुलारी सहुआइन के पास गया। सोचा, औरतों में दया होती है, शायद इसका दिल पसीज जाये और कम सूद पर रुपये दे दे। मगर दुलारी अपना ही रोना ले बैठी। गांव में ऐसा कोई घर न था, जिस पर उसके कुछ रुपये न आते हों, यहां तक कि झिंगुरीसिंह पर भी उसके बीस रुपये आते थे, लेकिन कोई देने का नाम न लेता था। बेचारी कहां से रुपये लाये?

होरी ने गिड़गिड़ाकर कहा—भाभी, बड़ा पुन्न होगा। तुम रुपये न दोगी, मेरे गले की फांसी खोल दोगी। झिंगुरी और पटेश्वरी मेरे खेतों पर दांत लगाये हुए हैं। मैं सोचता हूं, बाप-दादा की यही तो निसानी है, यह निकल गयी, तो जाऊंगा कहां? एक सपूत वह होता है कि घर की सम्पत बढ़ाता है, मैं ऐसा कपूत हो जाऊं कि बाप-दादों की कमाई पर झाडू फेर दूं?

दुलारी ने कसम खायी—होरी, मैं ठाकुरजी के चरन छूकर कहती हूं कि इस समय मेरे पास कुछ नहीं है। जिसने लिया, वह देता नहीं, तो मैं क्या करूं? तुम कोई गैर तो नहीं हो। सोना भी मेरी ही लड़की है, लेकिन तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूं? तुम्हारा ही भाई हीरा है। बैल के लिए पच्चीस रुपये लिये। उसका तो कहीं पता-ठिकाना नहीं, उसकी घरवाली से मांगो, तो लड़ने को तैयार। शोभा भी देखने में बड़ा सीधा-सादा है, लेकिन पैसा देना नहीं जानता। और असल बात तो यह है कि किसी के पास है ही नहीं, दें कहां से। सबकी दशा देखती हूं, इसी मारे सबर कर जाती हूं। लोग किसी तरह पेट पाल रहे हैं, और क्या? खेती-बारी बेचने की मैं सलाह न दूंगी। कुछ नहीं है, मरजाद तो है।

फिर कनफुसकियों में बोली—पटेसरी लाला का लौंडा तुम्हारे घर की ओर बहुत चक्कर लगाया करता है। तीनों का वही हाल है। इनसे चौकस रहना। यह सहरी हो गये, गांव का भाई-चारा क्या समझें? लड़के गांव में भी हैं, मगर उनमें कुछ लिहाज है, कुछ अदब है, कुछ डर है। ये सब तो छूटे सांड हैं। मेरी कौसल्या ससुराल से आयी थी, मैंने सबों के ढंग देखकर उसके ससुर को बुलाकर बिदा कर दिया। कोई कहां तक पहरा दे?

होरी को मुसकराते देखकर उसने सरस ताड़ना के भाव से कहा—हंसोगे होरी, तो मैं भी कुछ कह दूंगी। तुम क्या किसी से कम नटखट थे? दिन में पचीसों बार किसी-न-किसी बहाने मेरी दुकान

पर आया करते थे, मगर मैंने कभी ताका तक नहीं।

होरी ने मीठे प्रतिवाद के साथ कहा—यह तो तुम झूठ बोलती हो भाभी। बिना कुछ रस पाये कोई थोड़े ही आता था। चिड़िया एक बार परच जाती है, तभी दूसरी बार आंगन में आती है।

'चल झूठे।'

'आंखों से न ताकती रही हो, लेकिन तुम्हारा मन तो ताकता ही था, बल्कि बुलाता था।'

'अच्छा रहने दो, आये बड़े अन्तरजामी बनके। तुम्हें बार-बार मंडराते देखके मुझे दया आ जाती थी, नहीं तुम कोई ऐसे बांके जवान न थे।'

हुसेनी एक पैसे का नमक लेने आ गया और यह परिहास बन्द हो गया। हुसेनी नमक लेकर चला गया, तो दुलारी ने फिर कहा—गोबर के पास क्यों नहीं चले जाते? देखते भी आओगे और साइत कुछ मिल भी जाये।

होरी निराश मन से बोला—वह कुछ न देगा। लड़के चार पैसे कमाने लगते हैं, तो उनकी आंखें फिर जाती हैं। मैं तो बेहयाई करने को तैयार था, लेकिन धनिया नहीं मानती। उसकी मरजी बिना चला जाऊं, तो घर में रहना अपाढ़ कर दे। उसका सुभाव तो जानती हो।

दुलारी ने कटाक्ष करके कहा—तुम तो मेहरिया के जैसे गुलाम हो गये।

'तुमने पूछा ही नहीं, तो क्या करता?'

'मेरी गुलामी करने को कहते, तो मैंने लिखा लिया होता, सच।'

'तो अब से क्या बिगड़ा है, लिखा लो न। दो सौ में लिखता हूं, इन दामों महंगा नहीं हूं।'

'तब धनिया से तो न बोलोगे।'

'नहीं, कहो कसम खाऊं।'

'और जो बोले।'

'तो मेरी जीभ काट लेना।'

'अच्छा, तो जाओ, घर ठीक-ठाक करो, मैं रुपयें दे दूंगी।'

होरी ने सजल नेत्रों से दुलारी के पांव पकड़ लिये। भावावेश से मुंह बन्द हो गया।

सहुआइन ने पांव खींचकर कहा—अब यही सरारत मुझे अच्छी नहीं लगती। मैं साल-भर के भीतर अपने रुपये सूद-समेत कान पकड़कर लूंगी। तुम तो व्यवहार के ऐसे सच्चे नहीं हो, लेकिन धनिया पर मुझे विश्वास है। सुना, पण्डित तुमसे बहुत बिगड़े हुए हैं। कहते हैं इसे गांव से निकालकर नहीं छोड़ा, तो ब्राह्मण नहीं। तुम सिलिया को निकाल बाहर क्यों नहीं करते? बैठे-बैठाये झगड़ा मोल ले लिया।

'धनिया उसे रखे हुए है, मैं क्या करूं?'

'सुना है, पण्डित कासी गये थे! वहां एक बड़ा नामी विद्वान् पण्डित है। वह पांच सौ मांगता है। तब परासचित करायेगा। भला पूछो, ऐसा अन्धेर कहीं हुआ है? जब धरम नष्ट हो गया, तो एक नहीं हजार परासचित करो, इससे क्या होता है। तुम्हारे हाथ का छुआ पानी कोई न पियेगा, चाहे जितना परासचित करो।

होरी यहां से घर चला, तो उसका दिल उछल रहा था। जीवन में ऐसा सुखद [illegible] हुआ था। रास्ते में शोभा के घर गया और सगाई लेकर चलने के लिए नेवता दे [illegible] दातादीन के पास सगाई की सायत पूछने गये। वहां से आकर द्वार पर सगाई की [illegible] करने लगे।

धनिया ने बाहर निकलकर कहा—पहर रात गयी, [illegible] खाकर बैठो। गपड़चौथ करने को तो सारी रात पड़ी है।

होरी ने उसे भी परामर्श में शरीक होने का अनुरोध करते हुए कहा—[illegible]

ठीक हुआ है। वता, क्या-क्या लाना चाहिए? मुझे तो कुछ मालूम नहीं।'

'जव कुछ मालूम ही नहीं, तो सलाह करने क्या बैठे हो? रुपये-पैसे का डौल भी हुआ कि मन की मिठाई खा रहे हो?'

होरी ने गर्व से कहा—तुझे इससे क्या मतलव? तू इतना बता दे, क्या-क्या सामान लाना होगा?

'तो मैं ऐसी मन की मिठाई नहीं खाती।'

'तू इतना वता दे कि हमारी वहिनों के व्यांह में क्या-क्या सामान आया था?'

'पहले यह बता दो, रुपये मिल गये?'

'हां मिल गये, और नहीं क्या भंग खायी है?'

'तो पहले चलकर खा लो। फिर सलाह करेंगे।'

मगर जब उसने सुना कि दुलारी से बातचीत हुई है, तो नाक सिकोड़कर बोली—उससे रुपये लेकर आज तक कोई उरिन हुआ है? चुड़ैल कितना कसकर सूद लेती है।

'लेकिन करता क्या? दूसरा देता कौन?'

'यह क्यों नहीं कहते कि इसी बहाने दो गाल हांकने-वोलने गया था। बूढ़े हो गये, पर यह बान न गयी।'

'तू तो धनिया, कभी-कभी वच्चों की-सी वातें करने लगती है। मेरे जैसे फटेहालों से वह हंसे-वोलेगी? सीधे मुंह बात तो करती नहीं।'

'तुम जैसों को छोड़कर उसके पास जायेगा ही कौन?'

'उसके द्वार पर अच्छे-अच्छे नाक रगड़ते हैं धनिया, तू क्या जाने? उसके पास लच्छमी है।'

'उसने जरा-सी हामी भर दी, तुम चारों ओर खुशखबरी लेकर दौड़े।'

'हामी नहीं भर दी, पक्का वादा किया है।'

होरी रोटी खाने गया और शोभा अपने घर चला गया, तो सोना सिलिया के साथ वाहर निकली। वह द्वार पर खड़ी सारी बातें सुन रही थी। उसकी सगाई के लिए दो सौ रुपये दुलारी से उधार लिये जा रहे हैं, यह बात उसके पेट में इस तरह खलवली मचा रही थी, जैसे ताज़ा चूना पानी में पड़ गया हो। द्वार पर एक कुप्पी जल रही थी, जिससे ताक के ऊपर की दीवार काली हो गयी थी। दोनों बैल नांद में सानी खा रहे थे और कुत्ता ज़मीन पर टुकड़े के इन्तज़ार में बैठा हुआ था। दोनों युवतियां बैलों की चरनी के पास आकर खड़ी हो गयीं।

सोना बोली—तूने कुछ सुना? दादा सहुआइन से मेरी सगाई के लिए दो सौ रुपये उधार ले रहे हैं।

सिलिया घर का रत्ती-रत्ती हाल जानती थी। बोली—घर में पैसा नहीं है, तो क्या करें?

सोना ने सामने के काले वृक्षों की ओर ताकते हुए कहा—मैं ऐसा नहीं करना चाहती, जिसमें मां-बाप को कर्जा लेना पड़े। कहां से देंगे वेचारे, बता? पहले ही कर्ज के बोझ से दवे हुए हैं। दो सौ और ले लेंगे, तो वोझा और भारी होगा कि नहीं?

'बिना दान-दहेज के वड़े आदमियों का कहीं ब्याह होता है पगली? बिना दहेज के तो कोई बूढ़ा-ठेला ही मिलेगा। जायेगी बूढ़े के साथ?'

'बूढ़े के साथ क्यों जाऊं? भैया बूढ़े थे, जो झुनिया को ले आये? उन्हें किसने कै पैसे दहेज में दिये थे?'

'उसमें वाप-दादा का नाम डूवता है।'

'मैं तो सोनारीवालों से कह दूंगी, अगर तुमने एक पैसा भी दहेज लिया, तो मैं तुमसे ब्याह न करूंगी।'

सोना का विवाह सोनारी के एक धनी किसान के लड़के से ठीक हुआ था।

'और जो वह कह दें कि मैं क्या करूं, तुम्हारे वाप देते हैं, मेरे वाप लेते हैं, इसमें मेरा क्या अख्तियार है?'

सोना ने जिस अस्त्र को रामवाण समझा था, अव मालूम हुआ कि वह वांस की कैन है। हताश होकर वोली—मैं एक वार उससे कहके देख लेना चाहती हूं। अगर उसने कह दिया, मेरा कोई अख्तियार नहीं है, तो क्या गोमती यहां से वहुत दूर है? डूव मरूंगी। मां-वाप ने मर-मरके पाला-पोसा। उसका वदला क्या यही है कि उनके घर से जाने लगूं, तो उन्हें कर्जे से और लादती जाऊं? मां-वाप को भगवान् ने दिया हो, तो खुशी से जितना चाहें लड़की को दें, मैं मना नहीं करती, लेकिन जव वह पैसे-पैसे को तंग हो रहे हैं, आज महाजन नालिश करके लिल्लाम करा ले, तो कल मजूरी करनी पड़ेगी, तो कन्या का धरम यही है कि डूव मरे। घर की जमीन-जैजात तो वच जायेगी, रोटी का सहारा तो रह जायेगा। मां-वाप चार दिन मेरे नाम को रोकर सन्तोष कर लेंगे। यह तो न होगा कि मेरा व्याह करके उन्हें जनम-भर रोना पड़े। तीन-चार साल में दो सौ के दूने हो जायेंगे, दादा कहां से लाकर देंगे?

सिलिया को जान पड़ा, जैसे उसकी आंख में नयी ज्योति आ गयी है। आवेश में सोना को छाती से लगाकर वोली—तूने इतनी अक्कल कहां से सीख ली सोना? देखने में तो तू वड़ी भोली-भाली है?

'इसमें अक्ल की कौन वात है चुड़ैल? क्या मेरे आंखें नहीं हैं कि मैं पागल हूं? दो सौ मेरे व्याह में लें। तीन-चार साल में वह दूना हो जाये। तव रुपिया के व्याह में दो सौ और लें। जो कुछ खेती-वारी है, सव लिलाम-तिलाम हो जाये, और द्वार-द्वार भीख मांगते फिरें। यही न? इससे तो कहीं अच्छा है कि मैं अपनी ही जान दे दूं। मुंह अंधेरे सोनारी चली जाना और उसे वुला लाना, मगर नहीं, वुलाने का काम नहीं है। मुझे उससे वोलते लाज आयेगी। तू ही मेरा सन्देशा कह देना। देख, क्या जवाव देते हैं? कौन दूर है? नदी के उस पार ही तो है। कभी-कभी ढोर लेकर इधर आ जाता है। एक वार उसकी भैंस मेरे खेत में पड़ गयी थी, तो मैंने उसे वहुत गालियां दी थीं। हाथ जोड़ने लगा। हां, यह तो वता, इधर मतई से तेरी भेंट नहीं हुई? सुना, ब्राह्मन लोग उन्हें विरादरी में नहीं ले रहे हैं।

सिलिया ने हिकारत के साथ कहा—विरादरी में क्यों न लेंगे? हां, वूढ़ा रुपये नहीं खरच करना चाहता। इसको पैसा मिल जाये, तो झूठी गंगा उठा ले। लड़का आजकल वाहर ओसारे में टिक्कड़ लगाता है।

'तू इसे छोड़ क्यों नहीं देती? अपनी विरादरी में किसी के साथ वैठ जा और आराम से रह। वह तेरा अपमान तो न करेगा।'

'हां रे, क्यों नहीं, मेरे पीछे उस वेचारे की इतनी दुर्दशा हुई, अब मैं उसे छोड़ दूं। अव वह चाहे पण्डित वन जाये, चाहे देवता वन जाये, मेरे लिए तो वही मतई है, जो मेरे पैरों पर सिर रगड़ा करता था, और ब्राह्मन भी हो जाये और ब्राह्मनी से व्याह भी कर ले, फिर भी जितनी उसकी सेवा मैंने की है, वह कोई ब्राह्मनी क्या करेगी? अभी मान-मरजाद के मोह में वह चाहे मुझे छोड़ दे, लेकिन देख लेना, फिर दौड़ा आयेगा।'

'आ चुका अव। तुझे पा जाये, तो कच्चा ही खा जाये।'

'तो उसे वुलाने ही कौन जाता है? अपना-अपना धरम अपने-अपने साथ है। वह अपना धरम तोड़ रहा है, तो मैं अपना धरम क्यों तोड़ूं?'

प्रातःकाल सिलिया सोनारी की ओर चली, लेकिन होरी ने रोक लिया। धनिया के सिर में दर्द था। उसकी जगह क्यारियों को वराना था। सिलिया इनकार न कर सकी। यहां से जव दोपहर को छुट्टी मिली, तो वह सोनारी चली।

इधर तीसरे पहर होरी फिर कुएं पर चला, तो सिलिया का पता न था। विगड़कर वोला—सिलिया कहां उड़ गयी? रहती है, रहती है, न जाने किधर चल देती है, जैसे किसी काम में जी ही नहीं

लगा। तू जानती है सोना, कहां गयी है?

सोना ने बहाना किया—मुझे तो कुछ मालूम नहीं। कहती थी, धोबिन के घर कपड़े लेने जाना है, वहीं चली गयी होगी।

धनिया ने खाट से उठकर कहा—चलो, मैं क्यारी बराये देती हूं। कौन उसे मजूरी देते हो, जो बिगड़ रहे हो?

'हमारे घर में रहती नहीं है? उसके पीछे सारे गांव में बदनाम नहीं हो रहे हैं?'

'अच्छा, रहने दो, एक कोने में पड़ी हुई है, तो उससे किराया लोगे?'

'एक कोने में नहीं पड़ी हुई है, एक पूरी कोठरी लिये हुए है।'

'तो उस कोठरी का किराया होगा कोई पचास रुपये महीना?'

'उसका किराया एक पैसे सही। हमारे घर में रहती है, जहां जाये, पूछकर जाये। आज आती है, तो खबर लेता हूं।'

पुर चलने लगा। धनिया को होरी ने न आने दिया। रूपा क्यारी बराती थी और सोना मोट ले रही थी। रूपा गीली मिट्टी के चूल्हे और बरतन बना रही थी, और सोना सशंक आंखों से सोनारी की ओर ताक रही थी। शंका भी थी, आशा भी थी। शंका अधिक थी, आशा कम। सोचती थी, उन दोनों को रुपये मिल रहे हैं, तो क्यों छोड़ने लगे? जिनके पास पैसे हैं, वे तो पैसे पर और भी जान देते हैं। और गौरी महतो तो एक ही लालची हैं। मथुरा में दया है, धरम है, लेकिन बाप की इच्छा जो होगी, वही उसे माननी पड़ेगी, मगर सोना भी बचा को ऐसा फटकारेगी कि याद करेंगे। वह साफ़ कहेगी, जाकर किसी धनी की लड़की से ब्याह कर, तुझ जैसे पुरुष के साथ मेरा निबाह न होगा। कहीं गौरी महतो मान गये, तो वह उनके चरन धो-धोकर पियेगी। उनकी ऐसी सेवा करेगी कि अपने बाप की भी न की होगी, और सिलिया को भर-पेट मिठाई खिलायेगी। गोबर ने उसे जो रुपया दिया था, उसे वह अभी तक संचे हुए थी। इस मृदु कल्पना से उसकी आंखें चमक उठीं और कपोलों पर हलकी-सी लाली दौड़ गयी।

मगर सिलिया अभी तक आयी क्यों नहीं? कौन बड़ी दूर है? न आने दिया होगा उन लोगों ने। अहा! वह आ रही है, लेकिन बहुत धीरे-धीरे आती है। सोना का दिल बैठ गया। अभागे नहीं माने साइत, नहीं सिलिया दौड़ती आती। तो सोना से हो चुका ब्याह। मुंह धो रखो।

सिलिया आयी ज़रूर, पर कुएं पर न आकर खेत में क्यारी बराने लगी। डर रही थी, होरी पूछेंगे कहां थी अब तक, तो क्या जवाब देगी? सोना ने यह दो घण्टे का समय बड़ी मुश्किल से काटा। पुर छूटते ही वह भागी हुई सिलिया के पास पहुंची।

'वहां जाकर तू मर गयी थी क्या? ताकते-ताकते आंखें फूट गयीं?'

सिलिया को बुरा लगा—तो क्या मैं वहां सोती थी? इस तरह की बातचीत राह चलते थोड़े ही हो जाती है। अवसर देखना पड़ता है। मथुरा नदी की ओर ढोर चराने गये थे। खोजती-खोजती उसके पास गयी और तेरा सन्देश कहा। ऐसा परसन हुआ कि तुझसे क्या कहूं? मेरे पांव पर गिर पड़ा और बोला—सिल्लो, मैंने तो जब से सुना है कि सोना मेरे घर में आ रही है, तब से आंखों की नींद हर गयी है। उसकी वह गालियां मुझे फल गयीं, लेकिन काका को क्या करूं? वह किसी की नहीं सुनते।

सोना ने टोका—तो न सुनें। सोना भी जिद्दिन है। जो कहा है, वह कर दिखायेगी। फिर हाथ मलते रह जायेंगे।

'बस, उसी छन ढोरों को वहीं छोड़, मुझे लिये हुए गौरी महतो के पास गया। महतो के चार पुर चलते हैं। कुआं भी उन्हीं का है। दस बीघे का ऊख है। महतो को देखके मुझे हंसी आ गयी। जैसे कोई घसियारा हो। हां, भाग का बली है। बाप-बेटे में खूब कहा-सुनी हुई। गौरी महतो कहते थे, तुझसे क्या मतलब, मैं चाहे कुछ लूं या न लूं, तू कौन होता है बोलनेवाला? मथुरा कहता था, तुझको लेना-देना

है, तो मेरा व्याह मत करो, मैं अपना व्याह जैसे चाहूंगा, कर लूंगा। वात वढ़ गयी और गौरी महतो ने पनहियां उतारकर मथुरा को खूब पीटा। कोई दूसरा लड़का इतनी मार खाकर विगड़ खड़ा होता। मथुरा एक घूंसा भी जमा देता, तो महतो फिर न उठते, मगर वेचारा पचासों जूते खाकर भी कुछ न वोला। आंखों में आंसू भरे, मेरी ओर गरीवों की तरह ताकता हुआ चला गया। तव महतो मुझ पर विगड़ने लगे। सैकड़ों गालियां दी, मगर मैं क्यों सुनने लगी थी? मुझे उनका क्या डर था? मैंने सफा कह दिया—महतो, दो-तीन सौ कोई भारी रकम नहीं है, और होरी महतो इतने में विक न जायेंगे। न तुम्हीं धनवान् हो जाओगे, वह सव धन नाच-तमासे में ही उड़ जायेगा। हां, ऐसी वहू न पाओगे।

सोना ने सजल नेत्रों से पूछा—महतो इतनी ही वात परं उन्हें मारने लगे?

सिलिया ने यह वात छिपा रक्खी थी। ऐसी अपमान की वात सोना के कानों में न डालना चाहती थी, पर यह प्रश्न सुनकर संयम न रख सकी। वोली—वही गोवर भैयावाली वात थी। महतो ने कहा—आदमी जूठा तभी खाता है, जव मीठा हो। कलंक चांदी से ही धुलता है। इस पर मथुरा वोला—काका, कौन घर कलंक से वचा हुआ है? हां, किसी का खुल गया, किसी का छिपा हुआ है। गौरी महतो भी पहले एक चमारिन से फंसे थे। उससे दो लड़के भी हैं। मथुरा के मुंह से इतना निकलना था कि डोकरे पर जैसे भूत सवार हो गया। जितना लालची है, उतना ही क्रोधी भी है। विना लिये न मानेगा।

दोनों घर चलीं। सोना के सिर पर चरसा, रस्सा और जुए का भारी वोझ था, पर इस समय वह उसे फूल से भी हलका लग रहा था। उसके अन्तस्तल में जैसे आनन्द और स्फूर्ति का सोता खुल गया हो। मथुरा की वह वीर मूर्ति सामने खड़ी थी, और वह जैसे उसे अपने हृदय में वैठाकर उसके चरण आंसुओं से पखार रही थी। जैसे आकाश की देवियां उसे गोद में उठाये, आकाश में छायी हुई लालिमा में लिये चली जा रही हों।

उसी रात को सोना को वड़े ज़ोर का ज्वर चढ़ आया।

तीसरे दिन गौरी महतो ने नाई के हाथ यह पत्र भेजा।

'स्वस्ती श्री सर्वोपम जोग श्री होरी महतो को गौरीराम का राम-राम वांचना। आगे जो हम लोगों में दहेज की वातचीत हुई थी, उस पर हमने सान्त मन से विचार किया, समझ में आया कि लेन-देन से वर और कन्या दोनों ही के घरवाले ज़ेरवार होते हैं। जव हमारा-तुम्हारा सम्वन्ध हो गया, तो हमें ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि किसी को न अखरे। तुम दान-दहेज की कोई फिकर मत करना, हम तुमको सौगन्ध देते हैं। जो कुछ मोटा-महीन जुरे, वरातियों को खिला देना। हम वह भी न मांगेंगे। रसद का इन्तजाम हमने कर लिया है। हां, तुम खुशी-खुरमी से हमारी जो खातिर करोगे, वह सिर झुकाकर स्वीकार करेंगे।'

होरी ने पत्र पढ़ा और दौड़े हुए भीतर जाकर धनिया को सुनाया। हर्ष के मारे उछला पड़ता था, मगर धनिया किसी विचार में डूवी वैठी रही। एक क्षण के वाद वोली—यह गौरी महतो की भलमनसी है, लेकिन हमें भी तो अपने मरजाद का निवाह करना है। संसार क्या कहेगा? रुपया हाथ का मैल है। उसके लिए क़ुल-मरजाद नहीं छोड़ा जाता। जो कुछ हमसे हो सकेगा, देंगे और गौरी महतो को लेना पड़ेगा। तुम यही जवाव लिख दो। मां-वाप की कमाई में क्या लड़की का कोई हक नहीं है? नहीं, लिखना क्या है, चलो, मैं नाई से सन्देश कहलाये देती हूं।

होरी हतवुद्धि-सा आंगन में खड़ा था और धनिया उस उदारता की प्रतिक्रिया में, जो गौरी महतो की सज्जनता ने जगा दी थी, सन्देशा कह रही थी। फिर उसने नाई को रस पिलाया और विदाई देकर विदा किया।

वह चला गया, तो होरी ने कहा—यह तूने क्या कर डाला धनिया? तेरा मिजाज आज तक मेरी समझ में न आया। तू आगे भी चलती है, पीछे भी चलती है। पहले तो इस वात पर लड़ रही थी कि

किसी से एक पैसा करज मत लो, कुछ देने-दिलाने का काम नहीं है, और जव भगवान ने गौरी के भीतर वैठकर यह पत्र लिखवाया, तो तूने कुल-मरजाद का राग छेड़ दिया। तेरा मरम भगवान् ही जाने।

धनिया वोली—मुंह देखकर वीड़ा दिया जाता है, जानते हो कि नहीं? तव गौरी अपनी सान दिखाते थे, अव वह भलमनसी दिखा रहे हैं। ईंट का जवाव पत्थर हो, लेकिन सलाम का जवाव, तो गाली नहीं है।

होरी ने नाक सिकोड़कर कहा—तो दिखा अपनी भलमनसी। देखें, कहां से रुपये लाती है?

धनिया आंखें चमकाकर वोली—रुपये लाना मेरा काम नहीं है, तुम्हारा काम है।

'मैं तो दुलारी से ही लूंगा।'

'ले लो उसी से। सूद तो सभी लेंगे। जव डूवना ही है, तो क्या तालाव और क्या गंगा?'

होरी वाहर आकर चिलम पीने लगा। कितने मज़े से गला छूटा जाता था, लेकिन धनिया जव जान छोड़े तव तो। जव देखो, उलटी ही चलती है। इसे जैसे कोई भूत सवार हो जाता है। घर की दशा देखकर भी इसकी आंखें नहीं खुलतीं।

:25:

भोला इधर दूसरी सगाई लाये थे। औरत के वगैर उनका जीवन नीरस था। जब तक झुनिया थी, उन्हें हुक्का पानी दे देती थी। समय से खाने को वुला ले जाती थी। अव वेचारे अनाथ-से हो गये थे। वहुओं को घर के काम-धाम से छुट्टी न मिलती थी। उनकी क्या सेवा-सत्कार करतीं, इसलिए अव सगाई परमावश्यक हो गयी थी। संयोग से एक जवान विधवा मिल गयी, जिसके पति का देहान्त हुए केवल तीन महीने हुए थे। एक लड़का भी था। भोला की लार टपक पड़ी। झटपट शिकार मार लाये। जव तक सगाई न हुई, उसका घर खोद डाला।

अभी तक उसके घर में जो कुछ था, वहुओं का था। जो चाहती थीं, करती थीं, जैसे चाहती थीं, रहती थीं। जंगी जब से अपनी स्त्री को लेकर लखनऊ चला गया था, कामता की वहू ही घर की स्वामिनी थी। पांच-छह महीनों में ही उसने तीस-चालीस रुपये अपने हाथ में कर लिये थे। सेर-आध सेर दूध-दही चोरी से वेच लेती थी। अब स्वामिनी हुई उसकी सौतेली सास। उसका नियन्त्रण वहू को वुरा लगता था और आये दिन दोनों में तकरार होती रहती थी। यहां तक कि औरतों के पीछे भोला और कामता में भी कहा-सुनी हो गयी। झगड़ा इतना बढ़ा कि अलगौझे की नौवत आ गयी और यह रीति सनातन से चली आयी है कि अलगौझे के समय मार-पीट अवश्य हो। यहां भी उस रीति का पालन किया गया।

कामता जवान आदमी था। भोला का उस पर जो कुछ दवाव था, वह पिता के नाते था, मगर नयी स्त्री लाकर वेटे से आदर पाने का अव उसे कोई हक़ न रहा था। कम-से-कम कामता इसे स्वीकार न करता था। उसने भोला को पटककर कई लातें जमायीं और घर से निकाल दिया। घर की चीजें न छूने दीं। गांववालों में भी किसी ने भोला का पक्ष न लिया। नयी सगाई ने उन्हें नक्कू वना दिया था। रात तो उन्होंने किसी तरह एक पेड़ के नीचे काटी, सुवह होते ही नोखेराम के पास जा पहुंचे और अपनी फ़रियाद सुनायी। भोला का गांव भी उन्हीं के इलाक़े में था और इलाक़े-भर के मालिक-मुखिया जो कुछ थे, वही थे। नोखेराम को भोला पर तो क्या दया आती, पर उनके साथ एक चटपटी, रंगीली स्त्री देखी, तो चटपट आश्रय देने पर राज़ी हो गये। जहां उनकी गायें वंधती थीं, वहीं एक कोठरी रहने को दे दी। अपने जानवरों की देखभाल, सानी-भूसे के लिए उन्हें एकाएक एक जानकार आदमी की ज़रूरत मालूम होने लगी। भोला को तीन रुपया महीना और सेर-भर रोज़ाना पर नौकर रख लिया।

नोखेराम नाटे, मोटे, खल्वाट, लम्बी नाक और छोटी-छोटी आंखोंवाले सांवले आदमी थे। वड़ा-सा पग्गड़ वांधते, नीचा कुरता पहनते और जाड़ों में लिहाफ़ ओढ़कर बाहर आते-जाते थे। उन्हें तेल की मालिश कराने में वड़ा आनन्द आता था, इसलिए उनके कपड़े हमेशा मैले [illegible] थे। उनका परिवार वहुत बड़ा था। सात भाई और उनके बाल-बच्चे सभी उन्हीं पर [illegible] पर स्वयं उनका लड़का नौवें दरजे में अंग्रेज़ी पढ़ता था और उसका [illegible] आसान काम न था। रायसाहब से उन्हें केवल बारह रुपये वेतन मिलता था [illegible] कौड़ी कम न था। इसलिए असामी किसी तरह उनके चंगुल में फंस जाये [illegible] चूसे न छोड़ते थे। पहले छः रुपये वेतन मिलता था, तब असामियों से इतना [illegible] जब से वारह रुपये हो गये थे, तब से उनकी तृष्णा और भी बढ़ गयी थी [illegible] तरक्की न करते थे।

गांव में और तो सभी किसी-न-किसी रूप में उनका दबाव [illegible] और झिंगुरीसिंह भी उनकी खुशामद करते थे, केवल पटेश्वरी [illegible] रहते थे। नोखेराम को अगर यह जोम था कि हम ब्राह्मण हैं और [illegible] पटेश्वरी को भी घमण्ड था कि हम कायस्थ हैं, क़लम के [illegible] ले जायेगा? फिर वह ज़मींदार के नौकर नहीं, सरकार के नौकर हैं [illegible] डूबता। नोखेराम अगर एकादशी का व्रत रखते हैं और [illegible] पटेश्वरी हर पूर्णमासी को सत्यनारायण की कथा सुनेंगे [illegible] उनका जेठा लड़का सजावल हो गया था, नोखेराम इस [illegible] दसवां पास कर ले, तो उसे भी कहीं नक़लनवीसी दिला दें [illegible] लेकर वरावर सलामी करते रहते थे। एक और बात [illegible] था कि वह अपनी विधवा कहारिन को रखे हुए है। [illegible] पूरी करने का अवसर मिलता हुआ जान पड़ा।

भोला को ढाढ़स देते हुए बोले—तुम [illegible] जिस चीज़ की ज़रूरत हो, हमसे आकर कहो [illegible] काम निकल आयेगा। वखारों में अनाज [illegible]

भोला ने अरज की—सरकार, एक [illegible] यही सलूक होना चाहिए? घर हमने [illegible] और हमें निकाल बाहर किया। यह [illegible] दरवार से इसका फ़ैसला होना चाहिए।

नोखेराम ने समझाया—[illegible] सजा उसे भगवान् देंगे। [illegible] तो इसे नरक क्यों कहा [illegible] का रत्ती-रत्ती हाल जानते हैं। [illegible] अन्तरजामी कहलाते हैं। [illegible] तो यहां तुम उससे [illegible]

यहां से उठकर [illegible] सुनायी—लड़कों को [illegible] जायें। मेरे ही गोवर को [illegible] तो मां-बाप मर गये। [illegible] रखकर दो सौ रुपये [illegible]

कामता ने वाप को निकाल वाहर तो किया, लेकिन अव उसे मालूम होने लगा कि वुड्ढा कितना कामकाजी आदमी था। सवेरे उठकर सानी-पानी करना, दूध दुहना, फिर दूध लेकर वाज़ार जाना, वहां से आकर फिर सानी-पानी करना, फिर दूध दुहना। एक पखवारे में उसका हुलिया विगड़ गया। स्त्री-पुरुष में लड़ाई हुई। स्त्री ने कहा—मैं जान देने के लिए तुम्हारे घर नहीं आयी हूं। मेरी रोटी तुम्हें भारी हो, तो मैं अपने घर चली जाऊं। कामता डरा, यह कहीं चली जाये, तो रोटी का ठिकाना भी न रहे, अपने हाथ से ठोकना पड़े। आखिर एक नौकर रखा, लेकिन उससे काम न चला। नौकर खली-भूसा चुरा-चुराकर वेचने लगा। उसे अलग किया। फिर स्त्री-पुरुष में लड़ाई हुई। स्त्री रूठकर मैके चली गयी। कामता के हाथ-पांव फूल गये। हारकर भोला के पास आया और चिरौरी करने लगा—दादा, मुझसे जो कुछ भूल-चूक हुई, सो क्षमा करो। अव चलकर घर संभालो। जैसे तुम रखोगे, वैसे ही रहूंगा।

भोला को यहां मजूरों की तरह रहना अखर रहा था। पहले महीने-दो महीने उसकी जो ख़ातिर हुई, वह अव न थी। नोखेराम कभी-कभी उससे चिलम भरने या चारपाई विछाने को भी कहते थे। तव वेचारा भोला जहर का घूंट पीकर रह जाता था। अपने घर में लड़ाई-दंगा भी हो, तो किसी की टहल तो न करनी पड़ेगी।

उसकी स्त्री नोहरी ने यह प्रस्ताव सुना, तो ऐंठकर वोली—जहां से लात खाकर आये, वहां फिर जाओगे? तुम्हें लाज भी नहीं आती।

भोला ने कहा—तो यहीं कौन सिंहासन पर वैठा हुआ हूं?

नोहरी ने मटककर कहा—तुम्हें जाना हो तो जाओ, मैं नहीं जाती।

भोला जानता था, नोहरी विरोध करेगी। इसका कारण भी था। यहां उसकी तो कोई वात न पूछता था, पर नोहरी की वड़ी खातिर होती थी। प्यादे और शहने तक उसका दवाव मानते थे। उसका जवाव सुनकर भोला को क्रोध आया, लेकिन करता क्या? नोहरी को छोड़कर चले जाने का साहस उसमें होता, तो नोहरी भी झख मारकर उसके पीछे-पीछे चली जाती। अकेले उसे यहां अपने आश्रय में रखने की हिम्मत नोखेराम में न थी। वह टट्टी की आड़ से शिकार खेलनेवाले जीव थे, मगर नोहरी भोला के स्वभाव से परिचित हो चुकी थी।

भोला मिन्नत करके वोला—देख नोहरी, दिक मत कर। अव तो वहां वहुएं भी नहीं हैं। तेरे ही हाथ में सव कुछ रहेगा। यहां मजूरी करने से विरादरी में कितनी वदनामी हो रही है, यह सोच।

नोहरी ने ठेंगा दिखाकर कहा—तुम्हें जाना है जाओ, मैं तुम्हें रोक तो नहीं रही हूं। तुम्हें वेटे की लातें प्यारी लगती होंगी, मुझे नहीं लगतीं। मैं अपनी मजूरी में मगन हूं।

भोला को रहना पड़ा और कामता अपनी स्त्री की ख़ुशामद करके उसे मना लाया। इधर नोहरी के विषय में कनवतियां होती रहीं—नोहरी ने आज गुलावी साड़ी पहनी है। अव क्या पूछना है, चाहे रोज़ एक साड़ी पहने। सैयां भये कोतवाल, अव डर काहे का! भोला की आंखें फूट गयी हैं क्या?

शोभा वड़ा हंसोड़ था। सारे गांव का विदूषक, वल्कि नारद। हर एक वात की टोह लगाता रहता था। एक दिन नोहरी उसे घर में मिल गयी। कुछ हंसी कर वैठा। नोहरी ने नोखेराम से जड़ दिया। शोभा की चौपाल में तलवी हुई और ऐसी डांट पड़ी कि उम्र-भर न भूलेगा।

एक दिन लाला पटेश्वरीप्रसाद की शामत आ गयी। गरमियों के दिन थे। लाला वग़ीचे में आम तुड़वा रहे थे। नोहरी वनी-ठनी उधर से निकली। लाला ने पुकारा—नोहरी रानी, इधर आओ, थोड़े से आम लेती जाओ, वड़े मीठे हैं।

नोहरी हो भ्रम हुआ, लाला मेरा उपहास कर रहे हैं। उसे अव घमण्ड होने लगा था। वह चाहती थी, लोग उसे ज़मींदारिन समझें और उसका सम्मान करें। घमण्डी आदमी प्रायः शक्की हुआ करता है। और जव मन में चोर हो, तो शक्कीपन और भी वढ़ जाता है। वह मेरी ओर देखकर क्यों हंसा?

अच्छे-अच्छे असामियों को डांट देती थी। असामी ही नहीं, अब कारकुन साहब पर भी रोब जमाने लगी थी।

भोला उसके आश्रित बनकर न रहना चाहते थे। औरत की कमाई खाने से ज़्यादा अधम उनकी दृष्टि में दूसरा काम न था। उन्हें कुल तीन रुपये माहवार मिलते थे, यह भी उनके हाथ न लगते। नोहरी ऊपर ही ऊपर उड़ा लेती। उन्हें तमाखू पीने को धेला मयस्सर नहीं, और नोहरी दो आने रोज़ के पान खा जाती थी। जिसे देखो, वही उन पर रोब जमाता था। प्यादे उससे चिलम भरवाते, लकड़ी फ़टवाते, बेचारा दिन-भर का हारा-थका आता और द्वार पर पेड़ के नीचे झिलंगे खाट पर पड़ा रहता। कोई एक लुटिया पानी देने वाला भी नहीं। दोपहर की बासी रोटियां रात को खानी पड़तीं और वह भी नमक या पानी और नमक के साथ।

आख़िर हारकर उसने घर जाकर कामता के साथ रहने का निश्चय किया। कुछ न होगा, एक टुकड़ा रोटी तो मिल ही जायेगी, अपना घर तो है।

नोहरी बोली—मैं वहां किसी की गुलामी करने न जाऊंगी।

भोला ने जी कड़ा करके कहा—तुम्हें जाने को तो मैं नहीं कहता। मैं तो अपने को कहता हूं।

'तुम मुझे छोड़कर चले जाओगे? कहते लाज नहीं आती?'

'लाज तो घोलकर पी गया।'

'लेकिन मैंने तो अपनी लाज नहीं दी। तुम मुझे छोड़कर नहीं जा सकते।'

'तू अपने मन की है, तो मैं तेरी गुलामी क्यों करूं?'

'पंचायत करके मुंह में कालिख लगा दूंगी, इतना समझ लेना।'

'क्या अभी कुछ कम कालिख लगी है? क्या अब भी मुझे धोखे में रखना चाहती हो?'

'तुम तो ऐसा ताव दिखा रहे हो, जैसे रोज गहने ही तो गढ़वाते हो, तो यहां नोहरी किसी का ताव सहनेवाली नहीं है।'

भोला झल्लाकर उठे और सिरहाने से लकड़ी उठाकर चले कि नोहरी ने लपककर उनका पहुंचा पकड़ लिया। उसके बलिष्ठ पंजों से निकलना भोला के लिए मुश्किल था। चुपके से क़ैदी की तरह बैठ गये। एक ज़माना था, जब वह औरतों को अंगुलियों पर नचाया करते थे, आज वह एक औरत के करपाश में बंधे हुए हैं और किसी तरह निकल नहीं सकते। हाथ छुड़ाने की कोशिश करके वह परदा नहीं खोलना चाहते। अपनी सीमा का अनुमान उन्हें हो गया है, मगर वह क्यों उससे निडर होकर नहीं कह देते कि तू मेरे काम की नहीं है, मैं तुझे त्यागता हूं। पंचायत की धमकी देती है? पंचायत क्या कोई हौवा है, अगर तुझे पंचायत का डर नहीं है, तो मैं पंचायत से क्यों डरूं?

लेकिन यह भाव शब्दों में आने का साहस न कर सकता था। नोहरी ने जैसे उन पर कोई वशीकरण डाल दिया हो।

:26:

लाला पटेश्वरी पटवारी-समुदाय के सद्गुणों के साक्षात् अवतार थे। वह यह न देख सकते थे कि कोई असामी अपने दूसरे भाई की इन्च-भर भी ज़मीन दबा ले। न वह यही देख सकते थे कि असामी किसी महाजन के रुपये दबा ले। गांव के समस्त प्राणियों के हितों की रक्षा करना उनका परम धर्म था। समझौते या मेल-जोल में उनका विश्वास न था, यह तो निर्जीवता के लक्षण हैं। वह तो संघर्ष के पुजारी थे, जो सजीवता का लक्षण है। आये दिन इस जीवन को उत्तेजना देने का प्रयास करते रहते थे। एक-न-एक फुलझड़ी छोड़ते रहते थे। मंगरू साह पर इन दिनों उनकी विशेष कृपा-दृष्टि थी। मंगरू साह गांव का सबसे धनी आदमी था, पर स्थानीय राजनीति में बिलकुल भाग न लेता था। रोब या अधिकार की लालसा उसे न थी। मकान भी उसका गांव के बाहर था, जहां उसने एक बाग़ और

एक कुआं और एक छोटा-सा शिव-मन्दिर बनवा लिया था। बाल-बच्चा कोई न था, इसलिए लेनदेन भी कम कर दिया था और अधिकतर पूजा-पाठ में ही लगा रहता था। कितने ही असामियों ने उसके रुपये हज़म कर लिये थे, पर उसने किसी पर नालिश-फ़रियाद न की। होरी पर भी उसके सूद-ब्याज मिलाकर कोई डेढ़ सौ रुपये हो गये थे, मगर न होरी को ऋण चुकाने की कोई चिन्ता थी और न उसे वसूल करने की। दो-चार बार उसने तक़ाज़ा किया, घुड़का-डांटा भी, मगर होरी की दशा देखकर चुप हो बैठा। अब संयोग से होरी की ऊख गांव-भर के ऊपर थी। कुछ नहीं, तो उसके दो-ढाई सौ सीधे हो जायेंगे, ऐसा लोगों का अनुमान था। पटेश्वरीप्रसाद ने मंगरू को सुझाया कि अगर इस वक्त होरी पर दावा कर दिया जाये, तो सब रुपये वसूल हो जायें। मंगरू इतना दयालु नहीं, जितना आलसी था। झञ्झट में पड़ना न चाहता था, मगर जब पटेश्वरी ने ज़िम्मा लिया कि उसे एक दिन भी कचहरी न जाना पड़ेगा, न कोई दूसरा कष्ट होगा, बैठे-बैठाये उसकी डिग्री हो जायेगी, तो उसने नालिश करने की अनुमति दे दी, और अदालत-ख़र्च के लिए रुपये भी दे दिये।

होरी को ख़बर भी न थी कि क्या खिचड़ी पक रही है। कब दावा दायर हुआ, कब डिग्री हुई, उसे बिलकुल पता न चला। कुर्क अमीन उसकी ऊख नीलाम करने आया, तब उसे मालूम हुआ। सारा गांव खेत के किनारे जमा हो गया। होरी मंगरू साह के पास दौड़ा और धनिया पटेश्वरी को गालियां देने लगी। उसकी सहज बुद्धि ने बता दिया कि पटेश्वरी ही की कारस्तानी है, मगर मंगरू साह पूजा पर थे, मिल न सके और धनिया गालियों की वर्षा करके भी पटेश्वरी का कुछ बिगाड़ न सकी। उधर ऊख डेढ़ सौ रुपये में नीलाम हो गयी और बोली भी हो गयी मंगरू साह ही के नाम। कोई दूसरा आदमी न बोल सका। दातादीन में भी धनिया की गालियां सुनने का साहस न था।

धनिया ने होरी को उत्तेजित करके कहा—बैठे क्या हो, जाकर पटवारी से पूछते क्यों नहीं? यही धरम है तुम्हारा गांव-घर के आदमियों के साथ?

होरी ने दीनता से कहा—पूछने के लिए तूने मुंह भी रखा हो। तेरी गालियां क्या उन्होंने न सुनी होंगी?

'जो गाली खाने का काम करेगा,उसे मिलेंगी ही।'

'तू गालियां भी देगी और भाई-चारा भी निभायेगी?'

'देखूंगी, मेरे खेत के नगीच कौन जाता है?'

'मिलवाले आकर काट ले जायेंगे, तू क्या करेगी, और मैं क्या करूंगा? गालियां देकर अपनी जीभ की खुजली चाहे मिटा ले।'

'मेरे जीते-जी कोई मेरा खेत काट ले जायेगा?'

'हां-हां, तेरे और मेरे जीते-जी सारा गांव मिलकर भी उसे नहीं रोक सकता। अब वह चीज मेरी नहीं, मंगरू साह की है।'

'मंगरू साह ने मर-मरकर जेठ की दुपहरी में सिंचाई और गोड़ाई की थी?'

'वह सब तूने किया, मगर अब वह चीज मंगरू साह की है। हम उनके करजदार नहीं हैं?'

ऊख तो गयी, लेकिन उसके साथ ही एक नयी समस्या आ पड़ी। दुलारी इसी ऊख पर रुपये देने पर तैयार हुई थी। अब वह किस ज़मानत पर रुपये दे? अभी उसके पहले ही के दो सौ पड़े हुए थे। सोचा था, ऊख के पुराने रुपये मिल जायेंगे, तो नया हिसाब चलने लगेगा। उसकी नज़र में होरी की साख दो सौ तक थी। इससे ज़्यादा देना जोख़िम था। सहालग सिर पर था। तिथि निश्चित हो चुकी थी। गौरी महतो ने सारी तैयारियां कर ली होंगी। अब विवाह को टालना असम्भव था। होरी को ऐसा क्रोध आता था कि जाकर दुलारी का गला दबा दे। जितनी चिरौरी-विनती हो सकती थी, वह कर चुका, मगर वह पत्थर की देवी ज़रा भी न पसीजी। उसने चलते-चलते हाथ बांधकर कहा—दुलारी, मैं तुम्हारे रुपये लेकर भाग न जाऊंगा। न इतनी जल्दी मरा ही जाता हूं। खेत हैं, पेड़-पालो हैं, घर है,

अच्छे-अच्छे असामियों को डांट देती थी। असामी ही नहीं, अब कारकुन साहब पर भी रोब जमाने लगी थी।

भोला उसके आश्रित बनकर न रहना चाहते थे। औरत की कमाई खाने से ज़्यादा अधम उनकी दृष्टि में दूसरा काम न था। उन्हें कुल तीन रुपये माहवार मिलते थे, यह भी उनके हाथ न लगते। नोहरी ऊपर ही ऊपर उड़ा लेती। उन्हें तमाखू पीने को धेला मयस्सर नहीं, और नोहरी दो आने रोज़ के पान खा जाती थी। जिसे देखो, वही उन पर रोब जमाता था। प्यादे उससे चिलम भरवाते, लकड़ी कटवाते, बेचारा दिन-भर का हारा-थका आता और द्वार पर पेड़ के नीचे झिलंगे खाट पर पड़ा रहता। कोई एक लुटिया पानी देने वाला भी नहीं। दोपहर की बासी रोटियां रात को खानी पड़तीं और वह भी नमक या पानी और नमक के साथ।

आख़िर हारकर उसने घर जाकर कामता के साथ रहने का निश्चय किया। कुछ न होगा, एक टुकड़ा रोटी तो मिल ही जायेगी, अपना घर तो है।

नोहरी बोली—मैं वहां किसी की गुलामी करने न जाऊंगी।

भोला ने जी कड़ा करके कहा—तुम्हें जाने को तो मैं नहीं कहता। मैं तो अपने को कहता हूं।

'तुम मुझे छोड़कर चले जाओगे? कहते लाज नहीं आती?'

'लाज तो घोलकर पी गया।'

'लेकिन मैंने तो अपनी लाज नहीं दी। तुम मुझे छोड़कर नहीं जा सकते।'

'तू अपने मन की है, तो मैं तेरी गुलामी क्यों करूं?'

'पंचायत करके मुंह में कालिख लगा दूंगी, इतना समझ लेना।'

'क्या अभी कुछ कम कालिख लगी है? क्या अब भी मुझे धोखे में रखना चाहती हो?'

'तुम तो ऐसा ताव दिखा रहे हो, जैसे रोज गहने ही तो गढ़वाते हो, तो यहां नोहरी किसी का ताव सहनेवाली नहीं है।'

भोला झल्लाकर उठे और सिरहाने से लकड़ी उठाकर चले कि नोहरी ने लपककर उनका पहुंचा पकड़ लिया। उसके बलिष्ठ पंजों से निकलना भोला के लिए मुश्किल था। चुपके से क़ैदी की तरह बैठ गये। एक ज़माना था, जब वह औरतों को अंगुलियों पर नचाया करते थे, आज वह एक औरत के करपाश में बंधे हुए हैं और किसी तरह निकल नहीं सकते। हाथ छुड़ाने की कोशिश करके वह परदा नहीं खोलना चाहते। अपनी सीमा का अनुमान उन्हें हो गया है, मगर वह क्यों उससे निडर होकर नहीं कह देते कि तू मेरे काम की नहीं है, मैं तुझे त्यागता हूं। पंचायत की धमकी देती है? पंचायत क्या कोई हौवा है, अगर तुझे पंचायत का डर नहीं है, तो मैं पंचायत से क्यों डरूं?

लेकिन यह भाव शब्दों में आने का साहस न कर सकता था। नोहरी ने जैसे उन पर कोई वशीकरण डाल दिया हो।

:26:

लाला पटेश्वरी पटवारी-समुदाय के सद्गुणों के साक्षात् अवतार थे। वह यह न देख सकते थे कि कोई असामी अपने दूसरे भाई की इञ्च-भर भी ज़मीन दबा ले। न वह यही देख सकते थे कि असामी किसी महाजन के रुपये दबा ले। गांव के समस्त प्राणियों के हितों की रक्षा करना उनका परम धर्म था। समझौते या मेल-जोल में उनका विश्वास न था, यह तो निर्जीवता के लक्षण हैं। वह तो संघर्ष के पुजारी थे, जो सजीवता का लक्षण है। आये दिन इस जीवन को उत्तेजना देने का प्रयास करते रहते थे। एक-न-एक फुलझड़ी छोड़ते रहते थे। मंगरू साह पर इन दिनों उनकी विशेष कृपा-दृष्टि थी। मंगरू साह गांव का सबसे धनी आदमी था, पर स्थानीय राजनीति में बिलकुल भाग न लेता था। रोब या अधिकार की लालसा उसे न थी। मकान भी उसका गांव के बाहर था, जहां उसने एक बाग़ और

भेजेगा? यह दूसरा साल है, एक चिट्ठी नहीं।'

इतने में सोना वैलों के चारे के लिए हरियाली का एक गट्ठा सिर पर लिये, यौवन को अपने अञ्चल से चुराती, वालिका-सी सरल, आयी और गट्ठा वहीं पटककर अन्दर चली गयी।

नोहरी ने कहा—लड़की तो खूब सयानी हो गयी है।

धनिया वोली—लड़की की वाढ़ रेंड की वाढ़ है। नहीं, है अभी के दिन की?

'वर तो ठीक हो गया है न?'

'हां, वर तो ठीक है। रुपये का वन्दोवस्त हो गया, तो इसी महीने में व्याह कर देंगे।'

नोहरी दिल की ओछी न थी। इधर उसने जो थोड़े-से रुपये जोड़े थे, वे उसके पेट में उछल रहे थे। अगर वह सोना के व्याह के लिए कुछ रुपये दे दे, तो कितना यश मिलेगा! सारे गांव में उसकी चर्चा हो जायेगी। लोग चकित होकर कहेंगे—नोहरी ने इतने रुपये दे दिये। वड़ी देवी है। होरी और धनिया दोनों घर-घर उसका वखान करते फिरेंगे। गांव में उसका मान-सम्मान कितना वढ़ जायेगा। वह उंगली दिखानेवालों का मुंह सी देगी। फिर किसकी हिम्मत है, जो उस पर हंसे या उस पर आवाज़ें कसे? अभी सारा गांव उसका दुश्मन है। तव सारा गांव उसका हितैषी हो जायेगा। इस कल्पना से उसकी मुद्रा खिल गयी।

'थोड़े-वहुत से काम चलता है, तो मुझसे लो। जव हाथ में रुपये आ जायें, तो दे देना।'

होरी और धनिया दोनों ही ने उसकी ओर देखा। नहीं, नोहरी दिल्लगी नहीं कर रही है। दोनों की आंखों में विस्मय था, कृतज्ञता थी, सन्देह था और लज्जा थी। नोहरी उतनी वुरी नहीं है, जितना लोग समझते हैं।

नोहरी ने फिर कहा—तुम्हारी और हमारी इज्जत एक है। तुम्हारी हंसी हो, तो क्या मेरी हंसी न होगी? कैसे भी हुआ, पर अव तो तुम हमारे समधी हो।

होरी ने सकुचाते हुए कहा—तुम्हारे रुपये तो घर में ही हैं, जव काम पड़ेगा, ले लेंगे। आदमी अपनों ही का भरोसा तो करता है, मगर ऊपर से इन्तजाम हो जाये, तो घर के रुपये क्यों छुएं?

धनिया ने अनुमोदन किया—हां, और क्या!

नोहरी ने अपनापन जताया—जव घर में रुपये हैं, तो वाहरवालों के सामने हाय क्यों फैलाओ? सूद भी देना पड़ेगा, उस पर इस्टाम लिखो, गवाही कराओ, दस्तूरी दो, खुशामद करो। हां, मेरे रुपये में छूत लगी हो, तो दूसरी वात है।

होरी ने संभाला—नहीं, नहीं, नोहरी, जव घर में काम चल जायेगा, तो वाहर क्यों हाथ फैलायेंगे, लेकिन आपसवाली वात है। खेती-वारी का भरोसा नहीं। तुम्हें जल्दी कोई काम पड़ा और हम रुपये न जुटा सके, तो तुम्हें भी वुरा लगेगा और हमारी जान भी संकट में पड़ेगी। इससे कहता था। नहीं लड़की तो तुम्हारी है।

'मुझे अभी रुपये की ऐसी जल्दी नहीं है।'

'तो तुम्हीं से ले लेंगे। कन्यादान का फल भी क्यों वाहर जाये?'

'कितने रुपये चाहिए?'

'तुम कितने दे सकोगी?'

'सौ में काम चल जायेगा?'

होरी को लालच आया। भगवान् ने छप्पर फाड़कर रुपये दिये हैं, तो जितना ले सके, उतना क्यों न ले।

'तो इतने में वड़ा खुसफैली से काम चल जायेगा। अनाज घर में है, मगर ठकुराइन, आज तुमसे कहता हूं, मैं तुम्हें ऐसी लच्छमी न समझता था। इस जमाने में कौन किसकी मदद करता है, और किसके पास है? तुमने मुझे डूवते से वचा लिया।'

दीया-बत्ती का समय आ गया था। ठण्डक पड़ने लगी थी। ज़मीन ने नीली चादर ओढ़ ली थी। धनिया अन्दर जाकर अंगीठी लायी। सब तापने लगे। पुआल के प्रकाश में छबीली, रंगीली, कुलटा नोहरी उनके सामने वरदान-सी बैठी थी। इस समय उसकी उन आंखों में कितनी सहृदयता थी, कपोलों पर कितनी लज्जा, ओठों पर कितनी सत्प्रेरणा!

कुछ देर तक इधर-उधर की बातें करके नोहरी उठ खड़ी हुई और यह कहती हुई घर चली—अब देर हो रही है। कल तुम आकर रुपये ले लेना महतो।

'चलो, मैं तुम्हें पहुंचा दूं।'

'नहीं-नहीं, तुम बैठो, मैं चली जाऊंगी।'

'जी तो चाहता है तुम्हें कन्धे पर बैठाकर पहुंचाऊं।'

नोखेराम की चौपाल गांव के दूसरे सिरे पर थी, और बाहर-बाहर जाने का रास्ता साफ़ था। दोनों उसी रास्ते से चले। अब चारों ओर सन्नाटा था।

नोहरी ने कहा—तनिक समझा देते रावत को। क्यों सबसे लड़ाई किया करते हैं? जब इन्हीं लोगों के बीच में रहना है, तो ऐसे रहना चाहिए न कि चार आदमी अपने हो जायें। और इनका हाल यह है कि सबसे लड़ाई, सबसे झगड़ा। जब तुम् मुझे परदे में नहीं रख सकते, मुझे दूसरों की मजूरी करनी पड़ती है, तो यह कैसे निभ सकता है कि मैं न किसी से हंसूं, न बोलूं, न कोई मेरी ओर ताके, न हंसे। यह सब तो परदे में ही हो सकता है। पूछो, कोई मेरी ओर ताकता या घूरता है, तो मैं क्या करूं? उसकी आंखें तो नहीं फोड़ सकती। फिर मेल-मुहब्बत से आदमी के सौ काम निकलते हैं। जैसा समय देखो, वैसा व्यवहार करो। तुम्हारे घर हाथी झूमता था, तो अब वह तुम्हारे किस काम का? अब तो तुम तीन रुपये के मजूर हो। मेरे घर तो भैंस लगती थी, लेकिन अब तो मजूरिन हूं, मगर उनकी समझ में कोई बात आती ही नहीं। कभी लड़कों के साथ रहने की सोचते हैं, कभी लखनऊ जाकर रहने की सोचते हैं। नाक में दम कर रखा है मेरे।

होरी ने ठकुरसुहाती की—यह भोला की सरासर नादानी है। बूढ़े हुए, अब तो उन्हें समझ आनी चाहिए। मैं समझा दूंगा।

'तो सवेरे आ जाना, रुपये दे दूंगी।'

'कुछ लिखा-पढ़ी...।'

'तुम मेरे रुपये हजम न करोगे, मैं जानती हूं।'

उसका घर आ गया। वह अन्दर चली गयी। होरी घर लौटा।

: 27 :

गोबर को शहर आने पर मालूम हुआ था कि जिस अड्डे पर वह अपना खोंचा लेकर बैठता था, वहां एक दूसरा खोंचेवाला बैठने लगा है और गाहक अब गोबर को भूल गये हैं। वह घर भी अब उसे पिंजरे-सा लगता था। झुनिया उसमें अकेली बैठी रोया करती। लड़का दिन-भर आंगन में या द्वार पर खेलने का आदी था। यहां उसके खेलने को कोई जगह न थी। कहां जाये? द्वार पर मुश्किल से एक गज़ का रास्ता था। दुर्गन्ध उड़ा करती थी। गरमी में कहीं बाहर लेटने-बैठने को जगह नहीं। लड़का मां को एक क्षण के लिए न छोड़ता था। और जब कुछ खेलने को न हो, तो कुछ खाने और दूध पीने के सिवा वह और क्या करे! घर पर भी कभी धनिया खेलाती, कभी रूपा, कभी सोना, कभी होरी, कभी पुनिया। यहां अकेली झुनिया थी, और उसे घर का सारा काम करना पड़ता था।

और गोबर जवानी के नशे में मस्त था। उसकी अतृप्त लालसा विषय-भोग के सागर में डूब जाना चाहती थी। किसी काम में उसका मन न लगता। खोंचा लेकर जाता, तो घण्टे-भर ही में लौट

आता। मनोरंजन का कोई दूसरा सामान न था। पड़ोस के मजूर और इक्केवान् रात-रात-भर ताश और जुआ खेलते थे। पहले वह भी खेलता था। मगर अब उसके लिए केवल मनोरंजन था, झुनिया के साथ हास-विलास। थोड़े ही दिनों में झुनिया इस जीवन से ऊब गयी। वह चाहती थी, कहीं एकान्त में जाकर बैठे, खूब निश्चिन्त होकर लेटे-सोये, मगर वह एकान्त कहीं न मिलता। उसे अब गोबर पर गुस्सा आता। उसने शहर के जीवन का कितना मोहक चित्र खींचा था, और यहां इस काल-कोठरी के सिवा और कुछ नहीं। बालक से भी उसे चिढ़ होती थी। कभी-कभी वह उसे मारकर बाहर निकाल देती और अन्दर से किवाड़ बन्द कर लेती। बालक रोते-रोते बेदम हो जाता।

उस पर विपत्ति यह कि उसे दूसरा बच्चा पैदा होनेवाला था। कोई आगे, न पीछे। अक्सर सिर में दर्द हुआ करता। खाने से अरुचि हो गयी थी। ऐसी तन्द्रा होती थी कि कोने में चुपचाप पड़ी रहे। कोई उससे न बोले-चाले, मगर यहां गोबर का निष्ठुर प्रेम स्वागत के लिए द्वार खटखटाता रहता था। स्तन में दूध नाम को नहीं, लेकिन लल्लू छाती पर सवार रहता था। देह के साथ उसका मन भी दुर्बल हो गया। वह जो संकल्प करती, उसे थोड़े से आग्रह पर तोड़ देती। वह लेटी होती और लल्लू आकर ज़बरदस्ती उसकी छाती पर बैठ जाता और स्तन मुंह में लेकर चबाने लगता। वह अब दो साल का हो गया था। बड़े तेज़ दांत निकल आये थे। मुंह में दूध न जाता, तो वह क्रोध में आकर स्तन में दांत काट लेता, लेकिन झुनिया में अब इतनी शक्ति भी न थी कि उसे छाती पर से ढकेल दे। उसे हरदम मौत सामने खड़ी नज़र आती। पति और पुत्र किसी से भी उसे स्नेह न था। सभी अपने मतलब के यार हैं। बरसात के दिनों में जब लल्लू को दस्त आने लगे और उसने दूध पीना छोड़ दिया, तो झुनिया को सिर से एक विपत्ति टल जाने का अनुभव हुआ। लेकिन जब एक सप्ताह के बाद बालक मर गया, तो उसकी स्मृति पुत्र-स्नेह से सजीव होकर उसे रुलाने लगी।

और जब गोबर बालक के मरने के एक ही सप्ताह बाद फिर आग्रह करने लगा, तो उसने क्रोध से जलकर कहा—तुम कितने पशु हो?

झुनिया को अब लल्लू की स्मृति लल्लू से भी कहीं प्रिय थी। लल्लू जब तक सामने था, वह उससे जितना सुख पाती थी, उससे कहीं ज़्यादा कष्ट पाती थी। अब लल्लू उसके मन में आ बैठा था, शान्त, स्थिर, सुशील, सुहास। उसकी कल्पना में अब वेदनामय आनन्द था, जिसमें प्रत्यक्ष की काली छाया न थी। बाहरवाला लल्लू उसके भीतरवाले लल्लू का प्रतिबिम्ब मात्र था। प्रतिबिम्ब सामने न था, जो असत्य था, अस्थिर था। सत्य रूप तो उसके भीतर था, उसकी आशाओं और शुभेच्छाओं से सजीव। दूध की जगह वह उसे अपना रक्त पिला-पिलाकर पाल रही थी। उसे अब वह बन्द कोठरी और वह दुर्गन्धमय वायु और वह दोनों जून धुएं में जलना, इन बातों का मानो ज्ञान ही न रहा। वह स्मृति उसके भीतर बैठी हुई उसे शक्ति प्रदान करती रहती। जीते-जी जो उसके जीवन का भार था, मरकर उसके प्राणों में समा गया था। उसकी सारी ममता अन्दर जाकर बाहर से उदासीन हो गयी। गोबर देर में आता है या जल्द, रुचि से भोजन करता है या नहीं, प्रसन्न है या उदास, इसकी अब उसे बिलकुल चिन्ता न थी। गोबर क्या कमाता है और कैसे ख़र्च करता है, इसकी भी उसे परवा न थी। उसका जीवन जो कुछ था, भीतर था, बाहर वह केवल निर्जीव थी।

उसके शोक में भाग लेकर, उसके अन्तर्जीवन में पैठकर, गोबर उसके समीप आ सकता था, उसके जीवन का अंग बन सकता था, पर वह उसके बाह्य जीवन के सूखे तट पर आकर ही प्यासा लौट जाता था।

एक दिन उसने रूखे स्वर में कहा—तो लल्लू के नाम को कब तक रोये जायेगी। चार-पांच महीने तो हो गये।

झुनिया ने ठण्डी सांस लेकर कहा—तुम मेरा दुःख नहीं समझ सकते। अपना काम करो। मैं जैसी हूं, वैसी पड़ी रहने दो।

'तेरे रोते रहने से लल्लू लौट आयेगा?'

झुनिया के पास इसका कोई जवाव न था। वह उठकर पतीली में कचालू के लिए आलू उवालने । गोवर को ऐसा पाषाण-हृदय उसने न समझा था।

इस वेदर्दी ने लल्लू को उसके मन में और सजग कर दिया। लल्लू उसी का है, उसमें किसी का झा नहीं, किसी का हिस्सा नहीं। अभी तक लल्लू किसी अंश में उसके हृदय के वाहर भी था, गोवर हृदय में उसकी कुछ ज्योति थी। अव वह सम्पूर्ण रूप से उसका था।

गोवर ने खोंचे से निराश होकर शक्कर के मिल में नौकरी कर ली थी। मिस्टर खन्ना ने पहले से ोत्साहित होकर हाल में यह दूसरा मिल खोल दिया था। गोवर को वहां बड़े सवेरे जाना पड़ता, और दिन-भर के वाद जव वह दीया-जले घर लौटता, तो उसकी देह में ज़रा भी थकान न होती थी। वीच-वीच में वह हंस-वोल भी लेता था। फिर उस खुले हुए मैदान में, उन्मुक्त आकाश के नीचे, जैसे उसकी क्षति पूरी हो जाती थी। वहां उसकी देह चाहे जितना काम करे, मन स्वच्छन्द रहता था। यहां देह की उतनी मेहनत न होने पर भी जैसे उस कोलाहल, उस गति और तूफ़ानी शोर का उस पर वोझ-सा लदा रहता था। यह शंका भी बनी रहती थी कि न जाने कव डांट पड़ जाये। सभी श्रमिकों की यही दशा थी। सभी ताड़ी या शराव में अपनी दैहिक थकान और मानसिक अवसाद को डुवोया करते थे। गोवर को भी शराव का चस्का पड़ा। घर आता तो नशे में चूर, और पहर रात गये। और आकर कोई-न-कोई वहाना खोजकर झुनिया को गालियां देता, घर से निकालने लगता और कभी-कभी पीट भी देता।

झुनिया को अव यह शंका होने लगी कि वह रखेली है, इसी से उसका यह अपमान हो रहा है। व्याहता होती, तो गोवर की मजाल थी कि उसके साथ यह वर्ताव करता। विरादरी उसे दण्ड देती, हुक्का-पानी वन्द कर देती। उसने कितनी वड़ी भूल की कि इस कपटी के साथ घर से निकल भागी। सारी दुनिया में हंसी भी हुई और हाथ कुछ न आया। वह गोवर को अपना दुश्मन समझने लगी। न उसके खाने-पीने की परवाह करती, न अपनी खाने-पीने की। जव गोवर उसे मारता, तो उसे ऐस क्रोध आता कि गोवर का गला छुरे से रेत डाले। गर्भ ज्यों-ज्यों पूरा होता जाता है, उसकी चिन्त ढ़ती जाती है। इस घर में तो उसकी मरन हो जायेगी। कौन उसकी देखभाल करेगा, कौन उ संभालेगा? और जो गोवर इसी तरह मारता-पीटता रहा, तव तो उसका जीवन नरक ही हो जायेगा

एक दिन वह वम्वे पर पानी भरने गयी, तो पड़ोस की एक स्त्री ने पूछा—कै महीने का है रे?

झुनिया ने लजाकर कहा—क्या जाने दीदी, मैंने तो गिना-गिनाया नहीं है।

दोहरी देह की, काली-कलूटी, नाटी, कुरूपा, वड़े-वड़े स्तनोंवाली स्त्री थी। उसका पति प हांकता था और वह ख़ुद लकड़ी की दुकान करती थी। झुनिया कई वार उसकी दुकान से ल लायी थी। इतना ही परिचय था।

मुसकराकर वोली—मुझे तो जान पड़ता है, दिन पूरे हो गये हैं। आज ही कल में होगा दाई-वाई ठीक कर ली है?

झुनिया ने भयातुर स्वर में कहा—मैं तो यहां किसी को नहीं जानती।

'तेरा मर्दुआ कैसा है, जो कान में तेल डाले वैठा है?'

'उन्हें मेरा क्या फिकर?'

'हां, देख तो रही हूं। तुम तो सौर में वैठोगी, कोई करने-धरनेवाला चाहिए सास-ननद, देवरानी-जेठानी, कोई है कि नहीं? किसी को वुला लेना था।'

'मेरे लिए सव मर गये।'

वह पानी लाकर जूठे वरतन मांजने लगी, तो प्रसव की शंका से हृदय में धड़कनें सोचने लगी—कैसे क्या होगा भगवान्? उंह! यही तो होगा, मर जाऊंगी। अच्छा है, ज

जाऊंगी।

शाम को उसके पेट में दर्द होने लगा। समझ गयी, विपत्ति की घड़ी आ पहुंची। पेट को एक हाथ से पकड़े हुए पसीने से तर उसने चूल्हा जलाया, खिचड़ी डाली और दर्द से व्याकुल होकर वहीं ज़मीन पर लेट रही। कोई दस वजे रात को गोवर आया, ताड़ी की दुर्गन्ध उड़ाता हुआ। लटपटाती हुई ज़वान से ऊटपटांग वक रहा था—मुझे किसी की परवा नहीं है। जिसे सौ दफ़े गरज हो, रहे, नहीं चला जाये। मैं किसी की ताव नहीं सह सकता। अपने मां-वाप का ताव नहीं सहा, जिसने जन्म दिया, तव दूसरों का ताव क्यों सहूं? जमादार आंखें दिखाता है। यहां किसी की धौंस सहनेवाले नहीं हैं। लोगों ने पकड़ न लिया होता, तो खून पी जाता, खून। कल देखूंगा वचा को, फांसी ही तो होगी। दिखा दूंगा कि मरद कैसे मरते हैं। हंसता हुआ, अकड़ता हुआ, मूंछों पर ताव देता हुआ फांसी के तख्ते पर जाऊं तो सही। औरत की जात! कितनी वेवफा होती है? खिचड़ी डाल दी और टांग पसारकर सो रही। कोई खाये या न खाये, उसकी वला से। आप मजे से फुलके उड़ाती है, मेरे लिए खिचड़ी! सता ले जितना सताते वने, तुझे भगवान् सतायेंगे, जो न्याय करते हैं।

उसने झुनिया को जगाया नहीं। कुछ वोला भी नहीं। चुपके से खिचड़ी थाली में निकाली और दो-चार कौर निगलकर वरामदे में लेट रहा। पिछले पहर उसे सर्दी लगी। कोठरी में कम्वल लेने गया, तो झुनिया के कराहने की आवाज़ सुनी। नशा उतर चुका था। पूछा—कैसा जी है झुनिया? कहीं दरद है क्या?

'हां, पेट में जोर से दरद हो रहा है।'

'तूने पहले क्यों नहीं कहा? अव इस वखत कहां जाऊं?'

'किससे कहती?'

'मैं क्या मर गया था?'

'तुम्हें मेरे मरने-जीने की क्या चिन्ता!'

गोवर घवराया, कहां दाई खोजने जाये? इस वक्त वह आने ही क्यों लगी? घर में कुछ है भी तो नहीं। चुड़ैल ने पहले वता दिया होता, तो किसी से दो-चार रुपये मांग लाता। इन्हीं हाथों में सौ-पचास रुपये हरदम पड़े रहते थे, चार आदमी खुशामद करते थे। इस कुलच्छनी के आते ही जैसे लक्ष्मी रूठ गयी। टके-टके को मुहताज हो गया।

सहसा किसी ने पुकारा—यह तुम्हारी घरवाली कराह रही है? दरद तो नहीं हो रहा है?

यह वही मोटी औरत थी, जिससे आज झुनिया की वात हुई थी। वह घोड़े को खिलाने उठी थी। झुनिया का कराहना सुनकर पूछने आ गयी थी।

गोवर ने वरामदे में जाकर कहा—पेट में दर्द है। छटपटा रही है। यहां कोई दाई मिलेगी?

'वह तो मैं आज उसे देखकर ही समझ गयी थी। दाई कच्ची सराय में रहती है। लपककर बुला लाओ। कहना, जल्दी चल। तव तक मैं यहीं वैठी हूं।'

'मैंने तो कच्ची सराय नहीं देखी, किधर है?'

'अच्छा, तुम उसे पंखा झलते रहो, मैं वुलाये लाती हूं। यही कहते हैं, अनाड़ी आदमी किसी काम का नहीं। पूरा पेट और दाई की खवर नहीं।'

यह कहती हुई वह चल दी। इसके मुंह पर तो लोग इसे चुहिया कहते हैं, यही इसका नाम था, लेकिन पीठ पीछे मोटल्ली कहा करते थे। किसी को मोटल्ली कहते सुन लेती थी, तो उसके सात पुरखों तक चढ़ जाती थी।

गोवर को वैठे दस मिनट भी न हुए होंगे कि वह लौट आयी और वोली—अव संसार में गरीवों का कैसे निवाह होगा? रांड़ कहती है, पांच रुपये लूंगी, तव चलूंगी। और आठ आने रोज। वारहवें दिन एक साड़ी। मैंने कहा, तेरा मुंह झुलस दूं। तू जा चूल्हे में। मैं देख लूंगी। वारह वच्चों की मां यों ही

नहीं हो गयी हूं। तुम बाहर आ जाओ गोबरधन, मैं सब कर लूंगी। वखत पड़ने पर आदमी ही आदमी के काम आता है। चार बच्चे जना लिये, तो दाई बन बैठी।

वह झुनिया के पास जा बैठी और उसका सिर अपनी जांघ पर रखकर उसका पेट सहलाती हुई बोली—मैं तो आज तुझे देखते ही समझ गयी थी। सच पूछो, तो इसी धड़के में आज मुझे नींद नहीं आयी। यहां तेरा कौन सगा बैठा है?

झुनिया ने दर्द से दांत जमाकर 'सी' करते हुए कहा—अब न बचूंगी दीदी। हाय! मैं तो भगवान् से मांगने न गयी थी। एक को पाला-पोसा उसे छीन लिया, तो फिर इसका कौन काम था? मैं मर जाऊं माता, तो तुम बच्चे पर दया करना। उसे पाल-पोस लेना। भगवान् तुम्हारा भला करेंगे।

चुहिया स्नेह से उसके केश सुलझाती हुई बोली—धीरज धर बेटी, धीरज धर। अभी छन-भर में कष्ट कटा जाता है। तूने भी तो जैसे चुप्पी साध ली थी। इसमें किस बात की लाज? मुझे बता दिया होता, तो मैं मौलवी साहब के पास से ताबीज ला देती। वही मिर्जाजी जो इस हाते में रहते हैं।

इसके बाद झुनिया को कुछ होश न रहा। नौ बजे सुबह उसे होश आया, तो उसने देखा, चुहिया शिशु को लिये बैठी है और वह साफ़ साड़ी पहने लेटी हुई है। ऐसी कमज़ोरी थी, मानो देह में रक्त का नाम न हो।

चुहिया रोज़ सवेरे आकर झुनिया के लिए हरीरा और हलवा पका जाती और दिन में भी कई बार आकर बच्चे को उबटन मल जाती और ऊपर का दूध पिला जाती। आज चौथा दिन था पर झुनिया के स्तनों में दूध न उतरा था। शिशु रो-रोकर गला फाड़े लेता था, क्योंकि ऊपर का दूध उसे पचता न था। एक छन को भी चुप न होता था। चुहिया अपना स्तन उसके मुंह में देती। बच्चा एक क्षण चूसता, पर जब दूध न निकलता, तो फिर चीखने लगता। जब चौथे दिन सांझ तक भी झुनिया के दूध न उतरा, तो चुहिया घबरायी। बच्चा सूखता चला जाता था। नखास पर एक पेंशनर डॉक्टर रहते थे। चुहिया उन्हें ले आयी। डॉक्टर ने देख-भालकर कहा—इसकी देह में खून है ही नहीं, दूध कहां से आये? समस्या जटिल हो गयी। देह में खून लाने के लिए महीनों दवा-दारू करनी पड़ेगी, तब कहीं दूध उतरेगा। तब तक तो इस मांस के लोथड़े का ही काम ख़तम हो जायेगा।

पहर रात हो गयी थी। गोबर ताड़ी पिये ओसारे में पड़ा था। चुहिया बच्चे को चुप कराने के लिए उसके मुंह में अपनी छाती डाले हुए थी कि सहसा उसे ऐसा मालूम हुआ कि उसकी छाती में दूध आ गया है। प्रसन्न होकर बोली—ले झुनिया, अब तेरा बच्चा जी जायेगा, मेरे दूध आ गया।

झुनिया ने चकित होकर कहा—तुम्हें दूध आ गया?

'नहीं री, सच!'

'मैं तो नहीं पतियाती!'

'देख ले!'

उसने अपना स्तन दबाकर दिखाया। दूध की धार फूट निकली।

झुनिया ने पूछा—तुम्हारी छोटी बिटिया तो आठ साल से कम की नहीं है।

'हां, आठवां है, लेकिन मुझे दूध बहुत होता था।'

'इधर तो तुम्हें बाल-बच्चा नहीं हुआ।'

'वही लड़की पेट-पोछनी थी। छाती बिलकुल सूख गयी थी, लेकिन भगवान् की लीला है, और क्या!

अब से चुहिया चार-पांच बार आकर बच्चे को दूध पिला जाती। बच्चा पैदा तो हुआ था दुर्बल, लेकिन चुहिया का स्वस्थ दूध पीकर गदराया जाता था। एक दिन चुहिया नदी स्नान करने चली गयी। बच्चा भूख के मारे छटपटाने लगा। चुहिया दस बजे लौटी, तो झुनिया बच्चे को कन्धे से लगाये झुला रही थी और बच्चा रोये जाता था। चुहिया ने बच्चे को उसकी गोद से लेकर दूध पिला देना चाहा, पर

झुनिया ने उसे झिड़ककर कहा—रहने दो। अभागा मर जाये, वही अच्छा। किसी का एहसान तो न लेना पड़े।

चुहिया गिड़गिड़ाने लगी। झुनिया ने वड़े अदरावन के वाद वच्चा उसकी गोद में दिया।

लेकिन झुनिया और गोवर में अव भी न पटती थी। झुनिया के मन में वैठ गया था कि यह पक्का मतलवी वेदर्द आदमी है, मुझे केवल भोग की वस्तु समझता है। चाहे मैं मरूं या जिऊं, उसकी इच्छा पूरी किये जाऊं, उसे विलकुल ग़म नहीं। सोचता होगा, यह मर जायेगी, तो दूसरी लाऊंगा, लेकिन मुंह धो रखें वच्चू। मैं ही ऐसी अल्हड़ थी कि तुम्हारे फन्दे में आ गयी। तव तो पैरों पर सिर रखे देता था। यहां आते ही न जाने क्यों जैसे इसका मिज़ाज ही वदल गया। जाड़ा आ गया था, पर न ओढ़न, न विछावन। रोटी-दाल से जो दो-चार रुपये वचते, ताड़ी में उड़ जाते थे। एक पुराना लिहाफ़ था। दोनों उसी में सोते थे, लेकिन फिर भी उनमें सौ कोस का अन्तर था। दोनों एक ही करवट में रात काट देते।

गोवर का जी शिशु को गोद में लेकर खिलाने के लिए तरसकर रह जाता था। कभी-कभी वह रात को उठाकर उसका प्यारा मुखड़ा देख लिया करता था, लेकिन झुनिया की ओर से उसका मन खिंचता था। झुनिया भी उससे बात न करती, न उसकी कुछ सेवा ही करती और दोनों के वीच में यह मालिन्य समय के साथ लोहे को मोर्चे की भांति गहरा, दृढ़ और कठोर होता जाता था। दोनों एक-दूसरे की बातों का उलटा ही अर्थ निकालते, वही जिससे आपस का द्वेष और भड़के। और कई दिनों तक एक-एक वाक्य को मन में पाले रहते और उसे अपना रक्त पिला-पिलाकर एक-दूसरे पर झपट पड़ने के लिए तैयार करते रहते, जैसे शिकारी कुत्ते हों।

उधर गोवर के कारखाने में भी आये दिन एक-न-एक हंगामा उठता रहता था। अवकी वजट में शक्कर पर ड्यूटी लगी थी। मिल के मालिकों को मजूरी घटाने का अच्छा वहाना मिल गया। ड्यूटी से अगर पांच की हानि थी, तो मजूरी घटा देने से दस का लाभ था। इधर महीनों से इस मिल में भी यही मसला छिड़ा हुआ था। मजूरों का संघ हड़ताल करने को तैयार वैठा हुआ था। इधर मजूरी घटी और उधर हड़ताल हुई। उसे मजूरी में धेले की कटौती भी स्वीकार न थी। जव इस तेज़ी के दिनों में मजूरी में एक धेले की भी बढ़ती नहीं हुई, तो अब वह घाटे में क्यों साथ दें।

मिर्ज़ा ख़ुर्शेद संघ के सभापति और पण्डित ओंकारनाथ, 'बिजली' सम्पादक, मन्त्री थे। दोनों ऐसी हड़ताल कराने पर तुले हुए थे कि मिल-मालिकों को कुछ दिन याद रहे। मज़दूरों को भी हड़ताल से क्षति पहुंचेगी, यहां तक कि हज़ारों आदमी रोटियों को भी मोहताज हो जायेंगे, इस पहलू की ओर उनकी निगाह बिलकुल न थी। और गोबर हड़तालियों में सबसे आगे था। उद्दण्ड स्वभाव का था ही, ललकारने की ज़रूरत थी। फिर वह मारने-मरने को न डरता था। एक दिन झुनिया ने उसे जी कड़ा करके समझाया भी—तुम बाल-बच्चे वाले आदमी हो, तुम्हारा इस तरह आग में कूदना अच्छा नहीं। इस पर गोवर विगड़ उठा—तू कौन होती है मेरे वीच में वोलनेवाली? मैं तुझसे सलाह नहीं पूछता। वात वढ़ गयी और गोवर ने झुनिया को खूब पीटा। चुहिया ने आकर झुनिया को छुड़ाया और गोवर को डांटने लगी। गोवर के सिर पर शैतान सवार था। लाल-लाल आंखें निकालकर वोला—तुम मेरे घर में मत आया करो चुहिया, तुम्हारे आने का कुछ काम नहीं।

चुहिया ने व्यंग्य के साथ कहा—तुम्हारे घर में न जाऊंगी, तो मेरी रोटियां कैसे चलेंगी? यहीं से मांग-जांचकर ले जाती हूं, तब तवा गरम होता है। मैं न होती लाला, तो यह दीदी आज तुम्हारी लातें खाने के लिए वैठी न होती।

गोवर घूंसा तानकर वोला—मैंने कह दिया, मेरे घ[illegible] ने इस चुड़ैल का मिजाज आसमान पर चढ़ा दिया है। [illegible]

चुहिया वहीं डटी हुई निःशंक खड़ी थी, वोली

लड़कोरी औरत को मारकर तुमने कोई बड़ी जवांमर्दी का काम नहीं किया है। तुम उसके लिए क्या करते हो कि तुम्हारी मार सहे? एक रोटी खिला देते हो इसलिए? अपने भाग बखानो कि ऐसी गऊ औरत पा गये हो। दूसरी होती, तो तुम्हारे मुंह में झाड़ू मारकर निकल गयी होती।

मुहल्ले के लोग जमा हो गये और चारों ओर से गोबर पर फटकारें पड़ने लगीं। वही लोग, जो अपने घरों में अपनी स्त्रियों को रोज़ पीटते थे, इस वक्त न्याय और दया के पुतले बने हुए थे। चुहिया और शेर हो गयी और फ़रियाद करने लगी। दाढ़ीजार कहता है, मेरे घर न आया करो। बीबी-बच्चा रखनेवाला है, यह नहीं जानता कि बीबी-बच्चों का पालना बड़े गुर्दे का काम है। इससे पूछो, मैं न होती, तो आज यह बच्चा, जो बछड़े की तरह कुलेलें कर रहा है, कहां होता? औरत को मारकर जवानी दिखाता है। मैं न हुई तेरी बीबी, नहीं यही जूती उठाकर मुंह पर तड़ातड़ जमाती और कोठरी में ढकेलकर बाहर से किवाड़ बन्द कर देती। दाने को तरस जाते।

गोबर झल्लाया हुआ अपने काम पर चला गया। चुहिया औरत न होकर मर्द होती, तो मज़ा चखा देता। औरत के मुंह क्या लगे।

मिल में असन्तोष के बादल घने होते जा रहे थे। मज़दूर 'बिजली' की प्रतियां जेब में लिये फिरते और ज़रा भी अवकाश पाते, तो दो-तीन मज़दूर मिलकर उसे पढ़ने लगते। पत्र की बिक्री खूब बढ़ रही थी। मज़दूरों के नेता 'बिजली' कार्यालय में आधी रात तक बैठे हड़ताल की स्कीमें बनाया करते और प्रातःकाल जब पत्र में यह समाचार मोटे-मोटे अक्षरों में छपता, तो जनता टूट पड़ती और पत्र की कापियां दूने-तिगुने दाम पर बिक जातीं।

उधर कम्पनी के डायरेक्टर भी अपनी घात में बैठे हुए थे। हड़ताल हो जाने में ही उनका हित था। आदमियों की कमी तो है नहीं। बेकारी बढ़ी हुई है, इसके आधे वेतन पर ऐसे ही आदमी आसानी से मिल सकते हैं। माल की तैयारी में एकदम आधी बचत हो जायेगी। दस-पांच दिन काम का हरज होगा, कुछ परवाह नहीं। आख़िर यही निश्चय हो गया कि मजूरी में कमी का ऐलान कर दिया जाये। दिन और समय नियत कर दिया गया, पुलिस को सूचना दे दी गयी। मज़दूरों को कानोंकान ख़बर न थी। वे अपनी घात में थे। उसी वक्त हड़ताल करना चाहते थे, जब गोदाम में बहुत थोड़ा माल रह जाये और मांग की तेज़ी हो।

एकाएक एक दिन जब मज़दूर लोग शाम को छुट्टी पाकर चलने लगे, तो डायरेक्टरों का ऐलान सुना दिया गया। उसी वक्त पुलिस आ गयी। मज़दूरों को अपनी इच्छा के विरुद्ध उसी वक्त हड़ताल करनी पड़ी, जब गोदाम में इतना माल भरा हुआ था कि बहुत तेज़ मांग होने पर भी छह-महीने से पहले न उठ सकता था।

मिर्ज़ा खुर्शेद ने यह ख़बर सुनी, तो मुसकराये, जैसे कोई मनस्वी योद्धा अपने शत्रु के रणकौशल पर मुग्ध हो गया हो। एक क्षण विचारों में डूबे रहने के बाद बोले—अच्छी बात है। अगर डायरेक्टरों की यही इच्छा है, तो यही सही। हालतें उनके मुआफ़िक़ हैं, लेकिन हमें न्याय का बल है। वह लोग नये आदमी रखकर अपना काम चलाना चाहते हैं। हमारी कोशिश यह होनी चाहिए कि उन्हें एक भी नया आदमी न मिले। यही हमारी फ़तह होगी।

'बिजली' कार्यालय में उसी वक्त ख़तरे की मीटिंग हुई, कार्यकारिणी समिति का भी संगठन हुआ, पदाधिकारियों का चुनाव हुआ और आठ बजे रात को मज़दूरों का लम्बा जुलूस निकला। दस बजे रात को कल का सारा प्रोग्राम तय किया गया और यह ताक़ीद कर दी गयी कि किसी तरह का दंगा-फ़साद न होने पाये।

मगर सारी कोशिश बेकार हुई। हड़तालियों ने नये मज़दूरों का टिड्डी-दल मिल के द्वार पर खड़ा देखा, तो इनकी हिंसा-वृत्ति क़ाबू के बाहर हो गयी। सोचा था, सौ-सौ, पचास-पचास आदमी रोज़ भर्ती के लिए आयेंगे। उन्हें समझा-बुझाकर या धमकाकर भगा देंगे। हड़तालियों की संख्या देखकर

नये लोग आप ही भयभीत हो जायेंगे, मगर यहां तो नक़्शा ही कुछ और था। अगर यह सारे आदमी भर्ती हो गये, तो हड़तालियों के लिए समझौते की कोई आशा ही न थी। तय हुआ कि नये आदमियों को मिल में जाने ही न दिया जाये। वल-प्रयोग के सिवा और कोई उपाय न था। नया दल भी लड़ने-मरने पर तैयार था। उनमें अधिकांश ऐसे भुखमरे थे, जो इस अवसर को किसी तरह भी न छोड़ना चाहते थे। भूखों मर जाने से या अपने वाल-वच्चों को भूखों मरते देखने से तो यह कहीं अच्छा था कि इस परिस्थिति से लड़कर मरें। दोनों दलों में फ़ौजदारी हो गयी। विजली सम्पादक तो भाग खड़े हुए, वेचारे मिर्ज़ाजी पिट गये और उनकी रक्षा करते हुए गोवर भी वुरी तरह घायल हो गया। मिर्ज़ाजी पहलवान आदमी थे और मंजे हुए फिकैत, अपने ऊपर कोई गहरा वार न पड़ने दिया। गोवर गंवार था। पूरा लट्ठ मारना जानता था, पर अपनी रक्षा करना न जानता था, जो लड़ाई में मारने से ज़्यादा महत्त्व की वात है। उसके एक हाथ की हड्डी टूट गयी, सिर खुल गया और अन्त में वह वहीं ढेर हो गया। कन्धों पर अनगिनती लाठियां पड़ी थीं, जिससे उसका एक-एक अंग चूर-चूर हो गया था। हड़तालियों ने उसे गिरते देखा, तो भाग खड़े हुए। केवल दस-वारह जंचे हुए आदमी मिर्ज़ाजी को घेरकर खड़े रहे। नये आदमी विजय-पताका उड़ाते हुए मिल में दाख़िल हुए और पराजित हड़ताली अपने हताहतों को उठा-उठाकर अस्पताल पहुंचाने लगे, मगर अस्पताल में इतने आदमियों के लिए जगह न थी। मिर्ज़ाजी तो ले लिये गये, गोवर की मरहम-पट्टी करके उसके घर पहुंचा दिया गया।

झुनिया ने गोवर की वह चेष्टाहीन लोथ देखी, तो उसका नारीत्व जाग उठा। अव तक उसने उसे सवल के रूप में देखा था, जो उस पर शासन करता था, डांटता था, मारता था। आज वह अपंग था, निस्सहाय था, दयनीय था। झुनिया ने खाट पर झुककर आंसू-भरी आंखों से गोवर को देखा और घर की दशा का ख़याल करके उसे गोवर पर एक ईर्ष्यामय क्रोध आया। गोवर जानता था कि घर में एक पैसा नहीं है। वह यह भी जानता था कि कहीं से एक पैसा मिलने की आशा नहीं है। यह जानते हुए भी उसके वार-वार समझाने पर भी, उसने यह विपत्ति अपने ऊपर ली। उसने कितनी वार कहा था—तुम इस झगड़े में न पड़ो। आग लगानेवाले आग लगाकर अलग हो जायेंगे, जायेगी ग़रीवों के सिर। लेकिन वह कव उसकी सुनने लगा था? वह तो उसकी वैरिन थी। मित्र तो वह लोग थे, जो अव मज़े से मोटरों में घूम रहे हैं। उस क्रोध में एक प्रकार की तुष्टि थी, जैसे हम उन बच्चों को कुरसी से गिर पड़ते देखकर, जो वार-वार मना करने पर खड़े होने से वाज़ न आते थे, चिल्ला उठते हैं—अच्छा हुआ, वहुत अच्छा, तुम्हारा सिर क्यों न दो हो गया?

लेकिन एक ही क्षण में गोवर का करुण-क्रन्दन सुनकर उसकी सारी संज्ञा सिहर उठी। व्यथा में डूवे हुए यह शब्द उसके मुंह से निकले—हाय-हाय! सारी देह भुरकस हो गयी। सवों को तनिक भी दया न आयी।

वह उसी तरह वड़ी देर तक गोवर का मुंह देखती रही। वह क्षीण होती हुई आशा से जीवन का कोई लक्षण पा लेना चाहती थी, और प्रतिक्षण उसका धैर्य अस्त होने वाले सूर्य की भांति डूवता जाता था, और भविष्य का अन्धकार उसे अपने अन्दर समेट लेता था।

सहसा चुहिया ने आकर पुकारा—गोवर का क्या हाल है वहू? मैंने तो अभी सुना। दुकान से दौड़ी आयी हूं।

झुनिया के रुके हुए आंसू उवल पड़े, कुछ वोल न सकी। भयभीत आंखों से चुहिया की ओर देखा।

चुहिया ने गोवर का मुंह देखा, उसकी छाती पर हाथ रखा और आश्वासन भरे स्वर में वोली—यह चार दिन में अच्छे हो जायेंगे। घवरा मत। कुशल हुई। तेरा सोहाग वलवान् था। कई आदमी उसी दंगे में मर गये। घर में कुछ रुपये-पैसे हैं?

झुनिया ने लज्जा से सिर हिला दिया।

'मैं लाये देती हूं। थोड़ा-सा दूध लाकर गरम कर ले।'

झुनिया ने उसके पांव पकड़कर कहा—दीदी, तुम्हीं मेरी माता हो। मेरा दूसरा कोई नहीं है।

जाड़ों की उदास सन्ध्या आज और भी उदास मालूम हो रही थी। झुनिया ने चूल्हा जलाया और दूध उवालने लगी। चुहिया वरामदे में वच्चे को लिये खिला रही थी।

सहसा झुनिया भारी कण्ठ से वोली—मैं वड़ी अभागिन हूं दीदी! मेरे मन में ऐसा आ रहा है, जैसे मेरे ही कारन इनकी यह दशा हुई है। जी कुढ़ता है, तव मन दुखी होता ही है, फिर गालियां भी निकलती हैं, सराप भी निकलता है। कौन जाने मेरी गालियों....।

इसके आगे वह कुछ न कह सकी। आवाज़ आंसुओं के रेले में वह गयी। चुहिया ने अञ्चल से उसके आंसू पोंछते हुए कहा—कैसी वातें सोचती है वेटी? यह तेरे सिन्दूर का भाग है कि यह वच गये। मगर हां, इतना है कि आपस में लड़ाई हो, तो मुंह से चाहे जितना वक ले, मन में कीना न पाले। वीज अन्दर पड़ा, तो अंखुआ निकले विना नहीं रहता।

झुनिया ने कम्पन-भरे स्वर में पूछा—अव मैं क्या करूं दीदी?

चुहिया ने ढाढ़स दिया—कुछ नहीं वेटी! भगवान् का नाम ले। वही गरीवों की रक्षा करते हैं।

उसी समय गोवर ने आंखें खोलीं और झुनिया को सामने देखकर याचना भाव से क्षीण-स्वर में वोला—आज वहुत चोट खा गया झुनिया! मैं किसी से कुछ नहीं वोला। सवों ने अनायास मुझे मारा। कहा-सुना माफ़ कर। तुझे सताया था, उसी का फल मिला। थोड़ी देर का और मेहमान हूं। अव न वचूंगा। मारे दरद के सारी देह फटी जाती है।

चुहिया ने अन्दर आकर कहा—चुपचाप पड़े रहो। वोलो-चालो नहीं। मरोगे नहीं, इसका मेरा जुम्मा।

गोवर के मुख पर आशा की रेखा झलक पड़ी। वोला—सच कहती हो, मैं मरूंगा नहीं?

'हां, नहीं मरोगे। तुम्हें हुआ क्या है? जरा सिर में चोट आ गयी है और हाथ की हड्डी उतर गयी है। ऐसी चोटें मरदों को रोज ही लगा करती हैं। इन चोटों से कोई नहीं मरता।'

'अव मैं झुनिया को कभी न मारूंगा।'

'डरते होगे कि कहीं झुनिया तुम्हें न मारे।'

'वह मारेगी भी, तो न वोलूंगा।'

'अच्छे होने पर भूल जाओगे।'

'नहीं दीदी, कभी न भूलूंगा।'

गोवर इस समय वच्चों की-सी वातें करता। दस-पांच मिनट अचेत-सा पड़ा रहता। उसका मन न जाने कहां-कहां उड़ता फिरता। कभी देखता, वह नदी में डूवा जा रहा है, और झुनिया उसे वचाने के लिए नदी में चली आ रही है। कभी देखता, कोई दैत्य उसकी छाती पर सवार है और झुनिया की शक्ल की कोई देवी उसकी रक्षा कर रही है। और वार-वार चौंककर पूछता—मैं मरूंगा तो नहीं झुनिया?

तीन दिन उसकी यही दशा रही और झुनिया ने रात को जागकर और दिन को उसके सामने खड़े रहकर जैसे मौत से उसकी रक्षा की। वच्चे को चुहिया संभाले रहती। चौथे दिन झुनिया एक्का लायी और सवों ने गोवर को उस पर लादकर अस्पताल पहुंचाया। वहां से लौटकर गोवर को मालूम हुआ कि अव वह सचमुच वच जायेगा। उसने आंखों में आंसू भरकर कहा—मुझे क्षमा कर दो झुन्ना!

इन तीन-चार दिनों में चुहिया के तीन-चार रुपये ख़र्च हो गये थे, और अव झुनिया को उससे कुछ लेते संकोच होता था। वह भी कोई मालदार तो थी नहीं। लकड़ी की विक्री के रुपये झुनिया को दे देती। आख़िर झुनिया ने कुछ काम करने का विचार किया। अभी गोवर को अच्छे होने में महीनों

लगेंगे। खाने-पीने को भी चाहिए, दवा-दारू को भी चाहिए। वह कुछ काम करके खाने-भर को तो ले ही आयेगी। वचपन से उसने गउओं का पालन और घास छीलना सीखा था। यहां गउएं कहां थीं? हां, वह घास छील सकती थी। मुहल्ले के कितने ही स्त्री-पुरुष वरावर शहर के वाहर घास छीलने जाते थे और आठ-दस आने कमा लेते थे। वह प्रातःकाल गोवर को हाथ-मुंह धुलाकर और वच्चे को उसे सौंपकर घास छीलने निकल जाती और तीसरे पहर तक भूखी-प्यासी घास छीलती रहती। फिर उसे मण्डी में ले जाकर वेचती और शाम को घर आती।

रात को भी वह गोवर की नींद सोती और गोवर की नींद जागती, मगर इतना कठोर श्रम करने पर भी उसका मन ऐसा प्रसन्न रहता, मानो झूले पर वैठी गा रही है। रास्ते-भर साथ की स्त्रियों और पुरुषों से चुहल और विनोद करती जाती। घास छीलते समय भी सवों में हंसी-दिल्लगी होती रहती। न क़िस्मत का रोना, न मुसीवत का गिला। जीवन की सार्थकता में, अपनों के लिए कठिन-से-कठिन त्याग में, और स्वाधीन सेवा में जो उल्लास है, उसकी ज्योति एक-एक अंग पर चमकती रहती। वच्चा अपने पैरों पर खड़ा होकर जैसे तालियां बजा-बजाकर खुश होता है, उसी का वह अनुभव कर रही थी, मानो उसके प्राणों में आनन्द का कोई सोता खुल गया हो! और मन स्वस्थ हो, तो देह कैसे अस्वस्थ रहे? उस एक महीने में जैसे उसका कायाकल्प हो गया हो। उसके अंगों में अव शिथिलता नहीं, चपलता है, लचक है, सुकुमारता है। मुख पर पीलापन नहीं रहा, खून की गुलाबी चमक है। उसका यौवन जो वन्द कोठरी में पड़े-पड़े अपमान और कलह से कुण्ठित हो गया था, वह मानो ताज़ी हवा और प्रकाश पाकर लहलहा उठा है। अव उसे किसी वात पर क्रोध नहीं आता। वच्चे के ज़रा-सा रोने पर जो वह झुंझला उठती थी, अव जैसे उसके धैर्य और प्रेम का अन्त ही न था।

इसके खिलाफ़ गोवर अच्छा होते जाने पर भी कुछ उदास रहता था। जब हम अपने किसी प्रियजन पर अत्याचार करते हैं, और जव विपत्ति आ पड़ने से हममें इतनी शक्ति आ जाती है कि उसकी तीव्र व्यथा का अनुभव करें, तो उससे हमारी आत्मा में जागृति का उदय हो जाता है, और हम उस वेजा व्यवहार का प्रायश्चित्त करने के लिए तैयार हो जाते हैं। गोवर उसी प्रायश्चित्त के लिए व्याकुल हो रहा है। अव उसके जीवन का रूप विलकुल दूसरा होगा, जिसमें कटुता की जगह मृदुता होगी, अभिमान की जगह नम्रता। उसे अव ज्ञात हुआ कि सेवा करने का अवसर बड़े सौभाग्य से मिलता है, और वह इस अवसर को कभी न भूलेगा।

: 28 :

मिस्टर खन्ना को मज़दूरों की यह हड़ताल विलकुल वेजा मालूम होती थी। उन्होंने हमेशा जनता के साथ मिले रहने की कोशिश की। वह अपने को जनता का ही आदमी समझते थे। पिछले क़ौमी आन्दोलन में उन्होंने बड़ा जोश दिखाया था। ज़िले के प्रमुख नेता रहे थे, दो बार जेल गये थे और कई हज़ार का नुकसान उठाया था। अव भी वह मज़दूरों की शिकायत सुनने को तैयार रहते थे; लेकिन यह तो नहीं हो सकता कि वह शक्कर मिल के हिस्सेदारों के हित का विचार न करें। अपना स्वार्थ त्यागने को वह तैयार हो सकते थे, अगर उनकी ऊंची मनोवृत्तियों को स्पर्श किया जाता, लेकिन हिस्सेदारों के स्वार्थ की रक्षा न करना, यह तो अधर्म था। यह तो व्यापार है, कोई सदाव्रत नहीं कि सव कुछ मज़दूरों को ही वांट दिया जाये। हिस्सेदारों को यह विश्वास दिलाकर रुपये लिये गये थे कि इस काम में पन्द्रह-वीस सैकड़े का लाभ है। अगर उन्हें दस सैकड़े भी न मिले, तो वे डायरेक्टरों को और विशेषकर मिस्टर खन्ना को धोखेवाज़ ही समझेंगे। फिर अपना वेतन वह कैसे कम कर सकते थे? और कम्पनियों को देखते उन्होंने अपना वेतन कम रखा था। केवल एक हज़ार रुपया महीना लेते थे। कुछ कमीशन भी मिल जाता था, मगर वह इतना लेते थे, तो मिल का सञ्चालन भी करते थे।

मज़दूर केवल हाथ से काम करते हैं। डायरेक्टर अपनी बुद्धि से, विद्या से, प्रतिभा से, प्रभाव से काम करता है। दोनों शक्तियों का मोल बराबर तो नहीं हो सकता। मज़दूरों को यह सन्तोष क्यों नहीं होता कि मन्दी का समय है और चारों तरफ़ बेकारी फैली रहने के कारण आदमी सस्ते हो गये हैं। उन्हें तो एक की जगह पौन भी मिले, तो सन्तुष्ट रहना चाहिए था। सच पूछो, तो वे सन्तुष्ट हैं। उनका कोई क़सूर नहीं। वे तो मूर्ख हैं, बछिया के ताऊ। शरारत तो ओंकारनाथ और मिर्ज़ा ख़ुर्शेद की है। यही लोग उन बेचारों को कठपुतली की तरह नचा रहे हैं, केवल थोड़े-से पैसे और यश के लाभ में पड़कर। यह नहीं सोचते कि उनकी दिल्लगी से कितने घर तबाह हो जायेंगे। ओंकारनाथ का पत्र नहीं चलता, तो बेचारे खन्ना क्या करें। और आज उनके पत्र के एक लाख ग्राहक हो जायें, और उससे उन्हें पांच लाख का लाभ होने लगे, तो क्या वह केवल अपने गुज़ारे-भर को लेकर शेष कार्यकर्ताओं में बांट देंगे? कहां की बात! और वह त्यागी मिर्ज़ा ख़ुर्शेद भी तो एक दिन लखपति थे। हज़ारों मज़दूर उनके नौकर थे। तो क्या वह अपने गुज़ारे-भर को लेकर सब कुछ मज़दूरों को बांट देते थे? वह उसी गुज़ारे की रक़म में यूरोपियन छोकरियों के साथ विहार करते थे। बड़े-बड़े अफ़सरों के साथ दावतें उड़ाते थे, हज़ारों रुपये महीने की शराब पी जाते थे और हर साल फ्रांस और स्विट्ज़रलैण्ड की सैर करते थे। आज मज़दूरों की दशा पर उनका कलेजा फटता है।

इन दोनों नेताओं की तो खन्ना को परवाह न थी। उनकी नीयत की सफ़ाई में पूरा सन्देह था। न रायसाहब की ही उन्हें परवाह थी, जो हमेशा खन्ना की हां-में-हां मिलाया करते थे और उनके हरएक का", का समर्थन कर दिया करते थे। अपने परिचितों में केवल एक ही ऐसा व्यक्ति था, जिसके निष्पक्ष विचार पर खन्नाजी को पूरा भरोसा था और वह डॉक्टर मेहता थे। जब से उन्होंने मालती से घनिष्ठता बढ़ानी शुरू की थी, खन्ना की नज़रों में उनकी इज़्ज़त बहुत कम हो गयी थी। मालती बरसों खन्ना की हृदयेश्वरी रह चुकी थी, पर उसे उन्होंने सदैव खिलौना समझा था। इसमें सन्देह नहीं कि वह खिलौना उन्हें बहुत प्रिय था। उसके खो जाने या टूट जाने या छिन जाने पर वह खूब रोते और वह रोये थे, लेकिन थी वह खिलौना ही। उन्हें कभी मालती पर विश्वास न हुआ। वह कभी उनके ऊपरी विलास-आवरण को छेदकर उनके अन्तःकरण तक न पहुंच सकी थी। वह अगर खुद खन्ना से विवाह का प्रस्ताव करती, तो वह स्वीकार न करते। कोई बहाना करके टाल देते।

अन्य कितने ही प्राणियों की भांति खन्ना का जीवन भी दोहरा या दोरुख़ी था। एक ओर वह त्याग और जन-सेवा और उपकार के भक्त थे, तो दूसरी ओर स्वार्थ और विलास और प्रभुता के। कौन उनका असली रुख़ था, यह कहना कठिन है। कदाचित् उनकी आत्मा का उत्तम आधार सेवा और सहृदयता से बना हुआ था, मद्धिम आधा स्वार्थ और विलास से। पर उत्तम और मद्धिम में बराबर संघर्ष होता रहता था, और मद्धिम ही अपनी उद्दण्डता और हठ के कारण सौम्य और शान्त उत्तम पर ग़ालिब आता था। उनका मद्धिम मालती की ओर झुकता था, उत्तम मेहता की ओर, लेकिन वह उत्तम अब मद्धिम के साथ एक हो गया था। उनकी समझ में न आता था कि मेहता जैसा आदर्शवादी व्यक्ति मालती जैसी चञ्चल, विलासिनी रमणी पर कैसे आसक्त हो गया? वह बहुत प्रयास करने पर भी मेहता को वासनाओं का शिकार न स्थिर कर सकते थे और कभी-कभी उन्हें यह सन्देह भी होने लगता था कि मालती का कोई दूसरा रूप भी है, जिसे वह न देख सके या जिसे देखने की उनमें क्षमता न थी।

पक्ष और विपक्ष के सभी पहलुओं पर विचार करके उन्होंने यही नतीजा निकाला कि इस परिस्थिति में मेहता ही से उन्हें प्रकाश मिल सकता है।

डॉक्टर मेहता को काम करने का नशा था। आधी रात को सोते थे और घड़ी रात रहे उठ जाते थे। कैसा भी काम हो, उसके लिए वह कहीं-न-कहीं से समय निकाल लेते थे। हॉकी खेलना हो या यूनिवर्सिटी डिबेट, ग्राम्य-संगठन हो या किसी शादी का नैवेद्य, सभी कामों के लिए उनके पास लगन

थी और समय था। वह पत्रों में लेख भी लिखते थे और कई साल से एक बृहत् ग्रन्थ लिख रहे थे, जो अब समाप्त होने वाला था। इस वक्त भी एक वैज्ञानिक खेल ही खेल रहे थे। अपने बग़ीचे में बैठे हुए पौधों पर विद्युत्-संचार क्रिया की परीक्षा कर रहे थे। उन्होंने हाल में एक विद्वान्-परिषद में यह सिद्ध किया था कि फ़सलें बिजली के ज़ोर से बहुत थोड़े समय में पैदा की जा सकती हैं, उनकी पैदावार बढ़ायी जा सकती है और बेफ़सल की चीज़ें भी उपजायी जा सकती हैं। आजकल सबेरे के दो-तीन घण्टे वह इन्हीं परीक्षाओं में लगाया करते थे।

मिस्टर खन्ना की कथा सुनकर उन्होंने कठोर मुद्रा से उनकी ओर देखकर कहा—क्या यह ज़रूरी था कि ड्यूटी लग जाने से मजूरों का वेतन घटा दिया जाये? आपको सरकार से शिकायत करनी चाहिए थी। अगर सरकार ने नहीं सुना, तो उसका दण्ड मजूरों को क्यों दिया जाये? क्या आपका विचार है कि मजूरों को इतनी मजूरी दी जाती है कि उसमें चौथाई कम कर देने से मजूरों को कष्ट नहीं होगा? आपके मजूर बिलों में रहते हैं—गन्दे बदबूदार बिलों में—जहां आप एक मिनट भी रह जायें, तो आपको कै हो जाये, कपड़े जो पहनते हैं, उनसे आप अपने जूते भी न पोंछेंगे। खाना जो वह खाते हैं, वह आपका कुत्ता भी न खायेगा। मैंने उनके जीवन में भाग लिया है। आप उनकी रोटियां छीनकर अपने हिस्सेदारों का पेट भरना चाहते हैं...

खन्ना ने अधीर होकर कहा—लेकिन हमारे सभी हिस्सेदार तो धनी नहीं हैं। कितनों ही ने अपना सर्वस्व इसी मिल को भेंट कर दिया है, और इसके नफ़े के सिवा उनके जीवन का कोई आधार नहीं है।

मेहता ने इस भाव से जवाब दिया, जैसे इस दलील का उनकी नज़रों में कोई मूल्य नहीं है। जो आदमी किसी व्यापार में हिस्सा लेता है, वह दरिद्र नहीं होता कि इसके नफ़े ही को जीवन का आधार समझे। हो सकता है कि नफ़ा कम मिलने पर उसे अपना एक नौकर कम कर देना पड़े या उसके मक्खन और फलों का बिल कम हो जाये, लेकिन वह नंगा या भूखा न रहेगा। जो अपनी जान खपाते हैं, उनका हक़ उन लोगों से ज़्यादा है, जो केवल रुपया लगाते हैं।

यही बात पण्डित ओंकारनाथ ने कही थी। मिर्ज़ा ख़ुर्शेद ने भी यही सलाह दी थी। यहां तक कि गोविन्दी ने भी मज़दूरों ही का पक्ष लिया था, पर खन्नाजी ने उन लोगों की परवाह न की थी। लेकिन मेहता के मुंह से वही बात सुनकर वह प्रभावित हो गये। ओंकारनाथ को वह स्वार्थी समझते थे, मिर्ज़ा ख़ुर्शेद को ग़ैरज़िम्मेदार और गोविन्दी को अयोग्य। मेहता की बात में चरित्र, अध्ययन और सद्भाव की शक्ति थी।

सहसा मेहता ने पूछा—आपने अपनी देवीजी से भी इस विषय में राय ली?

खन्ना ने सकुचाते हुए कहा—हां, पूछा था।

'उनकी क्या राय थी?'

'वही जो आपकी है।'

'मुझे यही आशा थी। आप उस विदुषी को अयोग्य समझते हैं।'

उसी वक्त मालती आ पहुंची और खन्ना को देखकर बोली—अच्छा, आप विराज रहे हैं? मैंने मेहताजी की आज दावत की है। सभी चीज़ें अपने हाथों से पकायी हैं। आपको भी नेवता देती हूं। गोविन्दी देवी से आपका यह अपराध क्षमा करा दूंगी।

खन्ना को कुतूहल हुआ। अब मालती अपने हाथों से खाना पकाने लगी है? मालती, वही मालती, जो ख़ुद कभी अपने जूते न पहनती थी, जो ख़ुद कभी बिजली का बटन तक न दबाती थी, विलास और विनोद ही जिसका जीवन था।

मुसकराकर कहा—अगर आपने पकाया है, तो ज़रूर खाऊंगा। मैं तो कभी सोच ही न सकता था कि आप पाक-कला में भी निपुण हैं।

मालती निःसंकोच भाव से बोली—इन्होंने मार-मारकर वैद्य बना दिया। इनका हुक्म कैसे टाल सकती? पुरुष देवता ठहरे।

खन्ना ने इस व्यंग्य का आनन्द लेकर मेहता की ओर आंखें मारते हुए कहा—पुरुष तो आपके लिए इतने सम्मान की वस्तु न थी।

मालती झेंपी नहीं। इस संकोच का आशय समझकर जोश-भरे स्वर में बोली—लेकिन अब हो गयी है। इसलिए कि मैंने पुरुष का जो रूप अपने परिचितों की परिधि में देखा था, उससे यह कहीं सुन्दर है। पुरुष इतना सुन्दर, इतना कोमल हृदय...

मेहता ने मालती की ओर दीन-भाव से देखा और बोले—नहीं मालती, मुझ पर दया करो, नहीं मैं यहां से भाग जाऊंगा।

इन दिनों जो कोई मालती से मिलता, वह उससे मेहता की तारीफ़ों के पुल बांध देती, जैसे कोई नवदीक्षित अपने नये विश्वासों का ढिंढोरा पीटता फिरे। सुरुचि का ध्यान भी उसे न रहता। और बेचारे मेहता दिल में कटकर रह जाते थे। वह कड़ी और कड़वी आलोचना तो बड़े शौक़ से सुनते थे, लेकिन अपनी तारीफ़ सुनकर जैसे बेवकूफ़ बन जाते थे। मुंह ज़रा-सा निकल आता था, जैसे कोई फ़बती छा गयी हो। और मालती उन औरतों में न थी, जो भीतर रह सके। वह बाहर ही रह सकती थी, पहले भी और अब भी, व्यवहार में भी, विचार में भी। मन में कुछ रखना वह न जानती थी। जैसे एक अच्छी साड़ी पाकर वह उसे पहनने के लिए अधीर हो जाती थी, उसी तरह मन में कोई सुन्दर भाव आये, तो वह उसे प्रकट किये बिना चैन न पाती थी।

मालती ने और समीप आकर उनकी पीठ पर हाथ रखकर, मानो उनकी रक्षा करते हुए कहा—अच्छा, भागो नहीं, अब कुछ न कहूंगी। मालूम होता है, तुम्हें अपनी निन्दा ज़्यादा पसन्द है। तो निन्दा ही सुनो—खन्नाजी, यह महाशय मुझ पर अपने प्रेम का जाल...

शक्कर-मिल की चिमनी यहां से साफ़ नज़र आती थी। खन्ना ने उसकी तरफ़ देखा। वह चिमनी खन्ना के कीर्तिस्तम्भ की भांति आकाश में सिर उठाये खड़ी थी। खन्ना की आंखों में अभिमान चमक उठा। उसी वक्त उन्हें मिल के दफ़्तर में जाना है। वहां डायरेक्टरों की एक अर्जेण्ट मीटिंग करनी होगी और इस परिस्थिति को उन्हें समझाना होगा और इस समस्या को हल करने का उपाय भी बदलना होगा।

मगर चिमनी के पास यह धुआं कहां से उठ रहा है? देखते-देखते सारा, आकाश बैलून की भांति धुएं से भर गया। सबों ने सशंक होकर उधर देखा। कहीं आग तो नहीं लग गयी? आग ही मालूम होती है।

सहसा सामने सड़क पर हज़ारों आदमी मिल की तरफ़ दौड़े जाते नज़र आये। खन्ना ने खड़े होकर ज़ोर से पूछा—तुम लोग कहां दौड़े जा रहे हो?

एक आदमी ने रुककर कहा—अजी, शक्कर-मिल में आग लग गयी। आप देख नहीं रहे हैं?

खन्ना ने मेहता की ओर देखा और मेहता ने खन्ना की ओर। मालती दौड़ी हुई बंगले में गयी और अपने जूते पहन आयी। अफ़सोस और शिकायत करने का अवसर न था। किसी के मुंह से एक बात न निकली। ख़तरे में हमारी चेतना अन्तर्मुखी हो जाती है। खन्ना की कार खड़ी ही थी। तीनों आदमी घबराये हुए आकर बैठे और मिल की तरफ़ भागे। चौरस्ते पर पहुंचे तो देखा, सारा शहर मिल की ओर उमड़ा चला आ रहा है। आग में आदमियों को खींचने का जादू है। कार आगे न बढ़ सकी।

मेहता ने पूछा—आग-बीमा तो करा लिया था न?

खन्ना ने लम्बी सांस खींचकर कहा—कहां भाई, अभी तो लिखा-पढ़ी हो रही थी। क्या जानता था, यह आफ़त आनेवाली है?

कार वहीं राम-आसरे छोड़ दी गयी और तीनों आदमी भीड़ चीरते हुए मिल के सामने जा पहुंचे। देखा, तो अग्नि का एक सागर आकाश में उमड़ रहा था। अग्नि की उन्मत्त लहरें एक-पर-एक, दांत पीसती थीं, जीभ लपलपाती थीं, जैसे आकाश को भी निगल जायेंगी। उस अग्नि-समुद्र के नीचे ऐसा धुआं छाया था, मानो सावन की घटा कालिख में नहाकर नीचे उतर आयी हो। उसके ऊपर जैसे आग का थरथराता हुआ, उबलता हुआ हिमाचल खड़ा था। हाते में लाखों आदमियों की भीड़ थी, पुलिस भी थी, फायर बिग्रेड के छींटे उस अग्नि-सागर में जाकर जैसे बुझ जाते थे। ईंटें जल रही थीं, लोहे के गार्डर जल रहे थे और पिघली हुई शक्कर के परनाले चारों तरफ़ वह रहे थे। और-तो-और, ज़मीन से भी ज्वाला निकल रही थी।

दूर से मेहता और खन्ना को यह आश्चर्य हो रहा था कि इतने आदमी खड़े तमाशा क्यों देख रहे हैं, आग बुझाने में मदद क्यों नहीं करते? मगर अब इन्हें भी ज्ञात हुआ कि तमाशा देखने के सिवा और कुछ करना अपने वश से बाहर है। मिल की दीवारों से पचास गज़ के अन्दर जाना जान-जोखिम था। ईंट और पत्थर के टुकड़े चटाक-चटाक टूटकर उछल रहे थे। कभी-कभी हवा का रुख इधर हो जाता था, तो भगदड़ पड़ जाती थी।

ये तीनों आदमी भीड़ के पीछे खड़े थे। कुछ समझ में न आता था, क्या करें। आख़िर आग लगी कैसे? और इतनी जल्दी फैल कैसे गयी? क्या पहले किसी ने देखा ही नहीं? या देखकर भी बुझाने का प्रयास न किया? इस तरह के प्रश्न सभी के मन में उठ रहे थे, मगर वहां पूछें किससे, मिल के कर्मचारी होंगे तो ज़रूर! लेकिन भीड़ में उनका पता मिलना कठिन था।

सहसा हवा का इतना तेज़ झोंका आया कि आग की लपटें नीची होकर इधर लपकीं, जैसे समुद्र में ज्वार आ गया हो। लोग सिर पर पांव रखकर भागे। एक-दूसरे पर गिरते, रेलते, जैसे कोई शेर झपटा आता हो। अग्नि-ज्वालाएं जैसे सजीव हो गयी थीं, सचेष्ट भी, जैसे कोई शेषनाग अपने सहस्रा मुख से आग फुंकार रहा हो! कितने ही आदमी तो इस रेले में कुचल गये। खन्ना मुंह के वल गिर पड़े, मालती को मेहताजी दोनों हाथों से पकड़े हुए थे, नहीं ज़रूर कुचल गयी होती। तीनों आदमी हाते की दीवार के पास एक इमली के पेड़ के नीचे आकर रुके। खन्ना एक प्रकार की चेतना-शून्य तन्मयता से मिल की चिमनी की ओर टकटकी लगाये खड़े थे।

मेहता ने पूछा—आपको ज्यादा चोट तो नहीं आयी?

खन्ना ने कोई जवाब न दिया। उसी तरफ़ ताकते रहे। उनकी आंखों में वह शून्यता थी, जो विक्षिप्तता का लक्षण है।

मेहता ने उनका हाथ पकड़कर फिर पूछा—हम लोग यहां व्यर्थ खड़े हैं। मुझे भय होता है, आपको चोट ज्यादा आ गयी। आइये, लौट चलें।

खन्ना ने उनकी तरफ़ देखा और जैसे सनककर बोले—जिनकी यह हरकत है, उन्हें मैं ख़ूब जानता हूं। अगर उन्हें इसी में सन्तोष मिलता है, तो भगवान् उनका भला करे। मुझे कुछ परवा नहीं, कुछ परवा नहीं, कुछ परवा नहीं। मैं आज चाहूं, तो ऐसी नयी मिल खड़ी कर सकता हूं। जी हां, विलकुल नयी मिल खड़ी कर सकता हूं। ये लोग मुझे क्या समझते हैं? मिल ने मुझे नहीं वनाया, मैंने मिल को वनाया। और मैं फिर वना सकता हूं, मगर जिनकी यह हरकत है, उन्हें मैं ख़ाक में मिला दूंगा। मुझे सव मालूम है, रत्ती-रत्ती मालूम है। मेहता ने उनका चेहरा और उनकी चेष्टा देखी और घवराकर वोले—चलिये, आपको घर पहुंचा दूं। आपकी तवीयत अच्छी नहीं है।

खन्ना ने क़हक़हा मारकर कहा—मेरी तवीयत अच्छी नहीं है, इसलिए कि मिल जल गयी। ऐसी मिलें मैं चुटकियों में खोल सकता हूं। मेरा नाम खन्ना है, चन्द्रप्रकाश खन्ना। मैंने अपना सव कुछ इस मिल में लगा दिया। पहली मिल में हमने वीस प्रतिशत नफ़ा दिया। मैंने प्रोत्साहित होकर यह मिल खोली। इसमें आधे रुपये मेरे हैं। मैंने वैंक के दो लाख इस मिल में लगा दिये। मैं एक खन्ना नहीं ...

घण्टा पहले, दस लाख का आदमी था। जी हां, दस लाख, मगर इस वक्त फाकेमस्त हूं—नहीं, दिवालिया हूं। मुझे बैंक को दो लाख देना है। जिस मकान में रहता हूं, वह अब मेरा नहीं है। जिस बर्तन में खाता हूं, वह अब मेरा नहीं है। बैंक से मैं निकाल दिया जाऊंगा। जिस खन्ना को देखकर लोग जलते थे, वह खन्ना अब धूल में मिल गया है। समाज में अब मेरा कोई स्थान नहीं है, मेरे मित्र मुझे अपने विश्वास का पात्र नहीं, दया का पात्र समझेंगे। मेरे शत्रु मुझसे जलेंगे नहीं, मुझ पर हंसेंगे। आप नहीं जानते मिस्टर मेहता, मैंने अपने सिद्धान्तों की कितनी हत्या की है। कितनी रिश्वतें ली हैं। किसानों की ऊख तौलने के लिए कैसे आदमी रखे, कैसे नक़ली बाट रखे। क्या कीजियेगा, यह सब सुनकर, लेकिन खन्ना अपनी यह दुर्दशा कराने के लिए क्यों ज़िन्दा रहे? जो कुछ होना है, हो, दुनिया जितना चाहे हंसे, मित्र लोग जितना चाहें अफ़सोस करें, लोग जितनी गालियां देना चाहें, दें। खन्ना अपनी आंखों से देखने और अपने कानों से सुनने के लिए जीता न रहेगा। वह बेहया नहीं, बेग़ैरत नहीं है।

यह कहते-कहते खन्ना दोनों हाथों से सिर पीटकर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगे।

मेहता ने उन्हें छाती से लगाकर दुखित स्वर में कहा—खन्नाजी, ज़रा धीरज से काम लीजिये। आप समझदार होकर दिल इतना छोटा करते हैं? दौलत से आदमी को जो सम्मान मिलता है, वह उसका सम्मान नहीं, उसकी दौलत का सम्मान है। आप निर्धन रहकर भी मित्रों के विश्वासपात्र रह सकते हैं और शत्रुओं के भी, बल्कि तब कोई आपका शत्रु रहेगा ही नहीं। आइये, घर चलें। ज़रा आराम कर लेने से आपका चित्त शान्त हो जायेगा।

खन्ना ने कोई जवाब न दिया। तीनों आदमी चौरस्ते पर आये। कार खड़ी थी। दस मिनट में खन्ना की कोठी पर पहुंच गये।

खन्ना ने उतरकर शान्त स्वर में कहा—कार आप ले जायें। अब मुझे इसकी ज़रूरत नहीं है।

मालती और मेहता भी उतर पड़े। मालती ने कहा—तुम चलकर आराम से लेटो, हम बैठे गप-शप करेंगे। घर जाने की, तो ऐसी जल्दी नहीं है।

खन्ना ने कृतज्ञता से उसकी ओर देखा और करुण कण्ठ से बोले—मुझसे जो अपराध हुए हैं, उन्हें क्षमा कर देना मालती! तुम और मेहता, बस, तुम्हारे सिवा संसार में मेरा कोई नहीं है। मुझे आशा है, तुम मुझे अपनी नज़रों से न गिराओगी। शायद दस-पांच दिन में यह कोठी भी छोड़नी पड़े। क़िस्मत ने कैसा धोखा दिया!

मेहता ने कहा—मैं आपसे सच कहता हूं खन्नाजी, आज मेरी नज़रों में आपकी जो इज़्ज़त है, वह कभी न थी।

तीनों आदमी कमरे में दाख़िल हुए। द्वार खुलने की आहट पाते ही गोविन्दी भीतर आकर बोली—क्या आप लोग वहीं से आ रहे हैं? महाराज तो बड़ी बुरी ख़बर लाया।

खन्ना के मन में ऐसा प्रबल, न रुकनेवाला, तूफ़ानी आवेश उठा कि गोविन्दी के चरणों में गिर पड़े और चाहा कि उन्हें आंसुओं से धो दें। भारी गले से बोले—हां प्रिये, हम तबाह हो गये।

उनकी निर्जीव, निराश, आहत आत्मा सान्त्वना के लिए विकल हो रही थी, सच्ची, स्नेह में डूबी हुई सान्त्वना के लिए—उस रोगी की भांति, जो जीवन-सूत्र क्षीण हो जाने पर वैद्य के मुख की ओर आशा-भरी आंखों से ताक रहा हो। वही गोविन्दी, जिस पर उन्होंने हमेशा ज़ुल्म किया, जिसका हमेशा अपमान किया, जिससे हमेशा बेवफ़ाई की, जिसे सदैव जीवन का भार समझा, जिसकी मृत्यु की सदैव कामना करते रहे, वही इस समय जैसे अञ्चल में आशीर्वाद और मंगल और अभय लिये उन पर वार कर रही थी, जैसे उन चरणों में ही उसके जीवन का स्वर्ग हो, जैसे वह उनके अभागे मस्तक पर हाथ रखकर ही उनकी प्राणहीन धमनियों में फिर रक्त का संचार कर देगी। मन की इस दुर्बल दशा में, घोर विपत्ति में, मानो वह उन्हें कण्ठ से लगा लेने के लिए खड़ी थी। नौका पर बैठे हुए

जल-विहार करते समय हम जिन चट्टानों को घातक समझते हैं, [illegible] फेंक देता, उन्हीं से, नौका टूट जाने पर, हम चिमट जाते हैं।

गोविन्दी ने उन्हें एक सोफ़ा पर बैठा दिया और स्नेह-कोमल स्वर में [illegible] छोटा क्यों करते हो? धन के लिए, जो सारे पाप की जड़ है? [illegible] आधी रात तक एक-न-एक झञ्झट, आत्मा का सर्वनाश। [illegible] तुम्हें सम्बन्धियों को पत्र लिखने तक की फ़ुर्सत न मिलती थी। [illegible] दुनिया आज तक धन की पूजा करती चली आयी है। उसे तुमसे [illegible] पास लक्ष्मी है, तुम्हारे सामने पूंछ हिलायेगी। कल उतनी ही [illegible] तुम्हारी तरफ़ ताकेगी भी नहीं। सत्पुरुष धन के आगे सिर नहीं झुकाते। [illegible] अगर तुममें सचाई है, न्याय है, त्याग है, पुरुषार्थ है, तो वे तुम्हारे [illegible] लुटेरा समझकर मुंह फेर लेंगे, बल्कि तुम्हारे दुश्मन हो जायेंगे। [illegible]

मेहता ने मानो स्वर्ग-स्वप्न से चौंककर कहा—[illegible] महान् पुरुषों ने जीवन का सात्विक अनुभव करने के बाद कहा है। [illegible]

गोविन्दी ने मेहता को सम्बोधित करके कहा—[illegible] करता। वही, जो अपने कौशल से दूसरों को बेवकूफ़ बना सकता है—

खन्ना ने बात काटकर कहा—नहीं गोविन्दी, [illegible] केवल कौशल से धन नहीं मिलता। इसके लिए [illegible] साधना में ईश्वर भी मिल जाये। हमारी सारी [illegible] सामञ्जस्य का नाम धन है।

गोविन्दी ने विपक्षी न बनकर मध्यस्थ भाव से कहा—[illegible] नहीं करनी पड़ती, लेकिन फिर भी हमने उसे जीवन में [illegible] महत्त्व उसमें नहीं है। मैं तो खुश हूं कि तुम्हारे सिर से [illegible] स्वार्थ और अभिमान के पुतले नहीं। जीवन का [illegible] नहीं। बुरा न मानना, अब तक तुम्हारे जीवन का [illegible] उस साधन से वञ्चित करके तुम्हें न्याय [illegible] प्राप्त करने में अगर कुछ कष्ट भी हो, तो [illegible] क्यों नहीं समझते, तुम्हें अन्याय से लड़ने का [illegible] पीड़ित होना कहीं श्रेष्ठ है। धन खोकर [illegible] नहीं है। न्याय के सैनिक बनकर लड़ने में [illegible]

गोविन्दी के पीले, सूखे मुख पर [illegible] गयी हो, मानो उसकी सारी मूक साधना [illegible]

मेहता उसकी ओर भक्तिपूर्ण नेत्रों से [illegible] चेष्टा कर रहे थे और मालती मन में [illegible] विशाल और उसका जीवन इतना उज्ज्वल है।

:29:

गोहरी उन औरतों में न थी, जो [illegible] उसका खूब ढिंढोरा पीटेंगी और उसमें [illegible] हाथ-पांव मारेंगी। ऐसे आदमी को [illegible]

वदनामी की वात नहीं। अपनी इच्छा नहीं है या सामर्थ्य नहीं है, इसके लिए कोई बुरा नहीं कह सकता। मगर जव हम नेकी करके उसका एहसान जताने लगते हैं, तो वही जिसके साथ हमने नेकी की थी, हमारा शत्रु हो जाता है, और हमारे एहसान को मिटा देना चाहता है। वही नेकी अगर करनेवालों के दिल में रहे, तो नेकी है, वाहर निकल आये, तो वदी है। नोहरी चारों ओर कहती फिरती थी—वेचारा होरी वड़ी मुसीवत में था। बेटी के व्याह के लिए ज़मीन रेहन रख रहा था। मैंने उनकी यह दशा देखी, तो मुझे दया आयी। धनिया से तो जी जलता था, वह रांड़ तो मारे घमण्ड के धरती पर पांव ही नहीं रखती। बेचारा होरी चिन्ता से घुला जाता था। मैंने सोचा, इस संकट में इसकी कुछ मदद कर दूं। आखिर आदमी ही तो आदमी के काम आता है। और होरी तो अब कोई ग़ैर नहीं है, मानो चाहे न मानो, वह हमारे नातेदार हो चुके। रुपये निकालकर दे दिये, नहीं लड़की अब तक वैठी होती।

धनिया भला कव सुनने लगी। रुपये खैरात दिये थे? वड़ी देनेवाली। सूद महाजन भी लेगा, तुम भी लोगी। एहसान काहे का? दूसरों को देती, सूद की जगह मूल भी ग़ायब हो जाता, हमने लिया है, तो हाथ में रुपये आते ही नाक पर रख देंगे। हमीं थे कि तुम्हारे घर का विस उठाके पी गये, और मुंह पर नहीं लाये। कोई यहां द्वार पर नहीं खड़ा होने देता था। हमने तुम्हारा मरजाद बना दिया, तुम्हारे मुंह की लाली रख ली।

रात के दस वज गये थे। सावन की अंधेरी घटा छायी थी। सारे गांव में अन्धकार था। होरी ने भोजन करके तमाखू पिया और सोने जा रहा था कि भोला आकर खड़ा हो गया।

होरी ने पूछा—कैसे चले भोला महतो? जब इसी गांव में रहना है, तो क्यों अलग छोटा-सा घर नहीं वना लेते? गांव में लोग कैसी-कैसी कुत्सा उड़ाया करते हैं, क्या यह तुम्हें अच्छा लगता है? बुरा न मानना, तुमसे सम्बन्ध हो गया है, इसलिए बदनामी नहीं सुनी जाती, नहीं मुझे क्या करना था!

धनिया उसी समय लोटे में पानी लेकर होरी के सिरहाने रखने आयी। सुनकर बोली—दूसरा मर्द होता, तो ऐसी औरत का सिर काट लेता।

होरी ने डांटा—क्यों वे-बात की बात करती है? पानी रख दे और जा सो। आज तू ही कुराह चलने लगे, तो मैं तेरा सिर काट लूंगा? काटने देगी?

धनिया उसे पानी का एक छींटा मारकर बोली—कुराह चले तुम्हारी वहिन, मैं क्यों कुराह चलने लगी? मैं तो दुनिया की वात कहती हूं, तुम मुझे गालियां देने लगे। अब मुंह मीठा हो गया होगा। औरत चाहे जिस रास्ते जाये, मर्द टुकुर-टुकुर देखता रहे। ऐसे मर्द को मैं मर्द नहीं कहती।

होरी दिल में कटा जाता था। भोला उससे अपना दुःख-दर्द कहने आया होगा। वह उलटे उसी पर टूट पड़ी। ज़रा गरम होकर वोला—तू जो सारे दिन अपने ही मन की किया करती है, तो मैं तेरा क्या विगाड़ लेता हूं? कुछ कहता हूं, तो काटने दौड़ती है। यही सोच।

धनिया ने लल्लो-चप्पो करना न सीखा था, वोली—औरत घी का घड़ा लुढ़का दे, घर में आग लगा दे, मर्द सह लेगा, लेकिन कुराह चलना कोई मर्द न सहेगा।

भोला दुखित स्वर में वोला—तू वहुत ठीक कहती है धनिया! वेसक मुझे उसका सिर काट लेना चाहिए था, लेकिन अव उतना पौरुख तो नहीं रहा। तू चलकर समझा दे, मैं सव कुछ करके हार गया।

'जब औरत को वस में रखने का बूता न था, तो सगाई क्यों की थी? इसी छीछालेदर के लिए? क्या सोचते थे, वह आकर तुम्हारे पांव दवायेगी, तुम्हें चिलम भर-भर पिलायेगी और जव तुम वीमार पड़ोगे, तो तुम्हारी सेवा करेगी? तो ऐसा वही औरत कर सकती है, जिसने तुम्हारे साथ जवानी का सुख उठाया हो। मेरी समझ में यही नहीं आता है कि तुम इसे देखकर लट्टू कैसे हो गये। कुछ देखभाल तो कर लिया होता कि किस स्वभाव की है, किस रंग-ढंग की है। तुम तो भूखे सियार की

तरह टूट पड़े। अब तो तुम्हारा धरम यही है कि गंड़ासे से उसका सिर काट लो। फांसी ही तो पाओगे। फांसी इस छीछालेदर से अच्छी।'

भोला के खून में कुछ स्फूर्ति आयी। बोला—तो तुम्हारी यही सलाह है?

धनिया बोली—हां, मेरी यही सलाह है। अब सौ-पचास बरस तो जीओगे नहीं। समझ लेना, इतनी ही उमिर थी।

होरी ने अब की ज़ोर से फटकारा—चुप रह, बड़ी आयी है वहां से सतवन्ती बनके। जबरदस्ती चिड़िया तक तो पिंजड़े में रहती नहीं, आदमी क्या रहेगा? तुम उसे छोड़ दो भोला, और समझ लो मर गयी, और जाकर अपने बाल-बच्चों में आराम से रहो। दो रोटी खाओ और राम का नाम लो। जवानी के सुख अब गये। वह औरत चञ्चल है, बदनामी और जलन के सिवा तुम उससे कोई सुख न पाओगे।

भोला नोहरी को छोड़ दे, असम्भव! नोहरी इस समय भी उसकी ओर रोष-भरी आंखों से तरेरती हुई जान पड़ती थी, लेकिन नहीं, भोला अब उसे छोड़ ही देगा। जैसा कर रही है, उसका फल भोगे।

आंखों में आंसू आ गये। बोला—होरी भैया, इस औरत के पीछे मेरी जितनी सांसत हो रही है, मैं ही जानता हूं। इसी के पीछे कामता से मेरी लड़ाई हुई। बुढ़ापे में यह दाग भी लगना था, वह लग गया। मुझे रोज ताना देती है कि तुम्हारी तो लड़की निकल गयी। मेरी लड़की निकल गयी, चाहे भाग गयी, लेकिन अपने आदमी के साथ पड़ी तो है, उसके सुख-दुःख की साथिन तो है। इसकी तरह तो मैंने औरत ही नहीं देखी। दूसरों के साथ तो हंसती है, मुझे देखा, तो कुप्पे-सा मुंह फुला लिया। मैं गरीब आदमी ठहरा, तीन-चार आने रोज की मजूरी करता हूं। दूध-दही, मांस-मछली, रबड़ी-मलाई कहां से लाऊं?

भोला यहां से प्रतिज्ञा करके अपने घर गये। अब बेटों के साथ रहेंगे, बहुत धक्के खा चुके, लेकिन दूसरे दिन प्रातःकाल होरी ने देखा, तो भोला दुलारी सहुआइन की दुकान से तमाखू लिये चले जा रहे थे।

होरी ने पुकारना उचित न समझा। आसक्ति में आदमी अपने बस में नहीं रहता। वहां से आकर धनिया से बोला—भोला तो अभी वहीं है। नोहरी ने सचमुच इन पर कोई जादू कर दिया है।

धनिया ने नाक सिकोड़कर कहा—जैसी बेहया वह है, वैसा ही बेहया यह है। ऐसे मर्द को तो चिल्लू-भर पानी में डूब मरना चाहिए। अब वह सेखी न जाने कहां गयी? झुनिया यहां आयी, तो उसके पीछे डण्डा लिये फिर रहे थे। इज्जत बिगड़ी जाती थी। अब इज्जत नहीं बिगड़ती!

होरी को भोला पर दया आ रही थी। बेचारा इस कुलटा के फेर में पड़कर अपनी जिन्दगी बरबाद किये डालता है। छोड़कर जाये भी तो कैसे? स्त्री को इस तरह छोड़कर जाना क्या सहज है? यह चुड़ैल उसे वहां भी तो चैन से न बैठने देगी। कहीं पंचायत करेगी, कहीं रोटी-कपड़े का दावा करेगी। अभी तो गांव ही के लोग जानते हैं। किसी को कुछ कहते संकोच होता है। कानाफूसी करके ही रह जाते हैं। तब तो दुनिया भी भोला ही को बुरा कहेगी। लोग यही तो कहेंगे कि [illegible] छोड़ दिया, तो मर्द के मुंह में कालिख लगा देगी।

इसके दो महीने बाद एक दिन गांव में यह ख़बर फैली कि नोहरी ने मारे जूतों के भोला की चांद गंजी कर दी।

वर्षा समाप्त हो गयी थी और रबी बोने की तैयारियां हो रही थीं। होरी की ऊख तो नीलाम हो गयी थी। ऊख के बीज के लिए उसे रुपये न मिले और ऊख न बोई गयी। उधर दाहिना बैल भी बैठाऊ हो गया था और एक नये बैल के बिना काम न चल सकता था। पुनिया का एक बैल नाले में गिरकर मर गया था, तब से और भी अड़चन पड़ गयी थी। [illegible]

एक दिन होरी के खेत में। खेतों की जुताई जैसी होनी चाहिए, वैसी न हो पाती थी।

होरी हल लेकर खेत में गया, मगर भोला की चिन्ता बनी हुई थी। उसने अपने जीवन में कभी यह न सुना था कि किसी स्त्री ने अपने पति को जूते से मारा हो। जूतों से क्या, थप्पड़ या घूंसे से मारने की भी कोई घटना उसे याद न आती थी, और आज नोहरी ने भोला को जूतों से पीटा और सब लोग तमाशा देखते रहे! इस औरत से कैसे उस अभागे का गला छूटे? अब तो भोला को कहीं डूब ही मरना चाहिए। जब ज़िन्दगी में बदनामी और दुर्दशा के सिवा और कुछ न हो, तो आदमी का मर जाना ही अच्छा। कौन भोला के नाम को रोनेवाला बैठा है? बेटे चाहे क्रिया-कर्म कर दें, लेकिन लोक-लाज के बस, आंसू किसी की आंख में न आयेगा। तृष्णा के बस में पड़कर आदमी इस तरह अपनी ज़िन्दगी चौपट करता है। जब कोई रोनेवाला नहीं, तो फिर ज़िन्दगी का क्या मोह और मरने से क्या डरना!

एक यह नोहरी है और एक यह चमारिन है सिलिया! देखने-सुनने में उससे लाख दरजे अच्छी। चाहे, दो को खिलाकर खाये और राधिका बनी घूमे, लेकिन मजूरी करती है, भूखे मरती है और मतई के नाम पर बैठी है, और यह निर्दयी बात भी नहीं पूछता। कौन जाने, धनिया मर गयी होती, तो आज होरी की भी यही दशा होती। उसकी मौत की कल्पना ही से होरी को रोमाञ्च हो उठा। धनिया की मूर्ति मानसिक नेत्रों के सामने आकर खड़ी हो गयी—सेवा और त्याग की देवी, ज़बान की तेज़, पर मोम जैसा हृदय, पैसे-पैसे के पीछे प्राण देनेवाली, पर मर्यादा-रक्षा के लिए अपना सर्वस्व होम करने को तैयार। जवानी में वह कम रूपवती न थी। नोहरी उसके सामने क्या है? चलती थी, तो रानी-सी लगती थी। जो देखता था, देखता ही रह जाता था। यह पटेश्वरी और झिंगुरी तब जवान थे। दोनों धनिया को देखकर छाती पर हाथ रख लेते थे। द्वार के सौ-सौ चक्कर लगाते थे। होरी उनकी ताक में रहता था, मगर छेड़ने का कोई बहाना न पाता था। उन दिनों घर में खाने-पीने की बड़ी तंगी थी। पाला पड़ गया था और खेतों में भूसा तब न हुआ था। लोग झड़बेरियां खा-खाकर दिन काटते थे। होरी को क़हद के कैम्प में काम करने जाना पड़ता था। छः पैसे रोज़ मिलते थे। धनिया घर में अकेली ही रहती थी, लेकिन कभी किसी ने उसे किसी छैला की ओर ताकते नहीं देखा। पटेश्वरी ने एक बार कुछ छेड़ की थी। उसका ऐसा मुंहतोड़ जवाब दिया कि अब तक नहीं भूले।

सहसा उसने मातादीन को अपनी ओर आते देखा। क़साई कहीं का, कैसा तिलक लगाये हुए है, मानो भगवान् का असली भगत है। रंगा हुआ सियार! ऐसे ब्राह्मण को पालागन कौन करे!

मातादीन ने समीप आकर कहा—तुम्हारा दाहिना तो बूढ़ा हो गया होरी, अबकी सिंचाई में न ठहरेगा। कोई पांच साल हुए होंगे इसे लाये?

होरी ने दायें बैल की पीठ पर हाथ रखकर कहा—कैसा पांचवां, यह आठवां चल रहा है भाई! जी तो चाहता है, इसे पिनसिन दे दूं, लेकिन किसान और किसान के बैल, इनको जमराज ही पिनसिन दें, तो मिले। इसकी गर्दन पर जुआ रखते मेरा मन कचोटता है। बेचारा सोचता होगा, अब भी छुट्टी नहीं, अब क्या मेरा हाड़ जोतेगा? लेकिन अपना कोई काबू नहीं। तुम कैसे चले? अब तो जी अच्छा है?

मातादीन इधर एक महीने से मलेरिया ज्वर में पड़ रहा था। एक दिन तो उसकी नाड़ी छूट गयी थी। चारपाई से नीचे उतार दिया गया था। तब से उसके मन में यह प्रेरणा हुई थी कि सिलिया के साथ अत्याचार करने का उसे यह दण्ड मिला है। जब उसने सिलिया को घर से निकाला, तब वह गर्भवती थी। उसे तनिक भी दया न आयी। पूरा गर्भ लेकर भी वह मजूरी करती रही। अगर धनिया ने उस पर दया न की होती, तो मर गयी होती। कैसी-कैसी मुसीबतें झेलकर जी रही है! मजूरी भी तो इस दशा में नहीं कर सकती। अब लज्जित और द्रवित होकर वह सिलिया को होरी के हस्ते दो रुपये देने आया है, अगर होरी उसे वह रुपये दे दे, तो वह उसका बहुत उपकार मानेगा।

होरी ने कहा—तुम्हीं जाकर क्यों नहीं दे देते?

मातादीन ने दीनभाव से कहा—मुझे उसके पास मत भेजो होरी महतो! कौन-सा मुंह लेकर जाऊं? डर भी लग रहा है कि मुझे देखकर कहीं फटकार न सुनाने लगे। तुम मुझ पर इतनी दया करो। अभी मुझसे चला नहीं जाता, लेकिन इसी रुपये के लिए एक जजमान के पास कोस-भर दौड़ा गया था। अपनी करनी का फल वहुत भोग चुका। इस वम्हनई का वोझ अव नहीं उठाये उठता। लुक-छिपकर चाहे जितना कुकर्म करो, कोई नहीं वोलेगा। परतच्छ कुछ नहीं कर सकते, नहीं कुल में कलंक लग जायेगा। तुम उसे समझा देना दादा कि मेरा अपराध क्षमा कर दे। यह धरम का वन्धन वड़ा कड़ा होता है। जिस समाज में जन्मे और पले, उसकी मर्यादा का पालन तो करना ही पड़ता है। और किसी जाति का धरम विगड़ जाये, उसे कोई विसेस हानि नहीं होती, ब्राह्मण का धरम विगड़ जाये, तो वह कहीं का नहीं रहता। उसका धरम ही उसके पूर्वजों की कमाई है। उसी की वह रोटी खाता है। इस परासचित के पीछे हमारे तीन सौ विगड़ गये। तो जव वेधरम होकर ही रहना है, तो फिर जो कुछ करना है, परतच्छ करूंगा। समाज के नाते आदमी का अगर कुछ धरम है, तो मनुष्य के नाते भी तो उसका कुछ धरम है। समाज-धरम पालने से समाज आदर करता है, मगर मनुष्य-धरम पालने से तो ईश्वर प्रसन्न होता है।

सन्ध्या समय जव होरी ने सिलिया को डरते-डरते रुपये दिये, तो वह जैसे अपनी तपस्या का वरदान पा गयी। दुःख का भार तो वह अकेली उठा सकती थी, सुख का भार तो अकेले नहीं उठता। किसे यह खुशखवरी सुनाये? धनिया से वह अपने दिल की वातें नहीं कह सकती। गांव में और कोई प्राणी नहीं, जिससे उसकी घनिष्ठता हो। उसके पेट में चूहे दौड़ रहे थे। सोना ही उसकी सहेली थी। सिलिया उससे मिलने के लिए आतुर हो गयी। रात-भर कैसे सब्र करे? मन में एक आंधी-सी उठ रही थी। अव वह अनाथ नहीं है। मातादीन ने उसकी वांह फिर पकड़ ली। जीवन-पथ में उसके सामने अव अंधेरी, विकराल मुखवाली खाई नहीं है, लहलहाता हुआ हरा-भरा मैदान है, जिसमें झरने गा रहे हैं और हिरन कुलेलें कर रहे हैं। उसका रूठा हुआ स्नेह आज उन्मत्त हो गया है। मातादीन को उसने मन में कितना पानी पी-पीकर कोसा था। अव वह उनसे क्षमादान मांगेगी। उससे सचमुच वड़ी भूल हुई थी कि उसने उनको सारे गांव के सामने अपमानित किया। वह चमारिन है, जात की हेठी, उसका क्या विगड़ा? आज दस-वीस लगाकर विरादरी को रोटी दे दे, फिर विरादरी में ले ली जायेगी। उन वेचारे का तो सदा के लिए धरम नास हो गया। वह मरजाद अव उन्हें फिर नहीं मिल सकता। वह क्रोध में कितनी अन्धी हो गयी थी कि सवसे उनके प्रेम का ढिंढोरा पीटती फिरी। उनका तो धरम भिरष्ट हो गया था, उन्हें तो क्रोध था ही, उसके सिर पर क्यों भूत सवार हो गया? वह अपने ही घर चली जाती, तो कौन वुराई हो जाती? घर में उसे कोई वांध तो न लेता। देश मातादीन की पूजा इसीलिए तो करता है कि वह नेम-धरम से रहते हैं। वही धरम नष्ट हो गया, तो वह क्यों न उसके खून के प्यासे हो जाते?

ज़रा देर पहले तक उसकी नज़र में सारा दोष मातादीन का था और अब सारा दोष अपना था। सहृदयता ने सहृदयता पैदा की। उसने वच्चे को छाती से लगाकर खूव प्यार किया। अब उसे देखकर लज्जा और ग्लानि नहीं होती। वह अव केवल उसकी दया का पात्र नहीं। वह अब उसके सम्पूर्ण मातृस्नेह और गर्व का अधिकारी है।

कार्तिक की रुपहली चांदनी प्रकृति पर मधुर संगीत की भांति छायी हुई थी। सिलिया घर से निकली। वह सोना के पास जाकर यह सुख-संवाद सुनायेगी। अव उससे नहीं रहा जाता। अभी तो सांझ हुई है। डोंगी मिल जायेगी। वह क़दम वढ़ाती हुई चली। नदी पर आकर देखा, तो डोंगी उस पार थी, और मांझी का कहीं पता नहीं। चांद घुलकर जैसे नदी में बहा जा रहा था। वह एक क्षण खड़ी सोचती रही। फिर नदी में घुस पड़ी। नदी में कुछ ऐसा ज़्यादा पानी तो क्या होगा! उस उल्लास के सागर के सामने वह नदी क्या चीज़ थी! पानी पहले तो घुटनों तक थां, फिर कमर तक आया और

अन्त में गर्दन तक पहुंच गया। सिलिया डरी, कहीं डूब न जाये। कहीं कोई गढ़ा न पड़ जाये, पर उसने जान पर खेलकर पांव आगे बढ़ाया। अब वह मंझधार में है। मौत उसके सामने नाच रही है, मगर वह घबरायी नहीं। उसे तैरना आता है। लड़कपन में इसी नदी में वह कितनी बार तैर चुकी है। खड़े-खड़े नदी को पार भी कर चुकी है। फिर भी उसका कलेजा धक्-धक् कर रहा है, मगर पानी कम होने लगा। अब कोई भय नहीं। उसने जल्दी-जल्दी नदी पार की और किनारे पहुंचकर अपने कपड़ों का पानी निचोड़ा और शीत से कांपती आगे बढ़ी। चारों ओर सन्नाटा था। गीदड़ों की आवाज़ भी न सुनाई पड़ती थी, और सोना से मिलने की मधुर कल्पना उसे उड़ाये लिये जाती थी।

मगर उस गांव में पहुंचकर उसे सोना के घर जाते हुए संकोच होने लगा। मथुरा क्या कहेगा? उसके घरवाले क्या कहेंगे? सोना भी बिगड़ेगी कि इतनी रात गये तू क्यों आयी? देहातों में दिन-भर के थके-मांदे किसान सरेशाम ही से सो जाते हैं। सारे गांव में सोता पड़ गया था। मथुरा के घर के द्वार बन्द थे। सिलिया किवाड़ न खुलवा सकी। लोग उसे इस भेष में देखकर क्या कहेंगे? वहीं द्वार पर अलाव में अभी आग चमक रही थी। सिलिया अपने कपड़े सेंकने लगी। सहसा किवाड़ खुला और मथुरा ने बाहर निकलकर पुकारा—अरे! कौन बैठा है अलाव के पास?

सिलिया ने जल्दी से अञ्चल सिर पर खींच लिया और समीप आकर बोली—मैं हूं सिलिया।

'सिलिया! इतनी रात गये कैसे आयी? वहां तो सब कुशल है?'

'हां, सब कुशल है। जी घबरा रहा था। सोचा चलूं, सबसे भेंट करती आऊं। दिन को तो छुट्टी ही नहीं मिलती।'

'तो क्या नदी नहाकर आयी है?'

'और कैसे आती? पानी कम न था।'

मथुरा उसे अन्दर ले गया। बरोठे में अंधेरा था। उसने सिलिया का हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचा। सिलिया ने झटके से हाथ छुड़ा लिया और रोब से बोली—देखो मथुरा, छेड़ोगे तो मैं सोना से कह दूंगी। तुम मेरे छोटे बहनोई हो, यह समझ लो। मालूम होता है, सोना से मन नहीं पटता।

मथुरा ने उसकी कमर में हाथ डालकर कहा—तुम बहुत निठुर हो सिल्लो? इस बखत कौन देखता है?

'क्या मैं सोना से सुन्दर हूं? अपने भाग नहीं बखानते हो कि ऐसी इन्दर की परी पा गये। अब भौंरा बनने का मन चला है। उससे कह दूं, तो तुम्हारा मुंह न देखे।'

मथुरा लम्पट नहीं था, सोना से उसे प्रेम भी था। इस वक्त अंधेरा और एकान्त और सिलिया का यौवन देखकर उसका मन चञ्चल हो उठा था। वह तम्बीह पाकर होश में आ गया। सिलिया को छोड़ता हुआ बोला—तुम्हारे पैरों पड़ता हूं सिल्लो, उससे न कहना। अभी जो सजा चाहो, दे लो।

सिल्लो को उस पर दया आ गयी। धीरे से उसके मुंह पर चपत जमाकर बोली—इसकी सजा यही है कि फिर मुझसे सरारत न करना, न और किसी से करना, नहीं सोना तुम्हारे हाथ से निकल जायेगी।

'मैं कसम खाता हूं सिल्लो, अब कभी ऐसा न होगा।'

उसकी आवाज़ में याचना थी। सिल्लो का मन आन्दोलित होने लगा। उसकी दया सरस होने लगी।

'और जो करो?'

'तो तुम जो चाहना, करना।'

सिल्लो का मुंह उसके मुंह के पास आ गया था, और दोनों की सांस और आवाज़ और देह में कम्पन हो रहा था। सहसा सोना ने पुकारा—किससे बातें करते हो वहां?

सिल्लो पीछे हट गयी। मथुरा आगे बढ़कर आंगन में आ गया और बोला—सिल्लो तुम्हारे गांव

रोम-रोम में दौड़ गया। सर्प-दंश के समान लहरें आयीं। घर में उपवास करके सो रहना और बात है, लेकिन पंगत से उठा दिया जाना, तो डूब मरने ही की बात है। सिलिया को यहां एक क्षण ठहरना भी असह्य हो गया, जैसे कोई उसका गला दबाये हुए हो। वह कुछ न पूछ सकी। सोना के मन में क्या है, यह वह भांप रही थी। वह बांबी में बैठा हुआ सांप कहीं बाहर न निकल आये, इसके पहले ही वह वहां से भाग जाना चाहती थी। कैसे भागे, क्या बहाना करे? उसके प्राण क्यों नहीं निकल जाते?

मथुरा ने भण्डारे की कुञ्जी उठा ली थी कि सिलिया के जलपान के लिए कुछ निकाल लाये, किंकर्तव्यविमूढ़-सा खड़ा था। इधर सिल्लो की सांस टंगी हुई थी, मानो सिर पर तलवार लटक रही हो।

सोना की दृष्टि में सबसे बड़ा पाप किसी पुरुष का पर-स्त्री और स्त्री का पर-पुरुष की ओर ताकना था। इस अपराध के लिए उसके यहां कोई क्षमा न थी। चोरी, हत्या, जाल, कोई अपराध इतना भीषण न था। हंसी-दिल्लगी को वह बुरा न समझती थी, अगर खुले हुए रूप में हो, लुके-छिपे की हंसी-दिल्लगी को वह हेय समझती थी। छुटपन से वह बहुत-सी रीति की बातें जानने और समझने लगी थी। होरी को जब कभी हाट से घर आने में देर हो जाती थी और धनिया को पता लग जाता था कि वह दुलारी सहुआइन की दुकान पर गया था, चाहे तम्बाखू लेने ही क्यों न गया हो, तो वह कई-कई दिन तक होरी से बोलती न थी, और न घर का काम करती थी। एक बार इसी बात पर वह अपने नैहर भाग गयी थी। यह भावना सोना में और तीव्र हो गयी थी। जब तक उसका विवाह न हुआ था, यह भावना उतनी बलवान् न थी, पर विवाह हो जाने के बाद तो उसने व्रत का रूप धारण कर लिया था। ऐसे स्त्री-पुरुषों की अगर खाल भी खींच ली जाती, तो उसे दया न आती। प्रेम के लिए दाम्पत्य के बाहर उसकी दृष्टि में कोई स्थान न था। स्त्री-पुरुष का एक-दूसरे के साथ जो कर्तव्य है, इसी को वह प्रेम समझती थी। फिर सिल्लो से उसका बहिन का नाता था। सिल्लो को वह प्यार करती थी, उस पर विश्वास करती थी, वही सिल्लो आज उससे विश्वासघात कर रही है। मथुरा और सिल्लो में अवश्य ही पहले से सांठ-गांठ होगी। मथुरा उससे नदी के किनारे खेतों में मिलता होगा। और आज वह इतनी रात गये नदी पार करके इसीलिए आयी है। अगर उसने इन दोनों की बातें न सुन ली होतीं, तो उसे खबर तक न होती। मथुरा ने प्रेम-मिलन के लिए यही अवसर सबसे अच्छा समझा होगा। घर में सन्नाटा जो है। उसका हृदय सब कुछ जानने के लिए विकल हो रहा था। वह सारा रहस्य जान लेना चाहती थी, जिसमें अपनी रक्षा के लिए कोई विधान सोच सके। और यह मथुरा यहां क्यों खड़ा है? क्या वह उसे कुछ बोलने भी न देगा?

उसने रोष से कहा—तुम बाहर क्यों नहीं जाते या यहीं पहरा देते रहोगे?

मथुरा बिना कुछ कहे बाहर चला गया। उसके प्राण सूखे जाते थे कि कहीं सिल्लो सब कुछ कह न डाले।

और सिल्लो के प्राण सूखे जाते थे कि अब वह लटकती हुई तलवार सिर पर गिरा चाहती है।

तब सोना ने बड़े गम्भीर स्वर में सिल्लो से पूछा—देखो सिल्लो, मुझसे साफ़-साफ़ बता दो, नहीं मैं तुम्हारे सामने, यहीं, अपनी गर्दन पर गंड़ासा मार लूंगी। फिर तुम मेरी सौत बनकर राज करना। देखो, गंड़ासा वह सामने पड़ा है। एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं।

उसने लपककर सामने आंगन में से गंड़ासा उठा लिया और उसे हाथ में लिये, फिर बोली—यह मत समझना कि मैं खाली धमकी दे रही हूं। क्रोध में मैं क्या कर बैठूं, नहीं कह सकती। साफ़-साफ़ बता दे।

सिलिया कांप उठी। एक-एक शब्द उसके मुंह से निकल पड़ा, मानो ग्रामोफ़ोन में भरी हुई आवाज़ हो। वह एक शब्द भी न छिपा सकी, सोना के चेहरे पर भीषण संकल्प खेल रहा था, मानो खून सवार हो।

सोना ने उसकी ओर वरछी की-सी चुभनेवाली आंखों से देखा और मानो कटार का आघात करती हुई वोली—ठीक-ठीक कहती हो?

'विलकुल ठीक। अपने बच्चे की कसम।'

'कुछ छिपाया तो नहीं?'

'अगर मैंने रत्ती-भर छिपाया हो, तो आंखें फूट जायें।'

'तुमने उस पापी को लात क्यों न मारी? उसे दांत क्यों नहीं काट लिया? उसका खून क्यों नहीं पी लिया, चिल्लायी क्यों नहीं?'

सिल्लो क्या जवाव दे?

सोना ने उन्मादिनी की भांति अंगारे की-सी आंख निकालकर कहा—वोलती क्यों नहीं? क्यों तूने उसकी नाक दांतों से नहीं काट ली? क्यों नहीं दोनों हाथों से उसका गला दवा दिया? तव मैं तेरे चरणों पर सिर झुकाती। अब तो तुम मेरी आंखों में हरजाई हो, निरी बेसवा। अगर यही करना था, तो मातादीन का नाम क्यों कलंकित कर रही है, क्यों किसी को लेकर बैठ नहीं जाती, क्यों अपने घर नहीं चली गयी? यही तो तेरे घरवाले चाहते थे। तू उपले और घास लेकर बाजार जाती, वहां से रुपये लाती और तेरा बाप, उसी रुपये की ताड़ी पीता, फिर क्यों उस ब्राह्मण का अपमान कराया? क्यों उसकी आबरू में बट्टा लगाया? क्यों सतवन्ती बनी बैठी हो? जब अकेले नहीं रहा जाता, तो किसी से सगाई क्यों नहीं कर लेती, क्यों नदी-तालाब में डूब नहीं मरती? क्यों दूसरों के जीवन में विष घोलती है? आज मैं तुझसे कह देती हूं कि अगर इस तरह की बात फिर हुई और मुझे पता लगा, तो हम तीनों में से एक भी जीते न रहेंगे। बस, अब मुंह में कालिख लगाकर जाओ। आज से मेरे और तुम्हारे वीच में कोई नाता नहीं रहा।

सिल्लो धीरे से उठी और संभलकर खड़ी हुई। जान पड़ा, उसकी कमर टूट गयी है। एक क्षण साहस वटोरती रही, किन्तु अपनी सफ़ाई में कुछ न सूझ पड़ा। आंखों के सामने अंधेरा था, सिर में चक्कर, कण्ठ सूख रहा था। सारी देह सुन्न हो गयी थी, मानो रोम-छिद्रों से प्राण उड़े जा रहे हों! एक-एक पग इस तरह रखती हुई, मानो सामने गड्ढा है, वह बाहर आयी और नदी की ओर चली।

द्वार पर मथुरा खड़ा था। बोला—इस वक्त कहां जाती हो सिल्लो?

सिल्लो ने कोई जवाब न दिया। मथुरा ने भी फिर कुछ न पूछा।

वह रुपहली चांदनी अव भी छायी हुई थी। नदी की लहरें अव भी चांद की किरणों में नहा रही थीं और सिल्लो विक्षिप्त-सी स्वप्न-छाया की भांति नदी में चली जा रही थी।

बचे हुए रहते हैं। चिराग़ जलने के बाद अपने कार्यालय से बाहर नहीं निकलते और अफ़सरों की ख़ुशामद करने लगे हैं। मिर्ज़ा ख़ुर्शेद की धाक अब भी ज्यों-की-त्यों है, लेकिन मिर्ज़ाजी इन बेचारों का कष्ट और उसके निवारण का अपने पास कोई उपाय न देखकर दिल से चाहते हैं कि सब-के-सब बहाल हो जायें, मगर इसके साथ नये आदमियों के कष्ट का ख़याल करके जिज्ञासुओं से यही कह दिया करते हैं कि जैसी इच्छा हो, वैसा करो।

मिस्टर खन्ना ने पुराने आदमियों को फिर नौकरी के लिए इच्छुक देखा, तो और भी अकड़ गये, हालांकि वह मन में चाहते थे कि इस वेतन पर पुराने आदमी नयों से कहीं अच्छे हैं। नये आदमी अपना सारा ज़ोर लगाकर भी पुराने आदमियों के बराबर काम न कर सकते थे। पुराने आदमियों में अधिकांश तो बचपन से ही मिल में काम करने के अभ्यस्त थे और खूब मंजे हुए। नये आदमियों में अधिकतर देहातों के दुखी किसान थे, जिन्हें खुली हवा और मैदान में पुराने ज़माने के लकड़ी के औज़ारों से काम करने की आदत थी। मिल के अन्दर उनका दम घुटता था और मशीनरी के तेज़ चलनेवाले पुर्ज़ों से उन्हें भय लगता था।

आख़िर जब पुराने आदमी खूब परास्त हो गये, तब खन्ना उन्हें बहाल करने पर राज़ी हुए, मगर नये आदमी इससे कम वेतन पर काम करने के लिए तैयार थे और अब डायरेक्टरों के सामने यह सवाल आया कि वह पुरानों को बहाल करें या नयों को रहने दें। डायरेक्टरों में आधे तो नये आदमियों का वेतन घटाकर रखने के पक्ष में थे। आधों की यह धारणा थी कि पुराने आदमियों को हाल के वेतन पर रख लिया जाये। थोड़े-से रुपये ज़्यादा ख़र्च होंगे ज़रूर, मगर काम उससे ज़्यादा होगा। खन्ना मिल के प्राण थे, एक तरह से सर्वेसर्वा। डायरेक्टर तो उनके हाथ की कठपुतलियां थे। निश्चय खन्ना ही के हाथों में था, और वह अपने मित्रों से नहीं, शत्रुओं से भी इस विषय में सलाह ले रहे थे। सबसे पहले तो उन्होंने गोविन्दी की सलाह ली। जब से मालती की ओर से उन्हें निराशा हो गयी थी, और गोविन्दी को मालूम हो गया कि मेहता जैसा विद्वान् और अनुभवी और ज्ञानी आदमी मेरा कितना सम्मान करता है और मुझसे किस प्रकार की साधना की आशा रखता है, तब से दम्पति में स्नेह फिर जाग उठा था। स्नेह मत कहो, मगर साहचर्य तो था ही। आपस में वह जलन और अशान्ति न थी। बीच की दीवार टूट गयी थी।

मालती के रंग-ढंग की भी कायापलट होती जाती थी। मेहता का जीवन अब तक स्वाध्याय और चिन्तन में गुज़रा था, और सब कुछ कर चुकने के बाद और आत्मवाद तथा अनात्मवाद की खूब छान-बीन कर लेने पर वह इसी तत्त्व पर पहुंच जाते थे कि प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों के बीच में जो सेवा-मार्ग है, चाहे उसे कर्मयोग ही कहो, वही जीवन को सार्थक कर सकता है, वही जीवन को ऊंचा और पवित्र बना सकता है। किसी सर्वज्ञ ईश्वर में उनका विश्वास न था। यद्यपि वह अपनी नास्तिकता को प्रकट न करते थे, इसलिए कि इस विषय में निश्चित रूप से कोई मत स्थिर करना वह अपने लिए असम्भव समझते थे, पर यह धारणा उनके मन में दृढ़ हो गयी थी कि प्राणियों के जन्म-मरण, सुख-दुःख, पाप-पुण्य में कोई ईश्वरीय विधान नहीं है। उनका ख़याल था कि मनुष्य ने अपने अहंकार में अपने को इतना महान् बना लिया है कि उसके हर एक काम की प्रेरणा ईश्वर की ओर से होती है। इसी तरह टिड्डियां भी ईश्वर को उत्तरदायी ठहराती होंगी, जो अपने मार्ग में समुद्र आ जाने पर अरबों की संख्या में नष्ट हो जाती हैं। मगर ईश्वर के यह विधान इतने अज्ञेय हैं कि मनुष्य की समझ में नहीं आते, तो उन्हें मानने से ही मनुष्य को क्या सन्तोष मिल सकता है! ईश्वर की कल्पना का एक ही उद्देश्य उनकी समझ में आता था और वह था मानव-जाति की एकता। एकात्मवाद या सर्वात्मवाद या अहिंसा-तत्त्व को वह आध्यात्मिक दृष्टि से नहीं, भौतिक दृष्टि से ही देखते थे। यद्यपि इन तत्त्वों का इतिहास के किसी काल में भी आधिपत्य नहीं रहा, फिर भी मनुष्य-जाति के सांस्कृतिक विकास में उनका स्थान बड़े महत्त्व का है।

मानव-समाज की एकता में मेहता का दृढ़ विश्वास था, मगर इस विश्वास के लिए उन्हें ईश्वर-तत्त्व के मानने की ज़रूरत न मालूम होती थी। उनका मानव-प्रेम इस आधार पर अवलम्बित न था कि प्राणि-मात्र में एक आत्मा का निवास है। द्वैत और अद्वैत का, व्यापारिक महत्त्व के सिवा, वह और कोई उपयोग न समझते थे, और यह व्यापारिक महत्त्व उनके लिए मानव-जाति को एक-दूसरे के समीप लाना, आपस के भेद-भाव को मिटाना और भ्रातृ-भाव को दृढ़ करना ही था। यह एकता, यह अभिन्नता उनकी आत्मा में इस तरह जम गयी थी कि उनके लिए किसी आध्यात्मिक आधार की सृष्टि उनकी दृष्टि में व्यर्थ थी। और एक बार इस तत्त्व को पाकर वह शान्ति से न बैठ सकते थे। स्वार्थ से अलग अधिक-से-अधिक काम करना उनके लिए आवश्यक हो गया था। इसके बग़ैर उनका चित्त शान्त न हो सकता था। यश, लोभ या कर्तव्यपालन के भाव उनके मन में आते ही न थे। इनकी तुच्छता ही उन्हें इनसे बचाने के लिए काफ़ी थी। सेवा ही अब उनका स्वार्थ होती जाती थी, और उनकी इस उदार वृत्ति का असर अज्ञात रूप से मालती पर भी पड़ता जाता था। अब तक जितने मर्द उसे मिले, सभी ने उसकी विलास-वृत्ति को ही उकसाया। उसकी त्याग-वृत्ति दिन-दिन क्षीण होती जाती थी, पर मेहता के संसर्ग में आकर उसकी त्याग-भावना सजग हो उठी थी। सभी मनस्वी प्राणियों में यह भावना छिपी रहती है और प्रकाश पाकर चमक उठती है। आदमी अगर धन या नाम के पीछे पड़ा है, तो समझ लो कि अभी तक वह किसी परिष्कृत आत्मा के सम्पर्क में नहीं आया।

मालती अब अक्सर ग़रीबों के घर बिना फ़ीस लिये मरीज़ों को देखने चली जाती थी। मरीज़ों के साथ उसके व्यवहार में मृदुता आ गयी थी। हां, अभी तक वह शौक़-सिंगार से अपना मन न हटा सकती थी। रंग और पाउडर का त्याग उसे अपने आन्तरिक परिवर्तनों से भी कहीं ज़्यादा कठिन जान पड़ता था।

इधर कभी-कभी दोनों देहातों की ओर चले जाते थे और किसानों के साथ दो-चार घण्टे रहकर, उनके झोंपड़ों में रात काटकर, और उन्हीं का-सा भोजन करके, अपने को धन्य समझते थे। एक दिन वे सेमरी पहुंच गये और घूमते-घूमते बेलारी जा निकले। होरी द्वार पर बैठा चिलम पी रहा था कि मालती और मेहता आकर खड़े हो गये। मेहता ने होरी को देखते ही पहचान लिया और बोला—यही तुम्हारा गांव है? याद है, हम लोग रायसाहब के यहां आये थे और तुम धनुष-यज्ञ की लीला में माली बने थे।

होरी की स्मृति जाग उठी। पहचाना और पटेश्वरी के घर की ओर कुरसियां लाने चला।

मेहता ने कहा—कुरसियों का कोई काम नहीं। हम लोग इसी खाट पर बैठ जाते हैं। यहां कुरसी पर बैठने नहीं, तुमसे कुछ सीखने आये हैं।

दोनों खाट पर बैठे। होरी हतबुद्धि-सा खड़ा था। इन लोगों की क्या ख़ातिर करे! बड़े-बड़े आदमी हैं। उनकी खातिर करने लायक़ उसके पास है ही क्या?

आख़िर उसने पूछा—पानी लाऊं?

मेहता ने कहा—हां, प्यास तो लगी है।

'कुछ मीठा भी लेता आऊं?'

'लाओ, अगर घर में हो।'

होरी घर में मीठा और पानी लेने गया। तब तक गांव के बालकों ने आकर इन दोनों आदमियों को घेर लिया और लगे निरखने, मानो चिड़ियाघर के अनोखे जन्तु आ गये हों।

सिल्लो बच्चे को लिये किसी काम से चली जा रही थी। इन दोनों आदमियों को देखकर कुतूहलवश ठिठक गयी।

मालती ने आकर उसके बच्चे को गोद में ले लिया और प्यार करती हुई बोली—कितने दिनों का

है?

सिल्लो को ठीक मालूम न था। एक दूसरी औरत ने बताया—कोई साल-भर का होगा, क्यों री?

सिल्लो ने समर्थन किया!

मालती ने विनोद किया—प्यारा बच्चा है। इसे हमें दे दो।

सिल्लो ने गर्व से फूलकर कहा—आप ही का तो है।

'तो मैं इसे ले जाऊं?'

'ले जाइये। आपके साथ रहकर आदमी हो जायेगा।'

गांव की और महिलाएं आ गयीं और मालती को होरी के घर में ले गयीं। यहां मर्दों के सामने मालती से वार्तालाप करने का अवसर उन्हें न मिलता। मालती ने देखा, खाट बिछी है, और उस पर एक दरी पड़ी हुई है, जो पटेश्वरी के घर से मांगे आयी थी, मालती जाकर बैठी। सन्तान-रक्षा और शिशु-पालन की बातें होने लगीं। औरतें मन लगाकर सुनती रहीं।

धनिया ने कहा—यहां यह सब सफ़ाई और संयम कैसे होगा सरकार? भोजन तक का ठिकाना तो है नहीं।

मालती ने समझाया—सफ़ाई में कुछ ख़र्च नहीं। केवल थोड़ी-सी मेहनत और होशियारी से काम चल सकता है।

दुलारी सहुआइन ने पूछा—यह सारी बातें तुम्हें कैसे मालूम हुई सरकार, आपका तो अभी ब्याह ही नहीं हुआ?

मालती ने मुसकराकर पूछा—तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि मेरा ब्याह नहीं हुआ है?

सभी स्त्रियां मुंह फेरकर मुसकरायीं। धनिया बोली—भला, यह भी छिपा रहता है, मिस साहब, मुंह देखते ही पता चल सकता है।

मालती ने झेंपते हुए कहा—इसलिए ब्याह नहीं किया कि आप लोगों की सेवा कैसे करती।

सब ने एक स्वर में कहा—धन्य हो सरकार, धन्य हो!

सिलिया मालती के पांव दबाने लगी—सरकार कितनी दूर से आयी हैं, थक गयी होंगी।

मालती ने पांव खींचकर कहा—नहीं-नहीं, मैं थकी नहीं हूं। मैं तो हवागाड़ी पर आयी हूं। मैं चाहती हूं, आप लोग अपने बच्चे लायें, तो मैं उन्हें देखकर आप को बताऊं कि आप इन्हें कैसे तन्दुरुस्त और नीरोग रख सकती हैं।

ज़रा देर में बीस-पच्चीस बच्चे आ गये। मालती उनकी परीक्षा करने लगी। कई बच्चों की आंखें उठी थीं, उनकी आंख में दवा डाली। अधिकतर बच्चे दुर्बल थे। इसका कारण था, माता-पिता को भोजन अच्छा न मिलना। मालती को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि बहुत कम घरों में दूध होता था। घी के तो सालों दर्शन नहीं होते।

मालती ने यहां भी उन्हें भोजन करने का महत्त्व समझाया, जैसा वह सभी गांवों में किया करती थी। उसका जी इसलिए जलता था कि ये लोग अच्छा भोजन क्यों नहीं करते? उसे ग्रामीणों पर क्रोध आ जाता था। क्या तुम्हारा जन्म इसीलिए हुआ है कि तुम मर-मरकर कमाओ और जो कुछ पैदा हो, उसे खा न सको? जहां दो-चार बैलों के लिए भोजन है, एक-दो गाय-भैंसों के लिए चारा नहीं है? क्यों ये लोग भोजन को जीवन की मुख्य वस्तु न समझकर उसे केवल प्राण-रक्षा की वस्तु समझते हैं? क्यों सरकार से नहीं कहते कि नाम-मात्र के ब्याज पर रुपये देकर उन्हें सूदख़ोर महाजनों के पंजे से बचाये? उसने जिस किसी से पूछा, यही मालूम हुआ कि उनकी कमाई का बड़ा भाग महाजनों का क़र्ज़ चुकाने में ख़र्च हो जाता है। बंटवारे का मरज़ भी बढ़ता जाता था। आपस में इतना वैमनस्य था कि शायद ही कोई दो भाई एक साथ रहते हों। उनकी इस दुर्दशा का कारण बहुत कुछ उनकी संकीर्णता

और स्वार्थपरता थी। मालती इन्हीं विषयों पर महिलाओं से बातें करती रही। उनकी श्रद्धा देख-देख उसके मन में सेवा की प्रेरणा और भी प्रवल हो रही थी। इस त्यागमय जीवन के सामने वह विलासी जीवन कितना तुच्छ और वनावटी था! आज वह रेशमी कपड़े, जिन पर ज़री का काम था, वह गन्ध से महकता हुआ शरीर और वह पाउडर से अलंकृत मुखमण्डल, उसे लज्जित करने लगा। उसकी कलाई पर वंधी सोने की घड़ी जैसे अपने अपलक नेत्रों से उसे घूर रही थी। उसके गले में चमकता हुआ जड़ाऊ नेकलेस मानो गला घोंट रहा था।

इन त्याग और श्रद्धा की देवियों के सामने वह अपनी दृष्टि में नीच लग रही थी। वह इन ग्रामीणों से वहुत-सी वातें ज़्यादा जानती थी, समय की गति ज़्यादा पहचानती थी, लेकिन जिन परिस्थितियों में ये ग़रीविनें जीवन को सार्थक कर रही हैं, उनमें क्या वह एक दिन भी रह सकती है? जिनमें अहंकार का नाम नहीं, दिन-भर काम करती हैं, उपवास करती हैं, रोती हैं, फिर भी इतनी प्रसन्न- मुख! दूसरे उनके लिए इतने अपने हो गये हैं कि अपना अस्तित्व ही नहीं रहा। उनका अपनापन अपने लड़कों में, अपने पति में, अपने सम्वन्धियों में है। इस भावना की रक्षा करते हुए—इसी भावना का क्षेत्र और वढ़ाकर—भावी नारीत्व का आदर्श निर्माण होगा। जागृत देवियों में इसकी जगह आत्म-सेवन का जो भाव आ वैठा है—सव कुछ अपने लिए, अपने भोग-विलास के लिए—उससे तो यह सुषुप्तावस्था ही अच्छी। पुरुष निर्दयी है, माना, लेकिन है तो इन्हीं माताओं का वेटा। क्यों माता ने पुत्र को ऐसी शिक्षा नहीं दी कि वह माता की, स्त्री-जाति की पूजा करता? इसीलिए कि माता को यह शिक्षा देनी नहीं आती, इसीलिए कि उसने अपने को इतना मिटाया कि उसका रूप ही विगड़ गया, उसका व्यक्तित्व ही नष्ट हो गया।

नहीं, अपने को मिटाने से काम न चलेगा। नारी को समाज-कल्याण के लिए अपने अधिकारों की रक्षा करनी पड़ेगी, उसी तरह जैसे इन किसानों को अपनी रक्षा के लिए इस देवत्व का कुछ त्याग करना पड़ेगा।

सन्ध्या हो गयी थी। मालती को औरतें अव तक घेरे हुए थीं। उसकी वातों से जैसे उन्हें तृप्ति न होती थी। कई औरतों ने उससे रात को वहीं रहने का आग्रह किया। मालती को भी उनका सरल स्नेह ऐसा प्यारा लगा कि उसने उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। रात को औरतें उसे अपना गाना सुनायेंगी। मालती ने प्रत्येक घर में जा-जाकर उनकी दशा से परिचय प्राप्त करने में अपने समय का सदुपयोग किया। उसकी निष्कपट सद्भावना और सहानुभूति उन गंवारिनों के लिए देवी के वरदान से कम न थी।

उधर मेहता साहव खाट पर आसन जमाये किसानों की कुश्ती देख रहे थे और पछता रहे थे, मिर्ज़ाजी को क्यों न साथ ले लिया, नहीं उनका भी एक जोड़ हो जाता? उन्हें आश्चर्य हो रहा था, ऐसे प्रौढ़ और निरीह वालकों के साथ शिक्षित कहलाने वाले लोग कैसे निर्दयी हो जाते हैं। अज्ञान की भांति ज्ञान भी सरल, निष्कपट और सुनहले स्वप्न देखनेवाला होता है। मानवता में उसका विश्वास इतना दृढ़, इतना सजीव होता है कि वह इसके विरुद्ध व्यवहार को अमानुषीय समझने लगता है। वह यह भूल जाता है कि भेड़ियों ने भेड़ों की निरीहता का जवाव सदैव पंजे और दांतों से दिया है। वह अपना एक आदर्श संसार वनाकर उसको आदर्श मानवता से आवाद करता है और उसी में मग्न रहता है। यथार्थता कितनी अगम्य, कितनी दुर्वोध, कितनी अप्राकृतिक है, उसकी ओर विचार करना उसके लिए मुश्किल हो जाता है। मेहताजी इस समय इन गंवारों के वीच में वैठे हुए इसी प्रश्न को हल कर रहे थे कि इनकी दशा इतनी दयनीय क्यों है। वह इस सत्य से आंखें मिलाने का साहस न कर सकते थे कि इनका देवत्व ही इनकी दुर्दशा का कारण है। काश, ये आदमी ज़्यादा और देवता कम होते, तो यों न ठुकराये जाते। देश में कुछ भी हो, क्रान्ति ही क्यों न आ जाये, इनसे कोई मतलव नहीं। कोई दल उनके सामने सवल के रूप में आये, उसके सामने सिर झुकाने को तैयार। इनकी

निरीहता जड़ता की हद तक पहुंच गयी है, जिसे कठोर आघात ही कर्मण्य बना सकता है। उनकी आत्मा जैसे चारों ओर से निराश होकर अब अपने अन्दर ही टांगें तोड़कर बैठ गयी है। उनमें अपने जीवन की चेतना ही जैसे लुप्त हो गयी है।

सन्ध्या हो गयी थी। जो लोग अब तक खेतों में काम कर रहे थे, वे भी दौड़े चले आ रहे थे। उसी समय मेहता ने मालती को गांव की कई औरतों के साथ इस तरह तल्लीन होकर एक बच्चे को गोद लिये देखा, मानो वह भी उन्हीं में से एक है। मेहता का हृदय आनन्द से गद्‌गद हो उठा। मालती ने एक प्रकार से अपने को मेहता पर अर्पण कर दिया था। इस विषय में मेहता को अब कोई सन्देह न था, मगर अभी तक उनके हृदय में मालती के प्रति एक उत्कट भावना जागृत न हुई थी, जिसके बिना विवाह का प्रस्ताव करना उनके लिए हास्यजनक था। मालती बिना बुलाये मेहमान की भांति उनके द्वार पर आकर खड़ी हो गयी थी, और मेहता ने उसका स्वागत किया था। इसमें प्रेम का भाव न था, केवल पुरुषत्व का भाव था। अगर मालती उन्हें इस योग्य समझती है कि उन पर अपनी कृपा-दृष्टि फेरे, तो मेहता उसकी इस कृपा को अस्वीकार न कर सकते थे। इसके साथ ही वह मालती को गोविन्दी के रास्ते से हटा देना चाहते थे और वह जानते थे, मालती जब तक आगे अपना पांव न जमा लेगी, वह पिछला पांव न उठायेगी। वह जानते थे, मालती के साथ छल करके वह अपनी नीचता का परिचय दे रहे हैं। इसके लिए उनकी आत्मा बराबर उन्हें धिक्कारती रही थी, मगर ज्यों-ज्यों वह मालती को निकट से देखते थे, उनके मन में आकर्षण बढ़ता जाता था। रूप का आकर्षण तो उन पर कोई असर न कर सकता था। यह गुण का आकर्षण था। वह यह जानते थे, जिसे सच्चा प्रेम कह सकते हैं, केवल एक बन्धन में बंध जाने के बाद ही पैदा हो सकता है। इसके पहले जो प्रेम होता है, वह तो रूप की आसक्ति मात्र है, जिसका कोई टिकाव नहीं, मगर इसके पहले यह निश्चय तो कर लेना ही था कि जो पत्थर साहचर्य के खराद पर चढ़ेगा, उसमें खरादे जाने की क्षमता है भी या नहीं। सभी पत्थर खराद पर चढ़कर सुन्दर मूर्तियां नहीं बन जाते। इतने दिनों में मालती ने उनके हृदय के भिन्न-भिन्न भागों में अपनी रश्मियां डाली थीं, पर अभी तक वे केन्द्रित होकर उस ज्वाला के रूप में न फूट पड़ी थीं, जिससे उनका सारा अन्तस्तल प्रज्वलित हो जाता। आज मालती ने ग्रामीणों में मिलकर और सारे भेद-भाव को मिटाकर इन रश्मियों को मानो केन्द्रित कर दिया, और आज पहली बार मेहता को मालती से एकात्मता का अनुभव हुआ। ज्यों ही मालती गांव का चक्कर लगाकर लौटी, उन्होंने उसे साथ लेकर नदी की ओर प्रस्थान किया। रात यहीं काटने का निश्चय हो गया। मालती का कलेजा आज न जाने क्यों धक्-धक् करने लगा। मेहता के मुख पर आज उसे एक विचित्र ज्योति और इच्छा झलकती हुई नज़र आयी।

नदी के किनारे चांदी का फ़र्श बिछा हुआ था और नदी रत्न-जटित आभूषण पहने, मीठे स्वरों में गाती, चांद और तारों की ओर सिर झुकाये नींद में सोते वृक्षों को अपना नृत्य दिखा रही थी। मेहता प्रकृति की उस मादक शोभा से जैसे मस्त हो गये। जैसे उनका बालपन अपनी सारी क्रीड़ाओं के साथ लौट आया हो। बालू पर कई कुलाटें मारीं। फिर दौड़े हुए नदी में जाकर घुटने तक पानी में खड़े हो गये।

मालती ने कहा—पानी में खड़े हो। कहीं ठण्ड न लग जाये।

मेहता ने पानी उछालकर कहा—मेरा तो जी चाहता है, नदी के उस पार तैरकर चला जाऊं।

'नहीं-नहीं, पानी से निकल आओ। मैं न जाने दूंगी।'

'तुम मेरे साथ न चलोगी उस सूनी बस्ती में, जहां स्वप्नों का राज्य है?'

'मुझे तो तैरना नहीं आता।'

'अच्छा, आओ, एक नाव बनायें, और उस पर बैठकर चलें।'

वह बाहर निकल आये। आस-पास बड़ी दूर तक झाऊ का जंगल खड़ा था। मेहता ने जेब से

चाकू निकाला और वहुत-सी टहनियां काटकर जमा कीं। कगार पर सरपत के जूट खड़े थे। ऊपर चढ़कर सरपत का एक गट्ठा काट लाये और वहीं बालू के फ़र्श पर बैठकर सरपत की रस्सी बटने लगे। ऐसे प्रसन्न थे, मानो स्वर्गारोहण की तैयारी कर रहे हैं। कई बार उंगलियां चिर गयीं, खून निकला। मालती विगड़ रही थी, वार-वार गांव लौट चलने के लिए आग्रह कर रही थी, पर उन्हें कोई परवाह न थी। वही वालकों का-सा उल्लास था, वही हठ। दर्शन और विज्ञान सभी इस प्रवाह में वह गये थे।

रस्सी तैयार हो गयी। झाऊ का बड़ा-सा तख़्त बन गया, टहनियां दोनों सिरों पर रस्सी से जोड़ दी गयी थीं। उसके छिद्रों में झाऊ की टहनियां भर दी गयीं, जिससे पानी ऊपर न आये। नौका तैयार हो गयी थी। रात और भी स्वप्निल हो गयी थी।

मेहता ने नौका को पानी में डालकर मालती का हाथ पकड़कर कहा—आओ, बैठो।

मालती ने सशंक होकर कहा—दो आदमियों का बोझ संभाल लेगी?

मेहता ने दार्शनिक मुस्कान के साथ कहा—जिस तरी पर बैठे हम लोग जीवन-यात्रा कर रहे हैं, वह तो इससे कहीं निस्सार है मालती? क्या डर रही हो?

'डर किस वात का, जब तुम साथ हो।'

'सच कहती हो?'

'अव तक मैंने वग़ैर किसी की सहायता के वाधाओं को जीता है। अब तो तुम्हारे संग हूं।'

दोनों उस झाऊ के तख़्ते पर वैठे और मेहता ने झाऊ के एक डण्डे से ही उसे खेना शुरू किया। तख़्ता डगमगाता हुआ पानी में चला।

मालती ने मन को इस तख़्ते से हटाने के लिए पूछा—तुम तो हमेशा शहरों में रहे, गांव के जीवन का तुम्हें कैसे अभ्यास हो गया? मैं तो ऐसा तख़्ता कभी न बना सकती।

मेहता ने उसे अनुरक्त नेत्रों से देखकर कहा—शायद यह मेरे पिछले जन्म का संस्कार है। प्रकृति से स्पर्श होते ही जैसे मुझमें नया जीवन-सा आ जाता है, नस-नस में स्फूर्ति छा जाती है। एक-एक पक्षी, एक-एक पशु, जैसे मुझे आनन्द का निमन्त्रण देता हुआ जान पड़ता है, मानो भूले हुए सुखों की याद दिला रहा हो। यह आनन्द मुझे और कहीं नहीं मिलता, संगीत के रुलानेवाले स्वरों में भी नहीं, दर्शन की ऊंची उड़ानों में भी नहीं। जैसे अपने आपको पा जाता हूं, जैसे पक्षी अपने घोंसले में आ जायें।

तख़्ता डगमगाता, कभी तिरछा, कभी सीधा, कभी चक्कर खाता हुआ चला जा रहा था।

सहसा मालती ने कातरकण्ठ से पूछा—और मैं तुम्हारे जीवन में कभी नहीं आती?

मेहता ने उसका हाथ पकड़कर कहा—आती हो, बार-वार आती हो, सुगन्ध के एक झोंके की तरह, कल्पना की एक छाया की तरह और फिर अदृश्य हो जाती हो। दौड़ता हूं कि तुम्हें करपाश में वांध लूं, पर हाथ खुले रह जाते हैं, और तुम ग़ायव हो जाती हो।

मालती ने उन्माद की दशा में कहा—लेकिन तुमने इसका कारण भी सोचा? समझना चाहा?

'हां मालती, वहुत सोचा, वार-वार सोचा।'

'तो क्या मालूम हुआ?'

'यही कि मैं जिस आधार पर जीवन का भवन खड़ा करना चाहता हूं, वह अस्थिर है। यह कोई विशाल भवन नहीं है, केवल एक छोटी-सी शान्त कुटिया है, लेकिन उसके लिए भी तो कोई स्थिर आधार चाहिए।'

मालती ने अपना हाथ छुड़ाकर, जैसे मान करते हुए कहा—यह झूठा आक्षेप है। तुमने सदैव मुझे परीक्षा की आंखों से देखा, कभी प्रेम की आंखों से नहीं। क्या तुम इतना भी नहीं जानते कि नारी परीक्षा नहीं चाहती, प्रेम चाहती है। परीक्षा गुणों को अवगुण, सुन्दर को असुन्दर वनानेवाली चीज़ है,

प्रेम अवगुणों को गुण बनाता है, असुन्दर को सुन्दर। मैंने तुमसे प्रेम किया, मैं कल्पना ही नहीं कर सकती कि तुममें कोई बुराई भी है, मगर तुमने मेरी परीक्षा की और तुम मुझे अस्थिर, चञ्चल और जाने क्या-क्या समझकर, मुझसे हमेशा दूर भागते रहे। नहीं, मैं जो कुछ कहना चाहती हूं, वह मुझे कह लेने दो। मैं क्यों अस्थिर और चञ्चल हूं, इसलिए कि मुझे वह प्रेम नहीं मिला, जो मुझे स्थिर और अञ्चल बनाता। अगर तुमने मेरे सामने उसी तरह आत्मसमर्पण किया होता, जैसे मैंने तुम्हारे सामने किया है, तो तुम आज मुझ पर यह आक्षेप न रखते।

मेहता ने मालती के मान का आनन्द उठाते हुए कहा—तुमने मेरी परीक्षा कभी नहीं की? सच कहती हो?

'कभी नहीं।'

'तो तुमने ग़लती की।'

'मैं इसकी परवाह नहीं करती।'

'भावुकता में न आओ मालती! प्रेम देने के पहले हम सब परीक्षा करते हैं, और तुमने की, चाहे अप्रत्यक्ष रूप से ही की हो। मैं आज तुमसे स्पष्ट कहता हूं कि मैंने तुम्हें उसी तरह देखा, जैसे रोज़ ही हज़ारों देवियों को देखा करता हूं, केवल विनोद के भाव से। अगर मैं ग़लती नहीं करता, तो तुमने भी मुझे मनोरञ्जन के लिए एक नया खिलौना समझा।'

मालती ने टोका—ग़लत कहते हो। मैंने कभी तुम्हें इस नज़र से नहीं देखा। मैंने पहले ही दिन तुम्हें अपना देव बनाकर अपने हृदय..

मेहता बात काटकर बोले—फिर वही भावुकता। मुझे ऐसे महत्त्व के विषय में भावुकता पसन्द नहीं। अगर तुमने पहले ही दिन से मुझे इस कृपा के योग्य समझा, इसका यही कारण हो सकता है कि मैं रूप भरने में तुमसे कुशल हूं, वरना जहां तक मैंने नारियों का स्वभाव देखा है, प्रेम के विषय में काफ़ी छान-बीन करती हैं। पहले भी तो स्वयंवर से पुरुषों की परीक्षा होती थी? वह मनोवृत्ति अब भी मौजूद है, चाहे उसका रूप कुछ बदल गया हो। मैंने तब से बराबर यही कोशिश की है कि अपने को सम्पूर्ण रूप से तुम्हारे सामने रख दूं, और उसके साथ ही तुम्हारी आत्मा तक भी पहुंच जाऊं। और मैं ज्यों-ज्यों तुम्हारे अन्तस्तल की गहराई में उतरा हूं, मुझे रत्न मिले हैं। मैं विनोद के लिए आया, और आज उपासक बना हुआ हूं। तुमने मेरे भीतर क्या पाया, यह मुझे मालूम नहीं।

नदी का दूसरा किनारा आ गया। दोनों उतरकर उसी बालू के फ़र्श पर जा बैठे और मेहता फिर उसी प्रवाह में बोले—और आज मैं वही पूछने के लिए तुम्हें लाया हूं।

मालती ने कांपते हुए स्वर में कहा—क्या अभी तुम्हें यह पूछने की ज़रूरत बाक़ी है?

'हां, इसलिए कि मैं आज तुम्हें अपना वह रूप दिखाऊंगा, जो शायद अभी तक तुमने नहीं देखा और जिसे मैंने भी छिपाया है। अच्छा, मान लो, मैं तुमसे विवाह करके कल तुमसे बेवफ़ाई करूं, तो तुम मुझे क्या सज़ा दोगी?'

मालती ने उसकी ओर चकित होकर देखा। इसका आशय उसकी समझ में न आया।

'ऐसा प्रश्न क्यों करते हो?'

'मेरे लिए यह बड़े महत्त्व की बात है।'

'मैं इसकी सम्भावना नहीं समझती।'

'संसार में कुछ भी असम्भव नहीं है। बड़े-से-बड़ा महात्मा भी एक क्षण में पतित हो सकता है।'

'मैं उसका कारण खोजूंगी और उसे दूर करूंगी।'

'मान लो, मेरी आदत न छूटे।'

'फिर मैं नहीं कह सकती, क्या करूंगी। शायद विष खाकर सो रहूं।'

'लेकिन यदि तुम मुझसे यही प्रश्न करो, तो मैं उसका दूसरा जवाब दूंगा।'

मालती ने सशंक होकर पूछा—बतलाओ!

मेहता ने दृढ़ता के साथ कहा—मैं पहले तुम्हारा प्राणान्त कर दूंगा, फिर अपना।

मालती ने ज़ोर से क़हक़हा मारा और सिर से पांव तक सिहर उठी। उसकी हंसी केवल उसकी सिहरन को छिपाने का आवरण थी। मेहता ने पूछा—तुम हंसी क्यों?

'इसलिए कि तुम ऐसे हिंसावादी नहीं जान पड़ते।'

'नहीं मालती, इस विषय में मैं पूरा पशु हूं और उस पर लज्जित होने का कोई कारण नहीं देखता। आध्यात्मिक प्रेम और त्यागमय प्रेम और निःस्वार्थ प्रेम, जिसमें आदमी अपने को मिटाकर केवल प्रेमिका के लिए जीता है, उसके आनन्द से आनन्दित होता है और उसके चरणों पर अपना आत्मासमर्पण कर देता है, मेरे लिए निरर्थक शब्द है। मैंने पुस्तकों में ऐसी प्रेम-कथाएं पढ़ी हैं, जहां प्रेमी ने प्रेमिका के नये प्रेमियों के लिए अपनी जान दे दी है, मगर उस भावना को मैं श्रद्धा कह सकता हूं, सेवा कह सकता हूं, प्रेम कभी नहीं। प्रेम सीधी-सादी गऊ नहीं, खूंख़्वार शेर है, जो अपने शिकार पर किसी की आंख भी नहीं पड़ने देता।'

मालती ने उनकी आंखों में आंखें डालकर कहा—अगर प्रेम खूंख़्वार शेर है, तो मैं उससे दूर ही रहूंगी। मैंने तो उसे गाय ही समझ रखा था। मैं प्रेम को सन्देह से ऊपर समझती हूं। वह देह की वस्तु नहीं, आत्मा की वस्तु है। सन्देह का वहां ज़रा भी स्थान नहीं और हिंसा तो सन्देह का ही परिणाम है। वह सम्पूर्ण आत्मसमर्पण है। उसके मन्दिर में तुम परीक्षक बनकर नहीं, उपासक बनकर ही वरदान पा सकते हो।

वह उठकर खड़ी हो गयी और तेज़ी से नदी की तरफ़ चली, मानो उसने अपना खोया हुआ मार्ग पा लिया हो। ऐसी स्फूर्ति का उसे कभी अनुभव न हुआ। उसने स्वतन्त्र जीवन में भी अपने में एक दुर्बलता पायी थी, जो उसे सदैव आन्दोलित करती रहती थी, सदैव अस्थिर रखती थी। उसका मन जैसे कोई आश्रय खोजा करता था, जिसके बल पर वह टिक सके, संसार का सामना कर सके। अपने में उसे यह शक्ति न मिलती थी। बुद्धि और चरित्र की शक्ति देखकर वह उसकी ओर लालायित होकर जाती थी। पानी की भांति हर एक पात्र का रूप धारण कर लेती थी। उसका अपना कोई रूप न था।

उसकी मनोवृत्ति अभी तक किसी परीक्षार्थी छात्र की-सी थी। छात्र को पुस्तकों से प्रेम हो सकता है और हो जाता है, लेकिन वह पुस्तक के उन्हीं भागों पर ज़्यादा ध्यान देता है, जो परीक्षा में आ सकते हैं, उसकी पहली ग़रज़ परीक्षा में सफल होना है। ज्ञानार्जन इसके बाद। अगर उसे मालूम हो जाय कि परीक्षक बड़ा दयालु है या अन्धा है और छात्रों को यों ही पास कर दिया करता है, तो शायद वह पुस्तकों की ओर आंख उठाकर भी न देखे। मालती जो कुछ करती थी, मेहता को प्रसन्न करने के लिए। उसका मतलब था, मेहता का प्रेम और विश्वास प्राप्त करना, उनके मनोराज्य की रानी बन जाना, लेकिन उसी छात्र की तरह अपनी योग्यता का विश्वास दिलाकर [illegible] परीक्षक आप-ही-आप उसके [illegible]

मगर आज मेहता [illegible]
उसने पहली बार [illegible]
सबसे समर्थ जान [illegible]
ऊंची वस्तु थी। [illegible]
तोड़-फोड़ [illegible]
थी। उसके [illegible]
आत्मवि[illegible]
सार्थक[illegible]

तब से वह अपना संस्कार करती चली जाती थी। जिस प्रेरक शक्ति की उसे ज़रूरत थी, वह मिल गयी थी और अज्ञात रूप से उसे गति और शक्ति दे रही थी। जीवन का नया आदर्श जो उसके सामने आ गया था, वह अपने को उसके समीप पहुंचाने की चेष्टा करती हुई और सफलता का अनुभव करती हुई उस दिन की कल्पना कर रही थी, जब वह और मेहता एकात्मक हो जायेंगे और यह कल्पना उसे और दृढ़ और निष्ठ बना रही थी।

मगर आज जब मेहता ने उसकी आशाओं को द्वार तक लाकर प्रेम का वह आदर्श उसके सामने रखा, जिसमें प्रेम को आत्मा और समर्पण के क्षेत्र से गिराकर भौतिक धरातल तक पहुंचा दिया गया था, जहां सन्देह और ईर्ष्या और भोग का राज्य है, तब उसकी परिष्कृत बुद्धि आहत हो उठी, और मेहता से जो उसे श्रद्धा थी, उसे एक धक्का-सा लगा, मानो कोई शिष्य अपने गुरु को कोई नीच कर्म करते देख ले। उसने देखा, मेहता की बुद्धि-प्रखरता प्रेमत्व की पशुता की ओर खींचे लिये जाती है, और उसके देवत्व की ओर से आंखें बन्द किये लेती है, और यह देखकर उसका दिल बैठ गया।

मेहता ने कुछ लज्जित होकर कहा—आओ, कुछ देर और बैठें।

मालती बोली—नहीं, अब लौटना चाहिए। देर हो रही है।

: 31 :

रायसाहब का सितारा बुलन्द था। उनके तीनों मंसूबे पूरे हो गये थे। कन्या की शादी धूम-धाम से हो गयी थी, मुक़दमा जीत गये थे और निर्वाचन में सफल ही न हुए थे, होम मेम्बर भी हो गये थे। चारों ओर से बधाइयां मिल रही थीं। तारों का तांता लगा हुआ था। इस मुक़दमे को जीतकर उन्होंने ताल्लुक़ेदारों की प्रथम श्रेणी में स्थान प्राप्त कर लिया था। सम्मान तो उनका पहले भी किसी से कम न था, मगर अब तो उसकी जड़ और भी गहरी और मज़बूत हो गयी थी। सामयिक पत्रों में उनके चित्र और चरित्र दनादन निकल रहे थे। क़र्ज़ की मात्रा बहुत बढ़ गयी थी, मगर अब रायसाहब को इसकी परवा न थी। वह इस नयी मिलकियत का एक छोटा-सा टुकड़ा बेचकर क़र्ज़ से मुक्त हो सकते थे। सुख की जो ऊंची-से-ऊंची कल्पना उन्होंने की थी, उससे कहीं ऊंचे जा पहुंचे थे। अभी तक उनका बंगला केवल लखनऊ में था। अब नैनीताल, मंसूरी और शिमला—तीनों स्थानों में एक-एक बंगला बनवाना लाज़िम हो गया। अब उन्हें यह शोभा नहीं देता कि इन स्थानों में जायें, तो होटलों में या किसी दूसरे राजा के बंगले में ठहरें। जब सूर्यप्रतापसिंह के बंगले इन सभी स्थानों में थे, तो रायसाहब के लिए यह बड़ी लज्जा की बात थी कि उनके बंगले न हों।

संयोग से बंगले बनवाने की ज़हमत न उठानी पड़ी। बने-बनाये बंगले सस्ते दामों में मिल गये। हर एक बंगले के लिए माली, चौकीदार, कारिन्दा, ख़ानसामा आदि भी रख लिये गये थे, और सबसे बड़े सौभाग्य की बात यह थी कि अब हिज़ मैजेस्टी के जन्मदिन के अवसर पर उन्हें राजा की पदवी भी मिल गयी। अब उनकी महत्त्वाकांक्षा सम्पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हो गयी। उस दिन खूब जश्न मनाया गया और इतनी शानदार दावत हुई कि पिछले सारे रेकार्ड टूट गये। जिस वक्त हिज़ एक्सेलेन्सी गवर्नर ने उन्हें पदवी प्रदान की, गर्व के साथ राज-भक्ति की ऐसी तरंग उनके मन में उठी कि उनका एक-एक रोम उससे प्लावित हो उठा। यह है जीवन! नहीं, विद्रोहियों के फेर में पड़कर व्यर्थ बदनामी ली, जेल गये और अफ़सरों की नज़रों से गिर गये। जिस डी.एस.पी. ने उन्हें पिछली बार गिरफ्तार किया था, इस वक्त वह उनके सामने हाथ बांधे खड़ा था, और शायद अपने अपराध के लिए क्षमा मांग रहा था।

मगर जीवन की सबसे बड़ी विजय उन्हें उस वक्त हुई, जब उनके पुराने, परास्त शत्रु सूर्यप्रतापसिंह ने उनके बड़े लड़के रुद्रपालसिंह से अपनी कन्या के विवाह का सन्देश भेजा। रायसाहब

को न मुक़दमा जीतने की इतनी ख़ुशी हुई थी, न मिनिस्टर होने की। यह सारी बातें कल्पना में आती थीं, मगर यह बात तो आशातीत ही नहीं, कल्पनातीत थी। वही सूर्यप्रतापसिंह, जो अभी कई महीने तक उन्हें अपने कुत्ते से भी नीच समझता था, वह आज उनके लड़के से अपनी लड़की का विवाह करना चाहता था! कितनी असम्भव बात! रुद्रपाल इस समय एम.ए. में पढ़ता था। बड़ा निर्भीक, पक्का आदर्शवादी, अपने ऊपर भरोसा रखनेवाला, अभिमानी, रसिक और आलसी युवक था, जिसे अपने पिता की यह धन और मानलिप्सा बुरी लगती थी।

रायसाहब इस समय नैनीताल में थे। यह सन्देशा पाकर फूल उठे। यद्यपि वह विवाह के विषय में लड़के पर किसी तरह का दबाव डालना न चाहते थे, पर इसका उन्हें विश्वास था कि वह जो कुछ निश्चय कर लेंगे, उसमें रुद्रपाल को कोई आपत्ति न होगी और राजा सूर्यप्रतापसिंह से नाता हो जाना एक ऐसे सौभाग्य की बात थी कि रुद्रपाल का सहमत न होना ख़याल में भी न आ सकता था। उन्होंने तुरन्त राजा साहब को बात दे दी और उसी वक्त रुद्रपाल को फोन किया। रुद्रपाल ने जवाब दिया—मुझे स्वीकार नहीं।

रायसाहब को अपने जीवन में न कभी इतनी निराशा हुई थी, न इतना क्रोध आया था, पूछा—कोई वजह?

'समय आने पर मालूम हो जायेगा।'

'मैं अभी जानना चाहता हूं।'

'मैं नहीं बतलाना चाहता।'

'तुम्हें मेरा हुक्म मानना पड़ेगा।'

'जिस बात को मेरी आत्मा स्वीकार नहीं करती, उसे मैं आपके हुक्म से नहीं मान सकता।'

रायसाहब ने बड़ी नम्रता से समझाया—बेटा, तुम आदर्शवाद के पीछे अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार रहे हो। यह सम्बन्ध समाज में तुम्हारा स्थान कितना ऊंचा कर देगा, कुछ तुमने सोचा है? इसे ईश्वर की प्रेरणा समझो। उस कुल की कोई दरिद्र कन्या भी मुझे मिलती, तो मैं अपने भाग्य को सराहता, यह तो राजा सूर्यप्रताप की कन्या है, जो हमारे सिरमौर हैं। मैं उसे रोज़ देखता हूं। तुमने भी देखा होगा। रूप, गुण, शील, स्वभाव में ऐसी युवती मैंने आज तक नहीं देखी। मैं तो चार दिन का और मेहमान हूं, तुम्हारे सामने जीवन पड़ा है। मैं तुम्हारे ऊपर दबाव नहीं डालना चाहता। तुम जानते हो, विवाह के विषय में मेरे विचार कितने उदार हैं, लेकिन मेरा यह भी तो धर्म है कि अगर तुम्हें ग़लती करते देखूं, तो चेतावनी दे दूं।

रुद्रपाल ने इसका जवाब दिया—मैं इस विषय में बहुत पहले निश्चय कर चुका हूं। उसमें अब कोई परिवर्तन नहीं हो सकता।

रायसाहब को लड़के की जड़ता पर फिर क्रोध आ गया, गरजकर बोले—मालूम होता है तुम्हारा सिर फिर गया है। आकर मुझसे मिलो। विलम्ब न करना। मैं राजासाहब को ज़बान दे चुका हूं।

रुद्रपाल ने जवाब दिया—खेद है, अभी मुझे अवकाश नहीं है।

दूसरे दिन रायसाहब खुद आ गये। दोनों अपने-अपने शस्त्रों से सजे हुए तैयार [illegible] ओर सम्पूर्ण जीवन का मंजा हुआ अनुभव था, समझौतों से भरा हुआ, दूसरी ओर [illegible] था, ज़िद्दी, उद्दण्ड और निर्मम।

रायसाहब ने सीधे मर्म पर आघात किया—मैं जानना चाहता हूं, वह [illegible]

रुद्रपाल ने अचल भाव से कहा—अगर आप इतने उत्सुक हैं, तो [illegible] बहिन सरोज हैं।

रायसाहब आहत होकर गिर पड़े—अच्छा, वह!

'आपने तो सरोज को देखा होगा?'

'खूब देखा है। तुमने राजकुमारी को देखा है या नहीं?'

'जी हां, खूब देखा है।'

'फिर भी...।'

'मैं रूप को कोई चीज़ नहीं समझता।'

'तुम्हारी अक्ल पर मुझे अफ्सोस आता है। मालती को जानते हो, कैसी औरत है? उसकी वहिन क्या कुछ और होगी?'

रुद्रपाल ने तेवरी चढ़ाकर कहा—मैं इस विषय में आपसे और कुछ नहीं कहना चाहता, मगर मेरी शादी होगी, तो सरोज से।'

'मेरे जीते जी कभी नहीं हो सकती।'

'तो आपके वाद होगी।'

'अच्छा, तुम्हारे यह इरादे हैं?'

और रायसाहव की आंखें सजल हो गयीं। जैसे सारा जीवन उजड़ गया हो। मिनिस्ट्री और इलाक़ा और पदवी, सव जैसे वासी फूलों की तरह नीरस, निरानन्द हो गये हों। जीवन की सारी साधना व्यर्थ हो गयी। उनकी स्त्री का जव देहान्त हुआ था, तो उनकी उम्र छत्तीस साल से ज़्यादा न थी। वह विवाह कर सकते थे, और भोग-विलास का आनन्द उठा सकते थे। सभी उनसे विवाह करने के लिए आग्रह कर रहे थे, मगर उन्होंने इन वालकों का मुंह देखा और विधुर जीवन की साधना स्वीकार कर ली। इन्हीं लड़कों पर अपने जीवन का सारा भोग-विलास न्योछावर कर दिया।

आज तक अपने हृदय का सारा स्नेह लड़कों को देते चले आये हैं, और आज यह लड़का इतनी निष्ठुरता से बातें कर रहा है, मानो उनसे कोई नाता नहीं, फिर वह क्यों जायदाद और सम्मान और अधिकार के लिए जान दें? इन्हीं लड़कों ही के लिए तो वह सव कुछ कर रहे थे, जव लड़कों को उनका ज़रा भी लिहाज़ नहीं, तो वह क्यों यह तपस्या करें? उन्हें कौन संसार में वहुत दिन रहना है। उन्हें भी आराम से पड़े रहना आता है। उनके और हज़ारों भाई मूंछों पर ताव देकर जीवन का भोग करते हैं और मस्त घूमते हैं। फिर वह भी क्यों न भोग-विलास में पड़े रहें?

उन्हें इस वक्त याद न रहा कि वह जो तपस्या कर रहे हैं, वह लड़कों के लिए नहीं, वल्कि अपने लिए, केवल यश के लिए नहीं, वल्कि इसलिए कि वह कर्मशील हैं और उन्हें जीवित रहने के लिए इसकी ज़रूरत है। वह विलासी और अकर्मण्य वनकर अपनी आत्मा को सन्तुष्ट नहीं रख सकते। उन्हें मालूम नहीं कि कुछ लोगों की प्रकृति ही ऐसी होती है कि विलास का अपाहिजपन स्वीकार ही नहीं कर सकते। वे अपने जिगर का खून पीने ही के लिए वने हैं, और मरते दम तक पिये जायेंगे।

मगर इस चोट की प्रतिक्रिया भी तुरन्त हुई। हम जिनके लिए त्याग करते हैं, उनसे किसी वदले की आशा न रखकर भी उनके मन पर शासन करना चाहते हैं। चाहे वह शासन उन्हीं के हित के लिए हो, यद्यपि उस हित को हम इतना अपना लेते हैं कि वह उनका न होकर हमारा हो जाता है। त्याग की मात्रा जितनी ही ज़्यादा होती है, यह शासन-भावना भी उतनी ही प्रवल होती है और जव सहसा हमें विद्रोह का सामना करना पड़ता है, तो हम क्षुब्ध हो उठते हैं और वह त्याग जैसे प्रतिहिंसा का रूप ले लेता है। रायसाहव को यह ज़िद पड़ गयी कि रुद्रपाल का विवाह सरोज के साथ न होने पाये, चाहे इसके लिए उन्हें पुलिस की मदद क्यों न लेनी पड़े, नीति की हत्या क्यों न करनी पड़े।

उन्होंने जैसे तलवार खींचकर कहा—हां, मेरे वाद ही होगी और अभी उसे वहुत दिन हैं।

रुद्रपाल ने जैसे गोली चला दी—ईश्वर करे, आप अमर हों। सरोज से मेरा विवाह हो चुका।

'झूठ!'

'विलकुल नहीं, प्रमाण-पत्र मौजूद है।'

रायसाहव आहत होकर गिर पड़े। इतनी सतृष्ण हिंसा की आंखों से उन्होंने कभी किसी शत्रु को

न देखा था। शत्रु अधिक-से-अधिक उनके स्वार्थ पर आघात कर सकता था, या देह पर या सम्मान पर, यह आघात तो उस मर्मस्थल पर था, जहां जीवन की सम्पूर्ण प्रेरणा संचित थी। एक आंधी थी, जिसने उनका जीवन जड़ से उखाड़ दिया। अब वह सर्वथा अपंग हैं। पुलिस की सारी शक्ति हाथ में रहते हुए अपंग हैं। बलप्रयोग उनका अन्तिम शस्त्र था। वह शस्त्र उनके हाथ से निकल चुका था। रुद्रपाल बालिग़ है, सरोज भी बालिग़ है। और रुद्रपाल अपनी रियासत का मालिक है। उनका उस पर कोई दबाव नहीं। आह! अगर जानते, यह लौंडा यों विद्रोह करेगा, तो इस रियासत के लिए लड़ते ही क्यों? इस मुक़दमेबाज़ी के पीछे दो-ढाई लाख बिगड़ गये। जीवन ही नष्ट हो गया। अब तो उनकी लाज इसी तरह बचेगी कि इस लौंडे की खुशामद करते रहें, उन्होंने ज़रा बाधा दी और इज़्ज़त धूल में मिली। वह जीवन का बलिदान करके भी अब स्वामी नहीं हैं। ओह! सारा जीवन नष्ट हो गया। सारा जीवन!

रुद्रपाल चला गया था। रायसाहब ने कार मंगवायी और मेहता से मिलने चले। मेहता अगर चाहें, तो मालती को समझा सकते हैं। सरोज भी उनकी अवहेलना न करेगी, अगर दस-बीस हज़ार रुपये बल खाने से भी विवाह रुक जाये, तो वह देने को तैयार थे। उन्हें उस स्वार्थ के नशे में यह बिलकुल ख़याल न रहा कि वह मेहता के पास ऐसा प्रस्ताव लेकर जा रहे हैं, जिस पर मेहता की हमदर्दी कभी उनके साथ न होगी।

मेहता ने सारा वृत्तान्त सुनकर उन्हें बनाना शुरू किया। गम्भीर मुंह बनाकर बोले—यह तो आपकी प्रतिष्ठा का सवाल है।

रायसाहब भांप न सके। उछलकर बोले—जी हां, केवल प्रतिष्ठा का। राजा सूर्यप्रतापसिंह को तो आप जानते हैं?

'मैंने उनकी लड़की को भी देखा है। सरोज उसके पांव की धूल भी नहीं है।'

'मगर इस लौंडे की अक़्ल पर पत्थर पड़ गया है।'

'तो मारिये गोली, आपको क्या करना है? वही पछतायेगा।'

'ओह! यही तो नहीं देखा जाता मेहताजी! मिलती हुई प्रतिष्ठा नहीं छोड़ी जाती। मैं इस प्रतिष्ठा पर अपनी आधी रियासत कुर्बान करने को तैयार हूं। आप मालती देवी को समझा दें, तो काम बन जाये। इधर से इनकार हो जाये, तो रुद्रपाल सिर पीटकर रह जायेगा और यह नशा दस-पांच दिन में आप उतर जायेगा। यह प्रेम-स्नेह कुछ नहीं, केवल सनक है।'

'लेकिन मालती बिना कुछ रिश्वत लिये मानेगी नहीं।'

'आप जो कुछ कहिये, मैं उसे दूंगा। वह चाहे तो मैं उसे यहां के डफ़रिन हास्पिटल का इन्चार्ज बना दूं।'

'मान लीजिये, वह आपको चाहे, तो आप राज़ी होंगे? जब से आपको मिनिस्ट्री मिली है, आपके विषय में उसकी राय ज़रूर बदल गयी होगी।'

रायसाहब ने मेहता के चेहरे की तरफ़ देखा। उस पर मुसकराहट की रेखा नज़र आयी। समझ गये। व्यथित स्वर में बोले—आपको भी मुझसे मज़ाक़ करने का यही अवसर मिला। मैं आपके पास इसलिए आया था कि मुझे यक़ीन था कि आप मेरी हालत पर विचार करेंगे, मुझे उचित राय देंगे। और आप मुझे बनाने लगे। जिसके दांत नहीं दुखे, वह दांतों का दर्द क्या जाने।

मेहता ने गम्भीर स्वर में कहा—क्षमा कीजियेगा, आप प्रश्न ही ऐसा लेकर आये हैं कि उस पर गम्भीर विचार करना मैं हास्यास्पद समझता हूं। आप अपनी शादी के ज़िम्मेदार हो सकते हैं। लड़के की शादी का दायित्व आप क्यों अपने ऊपर लेते हैं, ख़ास कर जब आपका लड़का बालिग़ है और अपना नफ़ा-नुक़सान समझता है। कम-से-कम मैं तो शादी जैसे महत्त्व के मुआ[illegible] प्रतिष्ठा का [illegible] कोई स्थान नहीं समझता। प्रतिष्ठा धन से होती, तो राजा साहब उस नंगे के [illegible]

तरह हाथ बांधे न खड़े रहते। मालूम नहीं कहां तक सही है, पर राजा साहब अपने इलाके के दारोगा तक को सलाम करते हैं, इसे आप प्रतिष्ठा कहते हैं? लखनऊ में आप किसी दुकानदार, किसी अहलकार, किसी राहगीर से पूछिये, उनका नाम सुनकर गालियां ही देगा। इसी को आप प्रतिष्ठा कहते हैं? जाकर आराम से बैठिये। सरोज से अच्छी वधू आपको बड़ी मुश्किल से मिलेगी।

रायसाहब ने आपत्ति के भाव से कहा—बहिन तो मालती ही की है।

मेहता ने गरम होकर कहा—मालती की बहिन होना क्या अपमान की बात है? मालती को आपने जाना नहीं और न जानने की परवा की। मैंने भी यही समझा था, लेकिन अब मालूम हुआ कि वह आग में पड़कर चमकनेवाली सच्ची धातु है। वह उन वीरों में है, जो अवसर पड़ने पर अपने जौहर दिखाते हैं, तलवार घुमाते नहीं चलते। आपको मालूम है, खन्ना की आजकल क्या दशा है?

रायसाहब ने सहानुभूति के भाव से सिर हिलाकर कहा—सुन चुका हूं, और बार-बार इच्छा हुई कि उनसे मिलूं, लेकिन फुर्सत न मिली। उस मिल में आग लगना उनके सर्वनाश का कारण हो गया।

'जी हां। अब वह एक तरह से दोस्तों की दया पर अपना निर्वाह कर रहे हैं। उस पर गोविन्दी महीनों से बीमार है। उसने खन्ना पर अपने को बलिदान कर दिया, उस पशु पर जिसने हमेशा उसे जलाया, अब वह मर रही है। और मालती रात की रात उसके सिरहाने बैठी रह जाती है—वही मालती, जो किसी राजा-रईस से पांच सौ फ़ीस पाकर भी रात-भर न बैठेगी। खन्ना के छोटे बच्चों को पालने का भार भी मालती पर है। यह मातृत्व उसमें कहां सोया हुआ था, मालूम नहीं। मुझे तो मालती का यह स्वरूप देखकर अपने भीतर श्रद्धा का अनुभव होने लगा, हालांकि आप जानते हैं, मैं घोर जड़वादी हूं, और भीतर के परिष्कार के साथ उसकी छवि में भी देवत्व की झलक आने लगी है। मानवता इतनी बहुरंगी और इतनी समर्थ है, इसका मुझे प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है। आप उनसे मिलना चाहें, तो चलिए, इसी बहाने मैं भी चला चलूंगा।'

रायसाहब ने सन्दिग्ध भाव से कहा—जब आप ही मेरे दर्द को नहीं समझ सके, तो मालती देवी क्या समझेंगी, मुफ़्त में शर्मिन्दगी होगी, मगर आपको पास जाने के लिए किसी बहाने की ज़रूरत क्यों? मैं तो समझता था, आपने उनके ऊपर जादू डाल दिया है।

मेहता ने हसरत-भरी मुसकराहट के साथ जवाब दिया—वह बात अब स्वप्न हो गयी। अब तो कभी उनके दर्शन भी नहीं होते। उन्हें अब फुर्सत भी नहीं रहती। दो-चार बार गया। मगर मुझे मालूम हुआ, मुझसे मिलकर वह कुछ खुश नहीं हुईं, तब से जाते झेंपता हूं। हां, खूब याद आया, आज महिला-व्यायामशाला का जलसा है, आप चलेंगे?

रायसाहब ने बेदिली के साथ कहा—जी नहीं, मुझे फुर्सत नहीं है। मुझे तो यह चिन्ता सवार है कि राजा साहब को क्या जवाब दूंगा। मैं उन्हें वचन दे चुका हूं।

यह कहते हुए वह उठ खड़े हुए और मन्द गति से द्वार की ओर चले। जिस गुत्थी को सुलझाने आये थे, वह और भी जटिल हो गयी। अन्धकार और भी असूझ हो गया। मेहता ने कार तक आकर उन्हें विदा किया।

रायसाहब सीधे अपने बंगले पर आये और दैनिक पत्र उठाया था कि मिस्टर तंखा का कार्ड मिला। तंखा से उन्हें घृणा थी, और उनका मुंह भी न देखना चाहते थे, लेकिन इस वक्त मन की दुर्बल दशा में उन्हें किसी हमदर्द की तलाश थी, जो और कुछ न कर सके, पर उनके मनोभावों से सहानुभूति तो करे। तुरन्त बुला लिया।

तंखा पांव दबाते हुए, रोनी सूरत लिये कमरे में दाख़िल हुए और ज़मीन पर झुककर सलाम करते हुए बोले—मैं तो हुजूर के दर्शन करने नैनीताल जा रहा था। सौभाग्य से यहीं दर्शन हो गये। हुजूर का मिज़ाज तो अच्छा है?

इसके बाद उन्होंने बड़ी लच्छेदार भाषा में और अपने पिछले व्यवहार को बिलकुल भूलकर,

दिखाइयेगा। दो भले आदमियों में लड़ाई लगाकर अपना उल्लू सीधा करना वेपूंजी का रोज़गार है, मगर इसका घाटा और नफ़ा दोनों ही जान-जोखिम है, समझ लीजिये।

तंखा ने ऐसा सिर गड़ाया कि फिर न उठाया। धीरे से चले गये, जैसे कोई चोर कुत्ता मालिक के अन्दर आ जाने पर दवककर निकल जाये।

जव वह चले गये, तो राजा साहव ने पूछा—मेरी वुराई करता होगा?

'जी हां, मगर मैंने भी खूव वनाया।'

'शैतान है।'

'पूरा।'

'वाप-वेटे में लड़ाई करवा दे, मियां-वीवी में लड़ाई करवा दे। इस फ़न में उस्ताद है। ख़ैर, आज वचा को अच्छा सवक़ मिल गया।'

इसके वाद रुद्रपाल के विवाह की वातचीत शुरू हुई। रायसाहव के प्राण सूखे जा रहे थे, मानो उन पर कोई निशाना वांधा जा रहा हो। कहां छिप जायें? कैसे कहें कि रुद्रपाल पर उनका कोई अधिकार नहीं रहा, मगर राजा साहव को परिस्थिति का ज्ञान हो चुका था। रायसाहव को अपनी तरफ़ से कुछ न कहना पड़ा। जान वच गयी।

उन्होंने पूछा—आपको इसकी क्योंकर ख़वर हुई?

'अभी-अभी रुद्रपाल ने लड़की के नाम एक पत्र भेजा है, जो उसने मुझे दे दिया।'

'आजकल के लड़कों में और तो कोई खूवी नज़र नहीं आती, वस, स्वच्छन्दता की सनक सवार है।'

'सनक तो है ही, मगर इसकी दवा मेरे पास है। मैं उस छोकरी को ऐसा ग़ायव कर दूं कि कहीं पता न लगेगा। दस-पांच दिन में यह सनक ठण्डी हो जायेगी। समझाने से कोई नतीजा नहीं।'

रायसाहव कांप उठे। उनके मन में भी इस तरह की वात आयी थी, लेकिन उन्होंने उसे आकार न लेने दिया था। संस्कार दोनों व्यक्तियों के एक-से थे। गुफावासी मनुष्य दोनों ही व्यक्तियों में जीवित था। रायसाहव ने उसे ऊपरी वस्त्रों से ढंक दिया था। राजा साहव में वह नग्न था। अपना वड़प्पन सिद्ध करने के उस अवसर को रायसाहव छोड़ न सके।

जैसे लज्जित होकर वोले—लेकिन यह वीसवीं सदी है, वारहवीं नहीं। रुद्रपाल के ऊपर इसकी क्या प्रतिक्रिया होगी, मैं नहीं कह सकता, लेकिन मानवता की दृष्टि से...

राजा साहव ने वात काटकर कहा—आप मानवता लिये फिरते हैं और यह नहीं देखते कि संसार में आज भी मनुष्य की पशुता ही उसकी मानवता पर विजय पा रही है। नहीं, राष्ट्रों में लड़ाइयां क्यों होतीं? पञ्चायतों से मामले न तय हो जाते? जव तक मनुष्य रहेगा, उसकी पशुता भी रहेगी।

छोटी-मोटी वहस छिड़ गयी और विवाद के रूप में आकर अन्त में वितण्डा वन गयी और राजा साहव नाराज़ होकर चले गये। दूसरे दिन रायसाहव ने भी नैनीताल को प्रस्थान किया। और उसके एक दिन वाद रुद्रपाल ने सरोज के साथ इंग्लैण्ड की राह ली। अव उनमें पिता-पुत्र का नाता न था। प्रतिद्वन्द्वी हो गये थे। मिस्टर तंखा अव रुद्रपाल के सलाहकार और पैरोकार थे। उन्होंने रुद्रपाल की तरफ़ से रायसाहव पर हिसाव-फ़हमी का दावा किया। रायसाहव पर दस लाख की डिग्री हो गयी। उन्हें डिग्री का इतना दुःख न था, जितना अपने अपमान का। अपमान से भी वढ़कर दुःख था जीवन की सञ्चित अभिलाषाओं के धूल में मिल जाने का और सवसे वड़ा दुःख था इस वात का कि अपने वेटे ने ही दग़ा दी। आज्ञाकारी पुत्र के पिता वनने का गौरव वड़ी निर्दयता के साथ उनके हाथ से छीन लिया गया था।

मगर अभी शायद उनके दुःख का प्याला भरा न था। जो कुछ कसर थी, वह लड़की और दामाद के सम्वन्ध-विच्छेद ने पूरी कर दी। साधारण हिन्दू वालिकाओं की तरह मीनाक्षी भी वेज़वान थी। वाप

ने जिसके साथ ब्याह कर दिया, उसके साथ चली गयी, लेकिन स्त्री-पुरुष में प्रेम न था, दिग्विजयसिंह ऐयाश भी थे, शराबी भी। मीनाक्षी भीतर-ही-भीतर कुढ़ती रहती थी। पुस्तकों और पत्रिकाओं से मन बहलाया करती थी। दिग्विजय की अवस्था तो तीस से अधिक न थी। पढ़ा-लिखा भी था, मगर बड़ा मगरूर, अपनी कुल-प्रतिष्ठा की डींग मारनेवाला, स्वभाव का निर्दयी और कृपण। गांव की नीच जाति की बहू-बेटियों पर डोरे डाला करता था। सोहवत भी नीचों की थी, जिनकी खुशामदों ने उसे और भी खुशामदपसन्द बना दिया था। मीनाक्षी ऐसे व्यक्ति का सम्मान दिल से न कर सकती थी। फिर पत्रों में स्त्रियों के अधिकारों की चर्चा पढ़-पढ़कर उसकी आंखें खुलने लगी थीं। वह जनाना क्लब में आने-जाने लगी। वहां कितनी ही शिक्षित ऊंचे कुल की महिलाएं आती थीं। उनमें वोट और अधिकार और स्वाधीनता और नारी-जागृति की खूब चर्चा होती थी, जैसे पुरुषों के विरुद्ध कोई षड्यन्त्र रचा जा रहा हो। अधिकतर वही देवियां थीं, जिनकी अपने पुरुषों से न पटती थी, जो नयी शिक्षा पाने के कारण पुरानी मर्यादाओं को तोड़ डालना चाहती थीं। कई युवतियां भी थीं, जो डिग्रियां ले चुकी थीं और विवाहित जीवन को आत्मसम्मान के लिए घातक समझकर नौकरियों की तलाश में थीं। उन्हीं में एक मिस सुलतान थीं, जो विलायत से बार-एट-ला होकर आयी थीं और यहां परदानशीन महिलाओं को क़ानूनी सलाह देने का व्यवसाय करती थीं। उन्हीं की सलाह से मीनाक्षी ने पति पर गुज़ारे का दावा किया। वह अव उसके घर में न रहना चाहती थी। गुज़ारे की मीनाक्षी को ज़रूरत न थी। मैके में वह वड़े आराम से रह सकती थी, मगर वह दिग्विजयसिंह के मुख में कालिख लगाकर यहां से जाना चाहती थी। दिग्विजयसिंह ने उस पर उलटा वदचलनी का आक्षेप लगाया। रायसाहव ने इस कलह को शान्त करने की भरसक बहुत चेष्टा की, पर मीनाक्षी अव पति की सूरत नहीं देखना चाहती थी। यद्यपि दिग्विजयसिंह का दावा खारिज हो गया और मीनाक्षी ने उस पर गुज़ारे की डिग्री पायी, मगर यह अपमान उसके जिगर में चुभता रहा। वह अलग एक कोठी में रहती थी, समष्टिवादी आन्दोलन में प्रमुख भाग लेती थी, पर वह जलन शान्त न होती थी।

एक दिन वह क्रोध में आकर हण्टर लिये दिग्विजयसिंह के बंगले पर पहुंची। शोहदे जमा थे और वेश्या का नाच हो रहा था। उसने रणचण्डी की भांति पिशाचों की इस चाण्डाल चौकड़ी में पहुंचकर तहलका मचा दिया। हण्टर खा-खाकर लोग इधर-उधर भागने लगे। उसके तेज के सामने वह नीच शोहदे क्या टिकते? जव दिग्विजयसिंह अकेले रह गये, तो उसने उन पर सड़ासड़ हण्टर जमाने शुरू किये और इतना मारा कि कुंवरसाहव बेदम हो गये। वेश्या अभी तक कोने में दुवकी खड़ी थी। उसका नम्वर आया। मीनाक्षी हण्टर तानकर जमाना ही चाहती थी कि वेश्या उनके पैरों पर गिर पड़ी और रोकर वोली—दुलहिनजी, आज आप मेरी जान वख़्श दें। मैं फिर कभी यहां न आऊंगी। मैं निरपराध हूं।

मीनाक्षी ने उसकी ओर घृणा से देखकर कहा—हां, तू निरपराध है। जानती है न, मैं कौन हूं! चली जा। अव कभी यहां न आना। हम स्त्रियां भोग-विलास की चीज़ें हैं ही, तेरा कोई दोष नहीं!

वेश्या ने उसके चरणों पर सिर रखकर आवेश में कहा—परमात्मा आपको सुखी रखे। जैसा आपका नाम सुनती थी, वैसा ही पाया।

'सुखी रहने से तुम्हारा क्या आशय है?'

'आप जो समझें महारानी जी!'

'नहीं, तुम वताओ।'

वेश्या के प्राण नखों में समा गये। कहां-से-कहां आशीर्वाद देने चली। जान वच गयी थी, चुपके से अपनी राह लेनी चाहिए थी, दुआ देने की सनक सवार हुई। अव कैसे जान वचे?

डरती-डरती वोली—हुजूर का एकवाल वढ़े, नाम वढ़े।

मीनाक्षी मुस्करायी--हां, ठीक है।

वह आकर अपनी कार में वैठी, हाकिम-ज़िला के वंगले पर पहुंचकर इस काण्ड की सूचना दी और अपनी कोठी में चली आयी। तव से स्त्री-पुरुष दोनों एक-दूसरे के खून के प्यासे थे। दिग्विजयसिंह रिवाल्वर लिये उसकी ताक में फिरा करते और वह भी अपनी रक्षा के लिए दो पहलवान ठाकुरों को अपने साथ लिये रहती थी और रायसाहव ने सुख का जो स्वर्ग वनाया था, उसे अपनी ज़िन्दगी में ही ध्वंस होते देख रहे थे और अव संसार से निराश होकर उनकी आत्मा अन्तर्मुखी होती जाती थी। अव तक अभिलाषाओं से जीवन के लिए प्रेरणा मिलती रहती थी। उधर का रास्ता वन्द हो जाने पर उनका मन ही आप भक्ति की ओर झुका, जो अभिलाषाओं से कहीं वढ़कर सत्य था। जिस नयी जायदाद के आसरे पर क़र्ज़ लिये थे, वह जायदाद क़र्ज़ की पुरौती किये विना ही हाथ से निकल गयी थी और वह वोझ सिर पर लदा हुआ था। मिनिस्ट्री से ज़रूर अच्छी रक़म मिलती थी, मगर वह सारी-की-सारी उस मर्यादा का पालन करने में ही उड़ जाती थी और रायसाहव को अपना राजसी ठाठ निभाने के लिए वही असामियों पर इज़ाफ़ा और वेदख़ली और नज़राना करना और लेना पड़ता था, जिससे उन्हें घृणा थी। वह प्रजा को कष्ट न देना चाहते थे। उनकी दशा पर उन्हें दया आती थी, लेकिन ज़रूरतों से हैरान थे।

मुश्किल यह थी कि उपासना और भक्ति में भी उन्हें शान्ति न मिलती थी। वह मोह को छोड़ना चाहते थे, पर मोह उन्हें न छोड़ता था और इस खींच-तान में उन्हें अपमान, ग्लानि और अशान्ति से छुटकारा न मिलता था। और जव आत्मा में शान्ति नहीं, तो देह कैसे स्वस्थ रहती? नीरोग रहने का सव उपाय करने पर भी एक-न-एक वाधा गले पड़ी रहती थी। रसोई में भी सभी तरह के पकवान वनते थे, पर उनके लिए वही मूंग की दाल और फुलके थे। अपने और भाइयों को देखते थे, जो उनसे भी ज़्यादा मक़रूज़, अपमानित और शोकग्रस्त थे, जिनके भोग-विलास में, ठाठ-बाट में किसी तरह की कमी न थी, मगर इस तरह की वेहयाई उनके वस में न थी। उनके मन के ऊंचे संस्कारों का ध्वंस न हुआ था। परपीड़ा, मक्कारी, निर्लज्जता और अत्याचार को वह ताल्लुक़ेदारी की शोभा और रोव-दाव का नाम देकर अपनी आत्मा को सन्तुष्ट कर सकते थे, और यही उनकी सवसे वड़ी हार थी।

:32:

मिर्ज़ा ख़ुर्शेद ने अस्पताल से निकलकर एक नया काम शुरू कर दिया था। निश्चित वैठना उनके स्वभाव में न था। यह काम क्या था? नगर की वेश्याओं की एक नाटक-मण्डली वनाना। अपने अच्छे दिनों में उन्होंने खूव ऐयाशी की थी और इन दिनों अस्पताल के एकान्त में घावों की पीड़ाएं सहते-सहते उनकी आत्मा निष्ठावान् हो गयी थी। उस जीवन की याद करके उन्हें गहरी मनोव्यथा होती थी। उस वक़्त अगर उन्हें समझ होती, तो वह प्राणियों का कितना उपकार कर सकते थे, कितनों के शोक और दरिद्रता का भार हलका कर सकते थे, मगर वह धन उन्होंने ऐयाशी में उड़ाया। यह कोई नया आविष्कार नहीं है कि संकटों में ही हमारी आत्मा को जागृति मिलती है। वुढ़ापे में कौन अपनी जवानी की भूलों पर दुखी नहीं होता? काश, वह समय ज्ञान या शक्ति के सञ्चय में लगाया होता, सुकृतियों का कोष भर लिया होता, तो आज चित्त को कितनी शान्ति मिलती? वहीं उन्हें इसका वेदनामय अनुभव हुआ कि संसार में कोई अपना नहीं, कोई उनकी मौत पर आंसू वहानेवाला नहीं। उन्हें रह-रहकर जीवन की एक पुरानी घटना याद आती थी। वसरे के एक गांव में जव वह कैम्प में मलेरिया से ग्रस्त पड़े थे, एक ग्रामीण वाला ने उनकी तीमारदारी कितने आत्मसमर्पण से की थी। अच्छे हो जाने पर जव उन्होंने रुपये और आभूषणों से उसके एहसानों का वदला देना चाहा था, तो उसने किस तरह आंखों में आंसू भरकर सिर नीचा कर लिया था और उन उपहारों को लेने से

इनकार कर दिया था।

इन नर्सों की शुश्रूषा में नियम है, व्यवस्था है, सचाई है, मगर वह प्रेम कहां, वह तन्मयता कहां, जो उस बाला की अभ्यासहीन, अल्हड़ सेवाओं में थी? वह अनुराग-मूर्ति कब की उनके दिल से [illegible] चुकी थी। वह उससे फिर आने का वादा करके कभी उसके पास न गये। विलास के उन्माद में [illegible] उसकी याद ही न आयी। आयी भी, तो उसमें केवल दया थी, प्रेम न था। मालूम नहीं, [illegible] क्या गुज़री? मगर आजकल उसकी वह आतुर, नम्र, शान्त, सरल मुद्रा बराबर उनकी आंखों के सामने फिरा करती थी। काश, उससे विवाह कर लिया होता, तो आज जीवन में [illegible] और उसके प्रति अन्याय के दुःख ने उस सम्पूर्ण वर्ग को उनकी सेवा और [illegible] दिया। जब तक नदी बाढ़ पर थी, उसके गंदले, तेज़, फेनिल प्रवाह में [illegible] जाती थीं। अब प्रवाह स्थिर और शान्त हो गया था और रश्मियां उसकी तह तक पहुंच रही थीं।

मिर्ज़ा साहब वसन्त की इस शीतल सन्ध्या में अपने झोंपड़े के [illegible] बैठे कुछ बातचीत कर रहे थे कि मिस्टर मेहता पहुंचे। मिर्ज़ा ने बड़े [illegible] बोले—मैं तो आपकी ख़ातिरदारी का सामान लिये आपकी राह देख रहा हूं।

दोनों सुन्दरियां मुसकरायीं। मेहता कट गये।

मिर्ज़ा ने दोनों औरतों को वहां से चले जाने का संकेत किया और [illegible] हुए बोले—मैं तो खुद आपके पास आनेवाला था। मुझे ऐसा [illegible] रहा हूं, वह आपकी मदद के बग़ैर पूरा न होगा। आप सिर्फ़ [illegible] ललकारते जाइये—हां मिर्ज़ा, बढ़े चल पट्ठे।

मेहता ने हंसकर कहा—आप जिस काम में हाथ [illegible] मदद की ज़रूरत न होगी। आपकी उम्र मुझसे [illegible] छोटे-से-छोटे आदमियों पर अपना असर डाल सकते [illegible] मैंने खुदा जाने क्या किया होता।

मिर्ज़ा साहब ने थोड़े-से शब्दों में अपनी [illegible] के बाज़ार में वही स्त्रियां आती हैं, जिन्हें या तो [illegible] मिलता, या जो आर्थिक कष्टों से मजबूर हो जाती हैं और [illegible] बहुत कम औरतें इस भांति पतित हों।

मेहता ने अन्य विचारवान् सज्जनों की [illegible] ख़याल था कि मुख्यतः मन के संस्कार और [illegible] बात पर दोनों मित्रों में बहस छिड़ गयी। दोनों [illegible]

मेहता ने मुट्ठी बांधकर हवा में पटकते हुए [illegible] किया। रोज़ी के लिए और बहुत से ज़रिये हैं। [illegible] दुनिया के अच्छे-से-अच्छे पदार्थ [illegible] डाली जाये, इस तरह की मण्डली से कोई [illegible]

मिर्ज़ा ने मूंछें खड़ी कीं और [illegible] सभी आदमियों के लिए एक-सा नहीं है। [illegible] झोंपड़ी का सवाल है। एक [illegible] आदमी महज़ रोटी नहीं [illegible] प्रश्न तरह-तरह की सूरतों में [illegible]

डॉक्टर मेहता [illegible] नहीं, केवल शब्दों का [illegible]

बोले—मुआफ़ कीजिये, मिर्ज़ा साहब, जब तक दुनिया में दौलतवाले रहेंगे, वेश्याएं भी रहेंगी। मण्डली अगर सफल भी हो जाये, हालांकि मुझे उसमें बहुत सन्देह है, तो आप दस-पांच औरतों से ज़्यादा उनमें कभी न ले सकेंगे, और वह भी थोड़े दिनों के लिए। सभी औरतों में नाट्य करने की शक्ति नहीं होती, उसी तरह जैसे सभी आदमी कवि नहीं हो सकते। और यह भी मान लें कि वेश्याएं आपकी मण्डली में स्थायी रूप से टिक जायेंगी, तो भी बाज़ार में उनकी जगह ख़ाली न रहेगी। जड़ पर जब तक कुल्हाड़े न चलेंगे, पत्तियां तोड़ने से कोई नतीजा नहीं। दौलतवालों में कभी-कभी ऐसे लोग निकल आते हैं, जो सब कुछ त्यागकर खुदा की याद में जा बैठते हैं, मगर दौलत का राज्य बदस्तूर क़ायम है। उसमें ज़रा भी कमज़ोरी नहीं आने पायी।

मिर्ज़ा को मेहता की हठधर्मी पर दुःख हुआ। इतना पढ़ा-लिखा विचारवान् आदमी इस तरह की बातें करे! समाज की व्यवस्था क्या आसानी से बदल जायेगी? वह तो सदियों का मुआमला है। तब तक क्या यह अनर्थ होने दिया जाये? क्यों न शेर को पिंजरे में बन्द कर दिया जाये कि वह दांत और नाखून होते हुए भी किसी को हानि न पहुंचा सके। क्यों उस वक़्त तक चुपचाप बैठा रहा जाये, जब तक शेर अहिंसा का व्रत न ले ले? दौलतवाले और जिस तरह चाहें अपनी दौलत उड़ायें, धर्मशालाएं और मस्जिदें खड़ी करें, उन्हें कोई परवाह नहीं। अबलाओं की ज़िन्दगी न ख़राब करें। यह मिर्ज़ा नहीं देख सकते। वह रूप के बाज़ार को ऐसा ख़ाली कर देंगे कि दौलतवालों की अशर्फ़ियों पर कोई थूकनेवाला भी न मिले। क्या जिन दिनों शराब की दुकानों की पिकेटिंग होती थी, अच्छे-अच्छे शराबी पानी पी-पीकर दिल की आग नहीं बुझाते थे?

मेहता ने मिर्ज़ा की बेवुकूफ़ी पर हंसकर कहा—आपको मालूम होना चाहिए कि दुनिया में ऐसे मुल्क़ भी हैं, जहां वेश्याएं नहीं हैं। मगर अमीरों की दौलत वहां भी दिलचस्पियों के सामान पैदा कर लेती है।

मिर्ज़ाजी भी मेहता की जड़ता पर हंसे—जानता हूं मेहरबान, जानता हूं। आपकी दुआ से दुनिया देख चुका हूं, मगर यह हिन्दुस्तान है, यूरोप नहीं है।

'इंसान का स्वभाव सारी दुनिया में एक-सा है।'

'मगर यह भी मालूम रहे कि हरएक क़ौम में एक चीज़ होती है, जिसे उसकी आत्मा कह सकते हैं। असमत (सतीत्व) हिन्दुस्तानी तहज़ीब की आत्मा है।'

'अपने मुंह मियां-मिट्ठू बन लीजिये।'

'दौलत की आप इतनी बुराई करते हैं, फिर भी खन्ना की हिमायत करते नहीं थकते। न कहियेगा।'

मेहता का तेज विदा हो गया। नम्र भाव से बोले—मैंने खन्ना की हिमायत उस वक़्त की है, जब वह दौलत के पंजे से छूट गये हैं। और आजकल उनकी हालत आप देखें, तो आपको दया आयेगी। और मैं क्या हिमायत करूंगा, जिसे अपनी किताबों और विद्यालय से छुट्टी नहीं, ज़्यादा-से-ज़्यादा सूखी हमदर्दी ही तो कर सकता हूं। हिमायत की है मिस मालती ने कि खन्ना को बचा लिया। इंसान के दिल की गहराइयों में त्याग और कुर्बानी की कितनी ताक़त छिपी होती है, इसका मुझे अब तक तजुर्बा न हुआ था। आप भी एक दिन खन्ना से मिल आइये। फूले न समाइयेगा। इस वक़्त उन्हें जिस चीज़ की सबसे ज़्यादा ज़रूरत है, वह हमदर्दी है।

मिर्ज़ा ने जैसे अपनी इच्छा के विरुद्ध कहा—आप कहते हैं, तो जाऊंगा। आपके साथ जहन्नुम में जाने में भी मुझे उज्र नहीं, मगर मिस मालती से तो आपकी शादी होने वाली थी। बड़ी गरम ख़बर थी।

मेहता ने झेंपते हुए कहा—तपस्या कर रहा हूं। देखिये, कब वरदान मिले।

'अजी, वह तो आप पर मरती थी।'

'मुझे भी यही वहम हुआ था, मगर जब मैंने हाथ बढ़ाकर उसे पकड़ना चाहा, तो देखा [illegible] आसमान में जा बैठी है। उस ऊंचाई तक तो क्या मैं पहुंचूंगा, आरज़ू-मिन्नत कर रहा हूं कि नीचे [illegible] जाये। आजकल तो वह मुझसे बोलती भी नहीं।'

यह कहते हुए मेहता ज़ोर से रोती हुई हंसी हंसे और उठ खड़े हुए।

मिर्ज़ा ने पूछा—अब फिर कब मुलाक़ात होगी?

'अबकी आपको तकलीफ़ करनी पड़ेगी। खन्ना के पास जाइयेगा ज़रूर!'

'जाऊंगा।'

मिर्ज़ा ने खिड़की से मेहता को जाते देखा। चाल में वह तेज़ी न थी, जैसे किसी चिन्ता में डूबे हुए हों!

:33:

डॉक्टर मेहता परीक्षक से परीक्षार्थी हो गये हैं। मालती से दूर-दूर रहकर उन्हें ऐसी शंका होने लगी कि उसे खो न बैठें। कई महीनों से मालती उनके पास न आयी थी और जब वह विफल होकर उसके घर गये, तो मुलाक़ात न हुई। जिन दिनों रुद्रपाल और सरोज का प्रेमकाण्ड चलता रहा, तब तो मालती उनकी सलाह लेने प्रायः एक-दो बार रोज़ आती थी, पर जब से दोनों इंग्लैण्ड चले गये थे, उसका आना-जाना बन्द हो गया था। घर पर भी मुश्किल से मिलती। ऐसा मालूम होता था, जैसे वह उनसे बचती है, जैसे बलपूर्वक अपने मन को उनकी ओर से हटा लेना चाहती है। जिस पुस्तक में वह इन दिनों लगे हुए थे, वह आगे बढ़ने से इनकार कर रही थी, जैसे उनका मनोयोग लुप्त हो गया हो।

गृह-प्रबन्ध में तो वह कभी बहुत कुशल न थे। सब मिलाकर एक हज़ार रुपये से अधिक महीने में कमा लेते थे, मगर बचत एक धेले की भी न होती थी। रोटी-दाल खाने के सिवा और उनके हाथ कुछ न था। तकल्लुफ़ अगर कुछ था, तो वह उनकी कार थी, जिसे वह खुद ड्राइव करते थे। कुछ रुपये किताबों में उड़ जाते थे, कुछ चन्दों में, कुछ ग़रीब छात्रों की परवरिश में और अपने बाग़ की सजावट में, जिससे उन्हें इश्क़-सा था। तरह-तरह के पौधे और वनस्पतियां विदेशों से [illegible] मंगाना और उनको पालना, यही उनका मानसिक चटोरपन था या इसे दिमाग़ी [illegible] कहें, [illegible] इधर कई महीनों से उस बग़ीचे की ओर से भी वह कुछ विरक्त-से हो रहे थे [illegible] और भी बदतर हो गया था। खाते दो फुलके और ख़र्च हो जाते सौ से ऊपर। [illegible] थी, मगर इसी पर उन्होंने कड़ाके का जाड़ा काट दिया। नयी अचकन [illegible] थी। कभी-कभी बिना घी की दाल खाकर उठना पड़ता था। कब घी का [illegible] उन्हें याद ही न थी, और महाराज से पूछें भी तो कैसे? वह समझेगा नहीं [illegible] जा रहा है? आख़िर एक दिन जब तीन निराशाओं के बाद [illegible] उसने इनकी यह हालत देखी, तो उससे न रहा गया। बोली—तुम [illegible] यह अचकन पहनते तुम्हें शर्म भी नहीं आती?

मालती उनकी पत्नी न होकर भी उनके इतने [illegible] किया, जैसे अपने किसी आत्मीय से करती।

मेहता ने बिना झेंपे हुए कहा—क्या करूं मालती, [illegible]

मालती को अचरज हुआ—तुम एक [illegible] बनवाने को भी पैसे नहीं? मेरी आमदनी [illegible] गृहस्थी चलाती हूं और कुछ बचा लेती हूं। [illegible]

'मैं एक पैसा भी फ़ालतू नहीं ख़र्च करता [illegible]

'अच्छा, मुझसे रुपये ले जाओ [illegible]

मेहता ने लज्जित होकर कहा—अब की वनवा लूंगा। सच कहता हूं।'

'अव आप यहां आयें, तो आदमी वनकर आयें।'

'यह तो वड़ी कड़ी शर्त है।'

'कड़ी सही। तुम जैसों के साथ विना कड़ाई किये काम नहीं चलता।'

मगर वहां तो सन्दूक़ ख़ाली था और किसी दुकान पर वे-पैसे जाने का साहस न पड़ता था। मालती के घर जायें, तो कौन मुंह लेकर? दिल में तड़प-तड़पकर रह जाते थे। एक दिन नयी विपत्ति आ पड़ी। इधर कई महीने से मकान का किराया नहीं दिया था। पचहत्तर रुपये माहवार वढ़ते जाते थे। मकानदार ने जव वहुत तक़ाज़े करने पर भी रुपये वसूल न कर पाये, तो नोटिस दे दी, मगर नोटिस रुपये गढ़ने का कोई जन्तर तो है नहीं। नोटिस की तारीख़ निकल गयी और रुपये न पहुंचे। तव मकानदार ने मजवूर होकर नालिश कर दी। वह जानता था, मेहताजी वड़े सज्जन और परोपकारी पुरुष हैं, लेकिन इससे ज़्यादा भलमनसी वह क्या करता कि छः महीने वैठा रहा। मेहता ने किसी तरह की पैरवी न की, एकतरफ़ा डिग्री हो गयी, मकानदार ने तुरन्त डिग्री जारी करायी और कुर्कअमीन मेहता साहव के पास पूर्व सूचना देने आया, क्योंकि उसका लड़का यूनिवर्सिटी में पढ़ता था और उसे मेहता कुछ वज़ीफ़ा भी देते थे। संयोग से उस वक्त मालती भी वैठी थी।

वोली—कैसी कुर्की है? किस वात की?

अमीन ने कहा—वही किराये की डिग्री जो हुई थी। मैंने कहा हुजूर को इत्तला दे दूं। चार-पांच सौ का मामला है, कौन-सी वड़ी रक़म है। दस दिन में भी रुपये दे दीजिये, तो कोई हरज नहीं। मैं महाजन को दस दिन तक उलझाये रहूंगा।

जव अमीन चला गया, तो मालती ने तिरस्कार-भरे स्वर से पूछा—अब यहां तक नौवत पहुंच गयी? मुझे आश्चर्य होता है कि तुम इतने मोटे-मोटे ग्रन्थ कैसे लिखते हो? मकान का किराया छः-छः महीने से वाक़ी पड़ा है और तुम्हें ख़वर नहीं?'

मेहता लज्जा से सिर झुकाकर वोले—ख़बर क्यों नहीं है, लेकिन रुपये वचते ही नहीं। मैं एक पैसा भी व्यर्थ नहीं ख़र्च करता।

'कोई हिसाव-किताब भी लिखते हो?'

'हिसाव क्यों नहीं रखता? जो कुछ पाता हूं, वह सव दर्ज करता जाता हूं, नहीं इनकमटैक्स वाले ज़िन्दा न छोड़ें।'

'और जो कुछ ख़र्च करते हो वह?'

'उसका तो कोई हिसाव नहीं रखता।'

'क्यों?'

'कौन लिखे? वोझ-सा लगता है।'

'और यह पोथे कैसे लिख डालते हो?'

'उसमें तो विशेष कुछ नहीं करना पड़ता। क़लम लेकर वैठ जाता हूं। हर वक्त ख़र्च का खाता तो खोलकर नहीं वैठता।'

'तो रुपये कैसे अदा करोगे?'

'किसी से क़र्ज़ ले लूंगा। तुम्हारे पास हों, तो दे दो।'

'मैं तो एक ही शर्त पर दे सकती हूं। तुम्हारी आमदनी सव मेरे हाथों में आये और ख़र्च भी मेरे हाथों से हो।'

मेहता प्रसन्न होकर वोले—वाह, अगर यह भार ले लो, तो क्या कहना, मूसलों ढोल वजाऊं।

मालती ने डिग्री के रुपये चुका दिये और दूसरे ही दिन मेहता को वह वंगला ख़ाली करने पर मजवूर किया। अपने वंगले में उसने उनके लिए दो वड़े-वड़े कमरे दे दिये। उनके भोजन आदि का

प्रबन्ध भी अपनी ही गृहस्थी में कर दिया। मेहता के पास और सामान तो ज़्यादा न था, मगर किताबें कई गाड़ी थीं। उनके दोनों कमरे पुस्तकों से भर गये। अपना बग़ीचा छोड़ने का उन्हें ज़रूर क़लक़ हुआ, लेकिन मालती ने अपना पूरा अहाता उनके लिए छोड़ दिया कि जो फूल-पत्तियां चाहें, लगायें।

मेहता तो निश्चिन्त हो गये, लेकिन मालती को उनकी आय-व्यय पर नियन्त्रण करने में बड़ी मुश्किल का सामना करना पड़ा। उसने देखा, आय तो एक हज़ार से ज़्यादा है, मगर वह सारी-की-सारी गुप्तदान में उड़ जाती है। बीस-पच्चीस लड़के उन्हीं से वज़ीफ़ा पाकर विद्यालय में पढ़ रहे थे। विधवाओं की तादाद भी इससे कम न थी। इस ख़र्च में कैसे कमी करे, यह उसे न सूझता था। सारा दोष उसी के सिर मढ़ा जायेगा, सारा अपयश उसी के हिस्से पड़ेगा। कभी मेहता पर झुंझलाती, कभी अपने ऊपर, कभी प्रार्थियों के ऊपर, जो एक सरल, उदार प्राणी पर अपना भार रखते ज़रा भी न सकुचाते थे। यह देखकर और भी झुंझलाहट होती थी कि इन दान लेनेवालों में कुछ तो इसके पात्र ही न थे। एक दिन उसने मेहता को आड़े हाथों लिया।

मेहता ने आक्षेप सुनकर निश्चिन्त भाव से कहा—तुम्हें अख़्तियार है, जिसे चाहे दो, चाहे न दो। मुझसे पूछने की कोई ज़रूरत नहीं। हां, जवाब भी तुम्हीं को देना पड़ेगा।

मालती ने चिढ़कर कहा—हां, और क्या, यश तो तुम लो, अपयश मेरे सिर मढ़ो। मैं नहीं समझती, तुम किस तर्क से इस दान-प्रथा का समर्थन कर सकते हो। मनुष्य-जाति को इस प्रथा ने जितना आलसी और मुफ़्तख़ोर बनाया है और उसके आत्मगौरव पर जैसा आघात किया है, उतना अन्याय ने भी न किया होगा, बल्कि मेरे ख़याल में अन्याय ने मनुष्य-जाति में विद्रोह की भावना उत्पन्न करके समाज का बड़ा उपकार किया है।

मेहता ने स्वीकार किया—मेरा भी यही ख़याल है।

'तुम्हारा यह ख़याल नहीं है।'

'नहीं मालती, मैं सच कहता हूं।'

'तो विचार और व्यवहार में इतना भेद क्यों?'

मालती ने तीसरे महीने बहुतों को निराश किया। किसी को साफ़ जवाब दिया, किसी से मजबूरी जतायी, किसी की फ़जीहत की।

मिस्टर मेहता का बजट तो धीरे-धीरे ठीक हो गया, मगर इससे उनको एक प्रकार की [illegible] हुई। मालती ने जब तीसरे महीने में तीन सौ की बचत दिखायी, तब वह उससे कुछ बोले नहीं, मगर उनकी दृष्टि में उसका गौरव कुछ कम अवश्य हो गया। नारी में दान और त्याग होना चाहिए। [illegible] यह सबसे बड़ी विभूति है। इसी आधार पर समाज का भवन खड़ा है। वणिक्बुद्धि को वह [illegible] बुराई ही समझते थे।

जिस दिन मेहता की अचकनें बनकर आयीं और नयी घड़ी आयी, वह संकोच के [illegible] बाहर न निकले। आत्मसेवा से बड़ा उनकी नज़र में दूसरा अपराध न था।

मगर रहस्य की बात यह थी कि मालती उनको तो लेखे-ड्योढ़े में [illegible] उनके धन-दान के द्वार बन्द कर देना चाहती थी, पर ख़ुद जीवन-दान [illegible] सदाशयता को दोनों हाथों से लुटाती थी। अमीरों के घर तो वह बिना फ़ीस [illegible] ग़रीबों को मुफ़्त देखती थी, मुफ़्त दवा भी देती थी। दोनों में अन्तर [illegible] भी थी और बाहर की भी, मेहता केवल बाहर के थे, घर उनके [illegible] चाहते थे। मेहता का रास्ता साफ़ था। उन पर अपनी ज़ात के [illegible] मालती का रास्ता कठिन था, उस पर दायित्व था, बन्धन था, [illegible] चाहती थी। उस बन्धन में ही उसे जीवन की प्रेरणा मिलती [illegible] यह अनुभव हो रहा था कि वह खुले जंगल में [illegible]

और वन्द कर देगी तो वह काटने और नोचने दौड़ेगा। पिंजरे में सव तरह का सुख मिलने पर भी उसके प्राण सदैव जंगल के लिए ही तड़पते रहेंगे। मेहता के लिए घरवारी दुनिया एक अनजानी दुनिया थी, जिसकी रीति-नीति से वह परिचित न थे।

उन्होंने संसार को वाहर से देखा था और उसे मक्र और फ़रेव से ही भरा समझते थे। जिधर देखते थे, उधर ही बुराइयां नज़र आती थीं, मगर समाज में जव गहराई में जाकर देखा, तो उन्हें मालूम हुआ कि इन बुराइयों के नीचे त्याग भी है, प्रेम भी है, धैर्य भी है, मगर यह भी देखा कि वह विभूतियां हैं तो ज़रूर, पर दुर्लभ हैं और इस शंका और सन्देह में जव मालती का अन्धकार से निकलता हुआ देवी-रूप उन्हें नज़र आया, तव वह उसकी ओर उतावलेपन के साथ, सारा धैर्य खोकर टूटे और चाहा कि उसे ऐसे जतन से छिपाकर रखें कि किसी दूसरे की आंख भी उस पर न पड़े। यह ध्यान न रहा कि मोह ही विनाश की जड़ है। प्रेम जैसी निर्मम वस्तु क्या भय से वांधकर रखी जा सकती है? वह तो पूरा विश्वास चाहती है, पूरी स्वाधीनता चाहती है, पूरी ज़िम्मेदारी चाहती है। उसके पल्लवित होने की शक्ति उसके अन्दर है। उसे प्रकाश और क्षेत्र मिलना चाहिए। वह कोई दीवार नहीं है, जिस पर ऊपर से ईंटें रखी जाती हैं। उसमें तो प्राण है, फैलने की असीम शक्ति है।

जव से मेहता इस वंगले में आये हैं, उन्हें मालती से दिन में कई बार मिलने का अवसर मिलता है। उनके मित्र समझते हैं, यह उनके विवाह की तैयारियां हैं। केवल रस्म अदा करने की देर है। मेहता भी यही स्वप्न देखते रहते हैं। अगर मालती ने उन्हें सदा के लिए ठुकरा दिया होता, तो क्यों उन पर इतना स्नेह रखती? शायद वह उन्हें सोचने का अवसर दे रही है और वह खूव सोचकर इसी निश्चय पर पहुंचे हैं कि मालती के विना वह आधे हैं। वही उन्हें पूर्णता की ओर ले जा सकती है। वाहर से वह विलासिनी है, भीतर से वही मनोवृत्ति शक्ति का केन्द्र है, मगर परिस्थिति बदल गयी है। तव मालती प्यासी थी, अव मेहता प्यास से विकल हैं। और एक बार जवाब पा जाने के बाद उन्हें उस प्रश्न पर मालती को समीप से देखकर उनका आकर्षण वढ़ता ही जाता है। दूर से पुस्तक के जो अक्षर लिपे-पुते लगते थे, समीप से वह स्पष्ट हो गये हैं, उनमें अर्थ है, सन्देश है।

इधर मालती ने अपने वाग़ के लिए गोवर को माली रख लिया था। एक दिन वह किसी मरीज़ को देखकर आ रही थी कि रास्ते में पेट्रोल न रहा। वह ख़ुद ड्राइव कर रही थी। फ़िक्र हुई, पेट्रोल कैसे आये? रात के नौ वज गये थे और माघ का जाड़ा पड़ रहा था। सड़कों पर सन्नाटा हो गया था। कोई ऐसा आदमी नज़र न आता था, जो कार को ढकेलकर पेट्रोल की दुकान तक ले जाये। वार-वार नौकर पर झुंझला रही थी। हरामख़ोर कहीं का, वेख़बर पड़ा रहता है।

संयोग से गोवर उधर से आ निकला। मालती को खड़े देखकर उसने हालत समझ ली और गाड़ी को दो फर्लांग ठेलकर पेट्रोल की दुकान तक लाया।

मालती ने प्रसन्न होकर पूछा—नौकरी करोगे?

गोवर ने धन्यवाद के साथ स्वीकार किया। पन्द्रह रुपये वेतन तय हुआ। माली का काम उसे पसन्द था। यही काम उसने किया था और उसमें मंजा हुआ था। मिल की मजूरी में वेतन ज़्यादा मिलता था, पर उस काम से उसे उलझन होती थी।

दूसरे दिन गोवर ने मालती के यहां काम शुरू कर दिया। उसे रहने को एक कोठरी भी मिल गयी। झुनिया भी आ गयी। मालती वाग़ में आती, तो उसे झुनिया का वालक धूल-मिट्टी में खेलता मिलता। एक दिन मालती ने उसे एक मिठाई दे दी। वच्चा उस दिन से परच गया। उसे देखते ही उसके पीछे लग जाता और जव तक मिठाई न ले लेता, उसका पीछा न छोड़ता।

एक दिन मालती वाग़ में आयी, तो वालक न दिखाई दिया। झुनिया से पूछा, तो मालूम हुआ वच्चे को ज्वर आ गया है।

मालती ने घवराकर कहा—ज्वर आ गया, तो मेरे पास क्यों नहीं लायी? चल देखूं।

वालक खटोले पर ज्वर में अचेत पड़ा था। खपरैल की उस कोठरी में इतनी सील, इतना अंधेरा और इस ठण्ड के दिनों में भी इतने मच्छर कि मालती एक मिनट भी वहां न ठहर सकी, तुरन्त आकर थर्मामीटर लिया और फिर जाकर देखा, एक सौ चार था। मालती को भय हुआ, कहीं चेचक न हो। वच्चे को अभी तक टीका नहीं लगा था और अगर इस सीली कोठरी में रहा, तो भय था, कहीं ज्वर और न वढ़ जाये।

सहसा वालक ने आंखें खोल दीं और मालती को खड़ी पाकर करुण नेत्रों से उसकी ओर देखा और उसकी गोद के लिए हाथ फैलाये। मालती ने उसे गोद में उठा लिया और थपकियां देने लगी।

वालक मालती की गोद में आकर जैसे किसी वड़े सुख का अनुभव करने लगा। अपनी जलती हुई उंगलियों से उसके गले में मोतियों की माला पकड़कर अपनी ओर खींचने लगा। मालती ने नेकलेस उतारकर उसके गले में डाल दी। वालक की स्वार्थी प्रकृति इस दशा में भी सजग थी। नेकलेस पाकर अव उसे मालती की गोद में रहने की ज़रूरत न रही। यहां उसके छिन जाने का भय था। झुनिया की गोद इस समय ज़्यादा सुरक्षित थी।

मालती ने खिले हुए मन से कहा—वड़ा चालाक है। चीज़ लेकर कैसा भागा?

झुनिया ने कहा—दे दो वेटा, मेम साहव का है।

वालक ने हार को दोनों हाथों से पकड़ लिया और मां की ओर रोष से देखा।

मालती बोली—तुम पहने रहो वच्चा, मैं मांगती नहीं हूं।

उसी वक्त वंगले में आकर उसने अपना वैठक का कमरा ख़ाली कर दिया और उसी वक्त झुनिया उस नये कमरे में डट गयी।

मंगल ने उस स्वर्ग को कुतूहल-भरी आंखों से देखा। छत में पंखा था, रंगीन वल्व थे, दीवारों पर तस्वीरें थीं। देर तक उन चीज़ों को टकटकी लगाये देखता रहा। मालती ने वड़े प्यार से पुकारा—मंगल!

मंगल ने मुस्कराकर उसकी ओर देखा, जैसे कह रहा हो—आज तो हंसा नहीं जाता मेमसाहव? क्या करूं? आपसे कुछ हो सके, तो कीजिये।

मालती ने झुनिया को वहुत-सी वातें समझायीं और चलते-चलते पूछा—तेरे घर में कोई दूसरी औरत हो, तो गोवर से कह दे, दो-चार दिन के लिए वुला लाये। मुझे चेचक का डर है, कितनी दूर है तेरा घर?

झुनिया ने अपने गांव का नाम और पता वताया। अन्दाज़ से अट्ठारह-वीस कोस होगा।

मालती को वेलारी याद था। वोली—वही गांव तो नहीं, जिसके पच्छिम तरफ़ आध मील पर नदी है?

'हां-हां मेमसाहव, वही गांव है। आपको कैसे मालूम?'

'एक वार हम लोग उस गांव में गये थे। होरी के घर ठहरे थे। तू उसे जानती है?'

'वह तो मेरे ससुर हैं, मेमसाहव। मेरी सास भी मिली होंगी?'

'हां-हां, वड़ी समझदार औरत मालूम होती थी। मुझसे खूव वातें करती रही। तो गोवर को भेज दे, अपनी मां को वुला लाये।'

'वह उन्हें वुलाने नहीं जायेंगे।'

'क्यों?'

'कुछ ऐसा कारन है।'

झुनिया को अपने घर का चौका-वरतन, झाड़ू-वुहारी, रोटी-पानी सभी कुछ करना पड़ता। दिन को तो दोनों चना-चवेना खाकर रह जाते, रात को जव मालती आ जाती, तो झुनिया अपना खाना पकाती और मालती वच्चे के पास वैठती। वह वार-वार चाहती कि वच्चे के पास वैठे, लेकिन

मालती उसे न आने देती। रात को वच्चे का ज्वर तेज़ हो जाता और वह वेचैन होकर दोनों हाथ ऊपर उठा लेता। मालती उसे गोद में लेकर घण्टों कमरे में टहलती। चौथे दिन उसे चेचक निकल आयी। मालती ने सारे घर को टीका लगाया, खुद टीका लगवाया, मेहता को भी लगाया। गोवर, झुनिया, महाराज, कोई न वचा। पहले दिन तो दाने छोटे थे और अलग-अलग थे। जान पड़ता था, छोटी माता हैं। दूसरे दिन, जैसे खिल उठे और अंगूर के दाने के वरावर हो गये और फिर कई-कई दाने मिलकर वड़े-वड़े आंवले जैसे हो गये।

मंगल जलन और खुजली और पीड़ा से वेचैन होकर करुण स्वर में कराहता और दीन-असहाय नेत्रों से मालती की ओर देखता। उसका कराहना भी प्रौढ़ों का-सा था और दृष्टि में भी प्रौढ़ता थी, जैसे वह एकाएक जवान हो गया हो। इस असह्य वेदना ने मानो उसके अवोध शिशुपन को मिटा डाला हो। उसकी शिशु-वुद्धि मानो सज्ञान होकर समझ रही थी कि मालती ही के जतन से वह अच्छा हो सकता है। मालती ज्यों ही किसी काम से चली जाती, वह रोने लगता। मालती के आते ही चुप हो जाता। रात को उसकी वेचैनी वढ़ जाती और मालती को प्रायः सारी रात वैठना पड़ जाता, मगर वह न कभी झुंझलाती, न चिढ़ती। हां, झुनिया पर उसे कभी-कभी अवश्य क्रोध आता, क्योंकि वह अज्ञान के कारण जो न करना चाहिए, वह कर वैठती।

गोवर और झुनिया दोनों की आस्था झाड़-फूंक में अधिक थी, यहां उसको कोई अवसर न मिलता। उस पर झुनिया दो वच्चों की मां होकर भी वच्चे का पालन करना न जानती थी। मंगल दिक करता, तो उसे डांटती-कोसती। ज़रा-सा भी अवकाश पाती, तो ज़मीन पर सो जाती और सवेरे से पहले न उठती, और गोवर तो उस कमरे में आते जैसे डरता था। मालती वहां वैठी है, कैसे जाये? झुनिया से वच्चे का हाल-हवाल पूछ लेता और खाकर पड़ा रहता। उस चोट के वाद वह पूरा स्वस्थ न हो पाया था। थोड़ा-सा काम करके भी थक जाता था। उन दिनों जव झुनिया घास वेचती थी और वह आराम से पड़ा रहता था, वह कुछ हरा हो गया था, मगर इधर कई महीने वोझ ढोने और चूने-गारे का काम करने से उसकी दशा गिर गयी थी। उस पर यहां काम वहुत था। सारे वाग़ को पानी निकालकर सींचना, क्यारियों को गोड़ना, घास छीलना, गायों को चारा-पानी देना और दुहना, और जो मालिक इतना दयालु हो, उसके काम में कामचोरी कैसे करे? यह एहसान उसे एक क्षण भी आराम से न वैठने देता और जव मेहता खुद खुरपी लेकर वाग़ में काम करते, तो वह कैसे आराम करता? वह खुद सूखता था, पर वाग़ हरा हो रहा था।

मिस्टर मेहता को भी वालक से स्नेह हो गया था। एक दिन मालती ने उसे गोद में लेकर उनकी मूंछ उखड़वा दी थी। दुष्ट ने मूंछों को ऐसा पकड़ा था कि समूल ही उखाड़ लेगा। मेहता की आंखों में आंसू भर आये थे।

मेहता ने विगड़कर कहा था—वड़ा शैतान लौंडा है!

मालती ने उन्हें डांटा था—तुम मूंछें साफ़ क्यों नहीं कर लेते?

'मेरी मूंछें मुझे प्राणों से प्रिय हैं।'

'अवकी पकड़ लेगा, तो उखाड़कर ही छोड़ेगा।'

'तो मैं इसके कान भी उखाड़ लूंगा।'

मंगल को उनकी मूंछें उखाड़ने में कोई ख़ास मज़ा आया था। वह खूव खिलखिलाकर हंसा था और मूंछों को और ज़ोर से खींचा था, मगर मेहता को भी शायद मूंछें उखड़वाने में मज़ा आया था, क्योंकि वह प्रायः दो-एक वार रोज़ उससे अपनी मूंछों की रस्साकशी करा लिया करते थे।

इधर जव से मंगल को चेचक निकल आयी थी, मेहता को भी वड़ी चिन्ता हो गयी थी। अक्सर कमरे में जाकर मंगल को व्यथित आंखों से देखा करते। उसके कष्टों की कल्पना करके उनका कोमल हृदय हिल जाता था। उनके दौड़-धूप से वह अच्छा हो जाता, तो पृथ्वी के उस छोर तक दौड़

लगाते, रुपये ख़र्च करने से अच्छा होता, तो चाहे भीख ही मांगना पड़ता, वह उसे अच्छा करके ही रहते, लेकिन यहां कोई वस न था। उसे छूते भी उनके हाथ कांपते थे। कहीं उसके आंवले न टूट जायें। मालती कितने कोमल हाथों से उसे उठाती है, कन्धे पर उठाकर कमरे में टहलाती है और कितने स्नेह से उसे वहलाकर दूध पिलाती है। यह वात्सल्य मालती को उनकी दृष्टि में न जाने कितना ऊंचा उठा देता है। मालती केवल रमणी नहीं है, माता है और ऐसी-वैसी माता नहीं, सच्चे अर्थों में देवी और माता और जीवन देनेवाली, जो पराये वालक को भी अपना समझ सकती है, जैसे उसने मातापन का सदैव सञ्चय किया हो और आज दोनों हाथों से उसे लुटा रही हो। उसके अंग-अंग से मातापन फूटा पड़ता था, मानो यही उसका यथार्थ रूप हो, यह हाव-भाव, यह शौक़-सिंगार उसके मातापन के आवरण-मात्र हों, जिसमें उस विभूति की रक्षा होती रहे।

रात को एक वज गया था। मंगल का रोना सुनकर मेहता चौंक पड़े। सोचा, वेचारी मालती आधी रात तक तो जागती रही होगी, इस वक्त उसे उठने में कितना कष्ट होगा, अगर द्वार खुला हो, तो मैं ही वच्चे को चुप करा दूं। तुरन्त उठकर उस कमरे के द्वार पर आये और शीशे से अन्दर झांका। मालती वच्चे को गोद में लिये वैठी थी और वच्चा अनायास ही रो रहा था। शायद उसने कोई स्वप्न देखा था या और किसी वजह से डर गया था। मालती चुमकारती थी, थपकती थी, तस्वीरें दिखाती थी, गोद में लेकर टहलती थी, पर वच्चा चुप होने का नाम न लेता था। मालती का यह अटूट वात्सल्य, यह अदम्य मातृभाव देखकर उनकी आंखें सजल हो गयीं। मन में ऐसा पुलक उठा कि अन्दर जाकर मालती के चरणों को हृदय से लगा लें। अन्तस्तल से अनुराग में डूवे हुए शब्दों का एक समूह मचल पड़ा—प्रिये, मेरे स्वर्ग की देवी, मेरी रानी, डार्लिंग...

और उसी प्रेमोन्माद में उन्होंने पुकारा—मालती, ज़रा द्वार खोल दो।

मालती ने आकर द्वार खोल दिया और उनकी ओर जिज्ञासा की आंखों से देखा।

मेहता ने पूछा—क्या झुनिया नहीं उठी? यह तो वहुत रो रहा है।

मालती ने संवेदना भरे स्वर में कहा—आज आठवां दिन है, पीड़ा अधिक होगी। इसी से।

'तो लाओ, मैं कुछ देर टहला दूं, तुम थक गयी हो।'

मालती ने मुसकराकर कहा—तुम्हें ज़रा ही देर में ग़ुस्सा आ जायेगा।

वात सच थी, मगर अपनी कमज़ोरी को कौन स्वीकार करता है? मेहता ने ज़िद्द करके कहा—तुमने मुझे इतना हलका समझ लिया है?

मालती ने वच्चे को उनकी गोद में दे दिया। उनकी गोद में जाते ही वह एकदम चुप हो गया। वालकों में जो एक अन्तर्ज्ञान होता है, उसने उसे वता दिया, अव रोने में तुम्हारा कोई फ़ायदा नहीं। यह नया आदमी स्त्री नहीं, पुरुष है और पुरुष ग़ुस्सेवर होता है और निर्दयी भी होता है और चारपाई पर लेटाकर या वाहर अंधेरे में सुलाकर दूर चला जा सकता है और किसी को पास आने भी न देगा।

मेहता ने विजय-गर्व से कहा—देखा, कैसा चुप कर दिया?

मालती ने विनोद किया—हां, तुम इस कला में कुशल हो। कहां सीखी?

'तुमसे।'

'मैं स्त्री हूं और मुझ पर विश्वास नहीं किया जा सकता।'

मेहता ने लज्जित होकर कहा—मालती, मैं तुमसे हाथ जोड़कर कहता हूं, मेरे उन शब्दों को भूल जाओ। इन कई महीनों में कितना पछताया हूं, कितना लज्जित हुआ हूं, कितना दुखी हुआ हूं, शायद तुम इसका अन्दाज़ न कर सको।

मालती ने सरल भाव से कहा—मैं तो भूल गयी, सच कहती हूं।

'मुझे कैसे विश्वास आये?'

'उसका प्रमाण यही है कि हम दोनों एक ही घर में रहते हैं, एक साथ खाते हैं, हं[illegible]नते

है।'

'क्या मुझे कुछ याचना करने की अनुमति न दोगी?'

उन्होंने मंगल को खाट पर लिटा दिया, जहां वह दुबककर सो रहा और मालती की ओर प्रार्थी आंखों से देखा, जैसे उसकी अनुमति पर उनका सब कुछ टिका हुआ हो।

मालती ने आर्द्र होकर कहा—तुम जानते हो, तुमसे ज़्यादा निकट संसार में मेरा कोई दूसरा नहीं है। मैंने बहुत दिन हुए अपने को तुम्हारे चरणों पर समर्पित कर दिया। तुम मेरे पथप्रदर्शक हो, मेरे देवता हो, गुरु हो। तुम्हें मुझसे कुछ याचना करने की ज़रूरत नहीं, मुझे केवल संकेत कर देने की ज़रूरत है। जब मुझे तुम्हारे दर्शन न हुए थे और मैंने तुम्हें पहचाना न था, भोग और आत्मसेवा ही मेरे जीवन का इष्ट था। तुमने आकर उसे प्रेरणा दी, स्थिरता दी। मैं तुम्हारे एहसान कभी नहीं भूल सकती। मैंने नदी की तटवाली तुम्हारी बातें गांठ बांध लीं। दुःख यही हुआ कि तुमने भी मुझे वही समझा, जो कोई दूसरा पुरुष समझता, जिसकी मुझे तुमसे आशा न थी। उसका दायित्व मेरे ऊपर है, यह मैं जानती हूं, लेकिन तुम्हारा अमूल्य प्रेम पाकर भी मैं वही बनी रहूंगी, ऐसा समझकर तुमने मेरे साथ अन्याय किया। मैं इस समय कितने गर्व का अनुभव कर रही हूं, यह तुम नहीं समझ सकते। तुम्हारा प्रेम और विश्वास पाकर अब मेरे लिए कुछ भी शेष नहीं रह गया है। यह वरदान मेरे जीवन को सार्थक कर देने के लिए काफ़ी है। यह मेरी पूर्णता है।

यह कहते-कहते मालती के मन में ऐसा अनुराग उठा कि मेहता के सीने से लिपट जाये। भीतर की भावनाएं बाहर आकर, मानो सत्य हो गयी थीं। उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा। जिस आनन्द को उसने दुर्लभ समझ रखा था, वह इतना सुलभ, इतना समीप है! और हृदय का वह आह्लाद मुख पर आकर उसे ऐसी शोभा देने लगा कि मेहता को उसमें देवत्व की आभा दिखी। यह नारी है या मंगल की, पवित्रता की और त्याग की प्रतिमा!

उसी वक्त झुनिया जागकर उठ बैठी और मेहता अपने कमरे में चले गये और फिर दो सप्ताह तक मालती से कुछ बातचीत करने का अवसर उन्हें न मिला। मालती कभी उनसे एकान्त में न मिलती। मालती के वह शब्द उनके हृदय में गूंजते रहते। उनमें कितनी सान्त्वना थी, कितनी विनय थी, कितना नशा था!

दो सप्ताह में मंगल अच्छा हो गया। हां, मुंह पर चेचक के दाग़ न भर सके। उस दिन मालती ने आस-पास के लड़कों को भरपेट मिठाई खिलायी और जो मनौतियां कर रखी थीं, वह भी पूरी कीं। इस त्याग के जीवन में कितना आनन्द है, इसका अब उसे अनुभव हो रहा था। झुनिया और गोबर का हर्ष मानो उसके भीतर प्रतिबिम्बित हो रहा था। दूसरों के कष्ट-निवारण में उसने जिस सुख और उल्लास का अनुभव किया, वह कभी भोग-विलास के जीवन में न किया था। वह लालसा अब उन फूलों की भांति क्षीण हो गयी थी, जिसमें फल लग रहे हों। अब वह उस दर्जे से आगे निकल चुकी थी, जब मनुष्य स्थूल आनन्द को परम सुख मानता है। यह आनन्द अब उसे तुच्छ पतन की ओर ले जाने वाला, कुछ हलका, बल्कि वीभत्स-सा लगता था। उस बड़े बंगले में रहने का क्या आनन्द, जब उसके आस-पास मिट्टी के झोंपड़े मानो विलाप कर रहे हों। कार पर चढ़कर अब उसे गर्व नहीं होता। मंगल जैसे अबोध बालक ने उसके जीवन में कितना प्रकाश डाल दिया, उसके सामने सच्चे आनन्द का द्वार-सा खोल दिया।

एक दिन मेहता के सिर में ज़ोर का दर्द हो रहा था। वह आंखें बन्द किये चारपाई पर पड़े तड़प रहे थे कि मालती ने आकर उनके सिर पर हाथ रखकर पूछा—कब से यह दर्द हो रहा है?

मेहता को ऐसा जान पड़ा, उन कोमल हाथों ने जैसे सारा दर्द खींच लिया। उठकर बैठ गये और बोले—दर्द तो दोपहर से ही हो रहा था और ऐसा सिरदर्द मुझे आज तक नहीं हुआ था, मगर तुम्हारे हाथ रखते ही सिर ऐसा हलका हो गया है, मानो दर्द था ही नहीं। तुम्हारे हाथों में यह सिद्धि है।

मालती ने उन्हें कोई दवा लाकर खाने को दे दी और आराम से लेटे रहने को ताकीद करके तुरन्त कमरे से निकल जाने को हुई।

मेहता ने आग्रह करके कहा—ज़रा दो मिनट बैठोगी नहीं?

मालती ने द्वार पर पीछे फिरकर कहा—इस वक्त बातें करोगे, तो शायद फिर दर्द होने लगे। आराम से लेटे रहो। आजकल मैं तुम्हें हमेशा कुछ-न-कुछ पढ़ते या लिखते देखती हूं। दो-चार दिन लिखना-पढ़ना छोड़ दो।

'तुम एक मिनट बैठोगी नहीं?'

'मुझे एक मरीज़ को देखने जाना है।'

'अच्छी बात है, जाओ।'

मेहता के मुख पर कुछ ऐसी उदासी छा गयी कि मालती लौट पड़ी और सामने आकर बोली—अच्छा, कहो, क्या कहते हो?

मेहता ने विमन होकर कहा—कोई ख़ास बात नहीं है। यही कह रहा था कि इतनी रात गये किस मरीज़ को देखने जाओगी?

'वही रायसाहब की लड़की है। उसकी हालत बहुत ख़राब हो गयी थी। अब कुछ संभल गयी है।'

उसके जाते ही मेहता फिर लेट रहे। कुछ समझ में नहीं आया कि मालती के हाथ रखते ही दर्द क्यों शान्त हो गया। अवश्य ही उसमें कोई सिद्धि है और यह उसकी तपस्या का, उसकी कर्मण्य मानवता का ही वरदान है। मालती नारीत्व के उस ऊंचे आदर्श पर पहुंच गयी थी, जहां वह प्रकाश के एक नक्षत्र-सी नज़र आती थी। अब वह प्रेम की वस्तु नहीं, श्रद्धा की वस्तु थी। अब वह दुर्लभ हो गयी थी और दुर्लभता मनस्वी आत्माओं के लिए उद्योग का मन्त्र है। मेहता प्रेम में जिस सुख की कल्पना कर रहे थे, उसे श्रद्धा ने और भी गहरा, और भी स्फूर्तिमय बना दिया। प्रेम में कुछ मान भी होता है, कुछ महत्त्व भी। श्रद्धा तो अपने को मिटा डालती है और अपने मिट जाने को ही अपना इष्ट बना लेती है। प्रेम अधिकार कराना चाहता है, जो कुछ देता है, उसके बदले में कुछ चाहता भी है। श्रद्धा का चरम आनन्द अपना समर्पण है, जिसमें अहम्मन्यता का ध्वंस हो जाता है।

मेहता का वह बृहत् ग्रन्थ समाप्त हो गया था, जिसे वह तीन साल से लिख रहे थे और जिसमें उन्होंने संसार के सभी दर्शन-तत्त्वों का समन्वय किया था। यह ग्रन्थ उन्होंने मालती को समर्पित किया और जिस दिन उसकी प्रतियां इंग्लैण्ड से आयीं और उन्होंने एक प्रति मालती को भेंट की। वह उसे अपने नाम से समर्पित देखकर विस्मित भी हुई और दुखी भी।

उसने कहा—यह तुमने क्या किया? मैं तो अपने को इस योग्य नहीं समझती।

मेहता ने गर्व से कहा—लेकिन मैं तो समझता हूं। यह तो कोई चीज़ नहीं। मेरे [illegible] होते, तो वह तुम्हारे चरणों पर न्योछावर कर देता।

'मुझ पर? जिसने स्वार्थ-सेवा के सिवा कुछ जाना ही नहीं।'

'तुम्हारे त्याग का एक टुकड़ा भी मैं पा जाता, तो अपने को धन्य समझता। तुम देवी हो।'

'पत्थर की, इतना और क्यों नहीं कहते?'

'त्याग की, मंगल की, पवित्रता की।'

'तब तुमने मुझे खूब समझा! मैं और त्याग? मैं तुमसे सच कहती हूं, [illegible] कभी मेरे मन में नहीं आया। जो कुछ करती हूं, [illegible] इसलिए नहीं कि त्याग करती हूं या अपने गानों से दुखी आत्माओं को [illegible] इसलिए कि उससे मेरा मन प्रसन्न होता है। इसी तरह [illegible] अपने मन को प्रसन्न करने के लिए। [illegible]

ख़्वाहमख़्वाह देवी वनाये डालते हो। अव तो इतनी क़सर रह गयी है कि धूप-दीप लेकर मेरी पूजा करो।'

मेहता ने कातर स्वर में कहा—वह तो मैं वरसों से कर रहा हूं मालती और उस वक़्त तक करता जाऊंगा, जव तक वरदान न मिलेगा।

मालती ने चुटकी ली—तो वरदान पा जाने के वाद शायद देवी को मन्दिर से निकाल फेंको!

मेहता संभलकर वोले—तव तो मेरी अलग सत्ता ही न रहेगी, उपासक उपास्य में लय हो जायेगा।

मालती ने गम्भीर होकर कहा—नहीं मेहता, मैं महीनों से इस प्रश्न पर विचार कर रही हूं और अन्त में मैंने यह तय किया है कि मित्र वनकर रहना स्त्री-पुरुष वनकर रहने से कहीं सुखकर है। तुम मुझसे प्रेम करते हो, मुझ पर विश्वास करते हो, और मुझे भरोसा है कि आज अवसर आ पड़े, तो तुम मेरी रक्षा प्राणों से करोगे। तुममें मैंने अपना पथ-प्रदर्शक ही नहीं, अपना रक्षक भी पाया है। मैं भी तुमसे प्रेम करती हूं, तुम पर विश्वास करती हूं और तुम्हारे लिए कोई ऐसा त्याग नहीं है, जो मैं न कर सकूं। और परमात्मा से मेरी यही विनय है कि वह जीवनपर्यन्त मुझे इसी मार्ग पर दृढ़ रखें। हमारी पूर्णता के लिए, हमारी आत्मा के विकास के लिए और क्या चाहिए! अपनी छोटी-सी गृहस्थी, अपनी आत्माओं को छोटे-से पिंजड़े में वन्द करके, अपने दुःख-सुख को अपने ही तक रखकर, क्या हम असीम के निकट पहुंच सकते हैं? वह तो हमारे मार्ग में वाधा ही डालेगा। कुछ विरले प्राणी ऐसे भी हैं, जो पैरों में यह वेड़ियां डालकर भी विकास के पथ पर चल सकते हैं और चल रहे हैं। यह भी जानती हूं कि पूर्णता के लिए पारिवारिक प्रेम और त्याग और वलिदान का वहुत वड़ा महत्त्व है, लेकिन मैं अपनी आत्मा को उतना दृढ़ नहीं पाती। जव तक ममत्व नहीं है, अपनत्व नहीं है, तव तक जीवन का मोह नहीं है, स्वार्थ का ज़ोर नहीं है। जिस दिन मन मोह में आसक्त हुआ और हम वन्धन में पड़े, उस क्षण हमारी मानवता का क्षेत्र सिकुड़ जायेगा, नयी-नयी ज़िम्मेदारियां आ जायेंगी और हमारी सारी शक्ति उन्हीं को पूरा करने में लगने लगेगी। तुम्हारे जैसे विचारवान्, प्रतिभाशाली मनुष्य की आत्मा को मैं इस कारागार में वन्दी नहीं करना चाहती। अभी तक तुम्हारा जीवन यज्ञ था, जिसमें स्वार्थ के लिए वहुत थोड़ा स्थान था। मैं उसको नीचे की ओर न ले जाऊंगी। संसार को तुम जैसे साधकों की ज़रूरत है, जो अपनेपन को इतना फैला दें कि सारा संसार अपना हो जाये। संसार में अन्याय की, आतंक की, भय की दुहाई मची हुई है। अन्धविश्वास का, कपट-धर्म का, स्वार्थ का प्रकोप छाया हुआ है। तुमने वह आर्त-पुकार सुनी है। तुम भी न सुनोगे, तो सुननेवाले कहां से आयेंगे? और असत्य प्राणियों की तरह तुम भी उसकी ओर से अपने कान नहीं वन्द कर सकते। तुम्हें वह भोजन भार हो जायेगा। अपनी विद्या और वुद्धि को, अपनी जागी हुई मानवता को और भी उत्साह और ज़ोर के साथ उसी रास्ते पर ले जाओ। मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे चलूंगी। अपने जीवन के साथ मेरा जीवन भी सार्थक कर दो। मेरा तुमसे यही आग्रह है। अगर तुम्हारा मन सांसारिकता की ओर लपकता है, तब भी मैं अपना क़ावू चलते तुम्हें उधर से हटाऊंगी और ईश्वर न करे कि मैं असफल हो जाऊं, लेकिन तब मैं तुम्हारा साथ दो वूंद आंसू गिराकर छोड़ दूंगी और कह नहीं सकती, मेरा क्या अन्त होगा, किस घाट लगूंगी, पर चाहे वह कोई घाट हो, इस वन्धन का घाट न होगा। वोलो, मुझे क्या आदेश देते हो?

मेहता सिर झुकाये सुनते रहे। एक-एक शब्द मानो उनके भीतर की आंखें इस तरह खोले देता था, जैसी अव तक कभी नहीं खुली थीं। वे भावनाएं जो अब तक उनके सामने स्वप्न-चित्रों की तरह आयी थीं, अव जीवन-सत्य वनकर स्पन्दित हो गयी थीं। वह अपने रोम-रोम में प्रकाश और उत्कर्ष का अनुभव कर रहे थे। जीवन के महान् संकल्पों के सम्मुख हमारा वालपन हमारी आंखों में फिर जाता है। मेहता की आंखों में मधुर वाल-स्मृतियां सजीव हो उठीं, जव वह अपनी विधवा माता की गोद में वैठकर महान् सुख का अनुभव किया करते थे। कहां है वह माता, आये और देखे अपने

वालक की इस सुकीर्ति को। मुझे आशीर्वाद दो। तुम्हारा वह जिद्दी वालक आज एक नया जन्म ले रहा है।

उन्होंने मालती के चरण दोनों हाथों से पकड़ लिये और कांपते हुए वोले—तुम्हारा आदेश स्वीकार है मालती।

और दोनों एकात्म होकर प्रगाढ़ आलिंगन में वंध गये। दोनों की आंखों से आंसुओं की धारा वह रही थी।

: 34 :

सिलिया का वालक अव दो साल का हो रहा था और सारे गांव में दौड़ लगाता था। अपने साथ एक विचित्र भाषा लाया था और उसी में वोलता था, चाहे कोई समझे या न समझे। उसकी भाषा में त, ल, और घ की कसरत थी और स, र आदि वर्ण ग़ायव थे। उस भाषा में रोटी का नाम था ओटी, दूध का तूत, साग का छाग और कौड़ी का तौली। जानवरों की वोलियों की ऐसी नक़ल करता है कि हंसते-हंसते लोगों के पेट में बल पड़ जाता है। किसी ने पूछा—रामू, कुत्ता कैसे वोलता है? रामू गम्भीर भाव से कहता—भों-भों, और काटने दौड़ता। विल्ली कैसे वोले? और रामू म्यांव-म्यांव करके आंखें निकालकर ताकता और पंजों से नोचता। वड़ा मस्त लड़ता था। जव देखो, खेलने में मगन रहता, न खाने की सुधि थी, न पीने की। गोद से उसे चिढ़ थी। उसके सवसे सुखी क्षण वह होते, जव द्वार के नीम के नीचे मनों धूल वटोरकर उसमें लोटता, सिर पर चढ़ाता, उसकी ढेरियां लगाता, घरौंदे वनाता। अपनी उम्र के लड़कों से उसकी एक क्षण न पटती। शायद उन्हें अपने साथ खेलने के योग्य ही न समझता था।

कोई पूछता—तुम्हारा नाम क्या है?

चटपट कहता—लामू।

'तुम्हारे वाप का क्या नाम है?'

'मातादीन।'

'और तुम्हारी मां का?'

'छिलिया।'

'और दातादीन कौन है?'

'वह अमाला छाला है।'

न जाने किसने दातादीन से उसका यह नाता बता दिया था।

रामू और रूपा में खूव पटती थी। वह रूपा का खिलौना था। उसे उवटन मलती, काजल लगाती, नहलाती, वाल संवारती, अपने हाथों कौर-कौर वनाकर खिलाती और कभी-कभी उसे गोद में लिये रात को सो जाती। धनिया डांटती, तू सब कुछ छुआछूत किये देती है, मगर वह किसी की न सुनती। चीथड़े की गुड़िया ने उसे माता वनना सिखाया था। वह मातृ-भावना जीता-जागता वालक पाकर, अव गुड़ियों से सन्तुष्ट न हो सकती थी।

उसी के घर के पिछवाड़े, जहां किसी ज़माने में उसकी वरदौर थी, होरी के खण्डहर में सिलिया अपना एक फूस का झोंपड़ा डालकर रहने लगी थी। होरी के घर में उम्र तो नहीं कट सकती थी।

मातादीन को कई सौ रुपये ख़र्च करने के वाद अन्त में काशी के पण्डितों ने फिर से व्राह्मण वना दिया। उस दिन वड़ा भारी हवन हुआ, वहुत-से व्राह्मणों ने भोजन किया और वहुत से मन्त्र और श्लोक पढ़े गये। मातादीन को शुद्ध गोवर और गोमूत्र खाना-पीना पड़ा। गोवर से उसका मन पवित्र हो गया। मूत्र से उसकी आत्मा में अशुचिता के कीटाणु मर गये।

लेकिन एक तरह से इस प्रायश्चित्त ने उसे सचमुच पवित्र कर दिया। हवन के प्रचण्ड अग्निकुण्ड

में उसकी मानवता निखर गयी और हवन की ज्वाला के प्रकाश से उसने धर्म-स्तम्भों को अच्छी तरह परख लिया। उस दिन से उसे धर्म के नाम से चिढ़ हो गयी। उसने जनेऊ उतार फेंका और पुरोहिती को गंगा में डुवा दिया। अब वह पक्का खेतिहर था। उसने यह भी देखा कि यद्यपि विद्वानों ने उसका ब्राह्मणत्व स्वीकार कर लिया, लेकिन जनता अब भी उसके हाथ का पानी नहीं पीती, उससे मुहूर्त पूछती है, साइत और लग्न का विचार करवाती है, उसे पर्व के दिन दान भी दे देती है, पर उससे अपने वरतन नहीं छुलाती।

जिस दिन सिलिया के वालक का जन्म हुआ, उसने दूनी मात्रा में भंग पी, और गर्व से जैसे उसकी छाती तन गयी और उंगलियां वार-वार मूंछों पर पड़ने लगीं। वच्चा कैसा होगा? उसी के जैसा? कैसे देखे? उसका मन मसोसकर रह गया।

तीसरे दिन रूपा खेत में उससे मिली। उसने पूछा—रुपिया, तूने सिलिया का लड़का देखा?

रुपिया वोली—देखा क्यों नहीं? लाल-लाल है, खूव मोटा, बड़ी-बड़ी आंखें हैं, सिर में झवराले वाल हैं, टुकुर-टुकुर ताकता है।

मातादीन के हृदय में जैसे वह बालक आ बैठा था और हाथ-पांव फेंक रहा था। उसकी आंखों में नशा-सा छा गया। उसने उस किशोरी रूपा को गोद में उठा लिया, फिर कन्धे पर विठा लिया, फिर उतारकर उसके कपोलों को चूम लिया।

रूपा वाल संभालती हुई ढीठ होकर वोली—चलो, मैं तुमको दूर से दिखा दूं। ओसारे में ही तो है। सिलिया वहन न जाने क्यों हरदम रोती रहती है?

मातादीन ने मुंह फेर लिया। उसकी आंखें सजल हो आयी थीं और ओठ कांप रहे थे।

उस रात को जव सारा गांव सो गया और पेड़ अन्धकार में डूब गये, तो वह सिलिया के द्वार पर आया और सम्पूर्ण प्राणों से वालक का रोना सुना, जिसमें सारी दुनिया का संगीत, आनन्द और माधुर्य भरा हुआ था।

सिलिया वच्चे को होरी के घर में खटोले पर सुलाकर मजूरी करने चली जाती। मातादीन किसी-न-किसी वहाने से होरी के घर आता और कनखियों से वच्चे को देखकर अपना कलेजा और आंखें और प्राण शीतल करता।

धनिया मुस्कराकर कहती—लजाते क्यों हो, गोद में ले लो, प्यार करो, कैसा काठ का कलेजा है तुम्हारा? विलकुल तुमको पड़ा है।

मातादीन एक-दो रुपया सिलिया के लिए फेंककर बाहर निकल आता। वालक के साथ उसकी आत्मा भी वढ़ रही थी, खिल रही थी, चमक रही थी। अब उसके जीवन का भी उद्देश्य था, एक व्रत था। उसमें संयम आ गया, गम्भीरता आ गयी, दायित्व आ गया।

एक दिन रामू खटोले पर लेटा हुआ था। धनिया कहीं गयी थी। रूपा भी लड़कों का शोर सुनकर खेलने चली गयी। घर अकेला था। उसी वक्त मातादीन पहुंचा। वालक नीले आकाश की ओर देख-देख हाथ-पांव फेंक रहा था, हुमक रहा था—जीवन के उस उल्लास के साथ जो अभी उसमें ताज़ा था। मातादीन को देखकर वह हंस पड़ा। मातादीन स्नेह-विह्ल हो गया। उसने वालक को उठाकर छाती से लगा लिया। उसकी सारी देह और हृदय और प्राण रोमाञ्चित हो उठे, मानो पानी की लहरों में प्रकाश की रेखाएं कांप रही हों। वच्चे की गहरी, निर्मल, अथाह, मोद-भरी आंखों में जैसे उसके जीवन का सत्य मिल गया। उसे एक प्रकार का भय-सा लगा, मानो वह दृष्टि उसके हृदय में चुभी जाती हो—वह कितना अपवित्र है, ईश्वर का वह प्रसाद कैसे छू सकता है? उसने वालक को सशंक मन के साथ फिर लिटा दिया। उसी वक्त रूपा वाहर से आ गयी और वह वाहर निकल गया।

एक दिन खूव ओले गिरे। सिलिया घास लेकर वाज़ार गयी हुई थी। रूपा अपने खेल में मगन थी। रामू अव वैठने लगा था। कुछ-कुछ वकवां चलने भी लगा था। उसने जो आंगन में विनौले विछे

देखे, तो समझा, वतासे फैले हुए हैं। कई उठाकर खाये और आंगन में खूब खेला। रात को उसे ज्वर आ गया। दूसरे दिन निमोनिया हो गया। तीसरे दिन सन्ध्या समय सिलिया की गोद में ही बालक के प्राण निकल गये।

लेकिन वालक मरकर भी सिलिया के जीवन का केन्द्र बना रहा। उसकी छाती में दूध का उवाल-सा आता और आंचल भीग जाता। उसी क्षण आंखों से आंसू भी निकल पड़ते। पहले [illegible] कामों से छुट्टी पाकर रात को जव रामू को हिये से लगाकर स्तन उसके मुंह में दे देती, तो [illegible] प्राणों में वालक की स्फूर्ति भर जाती। तब वह प्यारे-प्यारे गीत गाती, मीठे-मीठे स्वप्न [illegible] नये-नये संसार रचती, जिसका राजा रामू होता। अब सब कामों से छुट्टी पाकर [illegible] झोंपड़ी में रोती थी और उसके प्राण तड़पते थे, उड़ जाने के लिए उस लोक में, [illegible] समय भी खेल रहा होगा। सारा गांव उसके दु:ख में शरीक था। रामू कितना [illegible] वुलाता, उसी की गोद में चला जाता। मरकर और पहुंच से बाहर होकर [illegible] था। उसकी छाया उससे कहीं सुन्दर, कहीं चौंचाल, कहीं लुभावनी थी।

मातादीन उस दिन खुल पड़ा। परदा होता है हवा के लिए। आंधी में [illegible] हैं कि आंधी के साथ उड़ न जायें। उसने शव को दोनों हथेलियों पर [illegible] किनारे तक ले गया, जो एक मील का पाट छोड़कर पतली-सी धार में [illegible] उसके हाथ सीधे न हो सके। उस दिन वह ज़रा भी नहीं लजाया, [illegible]

और किसी ने कुछ कहा भी नहीं, बल्कि सभी ने उसके [illegible]

होरी ने कहा—यही मरद का धरम है। जिसकी बांह पकड़ी, [illegible]

धनिया ने आंखें नचाकर कहा—मत बखान करो, [illegible] नामरद कहती हूं। जब बांह पकड़ी थी, तब क्या दूध [illegible]

एक महीना बीत गया। सिलिया फिर मजूरी करने [illegible] चांद विहंसता-सा निकल आया था। सिलिया ने [illegible] टोकरी में रख लिये थे और घर जाना चाहती [illegible] का मानो स्रोत खुल गया। अञ्चल दूध से [illegible] और जैसे रुदन का आनन्द लेने लगी।

सहसा किसी की आहट पर वह चौंक [illegible] वोला—कव तक रोये जायेगी सिलिया? [illegible] खुद रो पड़ा।

सिलिया के कण्ठ में आये हुए [illegible] इधर कैसे आ गये?

मातादीन कातर होकर [illegible]

'तुम तो उसे खेला [illegible]

'नहीं सिलिया, एक दिन [illegible]

'सच?'

'सच।'

'मैं कहां थी?'

'तू बाजार [illegible]

'तुम्हारी गोद में [illegible]

'नहीं सिलिया, [illegible]

'सच?'

'सच।'

'वस, एक ही दिन खेलाया?'

'हां, एक ही दिन, मगर देखने रोज़ आता था। उसे खटोले पर खेलते देखता था और दिल थामकर चला जाता था।'

'तुम्हीं को पड़ा था।'

'मुझे तो पछतावा होता है कि नाहक उस दिन उसे गोद में लिया। यह मेरे पापों का दण्ड है।'

सिलिया की आंखों में क्षमा झलक रही थी। उसने टोकरी सिर पर रख ली और घर चली। मातादीन भी उसके साथ-साथ चला।

सिलिया ने कहा—मैं तो अव धनिया काकी के वरौठे में सोती हूं। अपने घर में अच्छा नहीं लगता।

'धनिया मुझे वरावर समझाती रहती थी।'

'सच?'

'हां सच। जव मिलती थी, समझाने लगती थी।'

गांव के समीप जाकर सिलिया ने कहा—अच्छा, अव इधर से अपने घर चले जाओ। कहीं पण्डित देख न लें।

मातादीन ने गर्दन उठाकर कहा—मैं अव किसी से नहीं डरता।

'घर से निकाल देंगे, तो कहां जाओगे?'

'मैंने अपना घर वना लिया है।'

'सच?'

'हां, सच!'

'कहां, मैंने तो नहीं देखा।'

'चल, तो दिखाता हूं।'

दोनों और आगे वढ़े। मातादीन आगे था। सिलिया पीछे। होरी का घर आ गया। मातादीन उसके पिछवाड़े जाकर सिलिया की झोंपड़ी के द्वार पर खड़ा हो गया और वोला—यही हमारा घर है।

सिलिया ने अविश्वास, क्षमा, व्यंग्य और दुःख भरे स्वर में कहा—यह तो सिलिया चमारिन का घर है।

मातादीन ने द्वार की टाटी खोलते हुए कहा—यह मेरी देवी का मन्दिर है।

सिलिया की आंखें चमकने लगीं। वोली—मन्दिर है, तो एक लोटा पानी उड़ेल चले जाओगे।

मातादीन ने उसके सिर की टोकरी उतारते हुए कम्पित स्वर में कहा—नहीं सिलिया, जव तक प्राण है, तेरी शरण में रहूंगा। तेरी ही पूजा करूंगा।

'झूठ कहते हो।'

'नहीं, तेरे चरण छूकर कहता हूं। सुना, पटवारी का लौंडा भुनेसरी तेरे पीछे वहुत पड़ा था। तूने उसे खूव डांटा।'

'तुमसे किसने कहा?'

'भुनेसरी आप ही कहता था?'

'सच?'

'हां, सच।'

सिलिया ने दियासलाई से कुप्पी जलायी। एक किनारे मिट्टी का घड़ा था, दूसरी ओर चूल्हा था, जहां दो-तीन पीतल और लोहे के वासन मंजे-धुले रखे थे। वीच में पुआल विछा था। वही सिलिया का विस्तर था। इस विस्तर के सिरहाने की ओर रामू की छोटी खटोली जैसे रो रही थी और उसी के

पास दो-तीन मिट्टी के हाथी-घोड़े अंग-भंग दशा में पड़े हुए थे। जब स्वामी ही न रहा, तो कौन उनकी देखभाल करता? मातादीन पुआल पर बैठ गया। कलेजे में हूक-सी उठ रही थी। जी चाहता था, खूब रोये।

सिलिया ने उसकी पीठ पर हाथ रखकर पूछा—तुम्हें कभी मेरी याद आती थी?

मातादीन ने उसका हाथ पकड़कर हृदय से लगाकर कहा—तू हरदम मेरी आंखों के सामने फिरती रहती थी। तू भी कभी मुझे याद करती थी?

'मेरा तो तुमसे जी जलता था।'

'और दया नहीं आती थी?'

'कभी नहीं।'

'तो भुनेसरी...'

'अच्छा, गाली मत दो। मैं डर रही हूं, गांववाले क्या कहेंगे?'

'जो भले आदमी हैं, वह कहेंगे, यही इसका धरम था। जो बुरे हैं, उनकी ...'

'और तुम्हारा खाना कौन पकायेगा?'

'मेरी रानी, सिलिया।'

'तो ब्राह्मण कैसे रहोगे?'

'मैं ब्राह्मण नहीं, चमार ही रहना चाहता हूं। जो अपना धरम ... मुंह मोड़े, वही चमार है।'

सिलिया ने उसके गले में बांहें डाल दीं।

:35:

होरी की दशा दिन-दिन गिरती ही जा रही थी। ...
कभी हिम्मत नहीं हारी। प्रत्येक हार जैसे उसे ...
अन्तिम दशा को पहुंच गया था, जब उसने ...
अटल रह सकता, तो भी कुछ आंसू पुंछते। ...
कमाया, कोई ऐसी बुराई न थी, जिसने ...
भले दिन मृगतृष्णा की भांति दूर ही ...
झूठी आशा की हरियाली की ...

हारे हुए महीप की भांति ...
प्राणों की तरह बचा रहा था। ...
मगर अब वह किला भी ...
पण्डित नोखेराम ने उस ...
ज़मीन उसके हाथ से निकल ...
की इच्छा! रायसाहब को ...
ज़्यादा घरों पर बेदखली ...
सुख बदा होता, तो लड़का ...

सांझ हो गयी थी। ...
होरी, तुम्हारी बेदखली के ...
तारीख को पन्द्रह दिन और रह गये हैं ...

होरी ने उनके लिए खाट ...

यह दुर्दशा क्यों होती? खाया नहीं, उड़ाया नहीं, लेकिन उपज ही न हो और जो हो भी, वह कौड़ियों के मोल बिके, तो किसान क्या करे?

'लेकिन जैजात तो बचानी ही पड़ेगी। निवाह कैसे होगा? बाप-दादों की इतनी ही निसानी बच रही है। वह निकल गयी, तो कहां रहोगे?'

'भगवान् की मरजी है, मेरा क्या बस?'

'एक उपाय है, जो तुम करो।'

होरी को जैसे अभय-दान मिल गया। उनके पांव पड़कर बोला—बड़ा धरम होगा महाराज, तुम्हारे सिवा मेरा कौन है? मैं तो निराश हो गया था।

'निरास होने की कोई बात नहीं। बस, इतना ही समझ लो कि सुख में आदमी का धरम कुछ और होता है, दुःख में कुछ और। सुख में आदमी दान देता है, मगर दुःख में भीख तक मांगता है। उस समय आदमी का यही धरम हो जाता है। शरीर अच्छा रहता है, तो हम बिना असनान-पूजा किये मुंह में पानी भी नहीं डालते, लेकिन बीमार हो जाते हैं, तो बिना नहाये-धोये, कपड़े पहने, खाट पर बैठे पथ्य लेते हैं। उस समय का यही धरम है। यहां हममें-तुममें कितना भेद है, लेकिन जगन्नाथपुरी में कोई भेद नहीं रहता। ऊंचे-नीचे सभी एक पंगत में बैठकर खाते हैं। आपत्काल में श्रीरामचन्द्र ने सेवरी के जूठे फल खाये थे, बालि का छिपकर बध किया था। जब संकट में बड़े-बड़ों की मर्यादा टूट जाती है, तो हमारी-तुम्हारी कौन बात है? रामसेवक महतो को तो जानते हो?

होरी ने निरुत्साह होकर कहा—हां, जानता क्यों नहीं।

'मेरा जजमान है। बड़ा अच्छा जमाना है उसका। खेती अलग, लेन-देन अलग। ऐसे रोबदाब का आदमी ही नहीं देखा। कई महीने हुए उनकी औरत मर गयी है। सन्तान कोई नहीं। अगर रुपिया का ब्याह उससे करना चाहो, तो मैं उसे राजी कर लूं। मेरी बात वह कभी न टालेगा। लड़की सयानी हो गयी है और जमाना बुरा है। कहीं कोई बात हो जाये, तो मुंह में कालिख लग जाये। यह बड़ा अच्छा औसर है। लड़की का ब्याह भी हो जायेगा और तुम्हारे खेत भी बच जायेंगे। सारे खरच-बरच से बचे जाते हो।'

रामसेवक होरी से दो ही चार साल छोटा था। ऐसे आदमी से रूपा के ब्याह करने का प्रस्ताव ही अपमानजनक था। कहां फूल-सी रूपा और कहां वह बूढ़ा ठूंठ! जीवन में होरी ने बड़ी-बड़ी चोट सही थी, मगर यह चोट सबसे गहरी थी। आज उसके ऐसे दिन आ गये हैं कि उससे लड़की बेचने की बात कही जाती है और उसमें इनकार करने का साहस नहीं है। ग्लानि से उसका सिर झुक गया।

दातादीन ने एक मिनट के बाद पूछा—तो क्या कहते हो?

होरी ने साफ़ जवाब न दिया। बोला—सोचकर कहूंगा।

'इसमें सोचने की क्या बात है?'

'धनिया से भी तो पूछ लूं।'

'तुम राजी हो कि नहीं?'

'जरा सोच लेने दो महाराज! आज तक कुल में कभी ऐसा नहीं हुआ। उसकी मरजाद भी तो रखनी है।'

'पांच-छह दिन के अन्दर मुझे जवाब दे देना। ऐसा न हो, तुम सोचते ही रहो और बेदखली आ जाये।'

दातादीन चले गये। होरी की ओर से उन्हें कोई अन्देशा न था। अन्देशा था धनिया की ओर से। उसकी नाक बड़ी लम्बी है। चाहे मिट जाये, मरजाद न छोड़ेगी।

मगर होरी हां कर ले, तो वह रो-धोकर मान ही जायेगी। खेतों के निकलने में भी तो मरजाद बिगड़ती है।

धनिया ने आकर पूछा—पण्डित क्यों आये थे?

'कुछ नहीं, यही वेदखली की बातचीत थी।'

'आंसू पोंछने आये होंगे। यह तो न होगा कि सौ रुपये उधार दे देंगे।'

'मांगने का मुंह भी तो नहीं।'

'तो यहां आते ही क्यों हैं?'

'रुपिया की सगाई की बात थी।'

'किससे?'

'रामसेवक को जानती है? उन्हीं से।'

'मैंने उन्हें कव देखा, हां, नाम बहुत दिन से सुनती हूं। वह तो बूढ़ा होगा।'

'बूढ़ा नहीं है, हां, अधेड़ है।'

'तुमने पण्डित को फटकारा नहीं। मुझसे कहते, तो ऐसा जवाब देती कि याद करते।'

'फटकारा नहीं, लेकिन इनकार कर दिया। कहते थे, ब्याह भी बिना खरच-बरच के हो जायेगा और खेत भी बच जायेंगे।'

'साफ-साफ क्यों नहीं बोले कि लड़की बेचने को कहते थे। कैसे इस बूढ़े का हियाव पड़ा?'

लेकिन होरी इस प्रश्न पर जितना ही विचार करता, उतना ही उसका दुराग्रह कम होता जाता था। कुल-मर्यादा की लाज उसे कुछ कम न थी, लेकिन जिसे असाध्य रोग ने ग्रस लिया हो, वह खाद्य-अखाद्य की परवाह कब करता है? दातादीन के सामने होरी ने कुछ ऐसा भाव प्रकट किया था, जिसे स्वीकृति नहीं कहा जा सकता, मगर भीतर से वह पिघल गया था। उम्र की ऐसी कोई बात नहीं। मरना-जीना तकदीर के साथ। बूढ़े वैठे रहते हैं, जवान चले जाते हैं। रूपा को सुख लिखा है, तो वहां भी सुख उठायेगी, दुःख लिखा है, तो कहीं भी सुख नहीं पा सकती। और लड़की बेचने की तो कोई वात ही नहीं। होरी उससे जो कुछ लेगा, उधार लेगा और हाथ में रुपये आते ही चुका देगा। इसमें शर्म या अपमान की कोई वात ही नहीं है। वेशक, उसमें समाई होती, तो वह रूपा का ब्याह किसी जवान लड़के से और अच्छे कुल में करता, दहेज भी देता, वरात के खिलाने-पिलाने में भी खूब दिल खोलकर ख़र्च करता, मगर जब ईश्वर ने उसे इस लायक़ नहीं बनाया, तो कुस-कन्या के सिवा और वह क्या कर सकता है? लोग हंसेंगे, लेकिन जो लोग खाली हंसते हैं और कोई मदद नहीं करते, उनकी हंसी की वह क्यों परवा करे। मुश्किल यही है कि धनिया न राजी होगी। गधी तो है ही। वही पुरानी लाज ढोये जायेगी। यह कुल-प्रतिष्ठा के पालने का समय नहीं, अपनी जान बचाने का अवसर है। ऐसी ही वड़ी लाजवाली है, तो लाये, पांच सौ निकले। कहां धरे हैं?

दो दिन गुज़र गये और इस मामले पर उन लोगों में कोई वातचीत न हुई। हां, दोनों सांकेतिक भाषा में वातें करते थे।

धनिया कहती—वर-कन्या जोड़े के हों, तभी ब्याह का आनन्द है।

होरी जवाव देता—ब्याह आनन्द का नाम नहीं है पगली, यह तो तपस्या है।

'चलो, तपस्या है।'

'हां, मैं कहता जो हूं। भगवान् आदमी को जिस दशा में डाल दें, उसमें सुखी रहना तपस्या नहीं, तो और क्या है?'

दूसरे दिन धनिया ने वैवाहिक आनन्द का दूसरा पहलू सोच निकाला। घर में जब तक सास-ससुर, देवरानियां-जेठानियां न हों, तो ससुराल का सुख ही क्या? कुछ दिन तो लड़की बहुरिया वनने का सुख पाये।

होरी ने कहा—वह वैवाहिक-जीवन का सुख नहीं, दण्ड है।

धनिया तिनक उठी—तुम्हारी वातें भी निराली होती हैं। अकेली वहू घर में कैसे रहेगी, न कोई

आगे न कोई पीछे?

होरी बोला—तू तो इस घर में आयी, तो एक नहीं, दो-दो देवर थे, सास थी, ससुर था। तूने कौन-सा सुख उठा लिया, बता?

'क्या सभी घरों में ऐसे ही प्राणी होते हैं?'

'और नहीं तो क्या आकाश की देवियां आ जाती हैं? अकेली तो बहू, उस पर हुकूमत करनेवाला सारा घर। बेचारी किस-किसको खुश करे? जिसका हुक्म न माने, वही बैरी। सबसे भला अकेला।'

फिर भी बात यहीं तक रह गयी, मगर धनिया का पल्ला हलका होता जाता था। चौथे दिन रामसेवक महतो खुद आ पहुंचे। कलां-रास घोड़े पर सवार, साथ एक नाई और एक ख़िदमतगार, जैसे कोई बड़ा ज़मींदार हो। उम्र चालीस से ऊपर थी, बाल खिचड़ी हो गये थे, पर चेहरे पर तेज था, देह गठी हुई। होरी उनके सामने बिलकुल बूढ़ा लगता था। किसी मुक़दमे की पैरवी करने जा रहे थे। यहां ज़रा दोपहरी काट लेना चाहते हैं। धूप कितनी तेज़ है और कितने ज़ोरों की लू चल रही है! होरी सहुआइन की दुकान से गेहूं का आटा और घी लाया। पूरियां बनीं। तीनों मेहमानों ने खाया। दातादीन भी आशीर्वाद देने आ पहुंचे। बातें होने लगीं।

दातादीन ने पूछा—कैसा मुक़दमा है महतो?

रामसेवक ने शान जमाते हुए कहा—मुकदमा तो एक-न-एक लगा ही रहता है महाराज! संसार में गऊ बनने से काम नहीं चलता। जितना दबो, उतना ही लोग दबाते हैं। थाना-पुलिस, कचहरी-अदालत सब है हमारी रक्षा के लिए, लेकिन रक्षा कोई नहीं करता। चारों तरफ लूट है। जो गरीब है, बेकस है, उसकी गर्दन काटने के लिए सभी तैयार रहते हैं। भगवान् न करें, कोई बेईमानी करे। यह बड़ा पाप है, लेकिन अपने हक और न्याय के लिए न लड़ना उससे भी बड़ा पाप है। तुम्हीं सोचो, आदमी कहां तक दबे? यहां तो जो किसान है, वह सबका नरम चारा है। पटवारी को नजराना और दस्तूरी न दे, तो गांव में रहना मुश्किल। ज़मींदार के चपरासी और कारिन्दों का पेट न भरे, तो निबाह न हो। थानेदार और कानिसिटिबिल तो जैसे उसके दामाद हैं। जब उनका दौरा गांव में हो जाये, किसानों का धरम है, वह उनका आदर-सत्कार करें, नजर-न्याज दें, नहीं एक रिपोर्ट में गांव-का-गांव बंध जाये। कभी कानूनगो आते हैं, कभी तहसीलदार, कभी डिपटी, कभी जण्ट, कभी कलक्टर, कभी कमिसनर। किसान को उनके सामने हाथ बांधे हाजिर रहना चाहिए। उनके लिए रसद-चारे, अण्डे-मुर्गी, दूध-घी का इन्तजाम करना चाहिए। तुम्हारे सिर भी तो वही बीत रही है महाराज! एक-न-एक हाकिम रोज नये-नये बढ़ते जाते हैं। एक डाक्टर कुओं में दवाई डालने के लिए आने लगा है। एक दूसरा डाक्टर कभी-कभी आकर ढोरों को देखता है, लड़कों का इम्तहान लेनेवाला इसपिट्टर है, न जाने किस-किस महकमे के अफ्सर हैं? नहर के अलग, जंगल के अलग, ताड़ी-सराब के अलग, गांव-सुधार के अलग, खेती-विभाग के अलग। कहां तक गिनाऊं? पादड़ी आ जाता है, तो उसे भी रसद देना पड़ता है, नहीं शिकायत कर दे। और जो कहो कि इतने महकमे और इतने अफ्सरों से किसान का कुछ उपकार होता हो, तो नाम को नहीं। कभी जमींदार ने गांव पर हल पीछे दो-दो रुपये चन्दा लगाया। किसी बड़े अफ्सर की दावत दी थी। किसानों ने देने से इनकार कर दिया। बस, उसने सारे गांव पर जाफा कर दिया। हाकिम भी जमींदार ही का पक्ष करते हैं। यह नहीं सोचते कि किसान भी आदमी हैं, उनके भी बाल-बच्चे हैं, उनकी भी इज्जत-आबरू है। और यह सब हमारे दब्बूपन का फल है। मैंने गांव-भर में डोंडी पिटवा दी कि कोई बेसी लगान न दो और न खेत छोड़ो, हमको कोई कायल कर दे, तो हम जाफा देने को तैयार हैं, लेकिन जो तुम चाहो कि बेमुंह के किसानों को पीसकर पी जायें, तो यह न होगा। गांववालों ने मेरी बात मान ली, और सबने जाफा देने से इनकार कर दिया। जमींदार ने देखा, सारा गांव एक हो गया है, तो लाचार हो गया। खेत

वेदखल कर दे, तो जोते कौन? इस जमाने में जव तक कड़े न पड़ो, कोई नहीं सुनता। विना रोये तो वालक भी मां से दूध नहीं पाता।

रामसेवक तीसरे पहर चला गया और धनिया और होरी पर न मिटनेवाला असर छोड़ गया। दातादीन का मन्त्र जाग गया।

उन्होंने पूछा—अव क्या कहते हो?

होरी ने धनिया की ओर इशारा करके कहा—इससे पूछो।

'हम तुम दोनों से पूछते हैं।'

धनिया वोली—उमिर तो ज़्यादा है, लेकिन तुम लोगों की राय है, तो मुझे भी मंजूर है। तकदीर में जो लिखा होगा, वह तो आगे आयेगा ही, मगर आदमी अच्छा है।

और होरी को तो रामसेवक पर वह विश्वास हो गया था, जो दुर्बलों को जीवटवाले आदमियों पर होता है। वह शेखचिल्ली के-से मंसूबे बांधने लगा था। ऐसा आदमी उसका हाथ पकड़ ले, तो बेड़ा पार है।

विवाह का मुहूर्त ठीक हो गया। गोबर को भी बुलाना होगा। अपनी तरफ़ से लिख दो, आने-न आने का उसे अख्तियार है। यह कहने को तो मुंह न रहे कि तुमने मुझे बुलाया कब था? सोना को भी वुलाना होगा।

धनिया ने कहा—गोबर तो ऐसा नहीं था, लेकिन जब झुनिया आने दे। परदेस जाकर ऐसा भूल गया कि न चिट्ठी, न पत्री। न जाने कैसे हैं?—यह कहते-कहते उसकी आंखें सजल हो गयीं।

गोबर को ख़त मिला, तो चलने को तैयार हो गया। झुनिया को जाना अच्छा तो न लगता था, पर इस अवसर पर कुछ कह न सकी। बहिन के ब्याह में भाई का न जाना कैसे सम्भव है? सोना के व्याह में न जाने का कलंक क्या कम है?

गोवर आर्द्र कण्ठ से बोला—मां-बाप से खिंचे रहना कोई अच्छी बात नहीं है। अब हमारे हाथ-पांव हैं, उनसे खिंच लें, चाहे लड़ लें, लेकिन जन्म तो उन्हीं ने दिया, पाल-पोसकर जवान तो उन्हीं ने किया। अब वह हमें चार बात भी कहें, तो हमें गम खाना चाहिए। इधर मुझे बार-बार अम्मां-दादा की याद आया करती है। उस बखत मुझे न जाने क्यों उन पर गुस्सा आ गया। तेरे कारन मां-वाप को भी छोड़ना पड़ा।

झुनिया तिनक उठी—मेरे सिर पर यह पाप न लगाओ, हां! तुम्हीं को लड़ने की सूझी थी। मैं तो अम्मां के पास इतने दिन रही, कभी सांस तक न लिया।

'लड़ाई तेरे कारन हुई।'

'अच्छा, मेरे कारन सही। मैंने भी तुम्हारे लिए अपना घर छोड़ दिया।'

'तेरे घर में कौन तुझे प्यार करता था? भाई बिगड़ते थे, भावजें जलाती थीं। भोला जो तुझे पा जाते, तो कच्ची ही खा जाते।'

'तुम्हारे ही कारन।'

'अवकी जव तक रहें, इस तरह रहें कि उन्हें भी जिन्दगानी का कुछ सुख मिले, उनकी मरजी के खिलाफ कोई काम न करें। दादा इतने अच्छे हैं कि कभी मुझे डांटा तक नहीं। अम्मां ने कई बार मारा है, लेकिन वह जब मारती थीं, तब कुछ-न-कुछ खाने को देती थीं, मारती थीं, पर जब तक मुझे हंसा न लें, उन्हें चैन न आता था।

दोनों ने मालती से ज़िक्र किया। मालती ने छुट्टी ही नहीं दी, कन्या के उपहार के लिए एक चर्खा और हाथों का कंगन भी दिया। वह खुद जाना चाहती थी, लेकिन कई ऐसे मरीज़ उसके इलाज में थे, जिन्हें एक दिन के लिए भी न छोड़ सकती थी। हां, शादी के दिन आने का वादा किया और बच्चे के लिए खिलौनों का ढेर लगा दिया। उसे वार-बार चूमती थी और प्यार करती थी, मानो सब कुछ

पेशगी ले लेना चाहती है और बच्चा उसके प्यार की बिलकुल परवा न करके घर चलने के लिए खुश था—उस घर के लिए, जिसको उसने देखा तक न था। उसकी बाल-कल्पना में घर स्वर्ग से भी बढ़कर कोई चीज़ थी।

गोबर ने घर पहुंचकर उसकी दशा देखी, तो ऐसा निराश हुआ कि इसी वक्त यहां से लौट जाये। घर का एक हिस्सा गिरने-गिरने को हो गया था। द्वार पर केवल एक बैल बंधा हुआ था, वह भी नीमजान। धनिया और होरी दोनों फूले न समाये, लेकिन गोबर का जी उचाट था। अब इस घर के संभलने की क्या आशा है! वह गुलामी करता है, लेकिन भरपेट खाता तो है। केवल एक ही मालिक का तो नौकर है। यहां तो जिसे देखे, वही रोब जमाता है। गुलामी हैं, पर सूखी। मेहनत करके अनाज पैदा करो और जो रुपये मिलें, वह दूसरों को दे दो। आप बैठे राम-राम करो। दादा ही का कलेजा है कि यह सब सहते हैं। उससे तो एक दिन न सहा जाये।

और यह दशा कुछ होरी ही की न थी। सारे गांव पर यह विपत्ति थी। ऐसा एक आदमी भी नहीं, जिसकी रोनी सूरत न हो, मानो उनके प्राणों की जगह वेदना ही बैठी उन्हें कठपुतलियों की तरह नचा रही हो। चलते-फिरते थे, काम करते थे, पिसते थे, घुटते थे, इसलिए कि पिसना और घुटना उनकी तक़दीर में लिखा था। जीवन में न कोई आशा है, न कोई उमंग, जैसे उनके जीवन के सोते सूख गये हों और सारी हरियाली मुरझा गयी हो।

जेठ के दिन हैं, अभी तक खलिहानों में अनाज मौजूद हैं, मगर किसी के चेहरे पर खुशी नहीं है। बहुत कुछ तो खलिहान में ही तुलकर महाजनों और कारिन्दों की भेंट हो चुका है और जो कुछ बचा है, वह भी दूसरों का है। भविष्य अन्धकार की भांति उनके सामने है। उन्हें कोई रास्ता नहीं सूझता। उनकी सारी चेतनाएं शिथिल हो गयी हैं। द्वार पर मनों कूड़ा जमा है, दुर्गन्ध उड़ रही है, मगर उनकी नाक में न गन्ध है, न आंखों में ज्योति। सरेशाम द्वार पर गीदड़ रोने लगते हैं, मगर किसी को ग़म नहीं। सामने जो कुछ मोटा-झोटा आ जाता है, वह खा लेते हैं, उसी तरह जैसे इंजिन कोयला खा लेता है। उनके बैल चूनी-चोकर के बग़ैर नांद में मुंह नहीं डालते, मगर उन्हें केवल पेट में कुछ डालने को चाहिए। स्वाद से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं। उनकी रसना मर चुकी है। उनके जीवन में स्वाद का लोप हो गया है। उनसे धेले-धेले के लिए बेईमानी करवा लो, मुट्ठी-भर अनाज के लिए लाठियां चलवा लो। पतन की वह इन्तिहा है, जब आदमी शर्म और इज़्ज़त को भी भूल जाता है।

लड़कपन से गोबर ने गांवों की यही दशा देखी थी और उसका आदी हो चुका था, पर आज चार साल के बाद उसने जैसे एक नयी दुनिया देखी। भले आदमियों के साथ रहने से उसकी बुद्धि जाग उठी है, उसने राजनीतिक जलसों में पीछे खड़े होकर भाषण सुने हैं और उनसे अंग-अंग में बिंधा है। उसने सुना है और समझा है कि अपना भाग्य खुद बनाना होगा, अपनी बुद्धि और साहस से इन आफ़तों पर विजय पाना होगा। कोई देवता, कोई गुप्त शक्ति उनकी मदद करने न आयेगी और उसमें गहरी संवेदना सजग हो उठी है। अब उसमें वह पहले की उद्दण्डता और ग़रूर नहीं है। वह नम्र और उद्योगशील हो गया है। जिस दशा में पड़े हो, उसे स्वार्थ और लोभ के वश होकर और क्यों बिगाड़ते हो? दु:ख ने तुम्हें एक सूत्र में बांध दिया है। बन्धुत्व के इस दैवी बन्धन को क्यों अपने तुच्छ स्वार्थों से तोड़े डालते हो? उस बन्धन को एकता का बन्धन बना लो। इस तरह के भावों ने उसकी मानवता को पंख-से लगा दिये हैं।

संसार का ऊंच-नीच देख लेने के बाद निष्कपट मनुष्यों में जो उदारता आ जाती है, वह अब मानो आकाश में उड़ने के लिए पंख फड़फड़ा रही है। होरी को अब वह कोई काम करते देखता है, तो उसे हटाकर खुद करने लगता है, जैसे पिछले दुर्व्यवहार का प्रायश्चित्त करना चाहता हो। कहता है, दादा अब कोई चिन्ता मत करो, सारा भार मुझ पर छोड़ दो, मैं अब हर महीने ख़र्च भेजूंगा। इतने दिन तो मरते-खपते रहे, कुछ दिन तो आराम कर लो। मुझे धिक्कार है कि मेरे रहते तुम्हें इतना कष्ट

उठाना पड़ा, और होरी के रोम-रोम से वेटे के लिए आशीर्वाद निकल जाता है। उसे अपनी जीर्ण देह में दैवी स्फूर्ति का अनुभव होता है। वह इस समय अपने क़र्ज़ का व्योरा कहकर उसकी उठती जवानी पर चिन्ता की विजली क्यों गिराये? वह आराम से खाये-पीये, ज़िन्दगी का सुख उठाये। मरने-खपने के लिए वह तैयार है। यही उसका जीवन है। राम-राम जपकर वह जी भी तो नहीं सकता। उसे तो फावड़ा और कुदाल चाहिए। राम-नाम की माला फेरकर उसका चित्त न शान्त होगा।

गोवर ने कहा—कहो, तो मैं सबसे किस्त वंधवा लूं और महीने-महीने देता जाऊं। सव मिलकर कितना होगा?

होरी ने सिर हिलाकर कहा—नहीं वेटा, तुम काहे को तकलीफ उठाओगे। तुम्हीं को कौन वहुत मिलते हैं? मैं सव देख लूंगा। जमाना इसी तरह थोड़े ही रहेगा। रूपा चली जाती है। अव क़र्ज़ ही चुकाना तो है। तुम कोई चिन्ता मत करना। खाने-पीने का संजम रखना। अभी देह वना लोगे, तो सदा आराम से रहोगे। मेरी कौन! मुझे तो मरने-खपने की आदत पड़ गयी है। अभी मैं तुम्हें खेती में नहीं जोतना चाहता वेटा! मालिक अच्छा मिल गया है। उसकी कुछ दिन सेवा कर लोगे, तो आदमी वन जाओगे। वह तो यहां आ चुकी हैं, साक्षात् देवी हैं।

'व्याह के दिन फिर आने को कहा है।'

'हमारे सिर-आंखों पर आयें। ऐसे भले आदमियों के साथ रहने से चाहे पैसे कम भी मिलें, लेकिन ज्ञान वढ़ता है और आंखें खुलती हैं।'

उसी वक्त पण्डित दातादीन ने होरी को इशारे से वुलाया और दूर ले जाकर कमर से सौ-सौ रुपये के दो नोट निकालते हुए वोले—तुमने मेरी सलाह मान ली, वड़ा अच्छा किया। दोनों काम वन गये। कन्या से उरिन हो गये और वाप-दादों की निशानी भी वच गयी। मुझसे जो कुछ हो सका, मैंने तुम्हारे लिए कर दिया, अव तुम जानो, तुम्हारा काम जाने।

होरी ने रुपये लिये, तो उसका हाथ कांप रहा था। उसका सिर ऊपर न उठ सका। मुंह से एक शब्द न निकला, जैसे अपमान के अथाह गढ़े में गिर पड़ा है और गिरता चला जाता है। आज तीस साल तक जीवन से लड़ते रहने के वाद वह परास्त हुआ है और ऐसा परास्त हुआ है कि मानो उसको नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया गया है और जो आता है, उसके मुंह पर थूक देता है। वह चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है, भाइयो, मैं दया का पात्र हूं। मैंने नहीं जाना, जेठ की लू कैसी होती है और माघ की वर्षा कैसी होती है। इस देह को चीरकर देखो, इसमें कितना प्राण रह गया है—कितना जख़्मों से चूर, कितना ठोकरों से कुचला हुआ। उससे पूछो, कभी तूने विश्राम के दर्शन किये, कभी तू छांह में वैठा? उस पर यह अपमान और वह अव भी जीता है, कायर, लोभी, अधम। उसका सारा विश्वास, जो अगाध होकर स्थूल और अन्धा हो गया था, मानो टूक-टूक उड़ गया है।

दातादीन ने कहा—तो मैं जाता हूं। न हो, तो तुम इसी वखत नोखेराम के पास चले जाओ।

होरी दीनता से वोला—चला जाऊंगा महाराज, मगर मेरी इज़्ज़त तुम्हारे हाथ है।

: 36 :

दो दिन तक गांव में खूव धूम-धाम रही। वाजे वजे, गाना-वजाना हुआ और रूपा रो-धोकर विदा हो गयी, मगर होरी को किसी ने घर से निकलते न देखा। ऐसा छिपा वैठा था, जैसे मुंह में कालिख लगी हो। मालती के आ जाने से चहल-पहल और वढ़ गयी। दूसरे गांव की स्त्रियां भी आ गयीं।

गोवर ने अपने शील-स्नेह से सारे गांव को मुग्ध कर लिया है। ऐसा कोई घर न था, जहां वह अपने मीठे व्यवहार की याद न छोड़ आया हो। भोला तो उसके पैरों पर गिर पड़े। उनकी स्त्री ने

उसको पान खिलाये और एक रुपया विदाई दी और उसका लखनऊ का पता भी पूछा। कभी लखनऊ आयेगी, तो उससे ज़रूर मिलेगी। अपने रुपये की उससे चर्चा न की।

तीसरे दिन जब गोबर चलने लगा, तो होरी ने धनिया के सामने आंखों में आंसू भरकर वह अपराध स्वीकार किया, जो कई दिन से उसकी आत्मा को मथ रहा था और रोकर बोला—बेटा, मैंने इस जमीन के मोह से पाप की गठरी सिर लादी। न जाने भगवान् मुझे इसका क्या दण्ड देंगे!

गोबर ज़रा भी गरम न हुआ, किसी प्रकार का रोष उसके मुंह पर न था। श्रद्धाभाव से बोला—इसमें अपराध की कोई बात नहीं दादा! हां, रामसेवक के रुपये अदा कर देना चाहिए। आखिर तुम क्या करते? मैं किसी लायक नहीं, तुम्हारी खेती में उपज नहीं, करज कहीं मिल नहीं सकता, एक महीने के लिए भी घर में भोजन नहीं। ऐसी दशा में तुम और कर ही क्या सकते थे? जैजात न बचाते, तो रहते कहां? जब आदमी का कोई बस नहीं चलता, तो अपने को तकदीर पर ही छोड़ देता है। न जाने यह धांधली कब तक चलती रहेगी? जिसे पेट की रोटी मयस्सर नहीं, उसके लिए मरजाद और इज़्जत सब ढोंग है। औरों की तरह तुमने भी दूसरों का गला दबाया होता, उनकी जमा मारी होती, तो तुम भी भले आदमी होते। तुमने कभी नीति को नहीं छोड़ा, यह उसी का दण्ड है। तुम्हारी जगह मैं होता, तो या जेहल में होता या फांसी पर गया होता। मुझसे यह कभी बरदाश्त न होता कि मैं कमा-कमाकर सबका घर भरूं और आप अपने बाल-बच्चों के साथ मुंह में जाली लगाये बैठा रहूं।

धनिया बहू को उसके साथ भेजने पर राज़ी न हुई। झुनिया का मन भी अभी कुछ दिन यहां रहने का था। तय हुआ कि गोबर अकेला ही जाये।

दूसरे दिन प्रातःकाल गोबर सबसे विदा होकर लखनऊ चला। होरी उसे गांव के बाहर तक पहुंचाने आया। गोबर के प्रति इतना प्रेम उसे कभी न हुआ था। जब गोबर उसके चरणों पर झुका, तो होरी रो पड़ा, मानो फिर उसे पुत्र के दर्शन न होंगे। उसकी आत्मा में उल्लास था, गर्व था, संकल्प था। पुत्र से यह श्रद्धा और स्नेह पाकर वह तेजवान् हो गया है, विशाल हो गया है। कई दिन पहले उस पर जो अवसाद-सा छा गया था, एक अन्धकार-सा, जहां वह अपना मार्ग भूल जाता था, वहां अब उत्साह है और प्रकाश है।

रूपा अपनी ससुराल में खुश थी। जिस दशा में उसका बालपन बीता था, उसमें पैसा सबसे क़ीमती चीज़ थी। मन में कितनी साधें थीं, जो मन ही में घुटकर रह गयी थीं। वह अब उन्हें पूरा कर रही थी और रामसेवक अधेड़ होकर भी जवान हो गया था। रूपा के लिए वह पति था, उसके जवान, अधेड़ या बूढ़े होने से उसकी नारी-भावना में कोई अन्तर न आ सकता था। उसकी यह भावना पति के रंग-रूप या उम्र पर आश्रित न थी, उसकी बुनियाद इससे बहुत गहरी थी, श्वेत परम्पराओं की तह में, जो केवल किसी भूकम्प से ही हिल सकती थी। उसका यौवन अपने ही में मस्त था, वह अपने ही लिए अपना बनाव-सिंगार करती थी और आप ही खुश होती थी। रामसेवक के लिए उसका दूसरा रूप था। तब वह गृहिणी बन जाती थी, घर के काम-काज में लगी हुई। अपनी जवानी दिखाकर उसे लज्जा या चिन्ता में न डालना चाहती थी। किसी तरह की अपूर्णता का भाव उसके मन में न आता था। अनाज से भरे हुए बखार और गांव से सिवान तक फैले हुए खेत और द्वार पर ढोरों की क़तारें और किसी प्रकार की अपूर्णता को उसके अन्दर आने ही न देती थी।

और उसकी सबसे बड़ी अभिलाषा थी अपने घरवालों की खुशी देखना। उनकी ग़रीबी कैसे दूर कर दे? उस गाय की याद अभी तक उसके दिल में हरी थी, जो मेहमान की तरह आयी थी और सबको रोता छोड़कर चली गयी थी। वह स्मृति इतने दिनों के बाद अब और भी मृदु हो गयी थी। अभी उसका निजत्व इस नये घर में न जम पाया था। वही पुराना घर उसका अपना घर था। वहीं के लोग अपने आत्मीय थे, उन्हीं का दुःख उसका दुःख और उन्हीं का सुख उसका सुख था। इस द्वार पर ढोरों का एक रेवड़ देखकर उसे वह हर्ष न हो सकता था, जो अपने द्वार पर एक गाय देखकर

होता। उसके दादा की यह लालसा कभी पूरी न हुई। जिस दिन वह गाय आयी थी, उन्हें कितना उछाह हुआ था, जैसे आकाश से कोई देवी आ गयी हो। तव से फिर उन्हें इतनी समाई ही न हुई कि दूसरी गाय लाते, पर वह जानती थी, आज भी वह लालसा होरी के मन में उतनी ही सजग है। अवकी यह जायेगी, तो साथ वह धौरी गाय जरूर लेती जायेगी। नहीं, अपने आदमी से क्यों न भेजवा दे। रामसेवक से पूछने की देर थी। मंजूरी हो गयी और दूसरे दिन एक अहीर के मार्फ़त रूपा ने गाय भेज दी। अहीर से कहा—दादा से कह देना, मंगल के दूध पीने के लिए भेजी है। होरी भी गाय लेने की फ़िक्र में था। यों अभी उसे गाय की कोई जल्दी न थी, मगर मंगल यहीं है और बिना दूध के कैसे रह सकता है? रुपये मिलते ही वह सवसे पहले गाय लेगा। मंगल अव केवल उसका पोता नहीं है, केवल गोवर का वेटा नहीं है, मालती देवी का खिलौना भी है। उसका लालन-पालन उसी तरह का होना चाहिए।

मगर रुपये कहां से आयें? संयोग से उसी दिन एक ठीकेदार ने सड़क के लिए गांव के ऊसर के कंकड़ की खुदाई शुरू की। होरी ने सुना, तो चट-पट वहां जा पहुंचा और आठ आने रोज़ पर खुदाई करने लगा। अगर यह काम दो महीने भी टिक गया, तो गाय-भर को रुपये मिल जायेंगे। दिन-भर लू और धूप में काम करने के वाद, वह घर आता, तो बिलकुल मरा हुआ, अवसाद का नाम नहीं। उसी उत्साह से दूसरे दिन काम करने जाता। रात को भी खाना खाकर डिब्बी के सामने बैठ जाता और सुतली कातता। कहीं वारह-एक वजे सोने जाता। धनिया भी पगला गयी थी, उसे इतनी मेहनत करने से रोकने के वदले खुद उसके साथ वैठी-वैठी सुतली कातती। गाय तो लेनी ही है, रामसेवक के रुपये भी तो अदा करने हैं। गोवर कह गया है। उसे वड़ी चिन्ता है।

रात के वारह वज गये थे। दोनों बैठे सुतली कात रहे थे। धनिया ने कहा—तुम्हें नींद आती हो, तो जाके सो रहो। भोरे फिर तो काम करना है।

होरी ने आसमान की ओर देखा—चला जाऊंगा। अभी तो दस बजे होंगे। तू जा, सो रह।

'मैं तो दोपहर को छन-भर पौढ़ रहती हूं।'

'मैं भी चवेना करके पेड़ के नीचे सो लेता हूं।'

'वड़ी लू लगती होगी।'

'लू क्या लगेगी? अच्छी छांह है।'

'मैं डरती हूं, कहीं तुम बीमार न पड़ जाओ।'

'चल, वीमार वह पड़ते हैं, जिन्हें वीमार पड़ने की फुर्सत होती है। यहां तो यह धुन है कि अवकी गोवर आये, तो रामसेवक के आधे रुपये जा रहें। कुछ वह भी लायेगा। वस, इस साल इस रिन से गला छूट जाये, तो दूसरी जिन्दगी हो।'

'गोवर की अबकी बड़ी याद आती है। कितना सुशील हो गया है?'

'चलती वेर पैरों पर गिर पड़ा।'

'मंगल वहां से आया, तो कितना तैयार था। यहां आकर दुवला हो गया है।'

'वहां दूध, मक्खन, क्या नहीं पाता था? यहां रोटी मिल जाये, [illegible] मिले और गाय लाया।'

'गाय तो कभी आ गयी होती, लेकिन तुम जव [illegible] थी, पुनिया का भार भी अपने सिर ले लिया।'

'क्या करता, अपना धरम भी तो कुछ है। [illegible] संभालनेवाला तो कोई चाहिए ही था। कौन [illegible] क्या गति होती, सोच। इतना सव करने पर [illegible]

'रुपये गाड़कर रखेगी, तो क्या [illegible]

'क्या वकती है? खेती से पेट चल जाये यही वहुत है। गाड़कर कोई क्या रखेगा?'

'हीरा तो जैसे संसार से ही चला गया।'

'मेरा मन तो कहता है कि वह आवेगा, कभी-न-कभी जरूर।'

दोनों सोये। होरी अंधेरे मुंह उठा, तो देखता है कि हीरा सामने खड़ा है, वाल वढ़े हुए, कपड़े तार-तार, मुंह सूखा हुआ, देह में रक्त और मांस का नाम नहीं, जैसे क़द भी छोटा हो गया है। दौड़कर होरी के क़दमों पर गिर पड़ा।

होरी ने उसे छाती से लगाकर कहा—तुम तो विलकुल घुल गये हीरा! कव आये? आज तुम्हारी वार-वार याद आ रही थी। वीमार हो क्या?

आज उसकी आंखों में वह हीरा न था, जिसने उसकी ज़िन्दगी तल्ख़ कर दी थी, वल्कि वह हीरा था, जो वे-मां-वाप का छोटा-सा वालक था। वीच के पचीस-तीस साल जैसे मिट गये, उनका कोई चिन्ह भी नहीं था।

हीरा ने कुछ जवाव न दिया। खड़ा रो रहा था।

होरी ने उसका हाथ पकड़कर गद्गद कण्ठ से कहा—क्यों रोते हो भैया, आदमी से भूल-चूक होती ही है। कहां रहा इतने दिन?

हीरा कातर स्वर में वोला—कहां वताऊं दादा! वस, यही समझ लो कि तुम्हारे दर्शन वदे थे, वच गया। हत्या सिर पर सवार थी। ऐसा लगता था कि वह गऊ मेरे सामने खड़ी है। हरदम, सोते-जागते, कभी आंखों से ओझल न होती। मैं पागल हो गया और पांच साल पागलखाने में रहा। आज वहां से निकले छह महीने हुए। मांगता-खाता, फिरता रहा। यहां आने की हिम्मत न पड़ती थी। संसार को कौन मुंह दिखाऊंगा? आखिर जी न माना। कलेजा मजबूत करके चला आया। तुमने वाल-वच्चों को...

होरी ने वात काटी—तुम नाहक भागे। अरे दारोगा को दस-पांच देकर मामला रफे-दफे करा दिया जाता और होता क्या?

'तुमसे जीते-जी उरिन न हूंगा दादा!'

'मैं कोई गैर थोड़े हूं भैया।'

होरी प्रसन्न था। जीवन के सारे संकट, सारी निराशाएं मानो उसके चरणों पर लौट रही थीं। कौन कहता है, जीवन-संग्राम में वह हारा है। यह उल्लास, यह गर्व, यह पुलक क्या हार के लक्षण हैं? इन्हीं हारों में उसकी विजय है। उसके टूटे-फूटे अस्त्र उसकी विजय-पताकाएं हैं। उसकी छाती फूल उठी है, मुख पर तेज आ गया है। हीरा की कृतज्ञता में उसके जीवन की सारी सफलता मूर्तिमान हो गयी है। उसके वखार में सौ-दो सौ मन अनाज भरा होता, उसकी हांडी में हजार-पांच सौ गड़े होते, पर उससे यह स्वर्ग का सुख क्या मिल सकता था?

हीरा ने उसे सिर से पांव तक देखकर कहा—तुम भी तो वहुत दुवले हो गये दादा!

होरी ने हंसकर कहा—तो क्या यह मेरे मोटे होने के दिन हैं? मोटे वह होते हैं, जिन्हें न रिन का सोच होता है न इज़्जत का। इस जमाने में मोटा होना वेहयाई है। सौ को दुवला करके तव एक मोटा होता है। ऐसे मोटेपन में क्या सुख? सुख तो जव है कि सभी मोटे हों। सोभा से भेंट हुई?

'उससे तो रात ही भेंट हो गयी थी। तुमने तो अपनों को भी पाला, जो तुमसे वैर करते थे, उनको भी पाला और अपना मरजाद वनाये वैठे हो। उसने तो खेती-वारी सव वेच-वाच डाली और अव भगवान् ही जाने, उसका निवाह कैसे होगा?'

आज होरी खुदाई करने चला, तो देह भारी थी। रात की थकान दूर न हो पायी थी, पर उसके क़दम तेज़ थे और चाल में निर्द्वन्द्वता की अकड़ थी।

आज दस वजे ही से लू चलने लगी और दोपहर होते-होते ही आग वरस रही थी। होरी कंकड़

के झौवे उठा-उठाकर खदान से सड़क पर लाता था और गाड़ी पर लादता था। जब दोपहर की छुट्टी हुई, तो वह बेदम हो गया था। ऐसी थकान उसे कभी न हुई थी। उसके पांव तक न उठते थे। देह भीतर से झुलसी जा रही थी। उसने न स्नान ही किया, न चबेना। उसी थकान में अपना अंगोछा विछाकर एक पेड़ के नीचे सो रहा, मगर प्यास के मारे कण्ठ सूखा जाता है। खाली पेट पानी पीना ठीक नहीं। उसने प्यास को रोकने की चेष्टा की, लेकिन प्रतिक्षण भीतर की दाह बढ़ती जाती थी। न रहा गया। एक मज़दूर ने बालटी भर रखी थी और चबेना कर रहा था। होरी ने उठाकर एक लोटा पानी खींचकर पिया और फिर आकर लेट रहा, मगर आधा घण्टे में उसे क़ै हो गयी और चेहरे पर मुर्दनी-सी छा गयी।

उस मज़दूर ने कहा—कैसा जी है होरी भैया?

होरी के सिर में चक्कर आ रहा था। बोला—कुछ नहीं, अच्छा हूं।

यह कहते-कहते उसे फिर क़ै हुई और हाथ-पांव ठण्डे होने लगे। यह चक्कर क्यों आ रहा है? आंखों के सामने जैसे अंधेरा छाया जाता है। उसकी आंखें बन्द हो गयीं और जीवन की सारी स्मृतियां सजीव हो-होकर हृदय-पट पर आने लगीं, लेकिन बे-क्रम, आगे की पीछे, पीछे की आगे, स्वप्न-चित्रों की भांति बेमेल, विकृत और असम्बद्ध। वह सुखद बालपन आया, जब वह गुल्लियां खेलता था और मां की गोद में सोता था। फिर देखा, जैसे गोबर आया है और उसके पैरों पर गिर रहा है। फिर दृश्य बदला, धनिया दुलहिन बनी हुई, लाल चुंदरी पहने उसको भोजन करा रही थी। फिर एक गाय का चित्र सामने आया, बिलकुल कामधेनु-सी। उसने उसका दूध दुहा और मंगल को पिला रहा था कि गाय एक देवी बन गयी और...

उसी मज़दूर ने फिर पुकारा—दोपहरी ढल गयी होरी, चलो झौवा उठाओ।

होरी कुछ न बोला। उसके प्राण तो न जाने किस-किस लोक में उड़ रहे थे। उसकी देह जल रही थी, हाथ-पांव ठण्डे हो रहे थे। लू लग गयी थी।

उसके घर आदमी दौड़ाया गया। एक घण्टा में धनिया दौड़ी हुई आ पहुंची। शोभा और हीरा पीछे-पीछे खटोले की डोली बनाकर ला रहे थे।

धनिया ने होरी की देह छुई, तो उसका कलेजा सन्न से हो गया। मुख कान्तिहीन हो गया था।

कांपती हुई आवाज़ से बोली—कैसा जी है तुम्हारा?

होरी ने अस्थिर आंखों से देखा और बोला—तुम आ गये गोवर? मैंने मंगल के लिए गाय ले ली है। वह खड़ी है, देखो।

धनिया ने मौत की सूरत देखी थी। उसे पहचानती थी। उसे दवे पांव आते भी देखा था, आंधी की तरह भी देखा था। उसके सामने सास मरी, ससुर मरा, अपने दो वालक मरे, गांव के पचासों आदमी मरे। प्राण में एक धक्का-सा लगा। वह आधार, जिस पर जीवन टिका हुआ था, जैसे खिसका जा रहा था, लेकिन नहीं, यह धैर्य का समय है, उसकी शंका निर्मूल है, लू लग गयी है, उसी से अचेत हो गये हैं।

उमड़ते हुए आंसुओं को रोककर बोली—मेरी ओर देखो, मैं हूं, क्या मुझे नहीं पहचानते?

होरी की चेतना लौटी। मृत्यु समीप आ गयी थी, आग दहकने वाली थी। धुआं शान्त हो गया था। धनिया को दीन आंखों से देखा, दोनों कोनों से आंसू की दो बूंदें ढुलक पड़ीं। क्षीण स्वर में वोला—मेरा कहा-सुना माफ करना धनिया। अव जाता हूं। गाय की लालसा मन में ही रह गयी। अव तो यहां के रुपये क्रिया-करम में जायेंगे। रो मत धनिया, अव कव तक जिलायेगी? सव दुर्दशा तो हो गयी। अब मरने दे।

और उसकी आंखें फिर वन्द हो गयीं। उसी वक्त हीरा और शोभा डोली लेकर पहुंच गये। होरी को उठाकर डोली में लिटाया और गांव की ओर चले।

गांव में यह खबर हवा की तरह फैल गयी। सारा गांव जमा हो गया। होरी खाट पर पड़ा शायद सब कुछ समझता था, पर ज़बान बन्द हो गयी थी। हां, उसकी आंखों से बहते आंसू बतला रहे थे कि मोह का बन्धन तोड़ना कितना कठिन हो रहा है। जो कुछ अपने से नहीं बन पड़ा, उसी के दुःख का नाम तो मोह है। पाले हुए कर्तव्य और निपटाये हुए कामों का क्या मोह? मोह तो उन अनाथों को छोड़ जाने में है, जिनके साथ हम अपना कर्तव्य न निभा सके, उन अधूरे मंसूबों में है, जिन्हें हम न पूरा कर सके।

मगर सब कुछ समझ कर भी धनिया आशा की मिटती हुई छाया को पकड़े हुए थी। आंखों से आंसू गिर रहे थे, मगर यन्त्र की भांति दौड़-दौड़कर कभी आम भूनकर पना बनाती, कभी होरी की देह में गेहूं की भूसी की मालिश करती। क्या करे, पैसे नहीं हैं, नहीं किसी को भेजकर डाक्टर बुलाती।

हीरा ने रोते हुए कहा—भाभी, दिल कड़ा करो, गोदान करा दो, दादा चले।

धनिया ने उसकी ओर तिरस्कार की आंखों से देखा। अब वह दिल को और कितना कठोर करे? अपने पति के प्रति उसका जो कर्म है, क्या वह उसको बताना पड़ेगा? जो जीवन का संगी था, उसके नाम को रोना ही क्या उसका धर्म है?

और कई आवाज़ें आयीं—हां, गोदान करा दो, अब यही समय है।

धनिया यन्त्र की भांति उठी, आज जो सुतली बेची थी, उसके बीस आने पैसे लायी और पति के ठण्डे हाथ में रखकर सामने खड़े दातादीन से बोली—महराज! घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है।

और पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

■ ■ ■